कुछ अपनी भी !

अगस्त'४६ की बात है। जयपुर जा रहा था। वही जयपुर, जो 'भारतका पैरिस' कहलाता है। 'सरोज' जी बोले—'चलिये, आपको एक हस्त-सामुद्रिकसे मिला लाऊँ। बड़े अनुभवी हैं हमारे मुख्तार साहब।' हाथकी रेखाएं देखकर मुख्तार साहब बोले—'आप अर्थशास्त्र-पर जो पुस्तक लिखना चाहते हैं, उसे अवश्य लिखिये !'

बंगाल हिन्दी मण्डलकी प्रतियोगिताके लिए 'भारतवर्षका आर्थिक इतिहास' लिखनेकी मेरी कल्पनाको मुख्तार साहबके इन अप्रत्याशित शब्दोंसे मानों पर लग गये। वह कल्पना आज साकार हो रही है।

× × ×

इसे मेरा अहंकार न माना जाय यदि मैं कहूं कि जानपर खेल-कर मैंने यह पुस्तक लिखी। पग-पगपर बाधाएं और मुसीबतें। जिनसे सहायताकी आशा थी, जिन्हें 'अपना' मानता था, वे भी समयपर 'बेगाने' हो बैठे! पर जितनी बाधाएं आती चलीं, उतना ही मैं इसे पूर्ण करनेके लिए कृतसंकल्प होता चला। कल्पना कीजिये—आधी पुस्तक टाइप करनेके बाद टाइपिस्ट भाई ओंकारजीकी पत्नी चिन्ताजनक स्थितिमें अस्पताल पहुंचायी जाती है। अब मुझे ही लिखना, मुझे ही अनभ्यस्त होते हुए टाइप करना! तीन प्रतियाँ जो दिल्ली भेजनी थीं! जब केवल १५ दिन रह जाते हैं, पुस्तकके ५०,६० पृष्ठ लिखने शेष हैं तभी मुझे खूनी पेचिश और बुखार घेर लेता है! आधी आधी राततक दैनिक 'लोकवाणी' के सम्पादनमें व्यस्त, अवकाशके समयमें पुस्तकका लेखन, संपादन और टंकण!

कार्य चल रहा है। ३० जून १९४७ तक पुस्तक दिल्ली पहुंचनी है। पेचिश, मरोड़, खूनी दस्त, बुखार—सबका दौर जारी है। कार्यभार

वदस्तूर है। इसी हालतमें २५ जूनको मैं पुस्तक समाप्त करता हूँ। इन आड़े दिनोंमें टाइपिस्ट भाई फिर काम आ गये। उनकी पत्नी स्वस्थ हो गयी थी। मैंने कहा—'भाई, तुमने श्रीगणेश किया है, समाप्त भी तुम्हीं कर दो।' २७ जूनको उन्होंने पुस्तक टाइप करके दे दी। २९ की रातको ८ वजे ट्रेन जानेके समयतक मैं उसमें यथा-सम्भव संशोधन करता रहा। भाई सतीशको दिल्ली भेजा। मुझमें इतनी भी सामर्थ्य न थी कि ट्रेनकी यात्रा कर सकता। स्थिति ऐसी आ गयी थी कि शायद मुझे ही दिल्ली जाना पड़ता। यदि ऐसा होता तो कह नहीं सकता कि मैं दिल्ली पहुंच भी पाता या नहीं। कारण, उस रातको पुस्तक भेज चुकनेके वाद, इतने जोरका वुखार आया कि मुझे होश तक न रहा!

× × ×

रात दिन अनवरत श्रम। सो भी एक दो दिन नहीं, लगातार ११ मास! अगस्त'४६ से जून'४७ तक। टहलना, आसन, सूर्य नमस्कार आदि सव कुछ छूट गया। भोजनका भी कोई ध्यान न रहा। अतः पुस्तक भेजनेके दूसरे ही दिन देखता हूं कि सारा शरीर पीला पड़ गया है। आखें पीली, नाखून पीले, थूक और मूत्रतक पीला! चलने-फिरने, उठने-वैठनेकी भी सामर्थ्य नहीं। चौथे दिन भाई सतीशने लौटकर मुझे मय सामानके गाड़ीपर लादा। तव कहीं पाँचवें दिन कानपुर लगा।

× × ×

कानपुर—ससुराल—में डाक्टर शर्माने देखकर वताया कि मुझे Anaemia (रक्ताल्पता) है, Dyspepsia (मंदाग्नि) है और न जाने क्या क्या! एक मासतक उन्होंने तत्परतासे 'इंजेकशन' लगाये, दवा दी, चंगा किया। उनकी और भैया गंगाचरण शर्माकी देखभालसे ही मैं उठ खड़ा हो पाया। यह उपकार भी भला भूलनेकी वस्तु है?

× × ×

ठीक ६ मास वाद एक दिन भाई गणेश प्रसाद सिंह हंसते हुए आये। वोले—'मिठाई खिलाइये तो आपको खुशखवरी सुनाऊं।' मैंने कहा—'सुनाइये भी तो!'

दैनिक 'हिन्दुस्तान'की कटिंग लाकर उन्होंने सामने रख दी। लिखा था कि वंगाल हिन्दी मण्डलने मेरी लिखी 'भारतवर्षका आर्थिक इतिहास' पुस्तकको प्रतियोगितामें सर्वश्रेष्ठ मानकर उसपर १५००) पुरस्कार देनेका निश्चय किया है।

× × ×

वस, इतनी ही तो है इस पुस्तककी राम-कहानी।

× × ×

माना, मैंने इसमें श्रम किया है, पर इसका लिखा जाना, और इतने वाधा-विघ्नोंको पारकर इसका पुरस्कृत होना सव परम-पिताकी लीला है। 'उन्हीं' के इशारेपर यह सव हुआ है। इसलिए मेरी तो इतनी ही प्रार्थना है कि—

'त्वदीयं वस्तु गोविन्द, तुभ्यमेव समर्पये!'

× × ×

जिन लेखकोंकी रचनाओंसे मैंने सहायता ली है, उनके प्रति मैं हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूं। उनके अतिरिक्त मैं सर्व श्री कन्हैया-लाल माणिकलाल मुंशी, कैलासनाथ काटजू, मनुसूवेदार, मिनू मसानी, सैय्यद अब्दुल्ला वरेलवी, भीमसेन सच्चर, श्रीमन्नारायण अग्रवाल, दयाशंकर दुवे, भगवानदास केला आदि महानुभावोंके प्रति भी हृदयसे कृतज्ञ हूं। इन सज्जनोंने अमूल्य सुझाव देकर मुझे पुस्तक लिखनेके लिए विशेष रूपसे प्रोत्साहित किया। आदरणीय भाई सिद्धराजजी ढड्ढा और भाई पूर्णचन्द्रजी जैनके प्रति मैं किन शब्दोंमें कृतज्ञता प्रकट करूं? ज्ञानमन्दिरसे मुझे अपने लिए अपार

सामग्री मिली है। जयपुरकी पब्लिक लाइब्रेरी और स्थानीय कालेज—अब राजपूताना विश्वविद्यालय—के पुस्तकालयका भी मैंने उपयोग किया है। उनका भी आभारी हूं। भाई राजमल सिंघी, सतीश विद्यालंकार, भंवरलाल अजमेरा, परमेश्वरीलाल गुप्त, भाई वीरेश्वर ऐयर, काशी भाई, ओंकार वर्मा, जगदीशचन्द्र जैसवाल, राजेश्वर नारायण सिनहा, बालूलाल पानगड़िया, 'अजेय', मदनमोहन शर्मा, कृष्ण स्वरूप शुक्ला, रामनिवास मूंदड़ा, रामसुन्दरसिंह आदि तो इतने 'अपने' हैं कि धन्यवाद पानेमें अपमान समझेंगे।

और सहधर्मिणी सरस्वती देवी विद्याविनोदिनी? वह तो धन्य-वादका नाम ही सुनकर चिढ़ उठेगी, पर पुस्तकके प्रणयनमें उसने जो सहयोग दिया है और बीमारीमें जैसी तत्परतासे सेवा की है, उसे भुलाना घोर कृतघ्नता होगी।

बंगाल हिन्दी मण्डलका मैं हृदयसे आभारी हूं। मण्डलकी योजना न होती तो यह पुस्तक अभी लिखी भी न जाती। अतः उसके प्राण पूज्य वियोगी हरिजी, सभापति भाई लक्ष्मीनिवासजी बिड़ला, एवं दिल्ली शाखाके संयोजक भाई मोतीलाल मालवीयका भी मैं कृतज्ञ हूं। आशा है मण्डल अपना यह सत्प्रयत्न जारी रखेगा और इस प्रकार अमूल्य रत्नोंसे माता भारतीका अंचल भरता रहेगा।

डाइरेक्टर, आल इंडिया इंस्टीट्यूट आव हाइजिन एण्ड पब्लिक हेल्थ, कलकत्ताका भी मैं आभारी हूं। उन्होंने मेरे अनुरोधपर अनेक आवश्यक आंकड़े भेजकर मेरी सहायता की है। घोष बाबू अपने प्रेस-कोटेसे कागज न देते तो पुस्तक अभी छपती भी नहीं। इसके लिए वे भी मेरे धन्यवादके पात्र हैं।

× × ×

बुरी भली जैसी भी है, पुस्तक आपके हाथमें है। इसमें मेरी नादानीके कारण असंख्य भूलें एवं त्रुटियां रह गयी हैं, यह मैं जानताहूं। छपाईमें भी अनेक भद्दी भूलें छूट गयी हैं। चाहता था कि परिशिष्टमें सन् ४७ से अब तकके इतिहास, राष्ट्रपिता बापूके बलिदान, नयी आर्थिक योजनाओं तथा पाकिस्तानकी डांवाडोल अर्थ-व्यवस्था आदिपर भी कुछ पन्ने जोड़ देता, अनुक्रमणिका एवं सहायक-ग्रन्थोंकी सूची भी दे देता, पर न तो इस 'अकिंचन' के पास पैसा है, न कागज है और न अधिक समयतक पुस्तक रोक रखनेका धैर्य। अतः क्षमा करें। अवसर मिलनेपर इन कमियोंकी पूर्ति और त्रुटियोंका परिमार्जन करनेकी आशामें,

जन साहित्य मन्दिर,
काशी
गान्धी जयन्ती, २००५

विनयावनत
श्री कृष्णदत्त भट्ट

ताम्र पत्रकी प्रतिलिपि

बंगाल हिन्दी मंडल

संवत् २००४ का

'भारतवर्षका आर्थिक इतिहास' पारितोषिक

[रु० १५००]

बंगाल-हिन्दी मंडलके पारितोषिक वितरणोत्सवपर

श्री श्रीकृष्ण दत्त भट्ट

को

उनकी रचना 'भारतवर्षका आर्थिक इतिहास' के लिए

सादर दिया गया

कलकत्ता,
५ माघ, सं० २००४

लक्ष्मी निवास बिड़ला
सभापति
बं० हिं० मं०

विषय सूची

लेखककी अन्य रचनाएँ

प्रकाशित

१—इंसानियतका तकाजा [राजनीतिक]
२—बाहरी परीक्षा [कहानी संग्रह]
३—सद्‌गुणी बालक [गुजरातीसे अनूदित]
४—आनन्दमठ [बंगलासे अनूदित]
५—अन्तिम अभिलाषा „

अप्रकाशित

१—सेवाकी पगडण्डी [सेवा क्यों, किनकी, कैसे ?]
२—सेवाके पुजारी [रेखाचित्र]
३—आनन्दका समुद्र [प्राकृतिक जीवन]
४—वरवधूसे दो बातें [दाम्पत्य विज्ञान]
५—पत्र : जीवन-संगिनीके नाम „
६—नवदम्पतिके प्रति „
७—पत्नी चाहती क्या है ? „
८—राष्ट्रके भावी कर्णधारोंसे— [प्रेरणात्मक]
९—आत्म-निर्माण „
१०—प्रेम मदिरा [आध्यात्मिक]
११—पवित्र जीवनका रहस्य „
१२—साधककी डायरी „
१३—वृहत्तर भारत [अनुशीलन]
१४—भारतवर्षका सांस्कृतिक इतिहास „
१५—बापू : जीवन और साधना

हमारा देश

—एक झाँकी

गायंति देवाः किल गीतकानि धन्यास्तु ते भारतभूमि भागे,
स्वर्गापवर्गास्पदमार्ग भूते भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात।[1]

भूलोकका गौरव, प्रकृतिका पुण्य लीलास्थल कहाँ,
फैला मनोहर गिरि हिमालय और गंगा-जल जहाँ,
सम्पूर्ण देशोंसे अधिक किस देशका उत्कर्ष है।
उसका कि जो ऋषि भूमि है, वह कौन? भारतवर्ष है।[2]

भारतवर्षको श्रेष्ठतासे कौन अपरिचित है? मैक्समूलर जैसे महान पंडितोंने मुक्तकंठसे यह बात स्वीकार की है कि विश्वमें धन-सम्पत्ति, शक्ति और सौंदर्य सभी दृष्टियोंसे सर्वश्रेष्ठ देश यदि कोई है तो वह भारतवर्ष ही है। उसे पृथ्वीतलका स्वर्ग कहना चाहिये। इसीलिए तो बंकिम बाबूने 'सुजलां, सुफलां, मलयज-शीतलां, शस्य-श्यामलां' कहकर भारत माताकी वंदना की है।

१—विष्णु पुराण २। ३। २४। २—भारत भारती, पृष्ठ ४।

काश्मीर और कैलाशकी हिमाच्छादित चोटियाँ, विंध्यपर्वतमाला, अमरकंटक, सतपुरा आदिके अनुपम दृश्य, धुआँधार जैसे अनुपम

शस्य-श्यामला भूमि

प्रपात, गंगा, यमुना, सिंधु, ब्रह्मपुत्र, नर्मदा, ताप्ती, कृष्णा, कावेरी जैसी अमृतवाहिनी सरिताएँ और कहाँ हैं? शोभा और सौंदर्यकी ऐसी अनुपम झाँकी विश्वमें अन्यत्र कहाँ देखनेको मिलती है? पुरी और रामेश्वरम्‌में सिंधुतटपर खड़े हो अनन्ततक विस्तीर्ण सागरकी वीचियोंकी शोभापर किसका मन न्योछावर नहीं हो जाता?

प्रकृति सुन्दरीने भारतमें अपनी सोलहो कलाएँ प्रदर्शित की हैं। नद और पर्वत, सागर और तालाव, झील और जंगल—जिधर दृष्टि डालिये, उसकी अनुपम सुषुमा विखरी दीख पड़ती है। चतुर चितेरेकी चातुरी पर मन-मयूर मुग्ध हुए विना नहीं रहता। आँखोंका जीवन धन्य लगता है। और इतना ही नहीं, प्रकृति सुन्दरीने भारत माताकी गोद असंख्य अनमोल रत्नोंसे भर दी है। सारी नियामतें मुक्तहस्त हो उसे लुटा दी हैं। कोई भी तो कमी नहीं रखी। उत्तमसे उत्तम जलवायु, अधिकसे अधिक उपजाऊ भूमि और सभी वस्तुओंकी उत्पत्ति तो यहाँ होती ही है, रत्नगर्भा भूमि परम मूल्यवान खनिज पदार्थोंसे भी भरी पड़ी है। सोना और चाँदी, लोहा और कोयला, ताँवा और जस्ता, नमक और शोरा, सभी कुछ तो उपलव्ध है यहाँ। हीरा, मोती, पन्ना, लाल, जवाहर भी अलभ्य नहीं। चावल और गेहूँ, जौ और चना, मक्का और वाजरा, तिल और तेलहन, आम और अंगूर, सेव और छुहारे, गरी और वादाम, गन्ना और कपास, ऊन और रेशम, जूट और सन, क्या नहीं होता यहाँ? भारतभूमि वस्तुतः स्वर्णभूमि है।

वातावरणका प्रभाव

मनुष्य संवेदनशील प्राणी है। उसपर वातावरणका प्रभाव पड़ता है। भारतके प्राकृतिक दृश्य इतने भव्य और उज्ज्वल है कि उन्हें देखकर हृदयमें स्वभावत: पवित्र और उदात्त भावनाओंका जन्म होता है। इसीलिए हम देखते हैं कि भारतवासी आदिकालसे ऋषियों और महर्षियोंका जीवन बिताते आये हैं। उनका जीवन पवित्र भावनाओंसे ओतप्रोत रहा है। तभी तो भारत आरम्भसे अखिल विश्वका दार्शनिक गुरु रहा है। दर्शन और वेदान्तकी गहनसे गहन मीमांसा भारतमें की गयी है। यह वातावरणका प्रभाव नहीं तो क्या है?

यों भी, मानवीय इतिहासकी गवेषणा करनेपर हम इसी तथ्य-पर पहुँचते हैं कि मनुष्य वातावरणको देखकर ही कहींपर वसने या जमनेकी वात सोचता है। जहाँका वातावरण, जहाँकी जलवायु, भूमि, उसकी उर्वरा शक्ति और स्थिति उसके अनुकूल वैठती है वहींपर अपना डेरा जमानेकी वात वह सोचता है। सामाजिक जीवनके विकासमें यह वात स्पष्ट रूपसे दिखाई पड़ती है। प्रकृतिने जहाँपर उदारतासे अपनी नियामतें विखेर रखी हैं वहींपर सवसे पहले मनुष्यने वसना आरम्भ किया है। इसीलिए हम देखते हैं कि आदिमकालके मानवने सिन्धु और गंगा, नील और फरातकी उपत्यकाओंमें ही सवसे पहले अपना डेरा डाला। यहींपर सवसे पहले सभ्यताका उदय हुआ। मनुष्यने वहींपर वसना ठीक समझा जहाँ उसे उपजाऊ भूमि, उत्तम नदियाँ और सुन्दर जलवायु मिली। सहारा-की मरुभूमिमें या उत्तरी अथवा दक्षिणी ध्रुवमें वसनेके लिए कोई नहीं गया। लोग वहीं पर वसे जहाँ उन्हें कृषिकी सभी सुविधाएं मिलीं और खाने-पीनेकी वस्तुएँ सरलतासे उपलब्ध हो सकीं। आर्थिक दृष्टि से ऐसा होना भी चाहिये था।

भारतमें सभी सुविधाएँ

भारत जैसे विशाल देशमे प्रकृतिने सभी प्रकारकी सुविधाएँ बिखेर रखी हैं। यही कारण है कि विश्वमें सबसे पहले भारतमें ही सभ्यताका विकास हुआ। यहाँकी शस्यश्यामला भूमि सदासे सोना उगलती रही है। भारत जैसा सम्पन्न, भरा-पुरा, खुशहाल देश दुनियाँके पर्देपर दूसरा नहीं था। उसकी भौगोलिक स्थिति, उसके पर्वत, उसकी नदियाँ, उसकी उपजाऊ भूमि, उसके सागर, उसकी जलवायु, उसके जंगल, उसके खनिज पदार्थ, आजसे नहीं सदियोंसे अपनी उत्तमताके लिए प्रख्यात रहे हैं। यहाँके निवासियोंने उनका सदुपयोग भी खूब किया। उन्होंने उनकी सहायतासे ऐसी संस्कृति और सभ्यताका विकास किया जो आज भी विश्वमें सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है। राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरणजी गुप्तने पुराणों, टाड राजस्थान और सर वाल्टर रैलेके विश्व इतिहास आदिके प्रमाण देते हुए लिखा है—

हाँ, वृद्ध भारतवर्ष ही संसारका सिरमौर है।
ऐसा पुरातन देश कोई विश्वमें क्या और है॥
भगवानकी भव भूतियोंका यह प्रथम भांडार है।
विधिने किया नर-सृष्टिका पहले यहीं विस्तार है।

भौगोलिक स्थिति

भौगोलिक दृष्टिसे भारतकी स्थिति बड़े मजेकी है। पूर्वी गोलाद्र्धका केन्द्र होनेके कारण इसकी स्थिति एशिया, युरोप और अफ्रिकासे व्यापार करनेके लिए अत्यन्त अनुकूल पड़ती है। कलकत्ता और मद्रास, बंबई और कराची जैसे मुख्य बन्दरगाहोंके जरिये युरोप और निकट-पूर्वसे लेकर सुदूरपूर्व और आस्ट्रेलियातक मजेमें व्यापार हो सकता है। चीन और जापान, स्याम और मलाया, आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्ड, पूर्वी अफ्रिका और दक्षिणी अफ्रिका, युरोप और रूस, इरान और ईराक

आदि सभी देशोंसे व्यापार करनेकी भारतको पूरी सुविधा है। भारतीय प्राचीन कालसे इसका पूरा लाभ उठाते रहे हैं।

भारतके उत्तरमें हिमालयकी गगनचुम्बी हिमाच्छादित दीवाल है। शेप तीनों ओर सागर लहरा रहा है। हिमालय उसका सतत जागरूक प्रहरी है। इसके अतिरिक्त वह उसकी वर्षा और जलवायु-पर भी अत्यधिक प्रभाव डालता है। उत्तर-पश्चिममें केवल खैबर और बोलनके दर्रे हैं जहाँसे होकर विदेशी भारतमें प्रविष्ठ हो सकते हैं। इन मार्गोंका समय-समय पर विदेशी आक्रमणकारियोंने उपयोग किया है सही, पर ये इतने सँकरे हैं कि इनके सहारे भारतपर अत्यन्त व्यापक आक्रमण नहीं किया जा सकता।

यह विशाल भूखंड भूमध्य-रेखाके ८ डिग्री उत्तरसे ३६ डिग्री उत्तर अक्षांश और ६२ डिग्रीसे ९६ डिग्री देशान्तरके बीच फैला है।

विस्तार उत्तरसे दक्षिणतक उसकी लम्बाई लगभग २००० मील है, पूर्वसे पश्चिमतक २१०० मील। क्षेत्रफल लगभग १५ लाख ७० हजार वर्गमील है जिसमें ब्रिटिश भारतका क्षेत्रफल लगभग ८ लाख ६० हजार वर्गमील है, देशी रियासतोंका ७ लाख १० हजार वर्गमील। इसकी भूमिसीमा लगभग ४६०० मील है, समुद्रतट लगभग ४३०० मील। इस प्रकार हम देखते हैं कि फ्रांस और रूसको छोड़ दिया जाय तो भारत युरोपके बराबर है और ब्रिटेन जैसे छोटे देश तो उसमें तेरह समा सकते हैं।

प्राकृतिक भाग

भारत प्राकृतिक रूपसे इन चार भागोंमें विभक्त है—

१—उत्तरी पर्वतीय भाग,

२—दक्षिणी भारत,

३—समुद्र-तट और

४—सिन्धु-गंगाके मैदान।

भूगर्भ-शास्त्रके विद्वानोंका मत है कि भारतकी प्राकृतिक स्थितिमें प्रागैतिहासिक कालमें महान क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए हैं। आजकी

भूगर्भ शास्त्रका मत

स्थिति न जाने कितने उलटफेर देखनेके बाद आयी है। उनका कहना है कि भारतकी भूमिके एक भागकी खोजसे एक बातका पता लगता है, दूसरे भागकी खोजसे सर्वथा दूसरी बातका। दक्षिण भारत, जिसे दक्षिणका पठार भी कहा जा सकता है, उत्तरके हिमालयवाले प्रदेशसे सर्वथा भिन्न है। दक्षिणका पठार एक जमानेसे ज्योंका त्यों चला आ रहा है जब कि उत्तरी प्रदेशमें अनेक परिवर्तन होते रहे हें।

अरावली प्रदेश भारतका सबसे पुरातन प्रदेश समझा जाता है। कहते हैं कि इसके उत्तरमें छिछला समुद्र था जो वर्तमान अफगानि-

सबसे पुरातन प्रदेश

स्तानसे लेकर राजपूताना और हिमालयके प्रदेश-तक फैला था। भूगर्भ इतिहासके अनुसार पहली क्रान्तिमें भूमिमें यत्रतत्र अनेक दरारें और छेद तथा विस्फोटसे होगये। बहुत-सी जमीन लुप्त होगयी और जगह-जगह पानी भर गया। क्रमशः गड्हे भर गये। बादमें कड़े होकर इन्होंने पर्वतोंका आकार ग्रहण किया। आज इन्हें हम गोंड प्रदेशमें नर्मदाके दक्षिण गोंडवाना पर्वतमालाके रूपमें पाते हैं। खूब हरीभरी वनस्पति इसके नीचे दब गयी जो बादमें खोदनेपर कोयलेके रूपमें मिली। कहीं-कहीं तो इसकी मोटाई ७ से २७ गजतक पायी गयी है। दामोदर घाटीके झरिया, रानीगंज, बकोर, गिरिडीह, कर्णपुरा क्षेत्र, गोदावरी घाटीके सिंगरेनि, बलारपुर, वरोरा क्षेत्र, महानदी और सोनकी घाटीके कुछ क्षेत्र, सतपुड़ाके निकट मोहपानी और पंचकी घाटीके कुछ क्षेत्र गोंडवाना प्रदेशमें आते हैं। कहा नहीं जा सकता कि कितना कोयला इसके गर्भमें भरा पड़ा है।

भूगर्भशास्त्रियोंके पास इस बातके प्रमाण हैं कि इस युगमें

दक्षिण भारत आस्ट्रेलिया, दक्षिणी अफ्रिका और पेटागोनियासे भूमि द्वारा मिला हुआ था। यहाँसे वहाँतक सीधा भूमि-सम्बन्ध था। बीचमें जल और समुद्रका कहीं नामतक न था। प्राचीन युगकी वनस्पति और प्राणिशास्त्रकी गवेषणासे यह बात सिद्ध हो चुकी है कि एक दूसरे से मिले इन सभी देशोंमें एक ही प्रकारकी वनस्पति और एक ही प्रकारके पशु-पक्षी और प्राणी निवास करते थे।

दक्षिणमें भीषण ज्वाला-मुखियोंके विस्फोटके साथ भारतकी प्राकृतिक स्थितिमें दूसरी महान क्रान्ति हुई। ऐसे विस्फोट इतिहासमें अपना सानी नहीं रखते। इन विस्फोटोंके कारण भारतकी २ लाख वर्गमील भूमि ज्वालामुखीसे निकलनेवाले पिघले पदार्थ लावासे ढक गयी। उसीसे दक्षिण भारतने वर्तमान रूप ग्रहण किया।

समुद्रका लोप

इस प्रदेशके उत्तर और पूर्वमें बहुत पुराने जमानेसे कई बार समुद्र रहता आया है। कहते हैं कि यह समुद्र एक ओर भूमध्य-सागर-तक फैला हुआ था और दूसरी ओर चीनके दक्षिण-पश्चिमी कोनेतक। भूगर्भ-शास्त्री इसे "टेथीस"-के नामसे पुकारते हैं। विश्वके सर्वोच्च पर्वत हिमालयका उद्गम इसीमेंसे हुआ है। उधर दक्षिणमें ज्वाला-मुखियोंके विस्फोटसे जब सारे प्रदेशने नवीन रूप धारण किया उसी समय इधर उत्तरमें हिमालयने अपना मस्तक ऊपर उठाना आरम्भ किया। समुद्र पश्चिमकी ओर खिसकने लगा। उसके जलमेंसे सिंधु, गंगा और ब्रह्मपुत्रने जन्म लिया। पहले ये तीनों सरिताएँ संयुक्त थीं। क्रमशः तीनोंने तीन मार्ग पकड़े और तीनोंमेंसे अनेक शाखा-प्रशाखाएँ फूट पड़ीं। पर्वतमालाके उत्थानके साथ-साथ नदियोंका जन्म स्वाभाविक था। इस प्रकार भारत अपनी वर्तमान स्थितिमें आ गया।[१]

१—इम्पीरियल गजेटियर, खंड १, पृष्ठ ५०—८७।

यह नहीं कहा जा सकता कि उत्तरी भारतसे समुद्रका लोप कब हुआ। सम्भवतः आर्य सभ्यताके जन्मके पूर्व ही इसका लोप होगया, कारण, वैदिक मंत्रोंमें कहीं भी इसका वर्णन नहीं मिलता। इससे इस अनुमानको बल मिलता है कि आर्योंके आगमनके पूर्व ही उत्तर भारतसे समुद्रका लोप हो चुका था।

उत्तरी पर्वतीय भाग

हिमालयको विश्वमें सर्वोच्च होनेका गौरव प्राप्त है। शेष एशियासे उसने भारतको पृथक् कर रखा है। यह प्राकृतिक रक्षाभित्ति इतनी दृढ़ और शक्तिशाली है कि सारा संसार इसका लोहा मानता है। उत्तरी पर्वतीय भागमें हिमालय, उसके उत्तर-पश्चिमी पर्वत तथा दक्षिण-पूर्वी पर्वत शामिल हैं। विश्वके पर्वतोंमें हिमांचल ही सबसे तरुण है और सम्भवतः इसीलिए उसने ऊपर उठनेमें सबको मात दे दी है। उत्तरी अमेरिकामें राकी पर्वतमालाकी सबसे ऊँची चोटी मेकिनले २३,१०० फुट है, दक्षिण अमेरिकाके एंडीजकी एकनकागुआ चोटी २३,००० फुट है और आल्पस् पर्वतमालाकी सबसे ऊँची चोटी माउन्ट ब्लान्क १५,७८१ फुट है, पर हिमालयकी तो १४० चोटियाँ माउन्ट ब्लान्कसे ऊँची हैं। माउन्ट एवरेस्ट विश्वकी सबसे ऊँची चोटी है। वह २९,१४१ फुट ऊँची है। किंचिनचिंगा २७,८१५ फुट है और धौला-गिरि २६,८२६ फुट है। विश्वका यह सर्वोच्च पर्वत अपनी तरुणाईमें झूमता हुआ सिन्धुसे ब्रह्मपुत्रतक १५०० मीलतक चला गया है। इसकी अधिकतम चौड़ाई १५० मील है। सिन्धु, सतलज, रावी, चिनाब, झेलम, गंगा, यमुना, घाघरा, ब्रह्मपुत्र आदि कितनी ही नदियाँ उसकी गोदीमें खेलती इठलाती समुद्रकी ओर चली जाती हैं। इनकी उपजाऊ मिट्टीसे आसपासका सारा प्रदेश निहाल होता चलता है। सर्वत्र शस्यश्यामला धरित्री दीख पड़ती है। पश्चिमी भागका जल जहाँ सिन्धु और उसकी शाखाओं द्वारा पंजाब और सिंधुको

हराभरा रखता है वहाँ पूर्वी भागको गंगा, यमुना और ब्रह्मपुत्रका जल सरसब्ज बनाये रखता है। उत्तरी पर्वतीय भागका यहाँकी जलवायु, वर्षा, वनस्पति, कृषि और जंगल आदिपर पूरा प्रभाव पड़ता है। काश्मीर, सीमाप्रान्तसे लेकर आसाम, बंगाल और बर्मातक इसका आर्थिक प्रभाव पड़ता है। इस भागमें सालभर ठण्डक रहती है।

विंध्य और सतपुड़ा पर्वतश्रेणी, जो महादेव पर्वतमाला, मेकाल पर्वतमाला और छोटा नागपुरकी पहाड़ियोंतक चली गयी है तथा पश्चिमी घाट और पूर्वीघाटसे घिरा हुआ तिकोना पठार 'दक्षिणी भारत' कहलाता है। इसमें छोटे-छोटे पेड़ों और झाड़ियोंकी बहुतायत है। कहीं-कहीं भारी जङ्गल भी हैं। इस पठारमें जमीन ऊँची-नीची होनेसे यातायातमें बड़ी कठिनाई है। रेलें और सड़कें बड़ी कठिनाईसे निकल पाती हैं। इसकी ऊँचाई १५०० से ३००० फुटतक है। नर्मदा इस प्रदेशको दो तिकोने भागोंमें बाँट देती है। उत्तरी भाग मालवा पठार कहलाता है जिसके पश्चिम और उत्तरपश्चिममें अरावली पहाड़ियाँ हैं। नर्मदाके दक्षिणमें जो पठार है वह "डेकन" कहलाता है। इसके उत्तरमें सतपुड़ा पर्वतश्रेणी है, जिसकी सबसे ऊंची पहाड़ियाँ महादेव पहाड़ियाँ हैं। नीचे एक ओर पश्चिमी घाट है और दूसरी ओर पूर्वी घाट। दक्षिणमें नीलगिरिकी पहाड़ियाँ हैं। इस भागमें बहनेवाली प्रमुख नदियाँ नर्मदा, ताप्ती, महानदी, गोदावरी, कृष्णा, कावेरी आदि हैं। इस पठारकी नदियाँ हिमालयसे निकलनेवाली नदियोंकी भाँति सालभर बहनेवाली नहीं हैं। वे मुख्यतः वर्षापर निर्भर करती हैं। हिमालयसे निकलनेवाली नदियाँ तो ग्रीष्ममें भी बहती हैं, कारण, उन दिनों बर्फ पिघलता है, पर दक्षिणकी नदियोंमें यह बात नहीं। इधरकी पर्वतमालाएँ सबसे वृद्ध हैं फिर भी ऊँचाईमें

हिमालयसे कम होनेके कारण यहाँ वर्फ नहीं पड़ती। पश्चिमी घाटकी औसत ऊँचाई ६००० फुट है, पूर्वी घाट इससे नीचा है।

दक्षिणके पठारके पूर्व और पश्चिममें समुद्र है। समुद्र-तटके मैदानका भारी हिस्सा समुद्रके जलसे ही भरा रहता है। यह जल अधिक गहरा नहीं है। अधिकसे अधिक गहराई २०० गज है। पूर्वी तट पयान घाटके नामसे प्रसिद्ध है। इसके निचले प्रदेशमें नदियोंका मुहाना है। यहाँकी भूमि उपजाऊ है पर ऊपरी भाग अधिक उपजाऊ नहीं है। पयान घाटका आगे-तक विस्तार होता चला गया है और वह आगे चलकर पश्चिमी समुद्र तटके मैदानमें मिल गया है पूर्वी समुद्र तटकी चौड़ाई ५० मीलसे लेकर १०० मील तक है।

समुद्र तट

पश्चिमी समुद्र-तटका मैदान मलावार-तटसे आरम्भ होकर उत्तरमें अरव सागरतक चलता चला गया है। पश्चिमी-तटमें स्थान-स्थान-पर समुद्रका जल भीतर प्रविष्ठ हो गया है और ऐसी कटानोंमें सैकड़ों मीलतक नावें चल सकती हैं। पूर्वी-तटमें यह वात नहीं। उधरकी कटानोंमें जो पानी भरा है वह वहुत छिछला है। पश्चिमी तटकी चौड़ाई २० मीलसे ६० मीलतक है। यह दक्षिणमें वहुत सँकरा है पर उत्तरमें अधिक विस्तृत है। वम्वईके उत्तरमें नर्मदा ताप्तीकी उपजाऊ भूमि है। गुजरात, काठियावाड़ आदिके कुछ भागोंमें काली मिट्टी पायी जाती है। उसमें कपासकी खेती खूब होती है। यह मैदान आगे चलकर दूर उत्तरमें सिन्धुके मैदान तथा थार और राजपूतानाकी मरुभूमिमें जा मिलता है। समुद्र तटके ये मैदान पैदावारकी दृष्टिसे अच्छे हैं और इनकी सवसे वड़ी विशेषता है— नारियलके लम्वे-लम्वे वृक्ष। भारतके समुद्र-तटमें खटकनेवाली एक ही वात है और वह यह कि यहाँ प्राकृतिक वन्दरगाह वहुत कम हैं। अच्छे वन्दरगाहोंमें कराँची, वम्वई, गोआ, कोचीन, तूतीकोरन, मद्रास, पौंडेचेरी, कलकत्ता, चटगाँव आदि प्रमुख हैं।

पर्वतराज हिमांचलकी जटाओंसे निकलनेवाली नदियोंकी उपत्यकाओंसे बना सिन्धु और गङ्गाका मैदान देशका अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण भाग है। यह मैदान हिमालयकी पश्चिमी शाखाओंसे आरम्भ होकर पूर्वी शाखाओंतक चला गया है। इसका क्षेत्रफल ५ लाख वर्गमीलके लगभग है और साराका सारा उत्तरी भारत इसमें आ जाता है। इसका दक्षिण-पश्चिमी भाग अवश्य ही रेतीला है। उसके अतिरिक्त और सारा प्रदेश खूब उपजाऊ है। इसीको देखकर तो वङ्किम बाबूने 'वन्देमातरम्' गानमें भारतमाताको सुजलां, सुफलां, मलयजशीतलां, शस्यश्यामलांके अतिरिक्त 'फुल्लकुसुमित द्रुमदलशोभिनीं' भी कहा है। चारों ओर हरियाली, चारों ओर धनधान्यसे भरे खेत, सुन्दर फलोंसे लदे वृक्ष इस भागकी सबसे बड़ी विशेपता हैं। नदियाँ वर्ष भर जलसे भरी-पुरी रहती हैं। बहुत दूरतक उनमें नावें चलायी जा सकती हैं और व्यापारके साथ-साथ कृषि आदिकी पूरी सुविधाएँ हैं। गङ्गामें १००० मीलतक तथा सिन्धु और ब्रह्मपुत्रमें ८०० मीलतक बड़ी नावें या छोटे जहाज आजा सकते हैं। तभी तो यह भाग सबसे घनी आबादी-वाला भाग है। सिन्धुका मुहाना गङ्गाके मुहानेसे छोटा है। गङ्गाका मुहाना तो विश्वमें अपना सानी नहीं रखता। उसका क्षेत्रफल लगभग ३१,८८० वर्गमील है। भारतके इस भागकी उपज, जलवायु और प्राकृतिक स्थिति देशके अन्य तीनों भागोंसे अच्छी है। सिन्धु और शतद्रु, गङ्गा और यमुना आदिका ऋग्वेदमें स्थान-स्थानपर वर्णन मिलता है।

सिन्धु-गंगाका मैदान

भूमध्यरेखासे थोड़ा-सा ऊपर होनेके कारण यह स्वाभाविक है कि भारतमें खूब गर्मी पड़े। परन्तु तीन ओर सागर होनेके कारण गर्मी कुछ शान्त रहती है। देश इतना विशाल है कि सर्वत्र एकसी जलवायुकी आशा की ही नहीं जा सकती। सर्वत्र समतल न होनेका भी जलवायु-पर प्रभाव पड़ता है। कहींपर तो भूमिका धरातल समुद्रसे बहुत

जलवायु और वर्षा

अधिक ऊंचा है, कहीं कम। कहीं ऊँचे पर्वत हैं, कहीं पठार और कहीं नीचे मैदान हैं। इसीसे सारे भारतमें एक सरीखी जलवायु नहीं रह पाती। दक्षिण अत्यधिक गर्म है तो उत्तर अत्यधिक ठण्डा। हिमालयकी चोटियाँ सदा हिमसे ढकी रहती हैं। मध्य भारत और राजपूताना समुद्रसे दूर पड़ता है। फलतः वहीं गर्मीमें अधिक गर्मी और जाड़ेमें अधिक जाड़ा पड़ता है।

भारतमें सभी प्रकारकी जलवायु मिलती है। दक्षिणमें सालभर प्रायः एकसी जलवायु रहती है। वहाँ मामूली गर्मी रहती है, पर उत्तरमें गर्मी और सर्दी कभी-कभी चरम सीमापर जा पहुँचती है। जैसे, जैकोबाबादमें गर्मियोंमें तापमान यदि १२५ डिग्रीतक जा पहुँचता है तो सर्दियोंमें गिरकर २५ डिग्रीतक भी आ जाता है।

वर्षाका भी ऐसा ही हाल है। चेरापूँजीमें जहाँ वर्षमें ४६० इञ्च-तक वर्षा होती है, वहाँ उत्तरी सिंधमें सालमें ३ इञ्च पानी भी मुश्किलसे बरसता है। कहींपर तो खूब वर्षा होती है, कहीं कम और कहीं बहुत ही कम। ऐसा भी होता है कि किसी साल अत्यधिक वर्षा हो जाती है और किसी साल सूखा पड़ जाता है।

यों भारतमें सालमें दो मौसमी हवाएँ निश्चित हैं। अप्रैलसे सितम्बरतक दक्षिण-पश्चिम या समुद्रकी ओरसे हवा चलती है और अक्तूबरसे मार्चतक उत्तरपूर्व अथवा भूमिकी ओरसे। इनमें पहली हवासे ही अधिक वर्षा होती है। ग्रीष्मकी भीषणतासे जब सारी पृथिवी व्याकुल हो उठती है तभी आकाशसे अमृतकी बूँदें गिरकर सबको शान्ति प्रदान करती हैं। सारी दुनियाँ निहाल हो उठती है।

भारतमें कुछ प्रदेशोंमें अत्यधिक वर्षा होती है। जैसे, पश्चिमी तट, गङ्गाका मुहाना, आसाम और सुरमा घाटी। इन स्थानोंपर १०० इञ्चसे अधिक वर्षा होती है। पूर्वी तटपर तथा गङ्गाकी उपत्यकामें प्रयागतक ४० से ८० इञ्चतक वर्षा होती है। अरावली

पर्वतके पश्चिम, सिंध और विलोचिस्तान तो वर्षासे सर्वथा वञ्चित रहते हैं। वहाँ सालमें १ इंचसे १० इंचतक वर्षा होती है। थारके रेगिस्तान और उड़ीसाके कुछ भागोंमें नाममात्रकी वर्षा होती है। पश्चिमी घाट, आसामकी पहाड़ियों और पूर्वी हिमालयके प्रदेशोंमें अधिकतम, तथा सिंध और विलोचिस्तानमें न्यूनतम वर्षा होती है। शेष भारतमें २० इंचसे ८० इंचतक वर्षा होती है। कहीं कम, कहीं ज्यादा।

कभी कभी तो ऐसा भी देखनेमें आता है कि कहींपर भारी वर्षा हो रही है और ठीक उसीके बगलमें एक बूंद नहीं पड़ती। वही कहावत चरितार्थ होती है कि 'गायका एक सींग भींगा रहता है, एक सूखा।' पश्चिमी घाटमें इगतपुरीमें १३० इंच वर्षा होती है पर ६ मील दूर गोटीमें केवल ६० इंच।[1]

आर्थिक प्रभाव

जलवायु तथा वर्षाका देशके आर्थिक जीवनपर गहरा प्रभाव पड़ता है। गर्म देश होनेके कारण एक तो योंही भारतीयोंकी आवश्यकताएं कम रहती हैं, दूसरे आरम्भसे ही हमारा आदर्श त्यागमय जीवन बितानेका रहा है। तभी तो हमारी आवश्यकताओंको देखकर विदेशी चकित होकर कहते हैं—

"मुट्ठी भर चावल, एक सूती चादर, मिट्टीका एक झोंपड़ा और थोड़ेसे उपले। इतनी ही तो भारतवासियोंकी आवश्यकताएँ हैं!"[2]

मौसमी हवाएं सदासे भारतपर अपना प्रभाव डालती रही हैं। भारतीय व्यापारी समुद्र-यात्रामें उनका भरपूर लाभ उठाते रहे हैं। इनके कारण जो वर्षा होती है उसका देशके आर्थिक जीवनपर जो प्रभाव पड़ता है वह किसीसे छिपा नहीं है। उसीके बलपर भारतवासी सालमें दो-दो, तीन-तीन फसलें काटते हैं। दक्षिण-पश्चिमी मौसिमी

१—रोनाल्डशे : इंडिया : ए बर्ड्स आइव्यू, पृष्ठ १५२।

२—वेरा आंस्टी : दि इकोनामिक डेवलपमेंट आव इंडिया, १९२९, पृष्ठ ३।

हवासे भारतमें ९० प्रतिशत वर्षा होती है। उसीका अधिकतम लाभ उठाया जाता है। खरीफ और रवीपर इसका प्रभाव प्रत्यक्ष है। जून, जुलाई और अगस्तमें ही सबसे अधिक वर्षा होती है। अन्य माहोंमें बहुत कम। इससे गल्लेकी फसल तो हो जाती है, पर चारे और घासकी बड़ी कमी रहती है। तीव्र गर्मीके वाद ही पानी पड़ जानेसे मलेरिया, पेचिश तथा ऐसी ही अन्य बीमारियाँ फैल जाती हैं। इसका भारतवासियोंके स्वास्थ्यपर बुरा प्रभाव पड़ता है। गर्मियोंमें गर्म और नम जलवायुका मनुष्योंके स्वास्थ्यपर अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता। साथ ही वे थोड़े ही परिश्रमसे थक जाते हैं।

जिस साल वर्षा कम होती है अथवा नहीं होती उस साल भारतवासियोंके कष्टका ठिकाना नहीं रहता। अत्यधिक वर्षाका भी कृषिपर कुप्रभाव पड़ता है। इसी प्रकार वह वर्षा भी घातक सिद्ध होती है जो ठीक उस समय हो जाती है जब खेतोंमें खड़ी फसल पक जाती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतके आर्थिक जीवनपर जलवायुका बड़ा प्रभाव पड़ता है।

भूमिके भेद

भारतकी भूमि विभिन्न स्थानोंपर विभिन्न प्रकारकी है। भारत सरकारके भूगर्भ-अन्वेषण-विभाग तथा अनेक भूगर्भ-शास्त्रियोंने उसकी खोज की है। वाडिया जैसे अन्वेषकोंने इस विषयमें पर्याप्त श्रम किया है। फिर भी बहुत खोज अभी बाकी है।[1] दिल्ली-स्थित इम्पीरियल रिसर्च इंस्टीट्यूट देशकी सारी भूमिको कछार, लाल, काली, गहरी काली, कछारकी गहरी काली आदि ८ प्रकारकी मिट्टियोंमें बाँटा है। पर मोटे तौरसे उसे ४ भागोंमें बाँटा जा सकता है—

१—काली मिट्टी २—लाल या पीली मिट्टी

३—नदियोंके कछारकी मिट्टी और ४—बालू मिट्टी।

१—वाडिया : सायल्स आव इंडिया।

सिंधुगंगाकी उपत्यकामें अधिकतर नदियोंके कछारकी मिट्टी मिलती है। इसमें मिट्टी और बालू मिली रहती है। कहीं-कहीं इसमें कंकड़-पत्थर भी मिले रहते हैं। इसमें पोटाश, फास्फोरस, चूना तथा अन्य रासायनिक पदार्थ अधिक मात्रामें पाये जाते हैं। नाइट्रोजनवाले पदार्थोंकी कमी रहती है।

भूगर्भशास्त्रियोंका कहना है कि उत्तरी भारतका सारा मैदान सिंध और गंगा तथा उनकी अन्य सहेलियोंने उत्तम पहाड़ियोंके टुकड़ोंको चूर-चूरकर उनके चूरेसे बनाया है। यह भूमि बड़ी उपजाऊ है। अच्छी वर्षा होनेपर खरीफ और रबी दोनों फसलें अच्छी होती हैं। यह मिट्टी सिंध, गुजरात, राजपूताना, पंजाब, युक्तप्रान्त और बंगालके अनेक भागोंमें पायी जाती है। मद्रासके तंजोर, कृष्णा और गोदावरी जिलोंमें भी यह मिट्टी मिलती है। दक्षिणके पश्चिमी और पूर्वी घाटोंके किनारेकी पतली पट्टीमें भी यह मिट्टी पायी जाती है।

दक्षिण भारतमें काली मिट्टी बहुतायतसे मिलती है। बम्बईसे अमरकंटकतक और पूनासे बेलगाँवतक यही मिट्टी मिलती है। बुन्देलखंड, मद्रासके तिन्नेवेली और अरावलीकी पहाड़ियोंमें यही मिट्टी पायी जाती है। नर्मदा-ताप्तीकी घाटियोंमें, काठियावाड़, कर्नाटक और मद्रासके कुछ जिलोंमें यह काली मिट्टी कपास और ज्वारकी उत्पत्तिके लिए प्रसिद्ध है। इसमें लोहा, चूना, अल्यूमिनियम अधिक और फास्फोरस, पोटाश तथा अन्य रासायनिक पदार्थ कुछ कम मात्रामें पाये जाते हैं।

ताप्तीके दक्षिण और पूर्वी घाटमें लाल या पीली मिट्टी अधिकतासे मिलती है। आसाममें तथा ताप्तीके उत्तरमें भी वह मिलती है। इसमें लोहा अधिक होता है; नाइट्रोजन, चूना, फास्फोरस आदि कम। गहरा जोतनेपर अच्छी उपज होती है। मद्रास, मैसूर, दक्षिण-पूर्वी बम्बई, पूर्वी हैदराबाद और दो-तिहाई मध्यप्रान्तमें साफ मिट्टी मिलती है। इसमें सिंचाईकी ठीक व्यवस्था होनेपर औसत दर्जेकी पैदावार होती है। दक्षिण, मध्यभारत, मध्यप्रान्तकी पहाड़ियों, राजमहल,

दक्षिण बम्बई, मलाबार, आसाम आदिके कुछ भागोंमें ऐसी लाल पथरीली मिट्टी होती है जहाँ कुछ भी पैदा नहीं होता। पेड़ पौधेतक नहीं।

जंगल

ब्रिटिश भारतकी लगभग ५१ करोड़ एकड़ भूमिमेंसे इस समय २१ करोड़ एकड़में खेती होती है। ६ करोड़ एकड़में और भी खेती हो सकती है पर ६ करोड़ एकड़ भूमि खेतीके सर्वथा अयोग्य है। ५ करोड़ एकड़ परती है। ७ करोड़ एकड़में जंगल है। यद्यपि बहुतसा जंगल साफ कर दिया गया है तथापि तराई, आसामकी घाटी, सुन्दरवन, छोटा नागपुर तथा मध्य भारतके अधिक भागमें आज भी जंगल है।

वेदों, जातक ग्रन्थों तथा रामायण, महाभारत आदि ग्रन्थोंमें वनों—जंगलोंकी विशद चर्चा मिलती है। वनोंका आश्रम-जीवन भारतकी अपनी विशेषता है। भारतको वनोंसे सदा ही महती प्रेरणा मिलती रही है।[1]

वनों और जंगलोंका आर्थिक महत्त्व किसीसे छिपा नहीं है। लकड़ी, गोंद, रबड़, लाख, चमड़ा, तारपीन, मसाले, कागज बनानेकी घास और रँगनेके लिए पेड़ोंकी छाल आदि तो यहाँ मिलती ही है, इसके अतिरिक्त उनका और दूसरा महत्त्व भी है। वनोंके कारण वर्षा अधिक होती है। जंगलके वृक्ष वर्षाके पानीको शीघ्र बह जानेसे रोक लेते हैं। वे उसे संचितकर क्रमशः वितरित करते हैं। वृक्षोंके पत्ते वायुको तरी देकर उसकी उष्णताको कम करते हैं।

जंगलोंकी ओर भारत सरकारका ध्यान तो सन् १८६१ से ही गया है पर यों भारतवासी प्राचीन कालसे ही उनके महत्त्वसे परिचित रहे हैं। साल और शीशम, देवदारु और चन्दनकी लकड़ीका अपने यहाँ बहुत पहलेसे उपयोग होता आ रहा है। पश्चिमी घाट, आसाम तथा हिमालयके घने जंगलोंकी लकड़ी मकान बनानेके लिए बड़ी उपयोगी है। मलाबारकी चन्दनकी लकड़ीकी विदेशोंमें बड़ी खपत रही है।

१—रवीन्द्रनाथ ठाकुर : लेख, 'मैसेज आव दि फारेस्ट'—वनका संदेश।

सरकारका जंगल विभाग जंगलकी वस्तुओंका भरपूर उपयोग करनेके लिए प्रयत्नशील है। वह यूकेलप्टस, महागनी जैसे वृक्षोंकी उत्पत्ति बढ़ा रहा है और लाख तथा अन्य उपयोगी वस्तुओंका समुचित उपयोग कर रहा है तो कोई आश्चर्यकी वात नहीं। वैदिक कालसे ही इन सव वातोंकी ओर हमारे देशवासियोंका ध्यान था। कोयलेके अभावमें जंगलके छोटे-छोटे पेड़ जलावनका काम देते थे। वाँस तथा अन्य मजवूत लकड़ियोंके मकान वनते थे। वाँस और वेंतकी टोकरियाँ वनती थीं। जंगलकी अनेक जड़ी-वूटियाँ औषधियोंका काम देती थीं।

प्राचीन युगके नरेश जंगलोंकी रक्षाकी ओर समुचित ध्यान देते थे। ईसासे ४ शताब्दी पूर्व जंगल राज्यकी सम्पत्ति माने जाते थे। अधिकारी लोग जगलकी उपयोगी लकड़ियाँ ही नहीं, अन्य वस्तुएं भी एकत्र करते थे। उनसे अनेक उपयोगी वस्तुएँ प्रस्तुत की जाती थीं। जंगली पशु भी राजाकी सम्पत्ति माने जाते थे। मृगयाके विशेष नियम वने थे जिनका उल्लंघन दंडनीय था। हाथियोंका युद्धमें उपयोग होता था। व्याघ्र, सिंह, मृग आदिके चर्म पवित्र माने जाते थे और उनका भरपूर उपयोग होता था। मृगोंका शिकार तो मांसके लिए भी किया जाता था।[1]

खाद्य पदार्थ

आज यदि हम संसारकी उत्पत्तिका २६ प्रतिशत चावल, ७ प्रतिशत गेहूं, १८ प्रतिशत चीनी, २२प्रतिशत तम्वाकू और २३ प्रतिशत चाय उत्पन्न करते हैं तो इसमें आश्चर्य क्या ? विशाल भूखंड, उपजाऊ भूमि, साल भर वहनेवाली नदियाँ, सूर्य और पर्वत, हवा और पानी सव कुछ तो सहज उपलव्ध है यहाँ। फिर क्यों न यहाँ ऐसी पैदावार हो ?

१—एन० सी० वनर्जी : इकोनामिक लाइफ एंड प्रोग्रेस इन ऐंश्येंट इंडिया, भाग १, पृष्ठ ४६—५०।

पर हमारी यह उपज कोई नयी बात नहीं। प्राचीन कालसे यहाँ प्रायः सभी वस्तुएँ पैदा होती आ रहीं हैं। चावल और गेहूँ, जौ और बाजरा, मूंग और मसूर, तिल और तैल, गुड़ और शकर, मिर्च और मसाला सभी कुछ तो यहाँ प्रचुरतासे होता रहा है।

कूपलैंडने लिखा है कि भारत-विजयके पूर्व अंग्रेज गेहूँका नाम भी न जानते थे।[1] डी० कैण्डीलका मत है कि विश्वमें जहाँ-जहाँ प्राचीन सभ्यता थी वहाँ पर गेहूँ पैदा होता रहा है। हींयरको स्विट्जरलैंडके प्राचीन अवशेषोंमें इसके चिह्न मिले हैं। अंगरने ईसासे ३४०० वर्ष पूर्वके मिस्रके पिरामिडमें इसे खोज निकाला है।

प्राचीनकालमें दक्षिण भारतसे कोचीनचीनतक चावल पैदा होनेके चिह्न पाये गये हैं। लायलका कहना है कि वैदिक ब्रीहिसे फारसीका विरिंजी, अरबीका अरुज और यूनानीका ओरीजा शब्द मिलता है। वाटका कहना है कि इसमें सन्देह नहीं कि रागीकी उत्पत्ति सबसे पहले भारतमें ही हुई।[2] ऋग्वेदमें यवका स्थान-स्थानपर उल्लेख है। संहिताओंमें मुद्ग, माश, मसूर आदि दालोंका वर्णन मिलता है। वाटके कथनानुसार तिलकी उत्पत्ति सबसे पहले भारतमें ही हुई। सांख्य आरंण्यकमें एरंडका वर्णन मिलता है।[3] सरसों, सर्षपका ब्राह्मण साहित्यमें उल्लेख मिलता है।[4] सुश्रुत, चरक तथा अन्य वैद्यक ग्रन्थोंमें महुआका वर्णन मिलता है। आरम्भिक साहित्यमें नारियलका स्थान-स्थानपर उल्लेख है। मिर्च-मसाले भी यहाँ भारी मात्रामें पैदा होते थे। स्काफके मतानुसार काली मिर्चको पहलेपहल यूनान आदि देशोंको ले जानेवाले व्यापारी द्रविड़ थे।[5] लासेनका कहना है कि

१—सेमुएल कूपलैंड : एग्रीकल्चर, ऐंश्येंट एंड माडर्न पृष्ठ ४६८, ४६५।
२—वाट : इकोनामिक प्राडक्ट्स आव इंडिया, पृष्ठ १०३२।
३—सांख्य आरण्यक १२८।　　　४—छांदोग्य उपनिषद् ३।१४।१।
५—पेरिप्लस, पृष्ठ २१३, २१४।

संस्कृत पिप्पलीसे ही लेटिन पीपर, और यूनानी पेपेरी निकला है। इलायची भारतकी ही उपज मानी जाती है। विदेशोंमें इसकी अच्छी खपत थी। सुश्रुत संहिता तथा अन्य वैद्यक ग्रन्थोंमें केसर, कुंकुमके गुणोंका उल्लेख मिलता है।

विभिन्न अन्नोंके अतिरिक्त अनेक फल आम, जामुन, बेर, सेब, केला, खजूर, अंगूर, चकोतरा, शहतूत, तरबूज आदिका प्राचीन ग्रन्थोंमें वर्णन मिलता है। अथर्ववेदमें ५ प्रकारके गन्नेका उल्लेख मिलता है।[1] अरबी शकर, लेटिन शकरम, फ्रेंच सुकर और अंग्रेजी शुगर संस्कृत शर्कराके ही अपभ्रंश जान पड़ते हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि भारतमें आरम्भसे ही धनधान्यका बाहुल्य था। किसी भी वस्तुकी कमी न थी।

वस्त्र

अन्न, फल, शाक-सब्जी, नमक, शकर, तेल आदिके अतिरिक्त भारतमें आरम्भसे ही विभिन्न प्रकारके वस्त्र बनते आ रहे हैं। विश्वमें जिस समय अन्यत्र लोग नंगे घूमते थे उस समय भारतमें अनेक प्रकारके सूती, रेशमी और ऊनी वस्त्र बनते थे।[2] शतपथ ब्राह्मण तथा अन्य वैदिक ग्रंथोंमें सन-पाट आदिका उल्लेख मिलता है। नील तो भारतकी ही उत्पत्ति मानी जाती है और भारतके विदेशी व्यापारमें उसका प्रमुख स्थान रहता था।[3]

पशु धन

भारत आरम्भसे ही पशु-धनमें धनी रहा है। ऋग्वेदमें गांधार देशकी भेड़ोंकी बड़ी प्रशंसा भरी पड़ी है। वैदिक ग्रंथोंसे पता चलता है कि यहाँ गाय, भैंस, बैल, घोड़े, ऊँट, गदहे, भेड़, बकरी, खच्चर, हाथी आदि अनेक पशु पाले जाते रहे हैं। वन्य पशुओंके मृगयाके वर्णन तो प्राचीन ग्रन्थोंमें अत्यधिक हैं।

१—अथर्ववेद १।३४।५।

२—बनर्जी : इकोनामिक लाइफ एंड प्रोग्रेस इन ऐंश्यंट इंडिया, भाग १, पृष्ठ ६१।

३—प्लिनी, ३५, २५–२७।

सरिताओं तथा समुद्रसे मछलियोंके अतिरिक्त मोती निकालनेका काम हमारे यहाँ वैदिक कालसे होता आ रहा है। खनिज पदार्थोंमें

खनिज पदार्थ

सोना, जस्ता, ताँबा, टीन, लोहा आदिका खनन वैदिक कालमें ही आरम्भ होगया था। धातुओंमें भारतको समृद्धि देखकर यूनानी चकित रह गये थे। मेगास्थेनेने इसका बड़ा सुन्दर वर्णन किया है।

भारतकी खनिज सम्पत्ति कितनी है इसका अभी तक पूरा पता नहीं लगा। कोयलेमें हम ब्रिटेन, अमेरिका और रूससे थोड़ा ही कम हैं। हम प्रतिवर्ष २८० लाख मेट्रिक टन कोयला निकालते हैं, यद्यपि हमारा संचित-कोष ६०,००,०० लाख टनसे कम नहीं। लोहेके विषयमें हमारा भांडार केवल अमेरिका और फ्रांससे कुछ कम है, पर हम निकालते बहुत कम हैं। मैंगानीजके विषयमें रूसके बाद भारतका ही स्थान है। १९३६ में रूसने १३,३६,००० मेट्रिक टन कच्चा मैंगानीज निकाला था और भारतने ४,१४,००० टन, अर्थात् सारे संसारका १६ प्रतिशत।

हीरा, पन्ना, लाल, जवाहर आदि बहुमूल्य जवाहरातोंके विषयमें भी भारत किसीसे पीछे नहीं है।[1]

फिर भला भारत 'सोनेकी चिड़िया'के नामसे सारे संसारमें क्यों न प्रसिद्धि प्राप्त करता?

१—बनर्जी : इकोनामिक लाइफ एंड प्रोग्रेस इन एंश्येंट इंडिया, भाग १, पृष्ठ ६६।

प्राचीन युग

सृष्टिके आरम्भसे सन् १२०६ ईसवीतक

प्रागैतिहासिक काल

वैदिक काल २५०० ई०पू० से १००० ई०पू०

बौद्ध काल १००० ई०पू० से ४०० ई०पू०

साम्राज्यवादी काल ४०० ई०पू० से ७१२ ई०

पौराणिक काल ७१३ ई० से १२०६ ई०

प्रागैतिहासिक काल

हिमगिरिके उत्तुङ्ग शिखरपर बैठ शिलाकी शीतल छांह ,
एक पुरुष भीगे नयनोंसे देख रहा था प्रलय प्रवाह ।

नीचे जल था, ऊपर हिम था, एक तरल था, एक सघन ,
एक तत्त्वकी ही प्रधानता, कहो उसे जड़ या चेतन ।

कविवर जयशंकर 'प्रसाद'ने कामायनीका श्रीगणेश इन्हीं सुंदर पंक्तियोंसे किया है। आपकी इस कल्पनाका आधार वेद, शतपथ ब्राह्मण आदि हिंदू शास्त्र हैं। इनमें कहा गया है कि महाप्रलयके उपरान्त सृष्टिमें चारों ओर जल ही जल था। हम यदि अपने दशावतारके क्रमपर दृष्टिपात करें तो उसमें भी हमें मानवके विकासकी कहानी मनोरंजक रूपसे चित्रित दीख पड़ती है।

मत्स्यावतारका अर्थ है कि जलमें सबसे पहले मत्स्यका जन्म हुआ। फिर कच्छपराजका, जो जलमें भी चल सकते हैं थलमें भी। वाराह देवने जलमें डूबी पृथ्वीका उद्धार किया। उसपर

क्रमशः लतावृक्ष, पेड़-पौधे और जीव-जन्तु बढ़ने-पनपने लगे। इसके उपरान्त नरसिंह देवका जन्म हुआ। उस समय मानव आधा मानव था, आधा पशु। वामनावतार इस बातका सूचक है कि मानव अभी वामन रूप ही है। उसकी केवल ४ कलाएँ विकसित हुई हैं। पर उसकी कल्पना इतनी व्यापक हो उठी है कि वह आकाश, पाताल और मर्त्य तीनों लोकोंपर अपना आधिपत्य जमानेको उत्सुक है।

इसके उपरान्त क्षात्रबलसे सारी पृथ्वीको कम्पित कर देनेवाले आठ कलावाले परशुरामका अवतार होता है, जो 'सहजहुँ चितवत मनहुँ रिसाने।' मानवका अभी पशुबलमें ही अधिक विश्वास है। क्रोधका संयमन अभी उसने नहीं सीखा है। रामावतारमें यह कमी दूर हो जाती है। बारह कलाओंवाले मर्यादापुरुषोत्तम रामका अवतार इस बातका द्योतक है कि मानवमें मानवोचित गुण पर्याप्त मात्रामें आ गये हैं। कृष्णावतारमें सोलहों कलाओंका विकास माना गया है। अब मानव समाज-धर्ममें दीक्षित हो गया है। वह अब 'कर्मण्येवाधिकारस्ते' मानकर निस्पृह हो कर्ममें प्रवृत्त हो गया है। बुद्धदेवका अवतार इस बातका द्योतक है कि मानवको अब यह समझाना आवश्यक हो गया है कि उसका विकास तभी अपनी चरम सीमापर पहुँच सकता है जब वह अहिंसा और प्रेम, दया और उदारता, सेवा और त्यागके आधारपर समाजका संघटन करे। मानव हिंसा और द्वेष, घृणा और वैरका परित्याग करे तथा जाति, रंग और समुदायके भेदोंका अन्त कर दे। हिंदू शास्त्रोंके अनुसार कल्कि अवतार अभी शेष है। कहते हैं कि यह अवतार वर्तमान कालके सभी प्रचलित दोषोंकी समाप्तिकर मानव समाजका अकूत हितसाधन करेगा।

विज्ञानका विकासवादका सिद्धान्त भी इससे बहुत-कुछ मिलता-जुलता है। वैज्ञानिक कहते हैं कि मानव अन्य प्राणियोंका ही विकसित रूप है। उनके कथनानुसार पृथ्वी सबसे पहले दहकते आगका गोला

थी। उसमें अणु बिखरे हुए थे। अणु निकट आने लगे। अणु गुच्छक बने। विरस और बैक्टीरिया अस्तित्वमें आये। फिर हलवे

आदिम पूर्वज

जैसे बिना हड्डीके जन्तु, अमोयवा आदि। फिर सीधे प्रकृतिसे आहार ग्रहण करनेवाले स्थावर वनस्पति तथा दूसरोंपर अवलम्बित रहनेवाले जंगम प्राणी। मछलियोंका युग, फिर जलस्थल प्राणी, जिनमेंसे कुछने हवा और कुछने स्थलका रास्ता लिया। फिर वाणी उनके मुंहसे फूट निकली। स्तनधारी वानर वनमानुष, फिर वनमानुषसे आगे आधे वनमानुष आवे मानव। द्विपद झाड़ियोंमें किलकिलाने लगे। इन्हींमेंसे कुछ जोड़े विकासकी उस अवस्थामें पहुंच गये जहाँ कि जातिपरिवर्तन होता है और इस प्रकार वह हमारे मानव वंशके आदिम पूर्वज बने। यह समय २० लाख साल पहलेका आँका जाता है। आजसे दस लाख वर्ष पहले मानव हथियारधारी बनता दिखाई पड़ता है और पाँच लाख वर्ष बीतनेपर तो हम उसे अपने पूर्वजों—सपियन मानवके रूपमें देखते हैं।[1]

मानवकी प्रगति

हमारा यह आदि पुरुष मनु क्रमशः विकसित होता चला। श्रद्धा समन्वित हो इसने मानवकी सृष्टि की। यद्यपि अकबर साहबने कहा है कि—

डारविन साहब हकीकतसे निहायत दूर थे,
मैं न मानूँगा कि मूरिस आपके लंगूर थे।

और हालमें आक्सफोर्ड विश्वविद्यालयके शरीर-रचना-विभागके प्रोफेसर लाग्रोस क्लार्कने डारविन साहबके सिद्धान्तको अस्वीकार करते हुए कहा है कि आजसे लाखों वर्ष पूर्व भी मानव वैसा ही था जैसा आज बीसवीं शताब्दीमें है, तथापि अनेक विज्ञानवेत्ता, इतिहासज्ञ और पुरातत्त्ववेत्ता डारविन साहबके ही सिद्धान्तको मानते

१—राहुल सांकृत्यायन : मानव समाज, पृष्ठ १।

हैं कि वनमानुषसे ही आगे चलकर मानव बना। घिसते-घिसते उसकी पूँछ घिस गयी, उसका मस्तिष्क विकसित हुआ और पहलेकी तरह पेड़ोंपर उछलना-कूदना बन्द करके वह जमीनपर सीधा खड़ा होकर चलने लगा। हाथसे काम करना भी उसने सीख लिया। आरम्भमें उसका रंग काला था, कद छोटा। सारे शरीरपर भालू और रीछकी तरह बाल थे। बहुत दिनतक वह पशुओंकी ही तरह अपना जीवन बिताता रहा। उसकी प्रगतिकी ३ मुख्य अवस्थाएँ बतायी जाती हैं—

१—जंगली, २—बर्बर असभ्य और ३—सभ्य।

जंगली अवस्थामें वह केवल जीवन-निर्वाहके फेरमें रहता था। उसके मार्गमें जो प्राकृतिक बाधाएँ आतीं, जो भौगोलिक अड़चनें आतीं उनका वह जमकर सामना करता अथवा उनसे बचनेके लिए वहाँसे कहीं दूर चला जाता। पशु और प्रकृतिसे संघर्ष करते हुए इस जंगली मानवने पत्थरसे रगड़कर अग्निका आविष्कार किया और जब उसपर भुना मांस उसे सुस्वादु प्रतीत हुआ तो वह उसका अधिकाधिक प्रयोग करने लगा। पहले वह तेज पत्थरकी नोकसे अपना शिकार करता था पर धीरे-धीरे उसने तीर चलाना भी सीख लिया। फिर वह मिट्टीके बर्तनोंको आगपर चढ़ाकर सुस्वादु भोजन बनाना भी सीख गया।

जंगली अवस्थाका अतिक्रमणकर मानव बर्बर अवस्थामें पहुँचा। इस अवस्थामें उसने महसूस किया कि न तो प्रतिदिन शिकार ही मिल सकता है और न रोज कंदमूल-फल ही। परिवार भी बढ़ रहा था। क्षुधा राक्षसीको तो रोज भेंट चाहिये। तब मानवने अपने मस्तिष्कका उपयोग आरम्भ किया। शिकारके स्थानपर उसने पशुपालनकी बात सोची। क्रमशः मृगयासे उसे घृणा होने लगी। मृगशावक उसे प्रिय लगने लगे और उनपर अस्त्रशस्त्र छोड़ना अरुचिकर प्रतीत होने लगा।

पशुओंका दूध पीकर वह मस्त रहने लगा। धीरे-धीरे उसने

कृषि आरम्भ की। उसकी आवारागर्दीपर धारा १४४ लगी। वह घरवारी वना। खेतीके साथ उसने खनिज पदार्थोंका भी आविष्कार कर डाला। लोहा आदि धातुओंके हथियार वनाने आरम्भ कर दिये। व्यापारका भी श्रीगणेश हुआ और वह क्रमशः बढ़ने लगा। उसके लिए उसने चित्र-लिपि और वर्णलिपिका भी आविष्कार कर डाला।

यह वर्वर अथवा असभ्य मानव आगे चलकर सभ्य वना। केवल, जड़ प्रकृतिपर ही अधिकार जमाकर वह संतुष्ट नहीं रहा, उसने मनकी सूक्ष्म शक्तियोंका आविष्कारकर उसपर भी विजय-प्राप्तिका प्रयत्न आरम्भ किया। उसका मस्तिष्क दिनदिन ऊँचा उठने लगा। धीरे-धीरे उसने एंजिन, जहाज, गैस और बिजली, रेल, तार, विमान, टेलीफोन, रेडियो, सिनेमा, फोटोग्राफी आदि अनेक महत्त्वपूर्ण आविष्कार कर डाले। परमाणु वम उसके मस्तिष्ककी निपुणताकी सबसे ताजी उपज है।

भारतके प्रागैतिहासिक कालको पुरातत्त्ववेत्ताओंने ४ भागोंमें विभक्त किया है—

१—पूर्व पाषाण-काल, २—उत्तर पाषाण-काल,
३—ताम्र-काल और ४—लौह-काल।

पूर्व पाषाण-कालमें यहाँके काले, नाटे, रीछों जैसे लम्बे वालवाले मूल-निवासी पशुओं और मछलियोंका शिकारकर अथवा कंदमूल-फल खाकर निर्वाह करते थे। विद्वानोंका कथन है कि ये लोग न तो धातुका उपयोग करना जानते थे और न कृषि करना ही जानते थे। पत्थरके नुकीले भाले और कुल्हाड़ियोंके सहारे ही ये शिकार करते थे। वीन, ब्रूसफुट, कार्लायल आदि पुरातत्त्ववेत्ताओंने उत्तरी और दक्षिणी भारतमें इनके हथियारोंको खोज निकाला है।[1] ये लोग

पूर्व पाषाण काल

१—इम्पीरियल गजेटियर, खंड २, पृष्ठ ६०, ६१; ब्रूसफुट: फुट कलेक्शन आव इंडियन प्रीहिस्टोरिक एंड प्रोटो-हिस्टोरिक एन्टीक्विटीज, १६१६।

चकमकसे आग बनाना जानते थे। वृक्षोंके पत्ते अथवा पशुचर्म ही इनके परिधान थे, कन्दराएँ ही आश्रयस्थल। कहते हैं कि अन्दमान, मलाया और फिलिपाइन आदि देशोंमें आज भी इनके वंशज पाये जाते हैं।

जंगली जमाना था। कहते हैं कि पूर्व पाषाण-कालके मूल-निवासियोंको पराजितकर एक अपेक्षाकृत सभ्य जातिने भारत आकर यहाँ अपना अधिकार जमाया। इनके हथियार पत्थरके होनेपर भी अधिक तीक्ष्ण, सुडौल और चमकीले होते थे। तीर चलाना, भाला मारना, मिट्टीके बर्तन तैयार करना भी इन्हें आता था। चित्रण-कला और शिल्प कलामें भी ये लोग पारंगत थे, इनकी गुफाओं और चट्टानोंपर की गयी कारीगरी आज भी मौजूद है।[1] ब्रूसफुट, कार्लालिय, क्राकबर्नने इस युगके हथियार और अन्य स्मृति-चिह्न सारे भारतमें खोज निकाले हैं। पंजाब बंगालमें ये चिह्न कम संख्यामें मिले हैं।[2]

कहते हैं कि ये लोग दो जत्थोंमें भारत आये थे। एक जत्था कोल, संथाल और होल जातिवालोंका था। ये लोग सारे देशमें फैल गये। दूसरे जत्थेके लोग दक्षिणकी ओर नहीं गये। इस विजयी जातिके वंशधर आज भी जंगली अवस्थामें मिलते हैं। आसामके खसी, मध्य प्रदेशके संथाल, कोल, गोंड, मुंड तथा ब्रह्मा और निकोबारके मूल-निवासी इन्हींके वारिस बताये जाते हैं।

जिस प्रकार उत्तर पाषाण-कालवालोंने पूर्व पाषाण-कालवालोंको हटाकर अपना अधिकार जमाया उसी प्रकार ताम्रकालवालोंने उत्तर पाषाण-कालवालोंको पराजितकर अपना अधिकार जमाया। इनके पास ताँबेके अधिक उपयोगी औजार थे। धातुओंका प्रयोग करना इन्हें आता था।[3] ये पूर्ववर्त्ती लोगोंसे अधिक सभ्य थे। सोने चाँदीके

१—२—जर्नल आव रायल एशियाटिक सोसायटी, काकबर्नका लेख; इम्पीरियल गजेटियर खंड २, पृ० ९४।

३—विंसेंट स्मिथ : इंडियन ऐंटीक्वेरी, १९०५।

आभूषण पहनते थे। मध्य भारतके गनगेरिया, विजनौर जिलेके राजपुर, छोटा नागपुरके हजारीवाग जिलेमें, कानपुरके विठूरमें तथा मैनपुरी, इटावा, फरूखावाद जिलोंमें ताम्रयुगके चिह्न मिले हैं।[1] ये लोग सुन्दर मकान और किले वनाकर रहते थे। वाणिज्य-व्यापार भी करते थे। समुद्रमें जाने योग्य जहाज भी वनाते थे। इनकी भाषा और साहित्य खूब उन्नत था। कुछ विद्वान इन्हें दक्षिण भारतके द्रविड़ लोगोंके पूर्वज वताते हैं। कहा जाता है कि ये लोग ईसासे लगभग ४००० वर्ष पूर्व उत्तर-पश्चिमके दर्रोसे होकर अथवा मेकरान और विलोचिस्तानके मार्गसे भारत आये और मुख्यत: सिंधु नदके प्रदेशमें वस गये। कुछ विद्वानोंका कहना है कि ये दक्षिणसे आकर उत्तरमें फैल गये। यह तो सभी मानते हैं कि आर्योंके यहाँ वसनेके पूर्व दक्षिणी और उत्तरी भारतमें द्रविण लोगोंका निवास था। इन्होंने मूल-निवासियोंकी भाषा, धर्म, सभ्यता और संस्कृति तथा रहन-सहन-पर प्रभुत्व स्थापित कर लिया तथा वादमें आनेवाले आर्योंको भी कम प्रभावित नहीं किया।[2]

ताम्र-कालके वाद लौह-काल आता है। ताम्र-कालके उपरान्त पामीर पर्वतमालाकी ओरसे एक अन्य जातिके निवासी भारत आये। ये लोग लोहेके औजारोंका उपयोग करते थे। ये महाराष्ट्र और मध्यप्रदेशके जंगलोंसे होते हुए वंगालतक चलते चले गये। द्रविड़ोंने अधिक समय-तक इन्हें जमने नहीं दिया।

वाल हाउसने कोयम्वतूर और रीने तिन्नेवलीकी खोजसे अनेक आश्चर्यजनक वातें प्रमाणित की हैं। उस समयके शस्त्रास्त्र, आभूषण, चित्र, वर्तनों आदिसे तत्कालीन सभ्यताका पता चलता है।[3]

१–इम्पीरियल गजेटियर, खंड २।

२–क्षितिमोहन सेन: आर्यपूर्व जातियोंकी देन, लेख 'भारती' फरवरी, १६३४।

३–ए० री: लेख प्री-हिस्टोरिक एंटीक्विटीज आव तिन्नेवेली, आर्कियालाजिकल सर्वे रिपोर्ट, १६०२–०३ और १९०३–०४।

विभिन्न पुरातत्त्ववेत्ताओंकी खोजसे यह निष्कर्ष निकलता है कि इस कालमें मनुष्योंने मिट्टी तथा धातुओंके वर्तन वनाना, कपड़ा वुनना, शिल्पकला, वास्तु-कला आदिके साथ-साथ कृषिका अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। रीके कथनानुसार धार्मिक भावनाका भी जन्म हो चुका था। आचार्य क्षितिमोहन सेनका कहना है कि प्राणायाम, योग, ध्यान, पूजा, आरती, पुनर्जन्मवाद आदि अनार्योंकी चीजें हैं। वटों तथा तुलसीकी पूजा, माला-तिलक, नदी-पूजन, तीर्थ, तिथि-त्योहार आदि आर्योंने अनार्योंसे लिये हैं।[1]

भारतीय संस्कृतिकी गवेषणा करनेपर यह वात सर्वथा स्पष्ट हो जाती है कि उसकी अविच्छिन्न धारा अत्यन्त प्राचीन कालसे विना रुके, विना झिझके, विना ठहरे अविराम गतिसे आगे वढ़ती चली आयी है। हालमें सिंधके लरकाना जिलेमें मोहनजोदड़ो और पंजावके मांटगुमरी जिलेमें हड़प्पाकी खुदाईसे जिस संस्कृतिका पता चला है, उससे भारतीय संस्कृतिकी उत्कृष्टतामें किसीको सन्देह रह ही नहीं सकता। उससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि विश्वमें भारतीय संस्कृति ही सबसे अधिक पुरातन है। सर जान मार्शलने, जिनकी अध्यक्षतामें यह खुदाई हुई, स्वयं यह वात स्वीकार की है। मिस्र और मैसोपोटामियाकी संस्कृतिको इससे कहीं हेय वताते हुए उन्होंने कहा है कि यहाँपर जैसे उत्तम भवन, स्नानागार और नालियाँ वनी हैं वे सर्वथा अतुलनीय हैं।[2]

मोहनजोदड़ो और माहिष्मती

हालमें नर्मदाकी उपत्यकामें माहिष्मतीके आविष्कारने भारतीय संस्कृतिकी प्राचीनता और अधिक स्पष्ट कर दी है। आजसे ६,७ हजार वर्ष पूर्वके ये चिह्न इस वातका प्रमाण हैं कि उस जमानेमें भारतीय संस्कृति अत्यन्त उच्च स्तरपर पहुंच चुकी थी।

१–सेन : वही लेख, भारती, जनवरी, १९३४।

२–गोर्डन चिल्ड : व्हाट हैपिण्ड इन हिस्ट्री।

स्पष्ट है कि उस समयके निवासी धातुओं और खनिज पदार्थोंका उपयोग करना जानते थे, सुन्दर मकानोंमें रहते थे, ऊनी और सूती वस्त्र पहनते थे, पशु पालते थे, सोने-चाँदीके आभूषण धारण करते थे और दुर्गा, शिवलिंग और वृक्षोंकी पूजा करते थे।

विभिन्न इतिहासकारोंने विश्वकी प्राचीन संस्कृतियोंके विषयमें जो मत प्रकट किये हैं उनसे उनका काल-निरूपण इस प्रकार किया जा सकता है—

१—भारत, मिस्र, बेबिलन और चीनकी प्राचीन संस्कृतिका प्रथम रूप—६००० ईसा पूर्वसे २००० ईसा पूर्व।

२—भारत, मिस्र और चीनकी संस्कृतिका पिछला रूप तथा यूनान, रोम, असीरिया, फोनेशिया और ईरानकी संस्कृतिका उदय—२००० ईसा पूर्वसे सन् ७०० ई० तक।

३—सन् ७०० ई० से विशेषतः पश्चिमी संस्कृतिका उदय।[1]

भारतकी संस्कृति विश्वमें सबसे पुरातन है यह उसके महान् गौरवका विषय है। इसीपर मुग्ध होकर इकबालने गाया था—

यूनान, मिस्र, रोमां सब मिट गये जहाँसे,
फिर भी मगर है बाकी नामो निशां हमारा।

१—भगवान दास केला : मनुष्य जातिकी प्रगति।

वैदिक काल

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

आर्योंका आदि देश

आर्योंका आदिदेश भारत है अथवा और कोई, इस विषयपर बड़ा वादविवाद चलता आया है। लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक, डाक्टर श्रेडर जैसे विद्वानोंका मत है कि आर्य लोग उत्तरी ध्रुवसे भारत आये थे। स्वामी दयानन्द सरस्वतीने लिखा है कि सृष्टिका जन्म-स्थान त्रिविष्टप अर्थात् तिब्बतके आसपास था। जे० जी० रीड, पाट्, लासेन, ग्रिम और मैक्समूलर जैसे विद्वानोंका मत है कि मध्य एशियाके मैदान ही आर्योंका आदिदेश हैं। एडोल्फ पिक्टेट, जुस्ती, शिलचर जैसे विद्वानोंका मत है कि कास्पियन तटपर आर्योंका जन्म हुआ था। कुछ विद्वानोंने उनका मूलस्थान दक्षिणी रूस बताया है। लाथम, फिक, बेनफे और जीजर जैसे विद्वान युरोपको आर्योंका आदिदेश मानते हैं। पिट्रेमैटने साइबेरियाको उनका मूलस्थान बताया है। श्री सम्पूर्णानन्दकी एक पुस्तक ही है, "आर्योंका आदिदेश भारत।" तात्पर्य यह कि 'मुंडे मुंडे मतिर्भिन्ना:' वाली स्थिति है। अभीतक इस विषयमें विद्वान किसी सर्वसम्मत निर्णयपर नहीं पहुँचे हैं।

फिर भी अधिकतर विद्वान मानते हैं कि आर्योंका आदिदेश मध्य एशिया है। आर्योंकी भाषा जहाँ लैटिन और यूनानी जैसी प्राचीन भाषाओंसे मिलती है वहाँ वह वर्तमान अंग्रेजी, फ्रेंच, रूसी और जर्मनसे भी मिलती-जुलती है। शब्दोंके इस सादृश्यसे विद्वानोंने निष्कर्ष निकाला है कि युरोप और भारतके आधुनिक निवासियोंके पूर्वज आर्य ही थे और वे मध्य एशियामें ही किसी स्थानपर निवास करते थे। वहींसे वे विश्वके विभिन्न अंचलोंमें बिखर गये।

मूल आर्योंके विषयमें बहुत कम जानकारी उपलब्ध है। वैदिक आर्योंकी सभ्यता और संस्कृति अत्यन्त उन्नत थी। इसके उद्गमके विषयमें मतभेद है। म्यूनिखके डाक्टर होमेलने तथा बादमें डिलित्स और डाक्टर अंडरने इस मतका समर्थन किया है कि आर्यों और सेमेटिक जातियोंके मिलनेसे ही इस संस्कृतिका जन्म हुआ, पर मैक्स-मूलरका कहना है कि इन दोनोंका कोई सम्बन्ध नहीं था।[1] किन्तु बादके ऐतिहासिक अन्वेषणोंसे जान पड़ता है कि इन दोनों जातियोंका आपसमें सम्पर्क था। प्रमाण मिले हैं कि १७४५ ई० पू० आर्योंकी कसाइट शाखाने सुमेरियाके बड़े भागपर अधिकारकर शताब्दियोंतक वहाँ शासन किया। उनके देवताओंके मरुत्तश, शुरियश, जैसे नाम भारतीय मरुत और सूर्य ही हैं। इनके अतिरिक्त आर्योंकी एक अन्य शाखा मिटन्नीके भी प्रमाण मिले हैं। इस जातिने सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दीमें उत्तरी सीरियापर अनेक दिनोंतक राज किया था। मिस्र तथा अन्य देशोंके राजाओंके साथ इस साम्राज्यका राजनीतिक सम्बन्ध होनेके प्रमाण मिले हैं।[2] इन मिटन्नी शासकोंके नाम आर्योंसे मिलते हैं, जैसे स्वरदत्त (ईश्वरदत्त ?), यशदत्त (यशोदत्त ?), सुबन्धि (सुबन्धु ?) आदि। बोगाजकोईमें मिटन्नी राजा दुशरत्त (दशरथ ?) के पुत्र मत्तिउजाहित्तीतेके विजेता शुब्बिलुलिमाके बीच हुई संधिका पत्र मिला है। संधिके रक्षक देवताओंमें इंद्र, वरुण, मित्र आदिके नाम हैं।[3] इन प्रमाणोंसे स्पष्ट है कि दोनों जातियोंका पारस्परिक सम्बन्ध था।

विद्वानोंका अनुमान हैं कि आर्य लोग २००० ई० पू० में अपनी

१—मैक्समूलर : बायोग्राफीज आव वर्ड्स, पृष्ठ ११२-११६।

२—हाल : ऐंश्येंट हिस्ट्री आव दि नीयर ईस्ट, पृष्ठ २०१।

३—हाल और मायर्स : डान आव हिस्ट्री, पृष्ठ १०६।

जन्मभूमिका परित्यागकर पशुओंके लिए उत्तम चरागाह खोजते-खोजते अफगानिस्तान और खैबरके मार्गसे भारत आगये। वे शक्तिशाली थे और उन्होंने यहाँके पूर्व निवासियोंको पराजितकर अपना सिक्का जमा लिया। अनार्य बलवान आर्योंके सम्मुख नतमस्तक होगये। उन्होंने आर्योंकी भाषा और संस्कृति-तक अपना ली। आर्योंपर भी उनकी संस्कृतिका कुछ न कुछ प्रभाव अवश्य पड़ा होगा।

आर्योंका आगमन

ऋग्वेदमें कुभा (कावुल), सुवस्तु (स्वात), क्रुमु (कुर्रम) और गोमती (गोमल) नदियोंके वर्णनसे यह स्पष्ट है कि पहले आर्योंने अफ-गानिस्तानपर कब्जा किया था। उसके उपरान्त वे सप्तसिंधु—सिंधु, वितस्ता, असिकनी, परुष्णी, विपाक, शतुद्रि और सरस्वतीके प्रदेशमें पहुँचे। तदुपरान्त वे गंगा-यमुनाकी उपत्यकाकी ओर अग्रसर हुए। आरम्भमें आनेवाले आर्योंके ये ५ दल प्रमुख थे—अनुस, पुरु, द्रुह्य, यदु और तुर्वसु। बादमें जिन्होंने विशेष ख्याति पायी उनके नाम हैं—भरत, पंचाल, कुरु, उशीनर, मत्स्य। ऋग्वेदमें भरतदलके महत्त्वपूर्ण युद्धका रोचक वर्णन मिलता है। पौरोहित्यके लिए वशिष्ठ और विश्वामित्रमें होड़ चली। विश्वामित्र जब अपदस्थ कर दिये गये और वशिष्ठको पुरोहित बना दिया गया तो विश्वामित्र पंजाबके १० राजा-ओंको लेकर चढ़ आये। परुष्णीके तटपर विश्वामित्रको बुरी भाँति पराजित होना पड़ा। फलतः सारे पंजाबपर भरतोंका आधिपत्य होगया। क्या आश्चर्य यदि इसी विषयको अमर बनानेके लिए भरतोंने देशका नाम भी भारतवर्ष रख दिया हो!

आर्योंने भारतके मूलनिवासियोंके साथ रोटी-बेटीका सम्बन्ध स्था-पितकर उन्हें अपनेमें मिला लिया। इस प्रकार वे क्रमशः शक्तिशाली होकर पूर्व तथा दक्षिणमें फैलने लगे। पंजाबके उपरान्त उन्होंने युक्तप्रान्तमें अपना डेरा डाला। उत्तरमें सरस्वतीसे लेकर पूर्वमें प्रयाग और बिहारके कुछ भागोंमें वे

भारत विजय

बस गये। ऋग्वेदमें वर्णित कीकटको कुछ विद्वानोंने मगध बताया है।[1] अथर्ववेदमें महावृषों, वल्हिकों और गांधारोंका जो वर्णन है[2] उससे स्पष्ट है कि आर्योंने भारतके विस्तृत भूखंडपर अपना आधिपत्य जमा लिया था। आरण्यकों और उपनिषदोंके कालमें वे कुरु-पांचालके ही देशमें सीमित न रहकर मिथिलातक फैल गये थे। उन्होंने कई बड़े राज्योंकी स्थापना की। इनमें थानेश्वरमें कुरुराज्य, रुहेलखंड और दोआबके भीतरी प्रदेशमें पांचाल राज्य, जयपुर तथा अलवरमें मत्स्य राज्य, अवधमें कोशल राज्य, काशीमें काशी राज्य, मिथिला और दरभंगामें विदेह राज्य विशेष प्रसिद्ध हैं।

पश्चिम भारतमें भी आर्योंने अपना प्रभाव फैलाया। मालवा, सौराष्ट्र और सिंधु उपत्यकामें भी आर्य-सभ्यता फैली। बादमें आर्योंने अंग (बिहार), वंग (बंगाल), पुंड (उत्तर बंगाल), सुह्म (दक्षिण बंगाल) और कलिंगमें भी आर्य राज्यकी स्थापना कर ली। सबसे अन्तमें वे दक्षिणापथकी ओर अग्रसर हुए। विंध्य पर्वतमालाको पारकर उन्होंने उस ओर प्रवेश किया। वहाँ भी उन्होंने अनार्योंको परास्तकर आर्य-सभ्यताका विस्तार किया। रामायणमें इसी युद्धका चित्रण है।

इस प्रकार आर्योंने क्रमशः सारे भारतपर अपना आधिपत्य जमा लिया और उत्तरसे दक्षिण तक और पश्चिमसे पूर्वतक आर्य-सभ्यताकी दुंदुभी बजा दी।

१—ऋग्वेद ३।५३।१४। २—अथर्ववेद ५।२२।१४।

वैदिक ग्रन्थोंमें ग्रामोंका जो विवरण मिलता है उससे ज्ञात होता है कि वैदिक ग्राम सुंदर सरिता, झील, तालाव अथवा अन्य जलाशयके निकट होते थे। पर्याप्त मात्रामें गोचर-भूमि भी निकट ही रहती थी। उसके आगे अरण्य होते थे। आर्य लोग यदाकदा मृगया और खेलकूदके लिए उनका उपयोग किया करते थे।

आर्योंने जब खानाबदोश जीवनका त्याग किया तब ग्रामोंकी नींव पड़ी। उपजाऊ भूमिमें सर्वत्र ग्राम छिटकने लगे किन्तु भारतका भारी भूभाग फिर भी अरण्य ही बना रहा। ऐतरेय ब्राह्मण और शतपथ ब्राह्मणमें दीर्घारण्यकोंका उल्लेख मिलता है।[1]

कृषि मुख्य उद्योग

ग्रामोंमें कृषि ही मुख्य उद्योग था। इसका श्रीगणेश बहुत पहले हो चुका था। डाक्टर श्रेडरने इंडो-युरोपियन लोगोंके बारेमें खोज करके निष्कर्ष निकाला है कि उन्हें कृषिका पर्याप्त ज्ञान था। ये लोग जौ, बाजरा, जई, सन, मटर आदिकी खेती करते थे। ये लकड़ीके हलका प्रयोग करते थे। इंडो-इरानियन कालकी खोजसे पता लगता है कि उनके कृषिके तरीके अधिक सुधरे होते थे। ऐसा माना जाता है कि वैदिक आर्य इरानियोंके साथ रहते थे। वैदिक ग्रन्थों और अवस्ताके तुलनात्मक अध्ययनसे और दोनोंके कृषिके शब्दोंके अनुशीलनसे यह बात स्पष्ट हो जाती है। जिमर, कीथ, मेकडानेल सब इस बातको स्वीकार करते हैं कि जिन्दावस्ता और वैदिक ग्रन्थोंके शब्दोंमें साम्य है। जैसे, संस्कृत यव, कृषि, शस्य और अवस्ताके ययो, करप, हह्य आदि।[2]

वैदिक ऋचाओंसे स्पष्ट है कि आर्य लोग देशमें बसनेके बाद

१—ऐतरेय ब्राह्मण ३।४४ ; ६।२३ ; शतपथ ब्राह्मण १३।३।७।१० ।

२—वैदिक इंडेक्स, कृषि, १, पृष्ठ १८१ ।

कृषिमें संलग्न हो गये थे। ऋग्वेद, अथर्ववेद और तैत्तिरीय संहितामें चर्षणका अनेक स्थानोंपर उल्लेख है।[1] ऋग्वेदमें स्थान-स्थानपर वर्षाके लिए प्रार्थना की गयी है।[2] नदियोंसे भी भूमिको उर्वरा बनाने और उत्पत्तिमें वृद्धि करनेकी प्रार्थना की गयी है। इसीके लिए क्षेत्रपति, सुनासीर और सीताकी प्रार्थना की जाती थी।[3]

वैदिक कालमें कृषिसे धन-सम्पत्ति, पद और सम्मान-वृद्धिका भी योग था। ऋग्वेदमें एक प्रसंग आता है जहाँ एक व्यक्ति एक जुआरीसे कहता है कि भाई, तुम छोड़ो इस जुएको। इसमें तुम बुरी तरह चौपट हो चुके हो। तुम्हारी प्रतिष्ठा जाती रही है। तुम यदि अपना सम्मान बढ़ाना चाहते हो, धन-सम्पत्ति कमाना चाहते हो तो कृषिमें लगो। इससे तुम्हारी प्रतिष्ठा भी बढ़ेगी और तुम्हारा विवाह भी हो जायगा।[4]

औजार और पद्धति

वैदिक कालके लांगल, सीर, हलके आकार-प्रकारका विशेष वर्णन नहीं मिलता। दो बैल हल जोतते थे। वे रस्सी या तस्मेसे जुएमें बँधे रहते थे। कुछ हल इतने भारी भी होते थे कि उनमें दोचारसे लेकर आठ दस बैल जुतते थे। कारण, हल वजनी होते थे और जमीन कड़ी होनेके कारण कड़ी जुताई करनी पड़ती थी। हलका फल नुकीला रहता था और मूंठ चिकनी। जमीन जोतनेके लिए कुदाल, फावड़ा, खनित्र काममें लाया जाता था। अच्छी तरह जोतकर गल्ला बोया जाता था। पकी फसल काटनेके लिए दात्र, हँसियेका प्रयोग होता था। खल, खलिहानमें नाजके पूले, पर्पा लाकर दांय चलायी जाती थी। सफाई आदिके लिए तितऊ, चलनी और सूर्प, सूपका उपयोग किया जाता

१—बनर्जी : इकोनामिक लाइफ एंड प्रोग्रेस इन ऐंश्यंट इंडिया, भाग १, पृष्ठ १२६। २—ऋग्वेद ७।१०१।२; १०।१०५।१। ३—ऋग्वेद ४।५७। ४—ऋग्वेद १०।३४।१३।

था। गल्ला तौलनेके लिए लकड़ीकी बनी उर्दर, पायलीका भी प्रयोग होता था।[1] सालमें दो फसलें होनेका वर्णन मिलता है।[2] जौकी फसल जाड़ोंमें बोयी जाती थी गर्मियोंमें काटी जाती थी। चावल वर्षाके दिनोंमें बोया जाता था और सर्दियोंमें लुना। आशु और महाव्रीहि, चावलकी दो फसलें होनेसे स्पष्ट है कि आर्य लोग कृषिशास्त्रमें निष्णात थे।

सिंचाई

खेतोंकी सिंचाईके लिए लोग या तो वर्षा या नदीके जलपर निर्भर रहा करते थे। कुएँ खोदनेकी बात भी मिलती है। कुओंमें अर्घट्टघट्टिका यंत्र लगाते थे। चक्र द्वारा लकड़ीकी बालटियोंसे पानी खींचा जाता था। अथर्ववेदमें कुल्या, नहरका भी वर्णन मिलता है।[3]

फसलकी रक्षा

फसलकी रक्षाके सम्बन्धमें ऋग्वेद और अथर्ववेदमें कितने ही मंत्र मिलते हैं। बाढ़, पाला, बिजली, चूहों, छछूदरों, चिड़ियों और कीड़ोंसे फसलकी हानि होती रहती थी। इनसे रक्षाके लिए अथर्ववेद आदिमें अनेक मंत्र आते हैं।[4]

मुख्य फसलें

उस समय यव और धानकी फसल होती थी। युरोपियन विद्वानोंका कहना है कि यवसे केवल जौका अर्थ लेना ठीक नहीं। धान्यके विषयमें भी ऐसा ही मत है। अथर्ववेदमें जौके अतिरिक्त व्रीहि (चावल), माष, तिल, मुद्ग, मूंग, मसूर आदिका उल्लेख है। बृहदारण्यक उपनिषद्में चावल और जौ, तिल और उड़द, गेहूं और मक्का, मोठ और मसूर आदिका वर्णन मिलता है। स्पष्ट है कि वैदिक कालमें सभी वस्तुओंकी उत्पत्ति होती थी।[5]

कृषि बड़ा सम्मानजनक उद्योग समझा जाता था। किसान अपना काम स्वयं ही करते थे। महिलाएँ भी उनका हाथ बटाती थीं।

१—बनर्जी : वही, पृष्ठ १२७, १२८। २—तैत्तिरीय संहिता ५।१।७।३।
३—अथर्ववेद ३।१३। ४—अथर्ववेद ७।१८।
५—बनर्जी : इको० लाइफ एण्ड प्रो० पृष्ठ १२०–१२२।

यदा-कदा सेवकोंका भी उपयोग किया जाता था। पुत्र-जन्म पर इसलिए विशेष प्रसन्नता प्रकट की जाती थी कि चलो, कृषिमें एक सहायक बढ़ा।

क्रमशः भूमिहीन कृषकोंका एक वर्ग उठ खड़ा हुआ। ये लोग खेतोंमें मजदूरी करके अपनी जीविकाका उपार्जन करते थे। ऋग्वेदमें धान्यकृत और उपलप्रक्षिणीके नामसे इनका उल्लेख है। अथर्ववेदमें फसल काटनेमें दासियोंकी सहायता लेनेका वर्णन मिलता है।

दुर्भिक्ष

छांदोग्य उपनिषद्में लिखा है कि टिड्डीदलके आक्रमणके कारण फसल नष्ट होजानेसे चक्रायण नामक साधु अपनी युवा पत्नीको लेकर घरसे निकल पड़ा और उसने अन्यत्र जाकर उड़द जैसी वस्तु खाकर प्राणरक्षा की।[1] ऐसे अवसरोंपर लोग अपना देश छोड़कर अन्यत्र चले जाते थे। पर ऐसे अवसर बहुत कम आते थे।

पशु पालन

वैदिक कालमें पशुधनका बड़ा ही आदर था। उसकी वृद्धिके लिए पूषणसे बार-बार प्रार्थना की गयी है। पशुओंमें गोको सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त था। प्रत्येक घरमें गोके लिए स्थान था। शतपथ ब्राह्मणमें गोवधका निषेध करते हुए कहा गया है कि गो या बैलका मांस अभक्ष्य है। कारण, पृथ्वी तलके सभी पदार्थ उसीसे उपलब्ध हैं। सब गोसे ही उद्भूत हैं।[2] गायके दूध, दही, घी, चर्म आदि सब पदार्थोंसे आर्य भली भाँति परिचित थे। नवदम्पतिके बैठनेके लिए गोचर्मका उपयोग किया जाता था। दधि, दूध, मद्य आदि रखनेके लिए गोचर्मके थैलों, द्रतियोंका उपयोग होता था। बैल खेत जोतने और बोझा ढोनेके काम आते थे। गायोंके अतिरिक्त भैंस, घोड़ा, गदहा, ऊँट, भेंड़ और बकरी भी पाली जाती थीं।[3]

१–छांदोग्य उपनिषद् १।१०।१।३। २–शतपथ ब्राह्मण ३।१।२३।
३–मगनलाल ए० बुच : इकोनामिक लाइफ इन ऐंश्येंट इंडिया, १९२४, खण्ड १, पृष्ठ २८–३३।

इसके अतिरिक्त मांसके लिए भी भैंसका उपयोग होता था। घोड़ा सवारीके काम आता था और रथ जोतनेके भी काम देता था। ऋग्वेदमें अनेक स्थानोंपर अश्वोंकी चालकी प्रशंसा की गयी है। ब्राह्मण ग्रन्थोंमें घुड़दौड़का वर्णन मिलता है। अश्वमेध अत्यन्त पवित्र यज्ञ माना जाता था। सूर्यकी पूजा करानेके लिए पुरोहितोंको अश्व भेंट करनेकी चाल थी। सिन्धु और सरस्वती प्रदेशके अश्व विशेष प्रसिद्ध थे।

गदहे और खच्चर रथों और गाड़ियोंमें जोते जाते थे। ऐतरेय ब्राह्मणमें एक घुड़दौड़का वर्णन है जिसमें अश्विनीकुमारकी विजय हुई थी। उनके रथमें गदहे जुते थे।[1] गदहोंका उपयोग बोझा ढोनेके लिए भी होता था।

ऋग्वेद तथा उत्तरकालीन संहिताओंमें भेड़-बकरियोंका वर्णन मिलता है। उनके बड़े-बड़े समूहोंका उल्लेख है। उनकी ऊनके कपड़े बनते थे और मांस खानेके काम आता था। ऋग्वेदकालमें गांधारकी ऊन विशेष रूपसे प्रसिद्ध थी। पूषण देवके सम्बन्धमें लिखा है कि वे भेड़की ऊनके वस्त्र पहनते हैं।[2]

ऋग्वेद तथा अथर्ववेदमें हाथियोंका भी वर्णन आता है। राजा सवारियोंके लिए हाथियोंका उपयोग करते थे। युद्धमें भी हाथियोंसे काम लिया जाता था।[3]

इस प्रकार वैदिक कालका किसान अत्यन्त शान्त, सुखी और प्रसन्न था। पशु-पालनके अतिरिक्त वह खूब मजेमें खेती करता था।[4] उसे किसी बातकी चिन्ता न थी।

१–ऐतरेय ब्राह्मण ४।९। २–ऋग्वेद १०।२६। ३–ऋग्वेद ८।३३।८।
४–मगन लाल ए० बुच : इकोनामिक लाइफ इन ऐंश्येंट इंडिया, १९२४, खण्ड १, पृष्ठ ४७-५८, ५९-६१।

वैदिक कालका जो विवरण उपलब्ध है उससे ज्ञात होता है कि उस समय कृषि, और पशु-पालनके अतिरिक्त अनेक उद्योग-व्यवसाय भी उन्नत अवस्थामें थे। मैक्समूलर और श्रेडर जैसे विद्वानोंने यह बात स्वीकार की है कि इस कालमें भारतमें अनेक शिल्प और उद्योग अत्यन्त विकसित अवस्थामें थे।

वैदिक कालके प्रमुख उद्योग ये हैं—

१—बढ़ईगीरी–लकड़ीका काम। २—कपड़ेकी कताई बुनाई।
३—धातुओंका काम, बर्तन बनाना आदि।
४—कुम्हारगीरी, मिट्टीके बर्तन बनाना। ५—चमड़ेका काम।
६—शराब खींचना। ७—सिलाई, रँगाई, संगतराशी आदि।

बढ़ईगीरी

ऋग्वेदमें तक्षण, त्वस्त्र, बढ़ईका वर्णन मिलता है।[1] ये लोग घर गृहस्थीके लिए तो लकड़ीके बर्तन बनाते ही थे, इसके अतिरिक्त रथ, नौकाएँ और जहाज भी बनाते थे।[2] रथकारोंका बड़ा सम्मान होता था।

वस्त्र उद्योग

वैदिक कालमें वस्त्र-उद्योग अत्यन्त उन्नत अवस्थामें था। यों साधु संन्यासी तथा पिछड़ी श्रेणीके लोग उस समय भी पशु-चर्म तथा वल्कल वस्त्रोंका उपयोग करते थे।[3] ऋग्वेद और अथर्ववेदमें अनेक बार ताना-बाना पूरे दो युवतियोंसे निशा और उषाकी उपमा दी गयी है।[4] ऋग्वेदके चतुर्थ मण्डलमें वस्त्र-मोचक चोरका वर्णन है। छठे मंडलमें बुनाईका स्पष्ट उल्लेख है और तन्तुम्, ओतुं, वयन्ति शब्द आये हैं।[5] वाजसनेय संहिता, मैत्रायणी

१—ऋग्वेद ६।११२।१। २—शतपथ ब्राह्मण २।३।३।१५।
३—ऋग्वेद १०।१३६।२। ४—ऋग्वेद २।३८, अथर्ववेद १०।७।४२।
५—ऋग्वेद ६।६।२।

अयस नामक एक धातुका अधिक वर्णन मिलता है। उसके विषयमें अभीतक कुछ निर्णय नहीं हो सका कि वह कौन सी धातु थी। कहा जाता है कि वह लोहा, तांवा या कांसा इन तीन धातुओंमेंसे ही कोई धातु थी।[१] राहुलजीका कहना है कि वैदिल कालमें अयस शब्द ताँवेके लिए आता था, वादमें लोहेके लिए प्रयुक्त होने लगा।[२]

सोनेका इस कालमें खूब प्रयोग होता था। उसके हार, वाजूवन्द, अंगूठी, कर्णफूल, हाथ पैरके कड़े आदि अनेक आभूषण खूब वनते थे। विवाहके अवसरपर वर-वधूको भिन्न-भिन्न प्रकारके आभूषण भेंट किये जाते थे। यज्ञों और उत्सवोंमें सुवर्णका दान किया जाता था। अथर्ववेदमें सोना, चाँदी और लोहा तीनों धातुओंके वने एक जंत्रका उल्लेख मिलता है।[३] अयस धातुका अनेक कार्योंमें उपयोग होता था। उससे कृषिके काममें आनेवाले औजार तो वनते ही थे, गृहस्थीके कामकी भी अनेक वस्तुएँ वनती थीं। ताँवा, लोहका शतपथ ब्राह्मणमें अनेक स्थानोंपर उल्लेख है। टिन, तृपु और सीसाका भी अथर्ववेदमें वर्णन मिलता है।[४]

इन विवरणोंसे यह स्पष्ट हो जाता है कि वैदिक कालमें धातुओंका भरपूर उपयोग होता था। धातुओंसे अनेक प्रकारकी वस्तुएँ वनती थीं। साथ ही सोना तो विनिमयका माध्यम ही वनता जा रहा था।[५]

कुम्भकारी

'करतल भिक्षा तरुतल वासा' वाली अवस्था पारकर जव मानव संसारी वना तो उसे सवसे पहले खानेकी चिन्ता हुई और खाना पकाने और रखनेके लिए वर्तनोंकी। सवसे पहले उसकी दृष्टि मिट्टीपर गयी। वस, उसने मिट्टीके वर्तनोंका

१—वनर्जी : इकोनामिक लाइफ एंड प्रोग्रेस इन ऐंश्येंट इंडिया, पृष्ठ १५४।

२—राहुल सांकृत्यायन : मानव समाज, पृष्ठ ९३।

३—अथर्ववेद ५।२।२८। ४—वनर्जी, वही, पृष्ठ १५६–१६०।

५—वुच : इकोनामिक लाइफ इन ऐंश्येंट इंडिया, खंड १, पृष्ठ १५२–१५६।

आविष्कार कर डाला। उसका काम चल निकला। मृत्तिका पात्रोंकी उपयोगिता आज भी कम नहीं हुई है।

वाजसनेय संहिता, मैत्रायणी संहिता आदिमें कुलाल, मृत्पच आदि शब्द सूचित करते हैं कि वैदिक कालमें कुम्भकारी उन्नतिपर थी।

चर्मकारी

वैदिक कालमें चमड़ेका काम भी उन्नतिपर था। ऋग्वेदमें चर्मकारको चर्मम्न कहा गया है। उसमें चमड़ेके ऐसे थैलोंका वर्णन है जिनमें दूध, दही, मदिरा आदि तरल पदार्थ रखे जाते थे।[1] क्योंकि ऊपर गोचर्म डाला जाता था। शतपथ ब्राह्मणमें खूंटी गाड़कर चमड़ा फैलानेका वर्णन मिलता है। इससे यह स्पष्ट है कि उस समय भी चमड़ा बनाया जाता था और उसकी बनी वस्तुएँ दैनिक व्यवहारमें आती थीं।

सुराकारी

सोमपानके लिए आर्य प्रख्यात हैं। यज्ञकालमें सोम वृक्षका आसव पान करना परम पवित्र माना जाता था। तैत्तिरीय ब्राह्मणमें सुरा प्रस्तुत करनेकी विधि मिलती है। चावल, जौ और महुवेसे सुरा बनायी जाती थी। सुराकारका वैदिक साहित्यमें स्थान-स्थानपर वर्णन है। दो प्रकारकी सुराका उल्लेख मिलता है—किलात और परिस्रुत। बादमें पाणिनि-कालमें अंगूरी मदिरा भी प्रस्तुत होने लगी थी।

इन प्रमुख उद्योगोंके अतिरिक्त सिलाई, रँगाई, संगतराशी, हाथी-दाँत आदिके उद्योग भी खूब प्रचलित थे।

अनेक व्यवसाय

आर्योंमें पहले केवल तीन वर्ण थे। ब्राह्मण, राजन्य और विश। कालान्तरमें अनार्योंके सम्मिलनसे शूद्र वर्णका जन्म हुआ। यज्ञों और अनुष्ठानोंकी वृद्धिसे ब्राह्मण पुरोहितोंकी एक पृथक् श्रेणी बनी। ऋत्विज, छन्दोग, सोमिन्, उद्गीथ, गायत्रिन्, अध्वर्यु, ब्रह्मा पूजापाठ और यज्ञ कराने लगे। गणक, नक्षत्रदर्शी ज्योतिषी थे और भिषक् वैद्य।

१—मुख : वही, पृष्ठ १२५-१२७।

क्षत्रिय शासक वर्ग बना। वैश्य कृषि और पशु-पालनमें लगा। क्रमशः अनेक जातियाँ उप-जातियाँ उठ खड़ी हुईं। हल जोतनेवाले कृपिवल, गोप, गोपाल, अविपाल, पशुप, बीज बोनेवाले, वाप कृषि वर्गके अन्तर्गत थे। कर्मार, तक्षण, कुलाल, विडलकारी, मणिकार, हिरण्य-कार, रजयित्र, वाय, पेशस्कारी, रथकार, रज्जुकार, सुराकार आदि कितनी ही जातियाँ विभिन्न व्यवसायोंको लेकर बन गयीं। शुक्ल यजुर्वेदमें १५६ जातियोंकी सूची दी गयी है।[1]

सेवा करनेवाले शूद्र वर्गमें तो उपजातियोंकी अत्यधिक भरमार हो गयी। नापित, मलग, वासःपल्पुली, धोबी, धीवर, कैवर्त, सारथी, द्वारपाल, परिचर, हस्तिप, महावत आदि अनेक जातियोंका उदय हुआ। विभिन्न उद्योग-व्यवसायोंके प्रसारके कारण ऐसा होना स्वाभाविक भी था।[2]

इस प्रकार हम देखते हैं कि वैदिक कालमें अनेक उद्योग-व्यवसाय उन्नतिपर थे और कृषिके अतिरिक्त अन्य अनेक महत्त्वपूर्ण उद्योगोंका जन्म हो चुका था।

●

१—मगन लाल ए० बुच : इकोनामिक लाइफ इन ऐंश्येंट इंडिया, खण्ड १, पृष्ठ २८०—२८६।

२—बनर्जी : इको० लाइफ एण्ड प्रोग्रेस ऐं० इं०, पृष्ठ १६१—१६६।

आरंभिक वैदिक कालके विवरणसे ज्ञात होता है कि उस समय सर्वत्र आर्थिक स्वावलम्बन था। प्रत्येक गाँव, प्रत्येक घर, प्रत्येक परिवार स्वावलम्बी था। सब अपने आप ही अपनी आवश्यकताओंकी पूर्ति कर लेते थे। खेतमें धान्य था, घरकी रानियाँ सूत कातकर वस्त्रका ढेर लगा देती थीं, गाय भैंसें दूध दहीसे घर भर देती थीं, रही बची आवश्यकताओंकी पूर्त्ति गाँवके शिल्पी और कारीगर कर देते थे। न ऊधोका लेना, न माधोका देना।

स्वावलम्बन

सीमित आवश्यकताएँ होनेसे मानवके पास पर्याप्त समय बच जाता था उच्च तथ्योंपर विचार और मनन करनेके लिए। उस समय मानव धन उत्पादन करनेवाला पशु नहीं बना था। श्री बुचके कथनानुसार मानवकी सारी प्रवृत्तियों और कार्योंका केन्द्रबिन्दु पेट ही रहा करता है पर हम गर्वके साथ कह सकते हैं कि प्राचीन आर्योंने लौकिकसे पारलौकिक चिंतनको उच्च स्थान दिया था। उनकी आवश्यकताएं सीमाके भीतर रहती थीं।[1]

वैदिक कालके मानवका आदर्श भोग नहीं, त्याग था। जीवनके प्रति उसका दृष्टिकोण ही दूसरा था। क्रमशः उसकी आवश्यकताएँ बढ़ने लगीं। कृषि, वाणिज्य और कला विकसित हो चली, फिर भी आदर्श नहीं बदला।[2]

१, २–बुच : इकोनामिक लाइफ इन एंश्येंट इंडिया, १९२४, खंड १, भूमिका पृष्ठ ८, ९।

आवश्यकता आविष्कारोंकी जननी है। मनुष्यने जब यह अनुभव किया कि उसके पास कुछ वस्तु आवश्यकतासे अधिक है और दूसरेको उसकी आवश्यकता है तो उसने अदला-बदली, पलटौन अथवा विनिमयको जन्म दिया।

व्यापारका जन्म

क्रमशः क्रयविक्रय बढ़ा और फिर एक दिन वह भी आया जब लाभकी आशासे कुछ व्यापारियोंने बाहर निकलकर अपना भाग्य आजमानेकी चेष्टा की। इस प्रकार देशी और विदेशी व्यापारका जन्म हुआ।

व्यापारका श्रीगणेश वैदिक कालमें ही हो गया था। ऋग्वेदके क्रि, वणिज अथवा वाणिज शब्द इस बातका प्रमाण हैं।[1] अथर्ववेदमें व्यापारियोंका विशेष वर्णन है। वे घरसे चलते समय इन्द्र, अग्नि तथा अन्य देवताओंसे प्रार्थना करते थे कि 'हमारा मार्ग मंगलमय हो। आप हमारी रक्षा करें। मगके शूल फूल बनें। मालके विक्रय, प्रपण और प्रतिपणमें हमें सफलता मिले।' इस प्रकारकी प्रार्थना करनेके उपरान्त ये व्यापारी भगवानके भरोसे घरसे निकल पड़ते थे। मार्गमें यदि वन्य पशुओंसे और लुटेरोंसे बचकर घर लौट पाते तो मालामाल हो जाते अन्यथा मार्गमें ही जीवनलीला समाप्त हो जाती।[2]

व्यापारके साथ तुला, वजन, बटखरा आदिका आना स्वाभाविक है। वाजसनेय संहिता और शतपथ ब्राह्मणमें तुलाका उल्लेख है। गल्ला तोलनेके लिए निश्चित आकार-प्रकारकी पायलीका प्रयोग होता था। वजनके लिए विभिन्न मापदंड भी निश्चित कर लिये गये थे। जवाहरातोंको तोलनेके लिए कृष्णल और माशका प्रयोग होता था।[3]

तुला और वजन

आरम्भमें यह व्यापार थोड़े ही अन्तरके स्थानोंमें सीमित रहा।

१—ऋग्वेद, ४।२४।१०; १।११२।११ २—अथर्ववेद, ३।१५।१।

३—वैदिक इंडेक्स, १, पृष्ठ १८५।

क्रमशः दूरी बढ़ने लगी। उत्तर वैदिक कालके ग्रन्थोंसे यह पता चलता है कि उस समय वुर पश्चिमका माल पूर्वमें आकर बिका करता था। गांधार और परुष्णिकी ऊनकी बड़ी ख्याति थी। सारे देशमें उसकी मांग थी। सिंधु प्रदेशके गुग्गुलकी चर्चा अथर्ववेदमें पायी जाती है। शतपथ ब्राह्मणमें सिंधु प्रदेशसे आनेवाले सैंधवों, घोड़ोंकी बड़ी प्रशंसा की गयी है।[1]

विदेशी व्यापार

ऋग्वेदमें कई स्थानोंपर समुद्रका नाम आता है। एक स्थानपर व्यापारियोंके साथ समुद्रका नाम आया है। वशिष्ठ और वरुणकी समुद्रयात्राका वर्णन मिलता है। उसमें नावका भी उल्लेख है। एक जगह तुग्रके पुत्र भुज्यकी समुद्र-यात्राका वर्णन है। उसके पिताने उसे कुछ शत्रुओंको पराजित करनेके लिए भेजा था। समुद्रमें जब उसकी नौकाएँ डूबने लगीं तो उसने अश्विनीकुमारोंसे प्रार्थना की जिन्होंने उसे सौ डांडोंवाली नावपर सवारकर घर वापस भेजा।[2]

कुछ विद्वानोंका मत है कि ऋग्वेदमें आये समुद्र शब्दका अर्थ समुद्र नहीं है। उसका अर्थ है—सिंधु नदका समुद्र तटवर्ती वह भाग जहाँ नदीका फांट बहुत चौड़ा होगया है और नावें सरलतासे चल सकती हैं। पर मेकडोनेल, कीथ, सेंट मार्टिन, लासेन, मैक्समूलर आदिने इससे भिन्न मत प्रकट किया है।

पुरातत्ववेत्ताओंने असीरिया, बेबिलन, सीरिया, सुमेरिया आदिके साथ वैदिक सभ्यताका सम्पर्क सिद्ध किया है। मिस्रमें मुर्दोंपर लपेटी गयी ममीमें नीलका रंग तथा अन्य कितने ही ऐसे प्रमाण मिले हैं जिनसे यह सिद्ध होता है कि वैदिक कालमें भारतीय व्यापारी विश्वके अन्य

१–शतपथ ब्राह्मण, ११।५।५।१२।

२—ऋग्वेद १।२५।७, १।५६।२, ७।८८।३, १।११६।३,४,५।

उन्नत देशोंमें व्यापार करने जाते थे। सिंधु उपत्यकामें मोहनजोदड़ोकी खुदाईसे इंडो-सुमेरियन सम्पर्ककी बात सिद्ध होती है।[1]

विनिमयके माध्यमका इतिहास बड़ा मनोरंजक है। सभ्यताके विकासके साथ ही विनिमयकी आवश्यकता पड़ी। विभिन्न देशोंमें समय-समयपर उसके लिए अनेक वस्तुएं काममें लायी गयीं। पहले अन्न, पशु, कौड़ी, सीपी आदिसे काम निकाला जाता रहा। धातुका आविष्कार होनेपर धातुका उपयोग होने लगा। ताँबा, चाँदी, सोना आदि धातुएँ विनिमयका उत्तम साधन सिद्ध हुईं। कारण, उनमें माध्यमके सभी आवश्यक गुण विद्यमान थे। जैसे : वे उपयोगी थीं, एक स्थानसे अन्यत्र ले जानेमें सुभीता था, जल्दी खराब होनेका डर नहीं था, उनके टुकड़े किये जा सकते थे, उनके मूल्यमें स्थायित्व था, वे सरलतासे पहचानी जा सकती थीं, आदि।

विनिमयका माध्यम

भारतमें आरम्भिक दिनोंमें गौ विनिमयका माध्यम रही। ऐतरेय ब्राह्मणमें लिखा है कि सोम पानेके लिए एक वर्षका श्वेत निष्कलंक गौ देनी पड़ती थी। यह माध्यम दोषपूर्ण था इससे इनकार नहीं किया जा सकता। धातुओंके आविष्कारने यह समस्या सुलझा दी।

ऋग्वेदमें हमें अनेक स्थलोंपर निष्कका उल्लेख मिलता है। परवर्ती ग्रन्थोंमें उसे सोनेका सिक्का बताया गया है। ऋग्वेदमें निष्क-हारका बहुत उल्लेख आता है। गोदानके साथ निष्क दानकी भी बात आती है।[2] अथर्ववेदमें भी निष्क शब्द आता है।[3]

निष्क

१—एन० सी० बनर्जी : इकोनामिक लाइफ एंड प्रोग्रेस इन ऐंश्येंट इण्डिया, पृष्ठ १७३–१७७। बुच : इकोनामिक लाइफ इन ऐंश्येंट इंडिया, खंड २, पृष्ठ २१२–२३६।

२—ऋग्वेद १।१२६।२, २।३३।१०, ८।४७।१५,५।१६।३।

३—अथर्ववेद ५।१४।३,५।१७।१४।

निष्कके अतिरिक्त ऋग्वेदमें मना शब्द भी आता है। कण्व ऋषि एक सौ गौओंके साथ मना भी दान देते हैं।[1] इसके अतिरिक्त ऋग्वेदमें हिरण्यपिंडका भी वर्णन मिलता है।[2] इससे सोनेके बाहुल्यकी बात प्रकट होती है। आभूषणों तथा दानके लिए उसका विशेष उपयोग होता था।

परन्तु प्रिंसेप और विलसन, विंसेंट स्मिथ और मैक्समूलर जैसे विद्वान इससे भिन्न मत रखते हैं। उनका कहना है कि भारतवासी पहले मुद्राका उपयोग करना जानते ही नहीं थे। उन्होंने यूनानियोंसे उसका प्रयोग करना सीखा। इनके मतसे निष्कका अर्थ सोना नहीं था, गलेका हार था। पर इनका यह मत सबको ग्राह्य नहीं है। कारण, निष्कका अर्थ गलेका हार सभी स्थानोंपर ठीक नहीं बैठता। मेकडानेल और कीथका कहना है कि निष्क निश्चित वजनका कोई सोनेका ही सिक्का था।[3] किसी गायकको १०० घोड़ोंके साथ १००निष्क देनेका अर्थ यदि शोभावृद्धिके लिए १०० हार लगाया जाय तो यह ठीक नहीं जँचता।

इसके अतिरिक्त जब हम वैदिक सभ्यताका अनुमान करते हैं और सोने चाँदीके आभूषणोंकी बात पढ़ते हैं, ऋण तथा व्याजका वर्णन देखते हैं तो हमें इसमें सन्देह करनेके लिए स्थान नहीं रह जाता कि आर्य मुद्राका उपयोग करना जानते थे।

ऐसा प्रतीत होता है कि निष्क सोना और चाँदी दोनों धातुओंका होता था। परवर्त्ती स्मृतिग्रन्थोंमें तथा अर्थशास्त्रमें वह ४ सुवर्ण और

सुवर्ण और कृष्णल

३२० कृष्णलके बराबर बताया गया है। उत्तर वैदिक कालके काठक संहिता और तैत्तिरीय संहितामें इसका वर्णन मिलता है।[4] काठक संहिता और शतपथ ब्राह्मणमें सोनेके सतनामका बारबार उल्लेख है। वह १००

१—ऋग्वेद ८।७८।२। २—ऋग्वेद ६।४७।२२,२३।
३—वैदिक इंडेक्स, १, पृष्ठ ४५५।
४—काठक संहिता ११।४। तैत्तिरीय ब्राह्मण १३।६।७।

कृष्णलके बराबर होता था। ब्राह्मणोंको यज्ञकी दक्षिणामें शतनाम देनेकी प्रथा थी। पाणिनि, मनु और याज्ञवल्क्यके समयमें शतनाम सोने और चाँदी दोनों धातुओंके पाये जाते थे।[1]

यह बात अभीतक ज्ञात नहीं हो सकी कि इन मुद्राओंपर किसीका कोई चिह्न रहता था या नहीं।[2] इस बातका भी ठीक पता नहीं चलता कि सोना और चाँदीका उद्गम कहाँ था। पर इसमें सन्देह नहीं कि इस कालमें सोना चाँदी आदि धातुओंकी कमी नहीं थी। मूलनिवासियोंके पास भी सोना मिलनेकी बात वैदिक ऋचाओंमें पायी जाती है। निष्क, सुवर्ण, कृष्णल, शतनाम आदि उस समयके प्रसिद्ध सिक्के थे और उनके माध्यमसे क्रय-विक्रय और मालका आदान-प्रदान होने लगा था।

संक्षेपमें कहा जा सकता है कि वैदिक कालमें कृषि, पशु-पालन, उद्योग, कला, व्यापार आदि सब वस्तुएं विकासकी ओर जा रही थीं। समाज उन्नत अवस्थामें था और उसका सबसे बड़ा गुण था—स्वावलंबन।

१—मनु संहिता ८।१३५-१३८, याज्ञवल्क्य संहिता १।३६४-३६६।

२—बनर्जी : इकोनामिक लाइफ एंड प्रोग्रेस इन एंश्येंट इंडिया, पृष्ठ १८६।

सामाजिक स्थिति

वैदिक कालमें आरम्भमें जो सामाजिक संघटन प्रारम्भिक अवस्थामें था वही आगे चलकर सुदृढ़ हो गया। भिन्न-भिन्न वंश तथा जन, जो पहले खानावदोश जीवन विताते थे, स्थिर होकर वस गये। कई-कई परिवारोंको लेकर कुटुम्व वना, कई कुटुम्वोंको लेकर ग्राम, कई ग्रामोंको लेकर विस और कई विसोंको लेकर जन। प्रत्येक जनका एक राजा होता था। जन कई श्रेणियोंमें विभक्त रहता था जिनमें ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य मुख्य थे। पराजित शत्रु शूद्र वर्ग में थे।

ग्राम

वैदिक ग्राम प्रायः सरिता तटपर उपजाऊ भूमिमें होते थे। उनके निकट ही पशुओंके लिए उत्तम चरागाह होते थे। ग्रामोंका जो वर्णन मिलता है उससे ज्ञात होता है कि ग्रामोंमें संयुक्त परिवार निवास करते थे। सवके मकान पृथक् होते थे। भूमि और मकानोंपर निवासियोंका अपना स्वत्व होता था। चरागाह सवकी संयुक्त सम्पत्ति होते थे। परिवारका मुखिया, गृहपति सारे परिवारकी वागडोर अपने हाथमें रखता। कभी कभी पुत्रोंके प्रति उसके अन्यायका भी विवरण मिलता है।[1] लोग अपने खेत और मकानको कभी-कभी जुएमें दाँवपर लगा देते थे और हार जानेपर दाने-दानेके लिए मोहताज हो जाते थे। इससे यह सिद्ध होता है कि खेतों और मकानोंपर लोगोंका स्वत्व रहता था।

मकान

वैदिक कालके मकान ऐसे होते थे जो कृषि और पशु-पालन करनेवाली जातिके लिए उपयुक्त हो सकते थे। वाहर एक वाड़ा रहता और भीतर परिवारके सदस्योंके लिए पृथक्-पृथक् निवास। पशुओंके लिए भी वाड़े रहते थे। ऋग्वेद, अथर्ववेद और कौशिक सूत्रमें गृह देवताकी स्तुतिके अनेक मंत्र मिलते हैं

१—ऐतरेय ब्राह्मण ७।१५, ७।१८।

जिनमें प्रार्थना की गयी है कि गृह देवता हमारे गृहकी रक्षा करें और इसमें निवास करनेवाला सारा परिवार सुखी और समृद्ध रहे।

मकान मुख्यतः लकड़ी और बाँसके बने होते थे। छत बाँसके टट्टरकी होती थी। उसके ऊपर फूसका छप्पर छाया रहता था।[1] मकान के कई खंड होते थे। एकमें अग्निशाला होती, कुछ कमरे महिलाओंके लिए, पत्नीनाम् सदनम् होते, कुछ परिवारके अन्य सदस्योंके लिए होते। अन्न-संग्रहके लिए भारी शाला रहती जिसमें साफ किया हुआ स्वच्छ पूति धान्य रहता। कमरोंके भीतर बर्तन, लकड़ीके सामान, पलंग, कुर्सियाँ, चटाई तथा घरगृहस्थीकी अन्य आवश्यक वस्तुएँ रहतीं।[2] पत्थरके बने किलों और हजार खम्भोंवाले मकानोंका भी वर्णन मिलता है।[3]

खानपान और पोशाक

आर्योंका खानपान सादा था। रोटी, साग, फल और दूध ही उनका मुख्य भोजन था। पयस, दूध, दधिका वे खूब व्यवहार करते थे। चावल, जौ, गेहूँकी रोटी बनाते, उबालकर खाते अथवा भूनकर चबाते थे। भुने अन्नोंमें सक्तु, परिवाप और लाजका वर्णन मिलता है। वे रोटीके अतिरिक्त पिष्ट, पुरोडास, अपूप, पक्ति आदिका भी प्रयोग करते थे। चावलोंकी खीर, क्षीरोदन उन्हें विशेष प्रिय थी। यज्ञ और हवनमें ब्रह्मोदन अर्पण किया जाता था। चावलसे दध्योदन, मुद्ग्योदन, तिलोदन, घृतोदन आदि बनता था। मांसमें पकाया चावल, मांसोदन आर्योंको प्रिय था। यज्ञमें दिये गये बलि-पशुओं—गाय, भैंस, भेंड़, बकरी और कभी-कभी घोड़का भी मांस परम पवित्र मानकर खाया जाता था। मांस-भक्षण पहले प्रायः सभी जातियोंमें प्रचलित था पर बादमें लोग गौ, भैंस और घोड़के मांससे घृणा करने लगे। फल, शाक, मधुका अधिक व्यवहार किया

१—अथर्ववेद ६।६। २—वही, ६।३, ६।६।

३—ऋग्वेद ६।४६।६, ५।६२।६।

जाता था। सोमरसका भी प्रचार था। सुराका भी दौर चलता था पर पुरोहित लोग उसे घृणाकी दृष्टिसे देखते थे।[1]

आर्योंकी पोशाक सादी थी। उष्णीष, पगड़ी तो वे बाँधते ही थे, नीवि, परिधान, धोतीके अतिरिक्त तर्प, रेशमी अंगरखा, सामूल, ऊनी कोट, द्रापि, ओवरकोट, पांडव, सफेद लोई, समुल्प, रंगीन वस्त्र, ऊर्णा, ऊनी वस्त्र, शुक्रवासा, सफेद वस्त्रका भी वे उपयोग करते थे।[2] उनके वस्त्रोंपर सोनेका भी काम होता था। स्त्री-पुरुष दोनों ही निष्क-हार, कर्णफूल, हाथ-पैरके कड़े, अंगूठियाँ आदि पहनते थे। तेल डालकर बाल काढ़नेका रिवाज था। उस्तरेका आविष्कार तो हो चुका था पर अधिकतर लोग दाढ़ी बढ़ाना ही पसन्द करते थे।

सभ्यता और संस्कृतिके विकासके साथ आर्योंने समाजका नियमन भी अच्छे ढंगसे किया। विवाहकी परिपाटी डालकर समाजको नियंत्रित किया। वैदिक कालमें साधारणतः पुरुष एक ही स्त्रीसे विवाह करता था और स्त्री भी आजीवन पातिव्रत धर्मका पालन करती थी। बालविवाहका निषेध था और वर-वधूको जोड़ा चुननेकी स्वाधीनता थी। वर्णव्यवस्था विवाहमें बाधक न होती थी। बादमें अवश्य ही अनुलोम और प्रतिलोम विवाह करना अनुचित समझा जाने लगा। विवाह पवित्र धार्मिक कृत्य माना जाता था। विवाहके समय वर और वधू दोनों ही सदाचारमय जीवन बिताने, परस्पर प्रेम करने और परिवारकी सेवा करनेकी प्रतिज्ञा लेते थे।[3]

विवाह

आर्योंका धर्म सरल था। वे धन-धान्यकी वृद्धि, पशुधनकी प्राप्ति, कृषिकी उन्नति और समृद्धिके लिए देवताओंसे प्रार्थना करते थे। वरुण, सविता, वायु, अश्विन, मरुत, इन्द्र, अग्नि, सोम आदि ३३ देवता माने जाते थे। उषा देवीकी भी आराधना होती थी। देवताओंकी प्रसन्नताके निमित्त यज्ञ और

धर्म

१—बनर्जी : इकोनामिक लाइफ एंड प्रोग्रेस इन ऐंश्येंट इंडिया, पृष्ठ १९६।
२—सातवलेकर : वैदिक सभ्यताके एक अंशका निरीक्षण।
३—ऋग्वेद १०।८५।३६, अथर्ववेद १४ १।५१—५४,५७।

हवन किये जाते थे और पशु-बलि दी जाती थी। उत्तर वैदिक कालमें देवताओंकी संख्या बढ़ गयी और यज्ञोंका महत्त्व उनसे भी बढ़ गया।

महिलाओंकी स्थिति

वैदिक कालकी नारी घरकी रानीके पदपर प्रतिष्ठित थी। वह पारिवारिक जीवनमें सुधाकी धारा प्रवाहित करती थी। गृहपति बाहर सँभालता, गृहपत्नी भीतर। माता सबको भोजन कराती और दुहिता गौओंको दुहती। कताई, बुनाई-का भी सारा काम महिलाओंके जिम्मे था। पाक-शास्त्रपर उसका सोलह आने अधिकार था। फसल लुनने, नाज साफ करने, उसे फटकने पछोरनेमें भी वह पुरुषका हाथ बटाती थी। तत्का-लीन नारी आजकी तरह पर्देकी बूबू नहीं थी। यज्ञादि कर्मोंमें वह भाग लेती थी। अपाला, सूर्या, विश्ववारा, विस्पला, लोपामुद्रा आदि विदुषी नारियोंने वेदकी ऋचाओंका निर्माण किया था। इसीसे उस समयके नारी-समाजकी उन्नतिका अनुमान किया जा सकता है।

वैदिक कालकी नारी गृहस्थीका सारा भार प्रसन्नतापूर्वक सँभालती थी। वह प्रातःकाल उठकर दधिको मथकर मक्खन बिलोती। पुत्रियाँ भी माताके काममें हाथ बटातीं। वे कुओंसे जल भर लातीं, भोजन आदिकी व्यवस्था करतीं और परिवारवालोंकी प्रेमसे सेवा करतीं।

शासन पद्धति

आरम्भमें आर्य अनेक समूहोंमें बँटे थे। प्रत्येक जन-समूहका एक राजा होता था। समरमें वही जनका नेता होता था। मुकदमोंका फैसला करनेका भी उसीको अधिकार था। राज्याभिषेकके समय पुरोहित उसे आदेश देता था कि वह प्रजाके प्रति उदार रहे तथा इस प्रकार शासन करे जिससे कृषि उन्नत हो, देश खूब फले फूले और सबका उचित रीतिसे पोषण हो।[1] सभा और समिति नामक दो परिषदें महत्त्वपूर्ण विषयोंपर राजाको सलाह दिया करती थीं। भूमिपर राजाका स्वत्व तो नहीं माना जाता था पर उसे प्रजासे

१—यजुर्वेद, वाजसनेय संहिता ९।२२।

भेंट पानेका अधिकार था।[1] इस भेंट और शत्रुओंसे प्राप्त कर तथा लूटमें मिले मालसे राज्यका शासन-कार्य चलता था। गाँवोंकी शासन-पद्धति सरल थी। राजा ही गाँवके मुखिया, ग्रामणीकी नियुक्ति करता था।

सैन्य संघटन

राजाको समय-समयपर युद्ध करना पड़ता था। उसके लिए वह सेना रखता था। सेनाका संघटन पुराने ढंगका था। राजा और बड़े सरदार रथोंपर सवार होकर यद्ध करते, साधारण सैनिक पैदल रहते। धनुषवाण और भाले ही मुख्य हथियार थे। योद्धा कवच धारण करते थे।

पूँजीवादका जन्म

व्यापार-वाणिज्यके विकासके साथ पूंजीका जन्म हुआ। द्यूतक्रीड़ा चलती थी, ब्याजपर रुपया उधार दिया जाता था। ऋण चुकाना पवित्र कर्तव्य माना जाता था।[2] ऋण देकर, भूमि खरीदकर कुछ लोग साहूकार और पूंजीपति बनने लगे। राजाओंकी ब्राह्मणवर्गपर विशेष कृपा रहती थी। छांदोग्य उपनिषद्में महाशाल और महाश्रोत्रियका जो वर्णन है उससे अनुमान किया जा सकता है कि वे लोग भी किसी पूंजीपतिसे कम न थे। सरदार लोग भी कभी-कभी राजासे जागीर पा जाते थे और वे भी क्रमशः पूंजीपतियोंकी श्रेणीमें आने लगे।

इस प्रकार जब सम्पत्ति थोड़े व्यक्तियोंके हाथमें एकत्र होने लगी तो समाजमें दरिद्र वर्गका जन्म होना स्वाभाविक था। ऋग्वेदमें ऐसे दरिद्रतासे पीड़ित लोगोंका करुण वर्णन मिलता है।[3] तभी तो ऐसे लोगोंको दान देनेपर इतना जोर दिया गया है।[4]

●

१—बनर्जी : इकोनामिक लाइफ एंड प्रोग्रेस इन ऐंश्यंट इंडिया, पृष्ठ ११८।
२—वही, पृष्ठ २०२। ३—ऋग्वेद १०।११७।
४—बनर्जी : वही, पृष्ठ २०८।

बौद्ध काल

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

वैदिक काल और मौर्य अथवा साम्राज्यवादी कालके अन्तर्वर्ती इस बौद्धकालमें भारतमें दो महान धर्मोंका उदय हुआ—जैन धर्म और बौद्ध धर्म।

उत्तर वैदिक कालमें यज्ञोंपर अधिक जोर दिया जाने लगा था। कर्मकांडका महत्त्व बढ़ गया था। इस विषयमें अनेक कड़े नियम थे जिनका उल्लंघन पापकी श्रेणीमें आ जाता था। इसका स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि अनेक विचारशील व्यक्ति कर्मकांडकी उपयोगितामें सन्देह करने लगे। विरोध भी आरम्भ हो गया। कुछ ऐसे सम्प्रदाय भी उठ खड़े हुए जो यह मानते थे कि यज्ञ और कर्मकांड ही मोक्षप्राप्तिका एकमात्र उपाय नहीं हैं। आचार-विचारकी पवित्रतासे भी मोक्ष मिल सकता है। ऐसे सम्प्रदायोंमें जैन और बौद्ध धर्म मुख्य हैं।

जैन धर्म

जैन धर्म बौद्ध धर्मकी अपेक्षा प्राचीन माना जाता है। जैनोंका कहना है कि उनके २४ तीर्थंकर हो चुके हैं। तेरहवें तीर्थंकर ईसाके पूर्व आठवीं शताब्दीमें हुए थे। उन्होंने सत्य, अहिंसा, अस्तेय और अपरिग्रहपर जोर दिया। जैन धर्मके मूल प्रवर्तक वैशालीके राजकुमार वद्र्धमान थे जिनका जन्म ५४० ई० पू० के लगभग हुआ था। आपने ३० वर्षकी आयुमें गृह त्याग दिया और १२ वर्षतक घोर तपस्या की। तेरहवें वर्ष उन्हें परम ज्ञानकी उपलब्धि हुई और वे महावीर तथा जिन विजयीके नामसे प्रख्यात हुए।

महावीर भगवानने अपने उपदेशोंमें शरीर तथा मनकी पवित्रता और अहिंसा व्रतके पालनपर अत्यधिक जोर दिया। तपस्या करना

आवश्यक बताते हुए आपने कहा कि ध्यान, उपवास और तपके बिना आत्मा मुक्त नहीं हो सकती। जैन धर्म भारतमें अच्छा पनपा। बादमें कुछ राजाओंने इसे ग्रहण कर लिया, पर अधिक कड़े नियमोंके कारण वह सर्वसाधारणमें अधिक प्रचलित न हो सका।

भगवान गौतम

गौतम बुद्धके जीवन और चरित्रसे कौन भारतीय अनभिज्ञ है? ५६३ ई० पूर्वके लगभग लुम्बिनी ग्रामके पास राजा शुद्धोदनके जिस सुपुत्रने जन्म ग्रहण किया उसने जन्मदात्री जननी को ही नहीं, सारी वसुन्धराको कृतकृत्य कर दिया। वृद्ध, रोगी और मृत व्यक्तिको देखकर सिद्धार्थको जो वैराग्य हुआ उसे अनिंद्य सुन्दरी यशोधरा, नवजात शिशु राहुल और महलोंका अपार भोगविलास पल भरके लिए भी धूमिल न कर सका। जीवनके रहस्यकी खोज करनेके लिए यह युवक राजकुमार एक रात्रिको महलसे निकल ही तो पड़ा। फिर वह वन-वन भटका। कठिनसे कठिन तप उसने किया। शरीर सूखकर ढाँचा मात्र रह गया, पर हृदय ज्ञानसे आलोकित न हुआ। ६ वर्षकी कठोर साधनाके उपरान्त उसे ऐसा लगा कि उसका साधन-मार्ग ठीक नहीं है। अन्तमें बोध गयामें निरंजना नदीके पावन तटपर अश्वत्थके नीचे एक दिन खीर खाकर उसने जो समाधि लगायी उसके टूटते ही उसका हृदय ज्ञानके आलोकसे आलोकित हो उठा। उसकी साधना फलवती हुई और इस प्रकार वह 'बुद्ध' बना।

मध्यम मार्ग

सत्यकी अनुभूति करनेके उपरान्त भगवान बुद्धने देशमें घूम-घूम कर उस ज्ञानको मुक्तहस्त हो लुटाना आरम्भ किया जिसके लिए उन्होंने अपना सारा जीवन अर्पण कर दिया था। आपने मध्यम मार्गका उपदेश दिया। कहा, मानव जबतक आवागमनके चक्रसे मुक्त नहीं होता तबतक दुःखके सागरमें गोते लगाया करता है। जगतके अशाश्वत पदार्थोंकी आसक्ति ही

आवागमनका मूल कारण है। इससे मुक्ति पानेके लिए मानवको मध्यम मार्गका अवलम्बन करना चाहिये। न तो शरीरको घोर कष्ट देना ही वांछनीय है और न सर्वथा विषयोंमें लिप्त हो जाना ही। दोनोंके बीचका मार्गही मध्यम मार्ग है। निर्वाणकी प्राप्तिके लिए आपने आष्टांगिक मार्ग बताया है जिसमें सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वाह्य, सम्यक् कर्मान्ति, सम्यक् आजीव, सम्यक् व्यायाम ! सम्यक् स्मृति और सम्यक समाधिपर जोर दिया गया है। आपने बताया है कि निर्वाण ही मानवका लक्ष्य है और वही सांसारिक कष्टोंसे मुक्ति पानेका एकमात्र उपाय है।

बौद्ध धर्म

भगवान बुद्धने ईश्वरके अस्तित्वपर तथा ऐसे ही विवादास्पद प्रश्नोंपर कोई मत नहीं प्रकट किया। आपने वर्ण-व्यवस्था, यज्ञ और कर्मकांडकी कड़ी टीका की। सदाचारको श्रेष्ठ बताते हुए जन्मना जातिका विरोध किया। आपका उपदेश सर्वसाधारणकी बोलचालकी भाषामें होता था और उसमें सरल शब्दोंमें पीड़ित जगतीकी विषम समस्याओंको सुलझाया जाता था। अतः उसका प्रभाव पड़ना अनिवार्य था। सभी वर्णों और जातियोंके लोगोंने उसका स्वागत किया। केवल भारतमें ही नहीं, वश्वके अन्य देशोंमें भी वह सन्देश पहुंचा और संसारके कोने-कोनेसे लोग बुद्ध भगवानकी शरणमें आने लगे।

४८३ ई० पू० के लगभग बुद्धने महानिर्वाण प्राप्त किया। फिर भी बौद्ध धर्म भारतमें फैलता रहा। कालान्तरमें वह भारतसे लुप्त हो गया। कारण, उसने जैन धर्मकी भांति हिन्दू धर्मसे मिलनेकी चेष्टा नहीं की। जैन धर्म आज भी जीवित है।

इस कालमें इन दोनों धर्मोंका खूब विकास हुआ। क्रमशः राजा लोग शक्तिशाली बनने लगे। वैदिक कालकी सरलता लुप्त-सी होने लगी। कूटनीतिका चक्र आरम्भ हुआ। समाजका संघटन जटिल हो चला।

बौद्धकालमें अवन्ति, कोशल, वत्स और मगध राज्य शक्तिशाली थे। बुद्धके बाद मगध साम्राज्य क्रमशः इतना शक्तिशाली हो उठा कि उसके सम्राट् सारे देशपर शासन करने लगे। ठीक इसी समय उत्तर-पश्चिम भारतपर ईरानियोंका आक्रमण आरम्भ हुआ। उन्होंने मुख्यतः सिंधु प्रदेशपर विजय प्राप्तकर भारतसे कर उगाहना भी आरम्भ कर दिया, पर यह अवस्था अधिक दिनतक नहीं चल सकी और बादमें सम्राट् चन्द्रगुप्तने चाणक्यकी सहायतासे सिकन्दरके विश्व-विजयके स्वप्नको सर्वथा विफलकर मौर्य साम्राज्यकी दृढ़ नींव जमा दी।

भारतमें वैदिक कालसे ही कृषि-प्रधान ग्रामोंका प्राधान्य रहा है। बौद्ध कालमें भी यही स्थिति रही[1]। इस समयके ग्रामोंमें प्राचीन कालके ग्रामोंसे कोई विशेष अन्तर नहीं था। खेत ग्रामके निकट ही होते थे। उनमें खेतोंके मालिक या तो अकेले अथवा सेवकोंकी सहायतासे खेती करते थे।

ग्राम

इस कालमें भूमि-परिवर्तन होता तो था पर लोग इसका विरोध करते थे[2]। ग्रामवासियोंके बीच ही यदि यह परिवर्तन होता था तो उतना नहीं, बाहरवालोंके लेनेपर विशेष विरोध होता था। रीस डेविड्सके अनुसार खेत अधबटाईके समझौतेपर उठाये जा सकते थे। खेत जोतनेवालोंको आधी उत्पत्ति मालिकको देनी पड़ती थी। भूमि अन्य लोगोंको उपहारमें दी जा सकती थी। वह बेची भी जा सकती थी[3]।

भूमि परिवर्तन

फसलका कुछ अंश लगानके रूपमें राजाको देना पड़ता था, पर यह अंश कितना होता था इस विषयमें वशिष्ठ तथा गौतमके धर्मसूत्रों और पालिग्रन्थोंमें कुछ मतभेद है। खलिहानसे गल्ला पहले सरकारी गोदामपर जाता था जहां दोणमापक नामक सरकारी कर्मचारी पहले अपना अंश निकाल लेता था तब किसान अपने घर गल्ला ले जाते थे। लगान नकद रूपमें नहीं, गल्लेके ही रूपमें लिया जाता था।

लगान व्यवस्था

बौद्धकालीन ग्रन्थोंसे पता चलता है कि राजा लोग प्रजाकी

१—मगनलाल ए० बुचः इकोनामिक लाइफ इन ऐंश्येंट इंडिया, १६२४, खण्ड, १ पृष्ठ २१—२६। २—शतपथब्राह्मण, १३।७।१५।
३—जर्नल आव दि रायल एशियाटिक सो०, १६०१, पृ० ८६६।

सहायताके लिए अन्नका संग्रह रखते थे[१]। यह पद्धति आगे भी चलती रही। बीज और भोजनके लिए गरीब किसानोंको सरकारी सहायता मिला करती थी[२]। राजाओं द्वारा भूमिदानके अनेक विवरण मिलते हैं।

सरकारी सहायता

वैदिक कालकी ही भांति इस कालमें भी चरागाह सबकी संयुक्त सम्पत्ति थे। उनपर सब ग्रामवासियोंका समान अधिकार रहता था। सारे गांवके पशु वहीं चरते थे। एक अथवा अधिक चरवाहे मिलकर सब चौपाये चराते थे।

चरागाह

किसान अपने हाथसे ही खेती करता था। खेत्तपत्ति, वत्थुपति नामसे उसका वर्णन मिलता है। धर्मसूत्रोंमें निर्धन ब्राह्मणोंको खेत जोतने और पशु पालनेकी अनुमति दी गयी है। जातक ग्रन्थोंमें ब्राह्मणोंके खेती करनेके उदाहरण मिलते हैं[३]। सुत्तनिपातमें दक्षिण मगधके एक ब्राह्मणका वर्णन आता है जिसके पास असंख्य गायोंके अतिरिक्त ५०० हल और हजारों बैल थे। धनिय सुत्तमें एक ब्राह्मण अपनी सम्पत्तिका वर्णन करते हुए कहता है कि मेरे पास इतनी दुधार गाएं हैं, खेतोंमें इतनी पकी फसल खड़ी है। उसे इस बातका गर्व है कि वह किसीका गुलाम नहीं। आत्मवेतन भृत है। अपने पसीनेकी कमाईपर गुजर करता है। जातकोंसे स्पष्ट है कि ब्राह्मणोंके पास भारी जागीरें तो रहती ही थीं, वे स्वयं खेती भी करते थे, यद्यपि ऐसा माना जाता था कि इससे उनके आध्यात्मिक विकासमें बाधा पड़ती है[४]। बादमें राजा और पूंजीपति किसानोंको अपने यहां नौकर रखकर उनसे खेती कराने लगे। यह बात सामाजिक अवनतिका चिह्न मानी जाने लगी[५]।

स्वावलम्बन

१—कुरुधम्म जातक, २७६। २—इंडियन ऐंटीक्वेरी, १८९६,२६१।

३—सोमदत्त जातक, २११। उरग जातक, ३५४।

४—जर्नल आव रायल एशियाटिक सोसायटी, १९०१।

५—बनर्जी : इकोनामिक लाइफ ऐंड प्रोग्रेस इन ऐं० इं० पृष्ठ २३५—२३६।

वैदिक कालकी ही फसलें इस कालमें भी होती रहीं। बौद्ध साहित्य, हिन्दू धर्म-ग्रन्थ और पाणिनि आदिके सूत्रोंमें हमें धान्य,

फसलें

व्रीहि, गोधुं, मुद्ग, माश, यव, मसूर, कुलत्थ आदि अन्नोंके नाम मिलते हैं। इससे स्पष्ट है कि इस कालमें चावल, गेहूं, जौ, मूंग, मसूर आदि की खेती खूब होती थी। चावल अधिक होता था। गन्ना, साग और फलोंकी उत्पत्तिका भी वर्णन मिलता है। मिर्च मसाले भी होते थे। काली मिर्च तो विदेशोंतक प्रसिद्धि पा चुकी थी।

इस कालमें कपास और सनकी पैदावार खूब होने लगी थी। सनका नाम तो पाणिनिके सूत्रोंमें भी आता है। आश्वलायन श्रौतसूत्र, आरम्भिक बौद्ध साहित्य और धर्मसूत्रोंमें सूती वस्त्रोंका बार-बार उल्लेख मिलता है। इससे स्पष्ट है कि बौद्धकालमें कपासकी खेती जमकर होने लगी थी।[1] हेरोडोटसने ईसापूर्व पाँचवीं शताब्दीमें अपने इतिहासमें लिखा है कि ईरानी सेनामें काम करनेवाले भारतीय सैनिक सफेद सूती वस्त्र पहनते हैं। कपासकी चर्चा करते हुए उसने लिखा है कि 'यह ऊन पेड़ोंपर उगती है और भेड़की ऊनसे खूबसूरत होती है।' हिब्रूका कपास और लेटिनका कर्बसस संस्कृत कर्पाससे ही उद्भूत है। स्पष्ट है कि इन देशोंको भारतने ही कपासका प्रयोग करना सिखाया।

कपासके अतिरिक्त इस कालके ग्रन्थोंमें हमें रेशमका भी वर्णन मिलता है। मज्झिमसीलमें रेशमके वस्त्रोंका वर्णन आता है। पाणिनिके सूत्रोंमें कौपेय शब्द रेशमी वस्त्रोंके लिए ही आया है।[2] धर्म-सूत्रोंमें भी रेशमी वस्त्रोंका पुनः पुनः उल्लेख मिलता है।[3] इन सब प्रमाणोंसे स्पष्ट है कि इस कालमें रेशमका उत्पादन बड़े

१—बनर्जी : वही, पृष्ठ २३७–२३८। २—पाणिनि सूत्र ४।३।४२।
३—वशिष्ठ धर्मसूत्र ११।६६।

पैमानेपर आरम्भ हो गया था। रेशम भारतकी ही मूल उत्पत्ति है, अथवा चीन से भारत आयी है, यह बड़ा विवादास्पद प्रश्न है। कौटिल्यने पूर्वी भारतमें रेशम उत्पन्न होनेकी चर्चा करते हुए चीनी रेशमका भी उल्लेख किया है। इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि चीनसे रेशमका आयात होता था अवश्य, पर भारतमें भी आरंभसे ही रेशमकी उत्पत्ति होती थी। आज भी बंगाल और आसाममें उसकी कितनी ही श्रेणियां पायी जाती हैं।[1]

सिंचाई

खेतीकी सिंचाईके लिए किसान दैवपर अधिक भरोसा करते थे। यों तो गाँव प्रायः ऐसे ही स्थानोंपर होते थे जहाँ जलका सुपास रहता था, फिर भी वृष्टिका मुख तो जोहना ही पड़ता था। कहीं-कहीं इस बातके भी प्रमाण मिलते हैं कि किसान मिलकर कुएँ खोद लेते थे अथवा नहरें निकाल लेते थे।

फिर भी वृष्टिके अभावमें कभी-कभी दुर्भिक्ष पड़ जाना असम्भव न था। पाणिनिके सूत्रोंमें दुर्भिक्ष शब्द इसका सूचक है। बौद्ध साहित्यमें भी जहाँ-तहाँ खाद्य-संकटका उल्लेख है। तब भी इतना तो निश्चित है कि ऐसे संकटोंपर सरकारी सहायता द्वारा शीघ्र ही विजय प्राप्तकर ली जाती थी।

१—बनर्जी : वही, पृष्ठ २३८—२३९।

उद्योग-व्यवसाय

बौद्ध कालमें उद्योग-व्यवसाय क्रमशः उन्नति कर रहे थे। अभी तक उनका क्षेत्र मुख्यतः ग्राम ही था। पाणिनिके सूत्रोंमें ग्रामाः शिल्पिनि, तक्षण आदिसे यही प्रकट होता है।

आगे चलकर इस अवस्थामें कुछ परिवर्तन होने लगा। ग्रामीण शिल्पी भी अपना संघ स्थापित करने और भली प्रकार अपने पंख फड़फड़ानेकी बात सोचने लगे। वे ग्रामोंसे निकलकर नगरोंकी ओर अग्रसर होने लगे।

कताई बुनाई

बौद्ध कालमें कताई बुनाईका उद्योग खूब पनपा। सूती और रेशमी वस्त्रके उद्योगके अतिरिक्त ऊनी कम्बल आदिको बुनाईके कार्यने अच्छी प्रगति की। आरम्भिक बौद्ध साहित्यमें पातिमोक्ख आदिमें हमें ऐसे विवरण मिलते हैं कि भिक्षुओंके चीवर बुननेके लिए जुलाहे नौकर रखे जाते थे।[1] ऊनी वस्त्र बहुत सस्ते मिलते थे। भिक्खुनी पातिमोक्खमें लिखा है कि भिक्षुणियोंके पहननेके लिए जो वस्त्र मिलते थे उनमें बड़े वस्त्र चार कर्पसमें आते थे और छोटे ढाई कर्पसमें। काप्पासिक, सूती और कौपेयम् (रेशमी) दोनों प्रकारके वस्त्रोंका उल्लेख मिलता है।

मज्झिमसीलमें हमें भाँति-भाँतिके वस्त्रों और कम्बलोंका उल्लेख मिलता है। बकरीके बालोंके गोनको, चित्तिक, पटिक, श्वेत कम्बल, पटालिका, तूलिका, रजाई, उड्डलोमि, एकान्त लोमि, कोपेयम्, कुट्टकम्, गलीचे आदिके वर्णनसे स्पष्ट है कि बौद्धकालमें सूती, ऊनी, रेशमी सभी प्रकारके वस्त्र बनते थे।

थेरीगाथामें आता है कि इन दिनों काशीका उत्तम रेशम और मसलिन बहुत प्रसिद्ध थी। काशीके निकट बड़े-बड़े खेतोंमें कपासकी

---

१ — पनर्जी : वही, पृष्ठ २४२।

खेती होती थी।[१] काशीके सूती वस्त्र अपनी उत्तमताके लिए प्रख्यात थे।[२] बढ़िया सूती वस्त्र बिकते भी थे अच्छे दामोंपर। विनय-पिटकके अनुसार शिवि प्रदेशका सूती वस्त्र बड़ा उत्तम होता था। हाथी-घोड़ोंको ढकनेके लिए झूलें भी बनने लगी थीं।

लुहारगीरी

प्राचीन बौद्ध ग्रन्थोंमें कम्मारका वर्णन मिलता है। रीस डेविड्सका कहना है कि कम्मार लोहेकी अनेक वस्तुएँ प्रस्तुत करता था। जैसे : शस्त्रास्त्र, हलके फल, कुल्हाड़ी, आरी, छुरी आदि। इसके अतिरिक्त वह घर-गृहस्थीके कामकी तमाम वस्तुएं तैयार करता था।[३]

धातुओंका काम

बौद्धकालमें सुनारों और जौहरियोंका भी उल्लेख मिलता है। ये लोग सोने-चाँदीके वर्तन तैयार करते थे। पाणिनिके सूत्रोंमें कांसका उल्लेख होनेसे स्पष्ट है कि कांसेका आविष्कार हो चुका था। उसके वर्तन बनने लगे थे। जौहरी उत्तम जवाहरातके गहने तैयार करते थे और सम्पन्न परिवारोंकी महिलाओंसे मुंहमांगे दाम वसूल करते थे। सूची जातकमें एक शिल्पी द्वारा ५ सुइयाँ तैयार करनेका वर्णन मिलता है।[४] इसी प्रकार कुश जातकमें स्वर्ण-मूर्तियाँ तैयार करनेवाले स्वर्णकारका वर्णन मिलता है।

बढ़ईगीरी

बौद्धकालमें बढ़ईगीरीने भी पर्याप्त उन्नति की थी। ये लोग घरगृहस्थीके कामकी वस्तुओंके अतिरिक्त बैलगाड़ी, रथ, नावें और जहाज भी प्रस्तुत करते थे। अंगुत्तरनिकाय और समुद्दवाणिज जातकमें लकड़ीके जहाजोंका वर्णन मिलता है।[५]

१—तुन्दिल जातक, ३८७। २—मह्यक जातक, ३९०।
३—जर्नल आव रायल एशियाटिक सोसाइटी, १९०१, पृष्ठ ८६४।
४—सूची जातक, ३८७। ५—समुद्द वाणिज जातक, ४६६।

बौद्धकालमें लकड़ीके मकान बनानेका भी विवरण मिलता है। इसके लिए उत्तम शिल्पियोंको बुलाया जाता था। काशीके निकट जुलाहोंका एक संघ रहता था जो पासके वनसे लकड़ी लाकर उनसे घर-गृहस्थीकी चीजें, खम्भे आदि तैयार करता था।[1] इससे स्पष्ट है कि इस समय बढ़ईगीरी उन्नतिपर थी।

मिट्टीके नाना प्रकारके बर्तनों और कला-कृतियोंका बौद्ध ग्रन्थोंमें स्थान-स्थानपर उल्लेख मिलता है। इससे सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि उस समय कुम्भकारी भी उन्नतिपर थी।

कुम्भकारी

जातकोंमें इन शिल्पोंके अतिरिक्त संगतराश, राज, पापाण-कुट्टक, मोची, हाथीदांतका काम करनेवाले, हलवाई, रंगरेज आदि शिल्पियोंका भी उल्लेख है। इससे यह पता चलता है कि ये उद्योग भी उन्नतिपर थे।

बौद्धकालमें शिल्प और उद्योगोंके विकासके साथ-साथ अनेक व्यवसाय भी बढ़ गये थे। वैद्य, ज्योतिषी, पुरोहित, लेखक, गणक, अध्यापक, आदि बुद्धिजीवियोंकी बड़ी कद्र थी। इनके अतिरिक्त एक ऐसा वर्ग खूब पनपा जिसका एकमात्र लक्ष्य राजा रईसों और पूंजीपतियोंका मनोविनोद करना था। नट, विदूषक, गणिका आदिका जातक ग्रन्थों में विशद वर्णन मिलता है। अम्बपाली और शालवती जैसी गणिकाओंको समाजमें बड़ी प्रतिष्ठा थी।

अन्य व्यवसाय

नाई, धोबी, रसोइया, महावत, माली, मल्लाह, शिकारी, गाड़ीवान, कसाई आदि विभिन्न पेशोंके लोग समाजके अनिवार्य अंग बन गये थे। निषाद और चांडाल वर्गके लोग हेय दृष्टिसे देखे जाते थे। जातकोंमें ऐसी अनेक कथाएँ मिलती हैं जहांपर लोग अपने पैतृक व्यवसायको तिलांजलि प्रदानकर अन्य व्यवसाय करने लगे थे।

शिल्पी अब यह अनुभव करने लगे थे कि 'संघे शक्तिः कलौयुगे' एकत्र रहकर मिलकर काम करनेकी शक्ति वे समझने लगे थे। कहीं कहीं एक ही व्यवसायके सभी लोग एकत्र रहने लगे थे। लोहारों और बढ़इयोंके पूरे पूरे ग्रामोंका विवरण मिलता है। इस समयके साहित्यमें संघोंका विशेष विवरण मिलता है। पाणिनिके सूत्रोंमें इसके लिए ४ शब्द मिलते हैं : गण, पूग, व्रत और संघ। आरम्भिक बौद्धग्रन्थोंमें संघ, पूग, सेना, और गण शब्द मिलते हैं। गणका प्रयोग प्रमुखतः धार्मिक संघटनके सम्बन्धमें मिलता है। पूग भी धार्मिक संघ था। सेनी या श्रेणी व्यापारिक संघ था। बौद्ध और जैन ग्रन्थोंमें संघ धार्मिक संघटनके अर्थमें आता है। पूग और श्रेणीका जो वर्णन मिलता है उससे ऐसा प्रतीत होता है कि इन संस्थाओंका उद्देश्य व्यापारिक उन्नति था।

संघोंका जन्म

ये संस्थाएँ अपना संघटनकर अपनेको शक्तिशाली बनाती थीं और राजा अथवा अन्य शक्तिशाली व्यक्तियोंसे अपनी रक्षा करती थीं। इनका संघटन इतना उत्तम होता था कि किसीका साहस न पड़ता था कि कोई इनपर अत्याचार कर सके।[२] जुलाहों, धोबियों, स्वर्णकारों, चिकित्सकों, मजदूरों, शिल्पियों, कारीगरों आदिने अपने अपने संघ बना रखे थे। चोरोंतकके संघटनका विवरण मिलता है। संघके प्रमुख जेट्ठक कहे जाते थे। जेट्ठकोंकी राजसभामें बड़ी कद्र थी। वे वहाँ अपने संघका प्रतिनिधित्व करते थे। दरबारमें उन्हें उच्च पद भी दिया जाता था।[३] संघ अपनी बैठकमें आपसी झगड़े निपटाते थे।

१, २—बनर्जी : वही, पृष्ठ २४४–२४६, २६५–२७०, २४६–२४६।
३—उरग जातक, १५४।

बौद्ध कालमें उद्योग-व्यापार निरन्तर उन्नति कर रहे थे। नगरोंका उत्तरोत्तर विकास होता चल रहा था। ईसापूर्व छठी और सातवीं शताब्दीमें जिन नगरोंकी विशेष ख्याति थी, वे थे—अयोध्या, वाराणसी, चम्पा, काम्पिल्य, कोशाम्बी, मदुरा, मिथिला, राजगृह, रोरुक, साकेत, श्रावस्ती, उज्जयिनी औरवैशाली। आरम्भिक पालि साहित्यमें अंग, मगध, काशी, कोशल, वृज्जि, मल्ल, चेदि, वंश, कुरु, पांचाल, मत्स्य, सूरसेन, अश्मक, अवन्ति, गांधार और खम्भोज—इन १६ महाजनपदोंका विशेष उल्लेख मिलता है।

सोलह महाजनपद

इस कालमें देशी और विदेशी व्यापारकी वृद्धिका वर्णन मिलता है। पाणिनिके सूत्रोंमें द्वीपोंके साथ व्यापारका उल्लेख है[1]। देशके-भीतर व्यापार करनेवाले व्यापारियोंकी भी चर्चा है[2]। व्यापारी स्थान स्थानपर पड़ाव डालते हुए यात्रा किया करते थे। रीस डेविड्सने इनके पड़ावोंकी विस्तारसे चर्चा की है[3]। उत्तरसे दक्षिण-पश्चिम सावत्थीसे पतित्थानतक एक राजमार्ग जाता था। इसके मुख्य पड़ाव थे—माहिस्सति, उज्जयिनी, गोनद्ध, कोशाम्बी और साकेत। उत्तरसे दक्षिण-पूर्व सावत्थीसे राजगृहतकका मार्ग बड़ा ऊबड़खाबड़ और पथरीला था। इसपरके मुख्य पड़ाव थे—सेतव्य, कपिलवस्तु, कुशीनर, पावा, हत्तिगाम, भंडगाम, वैशाली, पाटलिपुत्र और नालन्दा। पूर्वसे पश्चिम जानेके लिए गंगा यमुनाका जलमार्ग मुख्यतः काममें आता था। नदीपर नावसे और भूमिपर बैलगाड़ीसे मालका आवागमन होता था। विदेहसे गांधार तक, मगधसे सौवीरतक, भारुकच्छसे बर्मातक, काशीसे जल-मार्ग द्वारा बर्मातक और चम्पासे बर्मातक व्यापारी आया जाया

1—पाणिनि सूत्र ४।३।१०। 2—पाणिनि सूत्र ६।१।१२।
3—रीस डेविड्स : बुधिस्ट इंडिया।

करते थे। राजपूतानाकी मरुभूमि पार करनेके भी वर्णन मिलते हैं[१]।

बौद्ध और जैन ग्रन्थोंमें समुद्रवाणिजकी चर्चा मिलती है। निकायोंमें समुद्र द्वारा दूर देशोंसे व्यापार करनेका वर्णन मिलता है। कैनेडीने

विदेशी व्यापार

यह प्रमाणित किया है कि ईसापूर्व सातवीं शताब्दीमें भारतका पश्चिमी एशियासे व्यापारिक सम्बन्ध था। धर्मसूत्रोंमें भी ऐसा वर्णन मिलता है कि भारतीय आर्य समुद्रयात्रा किया करते थे। लोसक, बलाहस, समुद्-वाणिज आदि जातकोंमें इसके अनेक प्रमाण मिलते हैं[२]।

जिन जहाजों द्वारा समुद्रयात्रा की जाती थी वे आकार-प्रकारमें खूब बड़े होते थे। एक यात्राका वर्णन करते हुए लिखा है कि एक जहाजमें एक हजार बढ़ई बैठकर गये थे। सम्भव है इसमें कुछ अतिशयोक्ति हो, पर यह निर्विवाद है कि उस समय बड़े-बड़े जहाजों द्वारा यात्रा की जाती थी। गम्भीर पत्तन, भारुकच्छ, रोरुक, सुप्पारक, कवीर-पत्तन-आदि उस समयके प्रसिद्ध बन्दरगाह थे।

उस समयकी समुद्रयात्रा परम संकटापन्न रहती थी। कम्पासके अभावमें कौए छोड़कर किनारेका पता लगाया जाता था[३]। समुद्रमें चट्टानोंसे जहाजोंका टकराकर चूर-चूर हो जाना साधारण बात थी। जातकोंसे इस बातका विशेष पता नहीं चलता कि जहाजों द्वारा कौन-कौन-सी वस्तुओंका विदेशोंसे व्यापार होता था, पर सम्भवतः उस समय भारतीय कपास, मोर, हाथी-दांतकी बनी चीजें या अन्य ऐसे ही पदार्थ विदेशोंको जाया करते थे[४]।

१—बनर्जी : वही, पृष्ठ २१८—२२७।

२—जर्नल आव रायल एशियाटिक सोसायटी, १८६८।

३ बवेरु जातक ३३६, धम्मध्वज ३८४।

४—बनर्जी: वही, पृष्ठ २५६—२५७।

उस समय देशके भीतर व्यापार करनेवाले व्यापारी भी कम साहसी न थे। इनमें कुछ राजमार्गसे जाते थे, कुछ जल मार्गसे। कुछ लोग कांसा-पीतलके वर्तन लादते थे, कुछ प्रसिद्ध कारीगरोंके बने अस्त्र लादते थे। कुछ काशीके प्रसिद्ध रेशमी और मसलिनके वस्त्र लादते थे, कुछ हाथीदांतकी बनी वस्तुएं लादते थे। कुछ सोना-चांदीके बहुमूल्य जेवर लादते थे। कुछ व्यापारी नमक-मिर्च-मसाला लादते थे। सिन्धु तटवर्ती व्यापारी देशके अन्य भागोंमें घोड़े ले जाया करते थे।

देशी व्यापार

संकटमय मार्ग होनेके कारण व्यापारी बड़ा-बड़ा काफिला बांधकर चला करते थे। इनके साथ पांच-पांच सौ, एक-एक हजार बैलगाड़ियां मालसे लदी हुई रहती थीं। यात्रा भी ये लोग खूब लम्बी करते थे। श्रावस्तीसे राजगृह, काशीसे उज्जयिनी, विदेहसे गांधारतक अर्थात हजार बारह सौ मीलतक जानेवाले व्यापारियोंका वर्णन मिलता है। ये लोग अपने काफिलेका एक सरदार चुन लेते थे जो सत्थवाह कहा जाता था। मार्गमें उन्हें स्थान-स्थानपर डाकुओंका सामना करना पड़ता था। ये डाकू भी अपना गोल बनाकर रहते थे। कहीं-कहींपर तो उनके गांवके गांव ही बसते थे[1]। काफिलेकी रक्षाके लिए व्यापारी वैतनिक रक्षक रखते थे। कभी-कभी ब्राह्मण भी काफिला-रक्षकका काम करते थे[2]। मरुभूमिमें ये लोग ऐसे पथदर्शक रखते थे जो तारोंको देखकर मार्गका निश्चय किया करते थे।

जलमार्गसे भी खूब व्यापार होता था। गंगामें दूर-दूरतक नावें चलती थीं। व्यापारी बड़ी बड़ी नावोंपर माल लाया, ले जाया करते थे। गंगा तटके बड़े-बड़े नगरोंसे समुद्रतक नौकाओंका यातायात होता था।

व्यापारियोंके पड़ावके स्थान बड़े-बड़े बाज़ार बन गये थे। यहां

१—सत्तिगुम्ब जातक। २—दशब्राह्मण जातक, ४९५।

प्रचुर मालका आदानप्रदान होता। यहींसे माल देशके कोने-कोनेमें जाता।

बाजार और दुकानें

छोटे व्यापारी गावोंमें रहते। वे शहर आकर कपड़ा आदि ले जाते। कुछ व्यापारी मालकी फेरी भी करते। इसके लिए बैलगाड़ियों और गदहोंका प्रयोग होता[1]। दुकानें अपण अथवा पण्यागार कहलातीं। उनपर गल्ला, सूती वस्त्र, बिसातवानेकी चीजें, फल तथा अन्य वस्तुएं मिला करती थीं। होटलों, कसाईखानों, शरावखानोंमें पका हुआ चावल, मांस, मदिरा आदि मिला करती थी। दुकानें खूब सजी-सजायी और आकर्षक रहतीं। शाकसब्जीवाले, मांस मछलीवाले और छोटीमोटी वस्तुओंवाले पहले नगरके द्वारपर आकर ठहरते, फिर नगरमें घर-घर घूमकर फेरी करते थे। वस्तुओंका मूल्य मांगकी कमी-बेशीके आधारपर घटता बढ़ता। अघ्घकारक नामक अफसर राजमहलकी आवश्यकताकी वस्तुएं खरीदता। वही अधिकारी मालपर चुंगी निश्चित करता। वाहरसे आनेवाले मालपर १० प्रतिशत चुंगी लगती, स्थानीय वस्तुओंपर उससे कुछ कम लगती। इसे वसूल करनेके लिए कितने ही कर्मचारी रहते। शरावपर भी चुंगी लगती थी और गांवका मुखिया उसे एकत्र करता था।

यों व्यापार प्रायः व्यक्तिगत ही था, पर कभी-कभी ऐसा भी होता था कि कितने ही व्यापारी एक साथ मिलकर माल खरीदते, वेचते और

संयुक्त व्यापार

उसका लाभ आपसमें वांट लेते। आगे चलकर यही चीज विभिन्न संघटनोंके रूपमें पुष्पित और पल्लवित हुई[2]। स्पष्ट है कि संकटोंके रहते हुए भी व्यापार उन्नतिपर था।

१—जर्नल आव दि रायल एशियाटिक सोसायटी, १९०१, पृष्ठ ८७३।

२ – बनर्जी: वही, पृष्ठ २५८—२६३।

बौद्धकालमें सोने-चांदी और तांबेके बने सिक्कोंका प्रचुर प्रचलन था। निष्क और सतनाम आदि प्राचीन सिक्कोंके अतिरिक्त कितने ही

सिक्के

नये सिक्कोंका विवरण मिलता है। पाणिनिके सूत्रोंमें कंस, सतमान, कार्षपण, पण, पाद, निष्क विष्ट, हिरण्य आदि अनेक सिक्कोंका नाम आता है। बौद्ध ग्रन्थोंमें निक्ख, सुवन्न, हिरण्ण, कहप्पण, कंस, पाद, मासक, काकनिका आदिका उल्लेख मिलता है[1]।

सुवर्ण और हिरण्ण

रीस डेविड्सने खोजकी है कि सुवर्ण और हिरण्ण सिक्के सोनेके थे। पालि साहित्यके अनुसार १ निक्खका वजन ५ सुवर्णके बराबर था। १ सुवर्णमें १६ मासक होते थे। १ मासक ५ रत्तीके बराबर होता था।

कर्षापण अथवा कहप्पण तांबेका सिक्का जान पड़ता है। पालि

कर्षापण

साहित्यसे ऐसा ही पता चलता है। पर कुछ प्रसंग ऐसे भी आते हैं जहां इसमें सन्देह जान पड़ता है और ऐसा लगता है कि यह भी चांदी या सोनेका सिक्का था[2]।

रीस डेविड्सके मतानुसार बौद्धकालीन सिक्कोंका मूल्य और वजन इस प्रकार था—

१ सुवर्ण = सोनेका १६ माश = १४६ ग्रेन सोना

१ धरण = चांदीका १६ माश = १४६ ग्रेन चांदी

१ कर्षापण = तांबेका १६ माश = १४६ ग्रेन तांबा

श्री एन० सी० बनर्जीका कहना है कि धरणको १४६ ग्रेन चांदीका बताना ठीक नहीं। कारण, २ कृष्ण (२ रत्ती) चांदीके १ माशके बराबर होता है। अतः इसका वजन ३२ कृष्णल था[3]।

१—जर्नल आव दि रायल एशियाटिक सोसायटी, १९०१।

२—बनर्जी : वही, पृष्ठ २७५।

३—बनर्जी : वही, पृष्ठ २७६, पाद-टिप्पणी।

रीस डेविड्सके अनुसार १ सुवर्णका मूल्य १ पौंड ५ शिलिंग होता है। १ धरणका मूल्य ६ पेंस और १ कर्षापणका १ पेंस। डाक्टर भंडारकरने अत्यन्त विश्वस्त आधारोंपर यह निष्कर्ष निकाला है कि उस समय सोने और चांदीके मूल्यका अनुपात १४ और १ का था।

कर्षापण विभिन्न आकार-प्रकारके होते थे। गोल, चौखूंटे और आयताकार। उनपर कई प्रकारके चिह्न अंकित रहते थे। तांबेके सिक्के ही विनिमयके प्रमुख साधन थे। काकणिका जैसे अत्यन्त कम मूल्यके सिक्केसे भी पर्याप्त वस्तु मिल जाती थी। सबसे छोटा सिक्का कौड़ी, सिप्पिका होता था।

विभिन्न सिक्कोंके होते हुए भी इस समय वस्तुओंकी अदलाबदली, पलटौनका विशेष प्रचार था। ब्राह्मण, क्षत्रिय जैसे कुलीन वंशके लोगों के लिए अनाज आदिका व्यापार करनेका निषेध था पर अदलाबदली करनेके लिए वे स्वतंत्र थे। इस कालमें भी गौ विनिमयके माध्यमका काम करती थीं[1]।

१—बनर्जी : वही, पृष्ठ २८०–२८१।

बौद्धकालमें समाज दृढ़ भित्तिपर प्रतिष्ठित हो चुका था। जाति और वर्णोंकी रुढ़ियां इतनी पक्की पड़ गयीं थीं कि भगवान बुद्ध भी उनमें कोई विशेष अन्तर न ला सके। उनका भिक्षु संघटन भी इस बलासे मुक्त न रह सका। क्षत्रिय अपनी जातिकी शुद्धता बनाये रखनेके लिए अपने लड़कोंका विवाह जातिमें ही करते थे, नीची जातिवालोंसे विवाह-सम्बन्ध करना बुरा समझा जाता था। चांडाल आदि जातियां तो इतनी हेय मानी जाती थीं कि उनके लिए नगरसे बाहर रहनेका आदेश था।

पुष्ट संघटन

इस कालमें ग्राम तो थे ही, नगरोंकी संख्या भी बढ़ती जा रही थी। गांवका सारा सरकारी काम मुखियाकी देखरेखमें होता था। धानके खेतोंके बीच बसे गांवके सारे मुकदमोंका फैसला गांवके बाहर बगीचेमें खुली सभामें होता था। सार्वजनिक तालाब, पार्क, हौज, सड़क आदिका निर्माण सब ग्रामवासी मिलकर करते। इनकी मरम्मत और रक्षाका प्रबन्ध भी वे ही करते। ग्रामोंमें मुख्यतः कृषि होती थी और नगरोंमें उद्योग और व्यापार। कुछ उद्योग ग्रामोंमें भी पनपते थे।

ग्राम और नगर

ग्रामवासियोंका जीवन सीधासादा था। नगरोंमें अधिक समृद्धि होनेसे कुछ तूमतोभाड़ आ गया था। मनोरंजन करने वालोंकी संख्या बढ़ जानेसे सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि समाज सुखी और प्रसन्न था। आर्य सभ्यता निरन्तर विकसित हो रही थी। उत्तम श्रेणीके वस्त्र और आभूषण, आमोद-प्रमोदके नाना प्रकारके साधन इस बातका प्रमाण हैं कि समाजका रहनसहनका दर्जा ऊंचा हो रहा था। लोग अच्छा खाते, अच्छा पहनते और जीवनके अन्य आनन्द लेते थे। वे अतिथियोंका अच्छा स्वागत-सत्कार करते थे और दुःखी-दीनोंकी भरपूर सहायता करते थे।

रहनसहन

काशी, कोशल, विदेह, मगध आदि पूर्वी प्रदेशोंमें तो कम, पश्चिमी प्रदेशोंमें ब्राह्मणोंका खूब ही आदर था। उनके पांडित्य और आध्यात्मिक प्रयासके फलस्वरूप समाजमें उनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। कुरु, मत्स्य, पांचाल, शूरसेन आदि महाजनपदोंमें वे परम आदरकी दृष्टिसे देखे जाते थे। आपस्तम्वमें कहा है कि राजाओंका यह कर्तव्य है कि वेदपाठी और विद्वान अतिथियोंके ठहरनेके लिए उत्तम अतिथिशाला वनवायें और इस वातका पूरा ध्यान रखें कि उनके राज्यमें कोई ब्राह्मण भूखा न रहे[1]। पूर्वी प्रदेशोंके क्षत्रिय ब्राह्मणोंको श्रेष्ठता नहीं मानते थे। यज्ञ और वेदाध्ययनमें उनका विश्वास नहीं था। भगवान महावीर और बुद्ध दोनों ही क्षत्रिय जातिके रत्न थे। इनके त्याग और उपदेशोंका इन प्रदेशोंके निवासियोंपर अधिक प्रभाव पड़ा था।

ब्राह्मणका मान

ईसा-पूर्व सातवीं शताव्दीके अन्तिम भागमें भारतका जितना प्रदेश आर्योंके अधिकारमें था वह मध्य देश, उत्तरपथ और दक्षिणपथ इन तीन भागोंमें विभाजित था। सारे देशमें १६ महाजनपद थे जिनमें प्रमुख ४ ये थे—मगध (दक्षिण विहार), कोशल (अवध), वत्स (कोशाम्वी या प्रयाग) और अवन्ति (मालवा)। शाक्य, भग्ग, मल्ल, मोरिया, विदेह, लिच्छवि आदिपर कई राजा मिलकर शासन करते थे। यहां प्रजातन्त्र पद्धतिसे शासन होता था। शासनके लिए एक सार्वजनिक सभा रहती जिसमें अनुभवी वृद्ध और सयाने युवक सभी शामिल रहते। संस्थागारमें सभा जुड़ती। सब सदस्य निश्चित क्रमानुसार वैठते और सर्वसम्मतिसे निर्णय होता। मतभेदके प्रश्नोंका निपटारा करनेके लिए पंचोंकी एक विशेष समिति नियुक्त की जाती। सभाका अध्यक्ष राजाकी उपाधि धारण करता। मतदानके समय शलाकाओंका प्रयोग होता। गांवोंका शासन मुखिया करते।

शासन पद्धति

१—आपस्तम्ब सूत्र २।१०।२५।४—१२।

उद्योग-व्यवसाय, वाणिज्य-व्यापारके निरन्तर विकासके साथ पूंजी-वादका प्रसार आरम्भ हो गया था। श्रेणी अथवा सेट्ठी भारी पूंजीपति बनते जा रहे थे। उनके धनका पार नहीं था। रुपया उधार देना, व्याज लेना, उद्योग-व्यापारमें धन लगाना उनका पेशा था[1]। व्याजकी दर २४ से ६० प्रतिशततक निश्चित करनेका प्रयास किया गया था, फिर भी मनमानी दर चलती थी। पुत्र और उत्तराधिकारी ऋण चुकानेके लिए बाध्य थे। ऋण सम्बन्धी नियम बड़े कठोर थे। कभी-कभी तो लोग अपने बाल-बच्चों, स्त्रीपुत्रों को भी इन महाजनोंके यहां गिरवी रख देते थे। जिनके पास धन होता था उनमेंसे अधिकतर उसे जमीनमें गाड़ रखना पसन्द करते थे।[2] व्यापारियोंसे किये गये ठेकोंका बड़ी कड़ाईसे पालन होता था। जेतवनके ठेकेकी कहानी बौद्ध साहित्यमें प्रसिद्ध ही है।

पूँजीवादका विकास

पूंजीवादके विकासके साथ व्यापारियोंमें पाप-बुद्धि भी आ गयी थी। तराजूकी ठगी, बटखरेकी ठगी, नापकी ठगी, रिश्वत, वंचना, कृतघ्नता, कुटिलता, छेदन, वध, बंधन, डाका, लूट, खून आदि जो बुराइयां पूंजीवादकी स्वाभाविक उपज हैं उनका जन्म हो चुका था[3]।

भूमि अब व्यक्तिगत सम्पत्ति मानी जाती थी। पुत्र यदि चाहते थे तो उसका बंटवारा कर लेते थे। भूमिका स्वामी उसकी मनोनुकूल व्यवस्था कर सकता था। वैश्य तो कृषि कर्म करता ही था, विशेष स्थितिमें ब्राह्मण और क्षत्रियको भी उसकी अनुमति थी। धर्मसूत्रोंमें कृषिकी बड़ी महिमा गायी गयी है। इससे प्रकट है कि कृषि कार्य परम आदरणीय माना जाता था।

भूमिपर स्वत्व

१—बुच : इकोनामिक लाइफ इन ऐंश्यंट इंडिया, खण्ड १, पृष्ठ ८०—९५।

२—धनर्जी : इकोनामिक लाइफ एंड प्रोग्रेस इन ऐंश्यंट इंडिया, पृष्ठ २८७।

३—दीघनिकाय ३।७।

घर-गृहस्थीके कामके लिए दास रखनेका प्रचलन था। दास स्वामीके ही मकानमें रहते थे और घरका सारा काम किया करते थे। साधारणतः इनके प्रति अच्छा व्यवहार होता था पर कभी-कभी क्रूर स्वामी भी मिल जाया करते थे, जो दासोंके प्रति बड़ा दुर्व्यवहार करते थे।

दास

चुलसेट्ठि जातकमें सेठीकी पुत्रीका दाससे प्रेम होनेका वर्णन है। बेटी इस बातको जानती थी कि पिताको यदि इस बातका जरा भी पता चल गया तो दोमेंसे एककी भी खैर नहीं।

दासता किसी वर्ग-विशेषमें ही सीमित न थी। निम्न वर्गके लोग ही प्रायः दासवृत्ति करते, पर कभी-कभी ब्राह्मण, क्षत्रिय जैसे कुलीन वर्गके लोग भी दासकर्म करनेके लिए विवश होते थे।

जातकोंमें दासोंके क्रय-विक्रयके भी विवरण मिलते हैं। कहा गया है कि एक दास खरीदनेके लिए १०० कर्षापण पर्याप्त हैं[१]। पर मूल्यमें कुलीनता, अवस्था, रूप, सौंदर्य आदिके कारण कमीवेशी होती रहती थी। यद्यपि ऐसे दासोंकी संख्या कम न थी तथापि देशके आर्थिक जीवनमें उनका महत्त्व नगण्य ही था। कारण, स्वतन्त्र दासों और पैसा लेकर सेवा करनेवाले दासोंका ही सदा प्रावल्य रहा[२]।

वैदिककालमें नारीका अत्यधिक सम्मान होता था। वह पुरुषके समान ही मानी जाती थी। वह दासी नहीं रानी थी[३]; पर बौद्धकालमें उसकी स्थिति न विशेष अच्छी ही रही और न बुरी ही। माताकी सम्पत्तिपर पुत्रीका विशेष अधिकार रहता था, पर पिताकी सम्पत्तिमें उसे कम ही अंश मिलता था। फिर भी घरकी चहारदीवारीके भीतर तो अब भी गृहस्वामिनीकी ही तूती बोलती थी।

महिलाओंकी स्थिति

१—सत्तुभस्त जातक, ४०२।
२—बनर्जी; वही, पृष्ठ २६४-२६८।
३—बुच: इकोनामिक लाइफ इन ऐंश्येंट इंडिया, खंड २, पृष्ठ ४२—४५।

आर्योंके महाकाव्य रामायण और महाभारतका काल विद्वानोंने ७०० ईसापूर्व माना है। इन महाकाव्योंमें पांचाल, कोशाम्वी, कोशल, विदेह आदि बड़े राज्योंके अतिरिक्त प्रजातन्त्र राज्योंका भी वर्णन मिलता है। इनसे ज्ञात होता है कि राजा प्रजाका सेवक होता था। उसीकी इच्छाके अनुसार शासन करता था। राजकुमारोंको विभिन्न शस्त्रास्त्रों और कलाओंकी विधिवत् शिक्षा दी जाती थी। वे शासनारूढ़ होनेपर लोकमतका आदर करते हुए शासन करते थे।

महाकाव्य काल

वर्ण-व्यवस्था प्रचलित थी। विवाह स्वयंवरकी रीतिसे होते थे। महिलाओंको अच्छी शिक्षा दी जाती थी। उद्योग और व्यवसाय, व्यापार और वाणिज्य उन्नत अवस्थामें थे। सूत्रकर्म विशारदाः, खनक, कर्मान्तिक, वंशकार, मणिकार, सूपकार, दंतकार, सुवर्णकार, तन्तुवाय आदिके पुनः पुनः उल्लेखसे प्रकट है कि विभिन्न उद्योग-व्यवसाय उन्नतिपर थे। पूंजीवादका विकास हो रहा था। भिक्षावृत्ति बुरी समझी जाती थी। दरिद्रोंकी सेवा करना सबका पुनीत कर्तव्य माना जाता था। राजाको प्रजाकी उन्नति तथा सुख-सुविधाका पूरा ध्यान रहता था। कष्ट और आपत्तिमें वह मुक्तहस्तसे प्रजाकी सहायता करता था। कहा गया था कि 'जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी, सो नृप अवसि नरक अधिकारी।' प्रजासे लगान और चुंगी ली जाती थी अवश्य, पर उसकी अवस्था उन्नत होनेके कारण उसे वह लेशमात्र भी खलती न थी।

स्पष्ट है कि इस कालमें दरिद्रता और दासताका सामान्य अस्तित्व रहते हुए भी समाज सम्पन्न और सुखी था।

साम्राज्यवादी काल

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

"इतिहासके पृष्ठोंमें जिन सहस्रों नरेशोंके नाम आते हैं उनमें केवल अशोकका नाम एक नक्षत्रकी भांति देदीप्तमान है। अब भी वोल्गासे जापानतक उनके नामका आदर और सम्मान होता है। चीन और तिब्बतमें उनकी महत्ताका सिक्का जमा हुआ है। भारतमें बौद्ध धर्मका लोप हो जानेपर भी उनका नाम आदरके साथ लिया जाता है।"

—एच० जी० वेल्स

बौद्ध कालमें जो मगध राज्य उत्तरोत्तर शक्तिशाली होता जा रहा था वह बिम्बसार, शिशुनाग और नंदवंशकी समाप्तिके उपरान्त अत्यन्त शक्तिशाली मौर्य साम्राज्यके रूपमें परिवर्तित हो गया। सिकन्दर जिस समय विश्वविजयके अपने स्वप्नको चूर-चूर होते देखकर भारतसे विदा हो रहा था ठीक उसी समय मगधमें सिंहासनके लिए भीषण क्रान्ति हो रही थी। परम कूटनीतिज्ञ चाणक्य-की सहायतासे पराक्रमी चन्द्रगुप्त मौर्य विलासी किन्तु परम शक्तिशाली नन्दको पराजित कर ३२५ ईसापूर्वमें मगधके सिंहासनपर विराजमान हुआ। उत्तरके अतिरिक्त सम्भवतः सिन्धु, काठियावाड़, गुजरात और मालवाको भी उसने अपने शासनमें ले लिया।

भारतीय इतिहासमें चन्द्रगुप्तका शासनकाल परम महत्त्वपूर्ण माना जाता है। जैसी योग्यतासे उसने इतने विशाल साम्राज्यकी स्थापना की, वैसी ही योग्यतासे उसने उसकी रक्षा की।

२४ वर्षतक शासन करनेके उपरान्त चन्द्रगुप्तने अपने पुत्र बिन्दु-सारको राज्य सौंप दिया। वह वीर तो था पर उसके शासनकालमें

बिन्दुसार

कोई उल्लेखनीय घटना घटित नहीं हुई। २७४ ईसापूर्वके लगभग उसका देहान्त होनेपर भारतके सबसे अधिक यशस्वी, वीर और उदार सम्राट् अशोकने भारतके सिंहासनपर चरण रखे।

अशोकका साम्राज्य पंजाब और सिंधुसे लेकर बंगाल-विहारतक, उधर गुजरात और मालवासे कलिंगतक, समस्त पश्चिमी भारत, मध्य भारत, विंध्य पर्वतमालाके उस पार पेनारतक फैल गया। धुर दक्षिणमें चोल, चेर, पाण्य और सत्य-पुत्र ही ऐसे स्वाधीन राज्य थे जो अशोकके साम्राज्यके बाहर थे।

अशोक

सम्भव था कि ये राज्य भी अशोकके साम्राज्यमें आ जाते पर कलिंगके युद्धकी भीषणताने अशोकके हृदयमें इतना तीव्र वैराग्य उत्पन्न कर दिया कि उसने आगे युद्ध ही न करनेका निश्चय कर लिया। अहिंसाकी भावनाने उसे बौद्ध बना दिया।

अशोकने बौद्ध धर्मका प्रचार भी खूब किया। उसमें संकीर्णता नामको भी न थी। एक शिलालेखपर उसने खुदवाया था—'जो व्यक्ति अपने धर्मका आदर करता है और अकारण ही पराये धर्मकी निन्दा करता है वह अपने आचरण द्वारा अपने ही धर्म के मूलपर कुठाराघात करता है। ऐसा मनुष्य धर्मके तत्त्वको ही नहीं जानता।'

अशोकके उत्तराधिकारी अहिंसक नहीं, कायर निकले। उन्होंने अशोकके विशाल साम्राज्यको नष्ट कर दिया।

मौर्य वंशके अन्तिम उत्तराधिकारी वृहद्रथ मौर्यको १८४ ईसापूर्व-के लगभग मारकर उसका सेनापति पुष्यमित्र सम्राट् बना। उसने शुंग वंशकी नींव डाली। ईसापूर्व ७२ में इस वंशके दसवें शासक देवभूमिको मारकर उसका मंत्री वसुदेव गद्दीपर बैठा। उसने काण्व वंशकी स्थापना की। इस राजवंशने केवल ४५ वर्षतक शासन किया। ईसापूर्व २७ में अन्तिम काण्व शासक सुशर्मनको मारकर दक्षिण भारतके किसी सातवाहन राजाने हिमालयसे लेकर दक्षिणमें तुंगभद्रा-तक अपना एकच्छत्र साम्राज्य स्थापित किया।

लगभग ३५० वर्षतक राज्य करनेके उपरान्त सन् २२५ के लगभग सातवाहन राजवंश लुप्त होगया। दक्षिण भारतके चेर, चोल तथा पांड्य वंश उसके पतनके उपरान्त भी उन्नति करते रहे।

विदेशी राज्य

सिकन्दर और सिल्यूकसके भारतविजयके स्वप्न भंग होजानेपर भी यूनानी भारतका आकर्षण न छोड़ सके। ईसापूर्व ११० के लगभग डिमिट्रियसके वंशज मिनेडरने भारतपर आक्रमण किया। बौद्धोंका कहना है कि इसने बौद्ध धर्म ग्रहण कर लिया था। मिलिन्द के नामसे इसका वर्णन मिलता है।

दूसरा प्रसिद्ध यूनानी राजा एन्टियलकिडास है। ग्वालियर राज्यके भेलसाके निकट बैसनगरमें मिले एक शिलालेखसे पता चलता है कि इसने हिन्दू धर्म ग्रहण कर लिया था। हर्मयस अन्तिम यूनानी राजा बताया जाता है। इसने पंजाब और सीमाप्रान्तपर शासन किया। इसीके समयमें काबुल और कंधारपर कुषणोंका आक्रमण आरम्भ होगया और फिर भारतसे यूनानी राजवंश सदाके लिए लुप्त होगया।

शकों और इंडो-पार्थियनोंने भी कुछ समयतक भारतपर अपना आधिपत्य रखा, पर थोड़े दिनोंमें ही दोनों बिला गये। उनके बाद कुषणोंने भारतपर राज्य किया। इस वंशका सबसे प्रतापी राजा कनिष्क था। वह बड़ा वीर और महत्त्वाकांक्षी था। काबुलसे काशी-तक और दक्षिणमें विन्ध्य पर्वतमालातक उसने अपना साम्राज्य स्थापित किया।

युद्धके भयंकर दृश्योंने अशोककी भाँति कनिष्कको भी विचलित कर दिया और वह भी उसीकी भाँति बौद्ध धर्ममें दीक्षित होगया। काश्मीरके कुंडलवनमें उसने बौद्धोंकी प्रसिद्ध सभा की जिसने उन्हें हीनयान और महायान नामक दो सम्प्रदायोंमें विभक्त कर दिया। कनिष्क कवियों और विद्वानोंका बड़ा आदर करता था। संस्कृतका प्रकाण्ड पंडित अश्वघोष और आयुर्वेदके प्रसिद्ध विद्वान चरक कनिष्क-के ही दरबारकी शोभा बढ़ाते थे।

कनिष्कके उत्तराधिकारी अयोग्य निकले और क्रमशः यह राजवंश भी नष्ट हो गया। वसुदेवके बाद इस राजवंशमें किसी प्रतापी राजाके उत्पन्न होनेका विवरण नहीं मिलता।

कुषण साम्राज्यके पतनके उपरान्त उत्तरी भारत अनेक छोटे-छोटे स्वतंत्र राज्योंमें विभक्त होगया। इसी समय आंध्र राजाओंका

अन्ध काल

भी पतन होने लगा। उस समय कोई भी ऐसा शक्तिशाली व्यक्ति नहीं था जो सबको एक सूत्रमें गूंथ सकता। ईसाकी तीसरी शताब्दीमें जितने राजवंश हुए उनका ठीक पता नहीं चलता। इसलिए कुषण साम्राज्यके अस्त और गुप्त साम्राज्यके उदयके बीचका यह काल भारतके इतिहासका 'अन्ध काल' कहा जाता है। चौथी शताब्दीके आरम्भमें पुनः प्रकाशकी किरणें छिटकने लगती हैं और भारतीय इतिहासके स्वर्णयुग—गुप्तकाल—का उदय होता है।

चन्द्रगुप्त नामक एक प्रबल प्रतापी युवकने सन् ३१९ में मगधमें राजसिंहासनपर आरोहणकर गुप्त साम्राज्यकी नींव डाली। अनेक

गुप्त साम्राज्य

शत्रुओंको पराजितकर इसने ऐसे साम्राज्यको जन्म दिया जो दोसौ वर्षतक भारतमें अकंटक राज्य करता रहा। सम्राट् चन्द्रगुप्तने राज्याभिषेकके ही समय गुप्त संवत् चलाया।

चन्द्रगुप्तके पुत्र समुद्रगुप्तने दिग्विजयके उपरान्त अश्वमेध यज्ञ किया। समुद्रगुप्त ही भारतका प्रथम सम्राट् था जिसने मुद्राओं-पर संस्कृतके श्लोक अंकित कराये। वीर होनेके अतिरिक्त वह प्रतिभाशाली कवि, गायक, विद्याप्रेमी और उदार राजा था। चन्द्रगुप्त, उसका पुत्र, शकोंको पराजितकर विक्रमादित्यकी उपाधि धारणकर सिंहासनपर बैठा। यह अत्यन्त पराक्रमी, यशस्वी, उदार, साहित्यप्रेमी शासक था। इसीके समयमें चीनी यात्री फाहियान भारत आया था। उसने गुप्त साम्राज्यकी अवस्थाका सुन्दर चित्रण किया है।

चन्द्रगुप्त द्वितीयके उपरान्त उसका पुत्र कुमारगुप्त गद्दीपर बैठा। ४१३ ई० से ४५५ ई० तक उसने शासन किया। उसके उत्तराधिकारी योग्य न निकले और सन् ४८४ में तोरमणकी अध्यक्षतामें हूणोंने उन्हें पराजितकर गुप्त वंशका अन्त कर दिया।

हूणोंकी विजय अधिक स्थायी न होसकी। छठी शताब्दीके पूर्वार्धमें मध्य भारतके एक शक्तिशाली राजा यशोवर्मनने उन्हें पराजितकर गुप्त साम्राज्यसे भी बड़ा एक साम्राज्य स्थापित किया, पर उसके मरते ही सारा देश पुनः अनेक खंडोंमें विभाजित होगया।

यशोधर्मन

५८० ई० के लगभग पूर्वी पंजावके थानेश्वरमें एक नये राजवंशका उदय हुआ। इस वंशका पहला राजा प्रभाकरवर्द्धन था। हूणोंको पराजितकर उसने सिंध, गुजरात और मालवा आदिको लेकर एक नया साम्राज्य स्थापित किया।

हर्षवर्द्धन

उसके दो पुत्र थे : राज्यवर्द्धन और हर्षवर्द्धन। राज्यवर्द्धनकी हत्या कर दी गयी। हर्षने ६ वर्षतक युद्ध करके मालवा, विहार, युक्तप्रान्त तथा (पंजाव)के वड़े भागपर अधिकार कर लिया। कामरूप (आसाम), और वल्लभी, (गुजरात)के राजाओंके साथ उसने मैत्री कर ली। वह अपनी वहिन राज्यश्रीके संरक्षककी भाँति कन्नौजके राज्यकी भी देखभाल करता रहा।

हर्ष अपने शासन-प्रवन्धके लिए प्रख्यात है। वह बौद्ध तथा ब्राह्मण दोनों धर्मोंका आदर करता था। उसके दरवारमें गुणियों और विद्वानोंकी पूजा होती थी। ४२ वर्षतक उसने शासन किया। ६४७ ई० में उसका देहान्त हो गया। उसके वाद ही उसका साम्राज्य छिन्नभिन्न होगया।

हर्षके देहान्तके उपरान्त भारतीय इतिहासमें पुनः एक वार अराजकताका राज्य हो गया। अरवोंने ६३७ ई० में भारतपर आक्रमणकी योजना वनायी थी जो खलीफाके हस्तक्षेपसे कार्यान्वित न हो सकी। पर सन् ७११ में मुहम्मद विन कासिमकी अध्यक्षतामें अरवोंने भारतपर आक्रमण कर ही तो दिया तथा थोड़े ही दिनोंमें वे सारे सिंधु प्रदेशपर छा गये।

कौटल्यके अर्थशास्त्र, जातक ग्रंथों तथा यूनानियोंके विवरणसे ज्ञात होता है कि साम्राज्यवादी कालमें कृषि उन्नत अवस्थामें थी। राज्यकी ओरसे किसानोंकी अवस्था सुधारनेके लिए भरपूर प्रयत्न किया जाता था। शासन व्यवस्था चलानेके लिए जो अनेक विभाग थे उनमें एक विभाग कृषिका भी था।

सीताध्यक्ष

कृषि विभागके प्रधान अधिकारीको सीताध्यक्ष कहा जाता था।[1] इसका काम ही यह था कि कृषिकी सारी व्यवस्था अपने हाथमें रखे। उसकी उन्नतिके लिए वह विशेष रूपसे उत्तरदायी था। कृषिविद्याका वह पूर्ण पंडित होता था। उसे कृषिका केवल शास्त्रीय ही नहीं, व्यावहारिक ज्ञान भी होता था।

किसान निश्चिन्त होकर कृषिमें संलग्न रहते थे। उनके मार्गमें कोई बाधा न थी। तभी तो मेगस्थेने लिखता है कि भारतवासियोंमें ऐसी बहुत नी रीतियाँ है जो उनके अकाल पड़नेकी सम्भावनाको रोकनेमें सहायता देती हैं। अन्य जातियोंमें युद्धके समय भूमिको नष्ट करने और इस प्रकार उसे परती रखने या ऊसर कर डालनेकी चाल है, पर इसके विरुद्ध भारतमें, भूमि जोतनेवाले, भले ही उनके पड़ोसमें युद्ध हो रहा हो, किसी प्रकार भयकी आशंकासे विचलित नहीं होते। दोनों पक्षके योद्धा युद्धके समय एक दूसरेका संहार करते हैं पर जो लोग खेतोंमें लगे होते हे उन्हें वे सर्वथा निर्विघ्न रहने देते हैं। इसके अतिरिक्त न तो वे शत्रु देशका अग्निसे सर्वनाश करते हैं और न उसके पेड़ काटते हैं ?[2]

१—कौटलीय अर्थशास्त्र, अधि॰ २, अध्याय २४।

२—गुप्त, केला : कौटल्यके आर्थिक विचार, पृष्ठ ९४।

भारत जैसे कृषिप्रधान देशके लिए सिंचाईका प्रश्न सदासे महत्त्व-पूर्ण रहा है। मौर्य सम्राट् इस तत्वसे अनभिज्ञ न थे। इसके लिए उन्होंने एक पृथक् विभाग खोल रखा था। मेगस्थेने-ने सिंचाईकी व्यवस्थाका वर्णन करते हुए लिखा है कि राज्यकी अधिकांश भूमि सींची जाती है। इसी कारण सालमें दो फसलें होती हैं। उसने बताया है कि मिस्रमें जिस प्रकार नदियोंका निरीक्षण किया जाता है और भूमिकी नापजोख होती है उसी प्रकारकी व्यवस्था भारतमें भी है।

नहरें

कौटल्यके अर्थशास्त्रसे मेगस्थेनेकी इन बातोंकी पुष्टि तो होती ही है, यह भी पता चलता है कि सिंचाईके कितने और कौन प्रकार थे। उसमें सिंचाईके चार प्रकार बताये गये हैं—

१—हस्त प्रावर्तिम्	हाथसे पानी ले जाकर,
२—स्कंध प्रावर्तिम्	कन्धोंपर बहँगी द्वारा पानी ले जाकर,
३—स्रोतोयंत्र प्रावर्तिम्	यंत्र द्वारा पानी ले जाकर,
४—नदीसरस्तटाककूपोद्घाटम्	नदियों,तालाबों कुओंसे जल निकालकर।

स्कंध प्रावर्तिम्के सम्बन्धमें श्री सत्यकेतु विद्यालंकारका मत है कि उसका अर्थ रहट या चरस द्वारा अर्थात् बैलोंके कन्धोंकी सहायतासे पानी निकालना अधिक उपयुक्त जान पड़ता है।[1]

इससे इतना तो स्पष्ट हो ही जाता है कि आजकल सिंचाईके जो साधन काममें लाये जाते हैं उनका मौर्य कालसे पहले ही आविष्कार हो चुका था। उस समय भी आजकी भाँति कुओं, तालाबों, नदियों और नहरोंसे पानी लेकर सिंचाई की जाती थी।

अर्थशास्त्रमें आनेवाला कुल्या शब्द इस बातका द्योतक है कि उस जमानेमें कृत्रिम सरिता अर्थात् नहर निकालकर सिंचाई की जाती थी। सिंचाईके लिए जल संचित करनेके लिए बाँध बाँधनेकी भी व्यवस्था थी।

१—सत्यकेतु विद्यालंकार : मौर्य साम्राज्यका इतिहास।

कुओं, तालावों आदिकी मरम्मतका भी वर्णन मिलता है, जिससे स्पष्ट है कि राज्य इस वातकी पूरी चेष्टा करता था कि किसानोंको सिंचाईके लिए भरपूर जल मिलता रहे। जहाँपर जलाशयोंका प्रवन्ध नहीं होता था वहाँ राज्यकी ओरसे कुएँ और तालाव खुदवानेकी व्यवस्था होती थी।[1]

काठियावाड़के गिरनारमें एक चट्टानपर क्षत्रप रुद्रदमनका लगभग १५० ई० में खुदवाया एक लेख मिलता है जिससे पता चलता है कि मौर्य सम्राट् सिंचाईकी ओर ध्यान देते थे। उसमें लिखा है कि चन्द्रगुप्त मौर्यकी ओरसे पश्चिमी प्रान्तोंका शासन करनेके लिए नियुक्त पुष्पगुप्त वैश्यने गिरनारकी पहाड़ीपर एक छोटी नदीके एक ओर बाँध वनवाया जिससे एक झील-सी वन गयी। इस झीलका नाम सुदर्शन झील रखा गया। इससे सिंचाई होने लगी। वादमें अशोकने इसमेंसे नहरें निकलवायीं। ये बाँध ४०० वर्षतक काम देते रहे। १५० ई० में भारी तूफानसे जव ये नष्ट होगये तो शक क्षत्रप रुद्रदमनने इनको पुनः वनवाया।[2] यह स्थान मौर्य राजधानी पाटलिपुत्रसे एक हजार मीलसे कम दूरीपर नहीं है। इससे अनुमान किया जा सकता है कि राजधानीसे इतने फासलेके स्थान भी राज्यकी ओरसे की जानेवाली सुविधासे वंचित नहीं रहते थे।[3]

कौटल्यके अर्थशास्त्रसे यह भी पता चलता है कि मौर्य सम्राटोंने एक विशेष विभाग खोल रखा था जिसका नाम था—अंतरिक्ष विद्या विभाग। यह विभाग यंत्रके द्वारा इस वातका पता लगाता था कि कितनी जलवृष्टि हो चुकी है। सूर्य, शुक्र, वृहस्पति आदि नक्षत्रोंकी गति देखकर इस

अन्तरिक्ष विद्या विभाग

१—कौटलीय अर्थशास्त्र, २।२४ ;

२—एपिग्राफिका इंडिका, खंड ८, पृष्ठ ३६। जनार्दन भट्ट : बौद्धकालीन भारत, पृष्ठ १६८।

३—गुप्त, केला : कौटल्यके आर्थिक विचार, पृष्ठ ८२।

बातका पता लगाया जाता था कि वृष्टि होगी अथवा नहीं और यदि होगी तो कितनी।[1] स्पष्ट है कि इस कालमें सिंचाईकी ओर सरकारका पूरा ध्यान था।

जातक ग्रन्थोंके अनुसार किसान ही भूमिका स्वामी माना जाता था। जमींदार नामका कोई वर्ग नहीं था। कहीं-कहींपर राजाकी ओर-

लगान और आबपाशी

से सीताध्यक्ष नामक अधिकारी दासों, अपराधियों अथवा वेतनभोगी श्रमजीवियों द्वारा खेती कराता था। इस भूमिपर राज्यका स्वामित्व होता था। इसमे होनेवाली आय सीता कहलाती थी। कुछ भूमि गांववालोंको इस विचारसे दी जाती थी कि वे राज्यको निर्धारित संख्यामें सैनिक अथवा श्रमजीवी दें। शेष भूमि खेती करनेवालोंको विना लगान या कुछ लगानपर दी जाती थी। इस भूमिसे राज्यको जो आय होती थी वह भाग कहलाती थी।

ऋत्विक, आचार्य, पुरोहित और श्रोत्रियोंको विना लगान भूमि देनेका विधान था। इन ब्रह्मदेव कृषकोंके अतिरिक्त सरकारी कर्मचारियोंको दी गयी भूमि भी लगानसे मुक्त रहती थी। करद कृषक अपनी भूमिके लिए राज्यको लगान देते थे। कौटल्यने लगानका परिमाण उपजका छठा अंश निर्धारित किया था। विशेष दशाओंमें यह मात्रा पंचमांश अथवा चतुर्थांश तथा राज्यके अर्थ-संकटग्रस्त होनेपर तृतीयांशतक करनेका भी उसने विधान किया है[2]। ग्राम पंचायत, मुखिया अथवा राजाका महामात्य इस करके मानका निश्चय करता था। वह कभी-कभी किसी ग्रामको करसे मुक्त भी कर देता था। लगानके अतिरिक्त भूमिपर राजाका और कोई स्वत्व न रहता था। वन्यभूमिपर राजाका अधिकार माना जाता था[3]।

१—कौटलीय अर्थशास्त्र, २।१।२४। गुप्त, केला : वही, पृष्ठ ५६, ५७।
२—गुप्त, केला : कौटल्यके आर्थिक विचार, पृष्ठ १३१–१३७।
३—जनार्दन भट्ट : बौद्धकालीन भारत, पृष्ठ २२३–२२४।

सिचाईके लिए जो सरकारी व्यवस्था होती थी उसके लिए किसानसे कुछ आवपाशी ली जाती थी। खेतोंमें पानी पहुंचानेमें जितना कम या अधिक श्रम लगता था उसी हिसावसे आवपाशी ली जाती थी[1]। लगान और आवपाशी नकदी रूपमें नहीं, जिन्सके रूपमें ली जाती थी[2]।

खेतोंकी व्यवस्था

गांवके सव खेत एक साथ ही जोते वोये जाते थे। मुखियाके आदेशसे खेतोंमें पानी वांटा जाता था। मेंड वांधनेका किसानोंको अधिकार नहीं था। केवल एक घेरा होता था जिसके भीतर सारे गांवके खेत आ जाते थे। गांवमें जितने परिवार होते थे उतने ही टुकड़ोंमें खेत वंटे रहते थे। फसल कटनेपर सव अपने भागकी उपज ले लेते थे। कुल खेत पंचायतके नियंत्रणमें रहते थे। किसी भी किसानको किसी वाहरीके हाथ खेत वेचने अथवा रेहन रखनेका अधिकार न था। किसीके नाम खेतको वसीयत करने या परिवारवालोंमें वंटवारा करनेके लिए ग्राम पंचायतसे अनुमति लेनी पड़ती थी। किसानके मरनेपर वड़ा वेटा परिवारका मालिक समझा जाता था। सम्पत्तिका वंटवारा होनेपर सव पुत्रोंको वरावर वरावर खेत मिलते थे[3]।

पशु धन

कौटल्यके अर्थशास्त्रमें गोध्यक्ष, अश्वाध्यक्ष, हस्त्यध्यक्ष, सूनाध्यक्ष, विवीताध्यक्ष आदिका जो वर्णन मिलता है उससे इस वातमें सन्देह नहीं रह जाता कि पशु धनकी रक्षा, उन्नति, चिकित्सा और देखभालकी ओर सरकारका पूरा ध्यान रहता था।

गोध्यक्ष गाय वैलोंकी रक्षाके अतिरिक्त भैंस, वकरी, भेंड़, गदहा, खच्चर, ऊंट, कुत्ता आदि पशुओंकी भी रक्षाके लिए उत्तरदायी था[4]।

१—वही, पृष्ठ १६७-१६८।
२—गुप्त, केला : कौटल्यके आर्थिक विचार, पृष्ठ ११६।
३—जनार्दन भट्ट : वौद्धकालीन भारत, पृष्ठ २२४—२२५।
४—कौटलीय अर्थशास्त्र, २।२६।

वह दूध दुहनेवाले दोहक, मक्खन निकालनेवाले मन्थक और शिकारी लुब्धककी नियुक्ति करता था। इनमेंसे प्रत्येक व्यक्ति सौ-सौ पशुओंके लिए उत्तरदायी होता था। गाय-भैंसोंको जाड़ोंमें दो बार और गर्मियोंमें केवल एक बार दुहनेका नियम था, जिसका उल्लंघन करनेपर कड़ा दंड दिया जाता था। पशुओंके प्रति निर्दयताका व्यवहार करने तथा गाय, बैल, बछड़े आदिको मारनेकी सख्त मनाही थी। अश्वाध्यक्ष नस्ल, उम्र, रंग, कद, चिन्ह आदि देखकर घोड़ोंको विभिन्न वर्गोंमें बांटकर उनका हिसाब रखता था। उनकी देखभाल, चिकित्सा, खान-पान आदिकी व्यवस्थाके लिए वह सोलह आना जिम्मेदार था। अशक्त, वृद्ध, युद्धके कारण बेकाम हो चुके घोड़ोंसे कोई काम न लिया जाता था[१]। हस्त्यध्यक्ष हाथियोंकी देखभाल, नागवनकी रक्षा, महावतोंकी नियुक्ति, उनकी शिक्षा आदिके लिए जिम्मेदार था। हाथियोंके दांत काटनेके लिए भी कुछ विशेष नियम बना दिये गये थे[२]। राज्यकी ओरसे कुछ वन सर्वथा सुरक्षित रखे जाते थे। वे 'अभय वन' कहलाते थे। वहांके पशु न तो पकड़े जाते थे और न मारे जाते थे। किसीको वहां प्रवेश करनेकी अनुमति नहीं थी। सूनाध्यक्ष ऐसे वनोंकी सारी व्यवस्था करता था।[३]

चरागाह

उस समय निश्शुल्क चरागाहों आदिके लिए ग्राम पंचायत या राज्यकी ओरसे समुचित व्यवस्था थी।[४] विवीताध्यक्ष गाय, बैल तथा अन्य पशुओंके चरनेके लिए, उनकी रक्षाके लिए उपयुक्त व्यवस्था करता था।[५] सालभर तक एक ही चरागाहका उपयोग नहीं किया जा सकता था। प्रत्येक ऋतुके लिए पृथक् चरागाह थे। उनके लिए अलगसे कर्मचारी रखे जाते थे।

१—कौटलीय अर्थशास्त्र, २।३० २—वही, २।३१। ३—वही, २।२६।
४ गुप्त, केला: कौटल्यके आर्थिक विचार, पृष्ठ ७६।
५—कौटलीय अर्थशास्त्र, २।३४।

ये लोग आपत्तिकी आशंका देखकर शंख या नगाड़े बजाकर, कबूतरों द्वारा संदेश भेजकर अथवा आग जलाकर सबको सचेत कर देते थे।

ग्रामोंके समीपस्थ चरागाहों और जंगलोंपर ग्रामवासियोंका समान अधिकार रहता था। सबको वहांपर अपने पशु चराने और जंगलसे जलावनके लिए लकड़ी लानेका अधिकार था। जबतक खेतोंमें फसल खड़ी रहती थी तबतक ग्वाले पशुओंको चराते थे। फसल कट जानेपर कटे हुए खेतोंमें चरनेके लिए पशुओंको छूट दे दी जाती थी। किसी व्यक्तिको गांवके चरागाह अथवा जंगलके किसी भागको खरीदनेका अधिकार न था। यह भूमि सबकी संयुक्त सम्पत्ति मानी जाती थी।[1]

पहले ही बताया जा चुका है कि यवन और शक, पार्थिव और कुषण लोगोंके आक्रमणोंके होते हुए भी भारतका कृषि-जीवन सर्वथा

कृषिकी उन्नति

शान्त था। उसपर इन सब उलटफेरोंका कोई प्रभाव नहीं पड़ता था। विदेशी शक्तियोंने किसानोंको बदस्तूर कृषि करने दी। उसमें बाधा डालना उन्हें अभीष्ट न था। मौर्य साम्राज्यमें तो कृषिकी अवस्था सुधारनेकी ओर सरकारका ध्यान था ही, गुप्तकालमें भी कृषिकी अवस्था सुधारनेकी ओर पूरा ध्यान दिया गया। तभी तो उस समय धन-धान्यकी इतनी प्रचुरता थी कि चीनी यात्री फाहियान उसकी प्रशंसा करते नहीं अघाता। लिखता है कि खाद्य पदार्थ बहुत सस्ते हैं और कौड़ियोंमें ही पर्याप्त भोजन मिल जाता है। चीनी यात्री ह्वेनत्सांगके विवरणसे भी ज्ञात होता है कि हर्षवर्द्धन आदिके समयमें भी किसान बड़े सुखी और प्रसन्न थे तथा कृषि उन्नतिपर थी।

१—जनार्दन भट्ट : बौद्धकालीन भारत, पृष्ठ २२२–२२५। मुच : इकोनामिक लाइफ इन ऐंश्येंट इंडिया, खण्ड १, पृष्ठ ३३–४६।

उद्योग-व्यवसाय

सामाज्यवादी कालमें कृषिके अतिरिक्त उद्योग-धन्धोंने भी अच्छी उन्नति की। राज्यकी ओरसे उद्योगोंको प्रोत्साहन मिलता था। यही कारण था कि वे समुचित उन्नति कर सके। मेगस्थेनेने लिखा है कि भारतवासी कला-कौशलमें भी बड़े निपुण हैं और सभ्य भारतीय समाजमें अनेक प्रकारके व्यवसाय सुचारु रूपसे चलते हैं। इस समयके प्रमुख उद्योग ये थे—

प्रमुख उद्योग

वस्त्र, खनिज, नौ-निर्माण, अस्त्र-निर्माण; चर्म, वर्तन, ओषध-निर्माण आदि।

कौटल्य कालमें वस्त्र-उद्योग उन्नतिपर था। पाण्य वंशकी राजधानी मथुरा, अपरान्त, कलिंग, काशी, वंग, वत्स और माहिष्मतीके सूती वस्त्र अत्यधिक प्रसिद्ध थे। मथुरा नगरी युगोंतक इस उद्योगका केन्द्र बनी रही। उसी प्रकार कौटल्यकालीन वंगका कपड़ा पिछले दिनोंकी ढाकेकी मलमलका पूर्वज था। कलिंग अपने वस्त्रके लिए इतना प्रसिद्ध था कि प्राचीन तमिल साहित्यमें कलिंगका अर्थ था कपड़ा।[1]

वस्त्र उद्योग

कौटल्यकालमें सूती वस्त्र तो यहाँपर अच्छी मात्रामें तैयार होते ही थे, रेशम, सन, ऊन तथा जूट आदि अन्य कई प्रकारके रेशोंके भी वस्त्र बनाये जाते थे।[2] इस उद्योगकी देखरेखके लिए एक सरकारी अफसर रहता था जो सूत्राध्यक्ष कहलाता था।[3] विधवा, विकलांग, कन्या, संन्यासिन, अपराधिन, वृद्धा, राज-दासी, वेश्याओंकी बूढ़ी माता, देवालयोंसे सेवामुक्त देवदासी सूत कातनेके काममें लगायी जाती थीं। सूतकी उत्तमता, मोटाई, चिकनाहट आदि गुणोंके अनुकूल मजदूरी

१—जयचन्द्र विद्यालंकार : भारतीय इतिहासकी रूपरेखा, जिल्द २, पृष्ठ ७४३।
२—गुप्त; केला : कौटल्यके आर्थिक विचार, पृष्ठ ६५।
३—कौटलीय अर्थशास्त्र, २।२३।

नियत की जाती थी। मोटे सूतकी मजदूरी कम होती थी और बारीककी अधिक। सूतकी कताई, जांच और उचित मजदूरी देनेके विषयमें विस्तारसे नियम बने थे, जिनका उल्लंघन करनेपर कड़ा दंड दिया जाता था।

सूत्र विभागमें ऐसी महिलाएँ नौकर रखी जाती थीं जो दरिद्र पर्दानशीन महिलाओंके घर जाकर उन्हें सूत कातनेके लिए रुई दे आया करती थीं। सूत्रशालामें स्वयं आकर अपना सूत देनेवाली महिलाओं-के सम्मानका बड़ा ख्याल रखा जाता था। उस स्थानपर केवल इतना प्रकाश रहता था कि सूत्राध्यक्ष सूतकी भली-भाँति जाँच कर सके। यदि वह सूत्रशालामें आनेवाली महिलाओंकी ओर ताकता अथवा उनसे अन्य विषयपर वार्तालाप करता अथवा उन्हें मजदूरी देनेमें विलम्ब करता तो उसकी खैर नहीं थी। मेहनताना लेकर काम न करने, माल खो देने, उसे चुरा लेने, अथवा लेकर भाग जानेपर कड़े दंडकी व्यवस्था थी। ऐसे अपराधियोंके अंगूठे काट लेनेकी आज्ञा थी।[1]

स्पष्ट है कि उस समय कताई-बुनाईका उद्योग खूब उन्नतिपर था। गाँव-गाँव घर-घर ये कलाएँ पनप रही थीं। बालक और वृद्ध, युवक और युवती सभी इन कार्योंमें रस लेते थे।[2]

इस कालमें वस्त्र-उद्योगने पर्याप्त उन्नति की।[3] रेशमके उत्तमोत्तम वस्त्र बनने लगे। चूहोंकी ऊनका भी कपड़ा बनता था जो अपनी गर्मा-हटके लिए विशेषरूपसे प्रसिद्ध था। देशी रेशमके ३० प्रकारके वस्त्र उपयोगमें आते थे। द्रविड़ कवियोंने कुछ वस्त्रोंकी उपमा दूधकी वाष्प और सांपकी केचुलसे दी है। लिखा है कि इनकी बुनावट इतनी

१—जनार्दन भट्ट : बौद्धकालीन भारत, पृष्ठ १७६।

२—रामदास गौड़ : हमारे गाँवोंकी कहानी, पृष्ठ ५१—५२।

३—ब्रुच : इकोनामिक लाइफ इन ऐंश्यंट इंडिया, खंड १, पृष्ठ १२५—१३२।

वारीक है कि आँखोंको सूतके धागे अलग अलग दिखाई नहीं पड़ते।[1]

सातवाहन युगमें भारतके नफीस और वारीक कपड़ेकी रोममें वड़ी माँग थी। प्लिनी नामक रोमन लेखक (७० ई०) लिखता है कि 'भारतीय माल रोममें आकर सौ गुनी कीमतपर विकता है। उसके

रोममें माँग

द्वारा भारतवर्ष रोम साम्राज्यसे प्रतिवर्ष लगभग ६ लाख अशर्फी खींच ले जाता है। यह कीमत हमें अपनी ऐयाशी और अपनी स्त्रियोंके कारण देनी पड़ती है।' पेत्रोनि नामक लेखकने रोमन स्त्रियोंकी वेपर्दगीकी शिकायत करते हुए लिखा है कि 'वे वुनी हुई हवाके जाले (भारतीय मलमल) पहनकर अपना सौन्दर्य दिखाती हैं।'[2]

हर्षवद्र्धनके समयमें वस्त्र-उद्योग कितनी उन्नत अवस्थामें था इसका अनुमान वाण रचित राज्यश्रीके विवाह प्रकरणसे लग सकता है। लिखा है कि राजमहल वल्कल व्रस्त्र क्षोम, सूती वस्त्र वादर, कीड़ोंकी लारसे वने वस्त्र लाला-तन्तुज, गरम महीन रेशमी वस्त्र दुकूल, किरणोंकी भाँति वारीक और चमकीले रेशमी वस्त्र अंशुक और वृक्ष-विशेषकी जड़के रेशोंसे वने वस्त्र नेत्र आदिसे सुशोभित था। ये वस्त्र सर्पके केचुलकी भाँति चमकते थे, मुलायम केलेके वृक्षके भीतरके छिलकेकी तरह कोमल थे और इतने हलके थे कि 'साँस लेत उड़ि जायँ।' छूनेसे ही उनके अस्तित्वका पता लगता था। वे चारों ओर इन्द्र-धनुषकी भाँति चमक रहे थे।[3]

कौटल्यके अर्थशास्त्रसे स्पष्ट है कि ऊनी-रेशमी और सूती सभी प्रकारके वस्त्र अत्यन्त उत्तम कोटिके वनते थे। ऊनी वस्त्र सफ़ेद, शुद्ध

१—रामदास गौड़ : हमारे गाँवोंकी कहानी, पृष्ठ ६१, ६२।

२—जयचन्द्र विद्यालंकार : भारतीय इतिहासकी रूपरेखा, जिल्द २, पृष्ठ १०५९।

३—बाण भट्ट : हर्षचरितम्, चतुर्थ उच्छ्वास, राज्यश्रीका विवाह प्रकरण।

लाल और हलके लाल रंगके होते थे। उनकी बनावटमें दस प्रकारके भेद बताये गये हैं। दुशालोंके तीन भेद होते थे : वांगक, पौंड्रक और सौवर्ण कुंड्यक। सूती कवच, सूत, सन, बेंत और बाँसकी रस्सियाँ बनती थीं। फरश या बिछावन भी बनते थे। वस्त्रोंकी धुलाई, रँगाई और सिलाईके उद्योग भी साथ ही साथ पनप रहे थे।[1]

कौटल्यने खनिज उद्योगकी विस्तृत विवेचना की है। बताया है कि कहाँ किस वस्तुकी खान है यह जाननेके लिए कच्ची धातुकी, उसके भार, रंग, तेज, गंध और स्वाद द्वारा परीक्षा की जानी चाहिये। पहाड़ोंके गड्ढों, गुफाओं, तराइयों तथा पथरीले स्थानों और बड़ी बड़ी शिलाओंसे ढँके हुए छेदोंसे जो नाना प्रकारके पिघले हुए पदार्थ निकले हैं उनकी जाँचसे यह जाना जा सकता है कि कहाँ किस वस्तुकी खान होनेकी सम्भावना है। विविध कच्ची धातुओंको शुद्ध करनेके कौटल्यने अनेक उपाय बताये हैं। उसने यह भी लिखा है कि कोई खान पहले खोदी गयी है या नहीं यह किस प्रकार जानना चाहिये तथा भिन्न-भिन्न वस्तुओंको नरम और लचकदार बनानेकी विधि क्या है। स्पष्ट है कि उस समय खनिज द्रव्योंका पता लगाने, उन्हें निकालने तथा उपयोगी बनानेके काममें बहुतसे आदमी लगे रहते थे।[2]

खनिज उद्योग

ईसाकी चतुर्थ शताब्दीमें समुद्रगुप्तके समय निर्मित दिल्लीका प्रसिद्ध लौहस्तम्भ इस कालकी ऐसी अद्भुत घटना है जिसपर आज भी लोग आश्चर्य करते हैं। कुछ वर्ष पूर्व यह सम्भव नहीं था कि विश्वकी बड़ीसे बड़ी भट्टीमें इतना भारी लोहेका स्तम्भ बन सकता।[3] इससे स्पष्ट है कि इस समय खनिज उद्योग अत्यन्त उन्नतिपर था।

१—गुप्त केला : कौटल्यके आर्थिक विचार, पृष्ठ ६५-६७।
२—वही, पृष्ठ ६८।
३—पी० आर० रामचन्द्रराव: डिके आव इंडियन इंडस्ट्रीज, पृष्ठ १४-१५।

कौटल्यने धातुओंको तपाने, गलाने, शुद्ध करने, उनके आभूषण तथा अन्य पदार्थ बनानेकी अनेक आवश्यक बातें लिखी हैं। हीरा, मोती, मूंगा आदि रत्नोंको आभूषणोंमें जड़नेके नियम और उनके विषयमें अन्य बहुतसी आवश्यक बातें बतलायी हैं। इससे ज्ञात होता है कि यह कार्य भी इस समय उन्नतिपर था।[1]

कौटल्यकालमें एक सरकारी विभाग नौ-निर्माणका भी था। उसका अध्यक्ष नावाध्यक्ष कहलाता था। वह समुद्र, नदी और झीलोंमें

नौ निर्माण

चलनेवाले जहाजों तथा नौकाओंकी रक्षाका प्रबन्ध करता था और उनके लिए नियम बनाता था।[2] बन्दरगाहोंपर कर तथा नौकाओंकी उतराई निश्चित करना भी उसीका काम था। इस समय अनेक प्रकारकी छोटी-बड़ी नौकाएं बनती थीं। जैसे : संयान्तीर्नाव—समुद्रोंमें चलनेवाले बड़े जहाज, महानाव, बड़ी नदियोंमें चलनेवाले छोटे जहाज ; क्षुद्रका, छोटी नौकाएँ ; स्वतरणी, लोगोंकी निजी नावें—राज्यका इनपर कोई नियंत्रण न था। हिंस्रका, समुद्री डाकुओंके जहाज या नाव ; इनसे व्यापारियोंको भारी हानि होती थी।[3]

यह निर्विवाद है कि इस समय भारतका विदेशी व्यापार अत्यन्त उन्नत अवस्थामें था। एरियन, कर्टियस, मेगास्थेने आदि अनेक यूनानी लेखकोंके लेख इसका प्रमाण हैं। तक्षशिलामें सिकन्दरने ऐसी नौकाएँ प्रस्तुत करायी थीं जो टुकड़ोंमें विभक्त हो सकती थीं। भारतमें ही बनी नौकाओंसे उसने सिंधुनदीका पुल बनवाया था। प्रसिद्ध सेनानी नियार्कसनने फारसकी खाड़ीमें जाते समय भारतीय नौकाओंका संग्रह किया था। इन नौकाओंकी संख्या एरियनने ८००, कर्टियसने १०००, टालेमीने २००० बतायी है।

१—गुप्त, केलाः कौटल्यके आर्थिक विचार, पृष्ठ ६६।

२—कौटलीय अर्थशास्त्र, २।२८। ३—गुप्त, केलाः वही, पृष्ठ ११३—११४।

एरुथ्र सागरकी परिक्रमाके अनुसार तमिल लोग अपने जहाज स्वयं बनाते थे। उनके जहाज दो प्रकारके होते थे। एक तो छोटे, दामिरिक, जो तमिलतटपर ही घूमते। दूसरे, बहुत बड़े, जो गंगा, सुवर्णभूमि और मिस्रतक आते-जाते।[1]

गुप्तकाल और हर्षवर्द्धन कालमें भी इस उद्योगको समुचित प्रोत्साहन मिलता रहा। स्मिथ और फ्रेयर आदि लेखकोंने नौ-व्यवसायकी उन्नतिका वर्णन किया है। उन्होंने सिद्ध किया है कि धार्मिक, व्यापारिक तथा उपनिवेश बसानेकी कामनासे भारतीयोंने लंका, जावा, सुमात्रा, चीन और जापान जानेके लिए बड़े-बड़े पोत तैयार कराये थे। बंगालकी खाड़ी और अरब सागर व्यापारी पोतोंसे भरे रहते थे।

अस्त्र निर्माण

कौटल्यके समयमें भारतकी सैनिक शक्ति अत्यन्त विकसित अवस्थामें थी। युद्ध बराबर चलते रहे। फलतः भाँति-भाँतिके अस्त्र-शस्त्र भी बनते रहे। इनके निर्माण और मरम्मतके काममें अनेक व्यक्ति लगे रहते थे।[2]

चमड़ेका उद्योग

कौटल्यने लिखा है कि उसके समयमें अनेक प्रकारके उत्तम और निकृष्ट श्रेणीके चमड़ोंका उपयोग होता था। चमड़ेसे अनेक प्रकारकी वस्तुएँ तैयार की जाती थीं। यह उद्योग भी उन्नत अवस्थामें था।[3]

ओषध निर्माण

कौटल्यने अर्थशास्त्रमें भिषक्, जांगलीविद्, गर्भव्याधिसंस्था, पशु-चिकित्सक आदि अनेक प्रकारके चिकित्सकोंका वर्णन किया है। प्रत्येक नगरके उत्तर-पश्चिम भागमें ओषधशालाका विधान था। साथ ही कौटल्यका आदेश था कि ओषधियाँ इतनी भारी मात्रामें प्रस्तुत करके रखी जाँय कि कई वर्षतक समाप्त

१—जयचन्द्र विद्यालंकार: पृष्ठ० १०५६–१०६०।
२–गुप्त, केला : कौटल्यके आर्थिक विचार, पृष्ठ १०१।
३–वही, पृष्ठ १००–१०१।

न हों। पुरानी वस्तुओंके स्थानपर नयी वस्तुओंके रखनेका भी आदेश था। स्पष्ट है कि ओषध-निर्माणका उद्योग भी उन्नत अवस्थामें था।[१]

इनके अतिरिक्त और भी कितने ही उद्योग उन्नत अवस्थामें थे। जैसे: वर्तन पिटारी वनाने, शराव खींचने, नमक तैयार करने, रत्न निकालने, लकड़ी चीरने, मूर्ति वनाने, वढ़ईगीरी, लुहारगीरी, संगतराशी, आदि।

पहलेकी भाँति इस कालमें भी श्रेणियोंका संघटन चालू था। केवल वौद्ध साहित्यमें ही नहीं, सूत्रों, स्मृतियों तथा प्राचीन शिलालेखोंमें

श्रेणियाँ

भी श्रेणियोंका उल्लेख है। मूगपक्ख जातकमें १८ श्रेणियोंका उल्लेख है, पर तत्कालीन साहित्यसे पता चलता है कि इससे भी अविक श्रेणियाँ थीं। प्रमुख श्रेणियाँ इन लोगोंकी थीं—

वड्ढकि वर्धकी—वढ़ई। सभी प्रकारकी गाड़ियाँ, पहिये, जहाज, नावें वनानेवाले, लकड़ीका सव प्रकारका काम करनेवाले।

कम्मार, कर्मकार—लोहा, चाँदी, सोना, ताँवा आदि विभिन्न धातुओंका काम करनेवाले।

चर्मकार—चमड़ेका काम करनेवाले।

संगतराश—पत्थरका काम करनेवाले।

संवाहक—मालिश करनेवाले, नाई।

दन्तकार—हाथी-दाँतका काम करनेवाले।

इनके अतिरिक्त जौहरी, मछुए, रंगरेज, कसाई, माली, मल्लाह, चित्रकार, जुलाहे, कुम्भकार, धनुर्धारी, पाचक, धोवी, रथी, अन्न-विक्रेता, वाँसकी वस्तुएँ वनानेवाले भी अपनी श्रेणी वनाकर रहते थे।

मौर्यकालमें श्रेणियाँ परम शक्तिशालिनी थीं। वे राजकीय

१—वही, पृष्ठ १००।

आयका बड़ा स्रोत थीं। उस समय राष्ट्रका समूचा जीवन श्रेणियोंके संघटनपर निर्भर था और मौर्योंकी नीति राष्ट्रीय व्यवसायकी सब प्रकारसे रक्षा और उन्नति करनेकी थी।[1]

श्रेणियोंके हाथमें केवल आर्थिक ही नहीं, राजनीतिक शक्ति भी थी। राजकीय सेनामें श्रेणियोंमेंसे भी सेना चुनकर भरती की जाती थी, जो श्रेणीबल कहलाती थी।[2] इस श्रेणीबलको कौटल्यने मित्रबल—मित्रकी सेना—से भी अधिक अच्छा बतलाया है।[3]

प्रोफेसर विनयकुमारके शब्दोंमें हिन्दुओंमें ईसासे छ-सात शताब्दी पूर्वसे संघों और श्रेणियोंका जो संघटन शुरू हुआ वह चोल राजकाल-तक परम सुचारु रूपसे चलता रहा।[4] साम्राज्यवादी कालमें भी श्रेणि-योंका संघटन वैसा ही रहा जैसा बौद्ध कालमें था। सातवाहन कालमें शिल्प और वाणिज्यका संघटन तो मौर्यकालसे भी उत्तम था। डाक्टर रमेशचन्द्र मजूमदारने इस युगके अभिलेखोंसे शिल्पि-श्रेणियोंके जो विवरण एकत्र किये हैं उनसे पता चलता है कि इस कालमें श्रेणियोंका कार्यक्षेत्र पहलेसे भी अधिक व्यापक हो गया था। उनकी स्थिति पूर्वा-पेक्षा दृढ़ होगयी थी।[5] इस कालकी श्रेणियाँ अपना व्यवसाय करनेके अतिरिक्त साहूकारी भी करने लगी थीं। वे सूदपर रुपया उधार देती थीं। उनकी साख बहुत बढ़ गयी थी। इसी समयसे बैंकोंका आरम्भ समझना चाहिये।

१—जयचन्द्र विद्यालंकार : वही, जिल्द २, पृष्ठ ७०८।

२—कौटलीय अर्थशास्त्र, ९।१।३८।   ३—वही, ६।२।

४—विनयकुमार सरकार : पोलिटिकल इन्स्टीट्यूशन्स एण्ड दि थ्योरीज आव दि हिन्दूज, पृष्ठ ४३।

५—रमेशचन्द्र मजूमदार : कार्पोरेट लाइफ इन ऐंश्येंट इण्डिया, १९२२, पृष्ठ ३४—३८।

साम्राज्यवादी कालमें कलाओंका खूब ही विकास हुआ। शुक्र-नीतिसारमें ६४ कलाओंका विधिवत् वर्णन है। कताई-बुनाईके अति-

कलाओंका विकास

रिक्त विविध वस्तुओंमें कलाका प्रदर्शन देखनेको मिलता था। जैसे : अर्क खींचना, धातुओंका मिलाना, ऊनी और रेशमी वस्त्रोंको धोना और साफ करना।[1] याज्ञवल्कने रुईसे बने वस्त्रकी भी चर्चा की है। इससे स्पष्ट है कि कला उन्नतिकी सीमापर जा पहुँची थी।

ह्वेनत्सांगने भारतके कला-कौशलकी भूरिभूरि प्रशंसा की है। बताया है कि श्रेणियों और संघोंका संघटन अत्यन्त उत्तम था। राज्यकी ओरसे उनका सम्मान किया जाता था। कहना न होगा, उस समय कला राज्याश्रय पाकर निहाल हो गयी थी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि साम्राज्यवादी कालमें भारतीय उद्योग-व्यवसाय उन्नतिकी चरम सीमापर पहुँच गये थे।

१-शुक्रनीतिसार ४।३।१।१८०।

साम्राज्यवादी कालमें आदिसे अन्ततक व्यापारको प्रोत्साहन मिलता रहा। इतिहासकारोंने मौर्यकालकी अर्थनीतिकी बड़ी प्रशंसा की है। श्री जयचन्द्र विद्यालंकार लिखते हैं कि शिल्प और वाणिज्य, जो कृषि और पशुपालन-प्रधान वैदिक युगमें नके बराबर थे, उत्तर वैदिक युगमें जिनका नन्हा-सा अंकुर पहलेपहल दीख पड़ा था, महाजनपद युगमें जो खूब पुष्ट हुए और पूर्व नन्द युगमें फूलेफले थे, अब इतने परिपक्व हो गये थे कि उनके आधारपर एक साम्राज्य खड़ा हो सकता था। मौर्य युगमें ही पहलेपहल राज्यकी तरफसे खानें खुदवाने, कारखाने चलाने (आकर-कर्मान्ति-प्रवर्तन) आदिकी प्रथा चली। वह भी आर्थिक और व्यावसायिक जीवनकी परिपक्वताको सूचित करती है[1]।

व्यापारको प्रोत्साहन

इस समय भारतीय व्यापारी विदेशोंसे अच्छी तरह व्यापार करने लगे थे। उनके जहाजों तथा समुद्र-यात्राओंके विवरणोंसे स्पष्ट है कि विदेशी व्यापार खूब उन्नत अवस्थामें था। विदेशों-में भारतीय वस्त्रोंकी बड़ी मांग थी। हाथीदांत, नील, टीन, चीनी, रेशमी वस्त्र और मसाले भारी मात्रामें भारतसे यूनान जाया करते थे। मलमल, छींट, लट्ठा, औषधियां, हीरा, मोती, पन्ना, लाख, फौलाद आदिकी रोममें बड़ी खपत थी। प्लिनीने लिखा है कि भारतको सोना देते-देते रोम दरिद्र हो गया। इसे रोकनेके लिए वहांके राजाने कानून बनाया और भारतीय मालका बहिष्कार कर दिया[2]।

विदेशी व्यापार

सातवाहन कालमें सबसे पहले चीन और पश्चिमीय देशोंसे भारत-का परिचय हुआ। इस समय भारत सभ्य संसारके ठीक केन्द्रमें अव-

१—जयचन्द्र विद्यालंकार: भारतीय इतिहासकी रूपरेखा, जिल्द २, पृ० ७४१।
२—वही, पृष्ठ १०४५; रीस डेविड्स: बुधिस्ट इंडिया।

स्थित था। एक ओर सुवर्णभूमि और चीन थे तो दूसरी ओर पार्थव तथा रोमन जगत्। ऐसी स्थितिमें यह स्वाभाविक था कि भारत सारे सभ्य संसारके वाणिज्यका केन्द्र बन जाय।[1]

भारतमें प्राप्त तत्कालीन सिक्कोंसे भी यही बात सिद्ध होती है कि उस समय भारतका विदेशोंसे व्यापार था। पश्चिम एशिया तथा उत्तर-पश्चिम भारतके बीच धातुओंका एक ही अनुपात था, जिससे यह स्पष्ट है कि दोनोंके बीच वाणिज्यकी खुली धारा प्रवाहित होती थी। माणिक्याला स्तूपके भीतरसे रोमन गण राज्यके अन्तिम युगके चांदीके ७ सिक्के पाये गये हैं। जलालाबादके पास अहिनपोश स्तूपके भारतसे कफ्स, कनिष्क और हुविष्कके सिक्कोंके साथ-साथ रोमन सम्राटोंके सिक्के मिले हैं। हजारा, रावलपिंडी, कन्नौज, प्रयाग, मिर्जापुर, चुनार आदिके बाजारोंमें भी रोमन सिक्के मिले हैं। केरलमें कई स्थानोंकी खुदाईमें ढेरके ढेर रोमन सिक्के मिले हैं जिनसे यह बात पूर्णतः सिद्ध हो जाती है कि भारतीय व्यापारी रोमसे अच्छी धनराशि ले आया करते थे।[2]

ऐतिहासिक ग्रन्थोंसे यह बात प्रमाणित हो जाती है कि आंध्र वंशीय राजाओंके समय दक्षिणी भारतका और कुषण वंशीय राजाओंके समय उत्तरी भारतका विदेशोंके साथ खूब व्यापार होता था।[3]

यद्यपि रोम तथा मिस्रसे भारतका अच्छा व्यापार होता था तथापि वह उस व्यापारकी अपेक्षा कहीं कम था जो पूर्वी द्वीपों, सुवर्णभूमि और चीनके साथ होता था। इन स्थानोंमें भारतके अपने उपनिवेश तथा

१—जर्नल आव दि रयल एशियाटिक सोसाइटी, १९१२, पृष्ठ १००१।

२—वही, सन् १९०४, पृष्ठ ५९१, सिवेलका लेख—'भारतमें प्राप्त रोमन सिक्के।'

३—जनार्दन भट्टः बौद्धकालीन भारत, पृष्ठ २३४–२३७।

बुचः इकोनामिक लाइफ इन ऐंश्येंट इंडिया, खंड २, पृष्ठ २१२–२६६।

वस्तियां थीं जिससे इधर अधिक व्यापार होना स्वाभाविक था। मिलिन्द पन्हो नामक जातक तथा अन्य बौद्ध ग्रन्थोंमें चीनके साथ व्यापारका उल्लेख मिलता है। रोम साम्राज्यके पतनसे रोमका व्यापार ढीला होता गया, पर चीन आदिके साथ भारतका व्यापार पूर्ववत् बना रहा।

विदेशोंसे भारत आनेवाली वस्तुओंकी संख्या बहुत परिमित थी। मूल्यवान पदार्थोंमें कई प्रकारके मोती थे, जो ईरानकी खाड़ी, अफरीकाके तट तथा यूनान सागरसे निकाले जाते थे। कपूर, दालचीनी आदि मसाले और मूंगा भारतीय महासागरके द्वीपोंसे आता था। चीनी रेशम क्रिमिस्तान और कच्चा रेशम चीनसे आता था। अर्थशास्त्रसे अनुमान होता है कि उस समय घोड़े यहां अरब और ईरानसे आते थे[1]।

कौटलीय अर्थशास्त्र, याज्ञवल्क संहिता, मनुस्मृति आदि ग्रन्थोंसे इस बातकी पुष्टि होती है कि साम्राज्यवादी कालमें विदेशी ही नहीं,

देशी व्यापार

देशी व्यापार भी उन्नतिपर था। ऋण सम्बन्धी नियमोंसे स्पष्ट है कि व्यापार-व्यवसाय उत्तरोत्तर उन्नति कर रहे थे। सरकार व्यापारियोंसे कर लेती थी। विक्रीके बटखरोंपर रोज सरकारी मुहर लगती थी ताकि व्यापारी ग्राहकोंको ठग न सकें। मालके आयात-निर्यात और विक्रीपर कर लगता था[2]। जंगल पार करनेवाले व्यापारियों, कान्तारकों पर १० प्रतिशत और सामुद्रिक व्यापारियोंपर २० प्रतिशत व्याज लगता था[3]।

मौर्यकालमें सामुत्थायिक समयानुबन्धोंकी चर्चा मिलती है।

१—गुप्त, केला : कौटल्यके आर्थिक बिचार, पृष्ठ १२७-१२८।

२—इंडियन एंटीक्वेरी, १६०५, पृष्ठ ५०-५३, लेख शामशास्त्री: 'चाणक्याज लैंड एंड रेवेन्यू पालिसी।'

३—कौटलीय अर्थशास्त्र, ३।११।

कम्पनियोंका जन्म

सम्मिलित पूंजीवाली व्यापारी कम्पनियां देश-विदेशसे व्यापार करती थीं। उनका यह संघटन इतना सवल हो गया था कि वे कभी-कभी किसी वस्तुपर एकाधिकार कर लेतीं और किसी वस्तुको वाजारमें आनेसे रोक देतीं। फिर उसका मनमाना दाम लगाकर सौ प्रतिशत तक लाभ उठातीं।[1] यह अवश्य था कि ऐसा अपराध साहस, डकैती माना जाता था।

सातवाहन कालमें स्मृतियोंमें ऋण देने-लेनेके जो नियम हैं उनमें व्यापारकी परिपक्वता स्पष्ट है। ऋणपत्र, उसके साक्षी, प्रतिभू, आधि (रेहन), आदिके कागज विषयक अनेक नियम मनुस्मृतिमें हैं। याज्ञवल्क संहितामें उनके अतिरिक्त सवन्धक, अवन्धक, साखकी रेहन (चरित्रवन्ध), वचनका रेहन, सत्यकार वन्ध आदिका उल्लेख है।

संस्थाध्यक्ष

प्रत्येक नगरमें एक पक्का चौकोर पण्यगृह रहता था, जहां तेल, भाजी, फल, गल्ला, कपड़ा, जेवर आदि विकते थे। इस सारे व्यापारकी देखभालके लिए राज्यकी ओरसे नगरमें एक अधिकारी रहता था जिसका नाम होता था—संस्थाध्यक्ष। पुराना माल कोई तभी वेच सकता था जव वह संस्थाध्यक्षके सामने प्रमाणित कर दे कि यह माल चोरीका नहीं है। व्यापारियोंके वटखरोंकी जांच उसीके जिम्मे थी। ग्राहकोंको ठगनेवाले व्यापारियोंको कड़ा दंड दिया जाता था। मेल-मिलावट करनेपर जुर्माना देना पड़ता था। व्यापारियोंके मुनाफेपर भी नियन्त्रण रहता था। नगरके फाटकपर शुल्कशालामें सवको चुंगी देनी पड़ती थी। वहां नामधाम लिखकर मुहर लगा देनेपर ही माल नगरमें जा पाता था।[2]

१—वही, ८।४;४।२।

२—कौटलीय अर्थशास्त्र, ४।७७;२।२६, काशीप्रसाद जायसवाल : मनु एंड याज्ञवल्क, १६१०,२।२४६, २५०।

स्पष्ट है कि व्यापार सुव्यवस्थित रूपसे चल रहा था। व्यापारी अपनी श्रेणियों द्वारा सहयोगसे काम करते थे, तथा दिन-दिन समृद्धिशाली वनते जा रहे थे।

साम्राज्यवादी कालमें वस्तुओंके आदानप्रदानकी प्रथा बहुत कुछ कम होने लगी। सिक्कोंका प्रचलन तेजीसे बढ़ रहा था। सवसे सामान्य

सिक्के

तांवेका सिक्का कार्षापण, कहापण था। उसका और सोनेके सिक्केका अनुपात १ और ३५ का था।[1] निष्क और सुवर्ण सोनेके सिक्के थे। इनके अतिरिक्त कंस, पाद, माप, काकणिका आदि सिक्कोंका भी प्रचार था। ये सिक्के शायद तांवे या कांसेके थे।

गुप्तकालकी समृद्धि तो प्रसिद्ध है ही, हर्षके समयमें भी भारतका व्यापार अत्यन्त समृद्ध रहा। इतिहासकारों, देश-विदेशके यात्रियों तथा पुरातत्ववेत्ताओंने मुक्तकंठसे यह वात स्वीकार की है कि साम्राज्यवादी काल भारतके इतिहासमें स्वर्ण युग समझना चाहिये।

१—रमेशचन्द्र मजूमदार : कारपोरेट लाइफ इन ऐंश्येंट इंडिया, १९२२, पृष्ठ ३४–३८।

साम्राज्यवादी कालमें कृषि, उद्योग-व्यवसाय, और व्यापार-वाणिज्य सभी उन्नतिपर थे। कला-कौशल भी विकासपर था। ऐसी अवस्थामें यह स्वाभाविक था कि उस समयका सामाजिक जीवन भी समृद्ध हो।

राज्य व्यवस्था

यह वात निर्विवाद है कि नीचेसे ऊपर तक मौर्योंका समूचा अनुशासन सुव्यवस्थित और नियमवद्ध था। किसी एक व्यक्ति या कुछ एक व्यक्तियोंकी उमंगों या स्वेच्छाचारका उसपर कुछ प्रभाव न हो सकता था।[1] जो नया कानून वनता था वह या तो चरित्रके रूपमें या राजशासनके रूपमें। चरित्र वनानेवाले प्रजाके छोटे-वड़े निकाय या समूह—ग्राम, श्रेणि, नगर, जनपद—थे और राजशासनोंको जारी करनेवाली स्पष्टतः राजाकी परिषद् थी।[2] मौर्य साम्राज्यके अधीन प्रायः प्रत्येक जनपदका अपना-अपना स्पष्ट व्यक्तित्व था, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं। अपने अपने जनपदके लिए भक्ति और अभिमानका भाव वहुत उत्कट था।[3] उस समयकी भारतीय प्रजामें सामूहिक जीवन और स्वाधीनताका भाव वहुत सचेष्ट था और सव कुछ देखते हुए कहना पड़ता है कि प्रजा और राजाकी शक्ति परस्पर इस प्रकार तुली हुई थी कि राजा उच्छृङ्खल न हो सकता था।[4] समाजके केन्द्रमें राजा मंत्रिणः और मंत्रिपरिषद्की सहायतासे शासन करता था। मंत्रिणः, मंत्रियोंका समूह राजाके वास्तविक साथियों और शासनके वास्तविक संचालकोंका समुदाय था जिसमें ३,४ व्यक्ति होते थे। अत्यधिक कार्यमें मंत्रियों और मंत्रिपरिषद्की संयुक्त वैठक होती और उसमें वहुमतके अनुसार कार्य किया जाता था। मंत्रिपरिषद्में १२,१६,२० या यथा-

---

१—जयचन्द्र विद्यालंकार : भारतीय इतिहासकी रूपरेखा, जिल्द २, पृष्ठ ७०३।
२—वही, पृष्ठ ७०५। ३—वही, पृष्ठ ७१३। ४—वही, पृष्ठ ७१६।

सामर्थ्य मंत्री होते थे।[1] कौटल्यके अनुसार राज्यका शासन कार्य सेना, न्याय, नगर शासन, प्रान्तीय शासन, गुप्तचर, कृषि, नहर, व्यापार-वाणिज्य, नौ, शुल्क, आकर, सूत्र, सुरा, पशुरक्षा, जनगणना, आयव्यय, परराष्ट्र आदि लगभग ६० विभागोंमें बँटा हुआ था।

न्याय व्यवस्था

न्यायकी कड़ी मर्यादा थी। दीवानी, फौजदारी अदालतोंका कार्य विधिवत् चलता था। धर्मस्थ, प्रदेष्टा और राजातक दंडसे मुक्त न थे। मेगास्थेनेने स्वीकार किया है कि मौर्योंका सेना-विभाग अत्यन्त सुव्यवस्थित था। प्रत्येक विभागके जिम्मे अनेक बातें थीं। शुल्कके महकमेका नियम था कि राष्ट्रको पीड़ा देनेवाले और फलहीन मालको न आने दिया जाय। राष्ट्रका उपकार करनेवाला माल और दुर्लभ चीज चुंगीसे मुक्त कर दिये जायँ।[2] गुप्त-चर विभाग बड़ा दक्ष था। भीतरी, बाहरी शत्रुओंका पता लगाना और निकटस्थ राज्योंकी गतिविधिका ध्यान रखना इस विभागके जिम्मे था।

साहित्य और कला

इस कालमें ज्ञान और वाङ्मयकी अच्छी उन्नति हुई। सूत्रोंका युग मौर्यकालको ढक लेता है। त्रिपिटक भी अशोकके समयकी तीसरी संगीतिके बाद पूरा हुआ। जैन आचार्य भद्रबाहुने एक निर्युक्तिपर भाष्य लिखा। कौटलीय अर्थशास्त्र तो इस कालकी महत्त्वपूर्ण रचना है ही। ललित कलाओंका भी अच्छा विकास हुआ। अशोकके शिलालेखोंकी कारी-गरीकी आज भी प्रशंसा की जाती है। उस समय साधारणतः लकड़ीके मकान बनते थे, पर अशोकने पत्थरकी रचनाओंको प्रोत्साहन दिया।

समाज अत्यन्त उन्नत अवस्थामें था। जनता सुखी और समृद्ध

१–कौटलीय अर्थशास्त्र, १।१५। २–वही, २।२१।

थी। मेगास्थेनेने उस समयका वर्णन किया है कि ब्राह्मण त्याग और तपस्यामय तथा संयमी जीवन विताते थे। क्षत्रिय युद्धके लिए तैयार किये जाते थे। शान्ति-कालमें वे आलस्यमय जीवन विताते थे और नाचरंगमें ही मस्त रहते थे। किसान, चरवाहे और शिल्पी खेती करते थे।

सामाजिक जीवन

आठ प्रकारके विवाहोंके वैध होनेपर भी स्त्रीकी रक्षाकी समुचित व्यवथा थी। उसे दाय पानेका पूरा अधिकार था। समाजमें उसका आदर था। पतिपत्निमें यदि कोई किसीके प्रति दुर्व्यवहार करे तो उसपर मुकदमा चलानेकी छूट थी।

महिलाओंकी स्थिति

घरमें काम करनेवाले दासोंके प्रति इतना अच्छा व्यवहार होता था कि मेगास्थेनेने समझा कि भारतमें दासत्व प्रथा है ही नहीं। ऐसा प्रतीत होता है कि जो थोड़े दास थे भी, उन्हें मुक्ति दिलाना और भारतकी समूची प्रजाको स्वतंत्र बनाना कौटल्यका ध्येय था।[2]

इस कालमें हमें नट, बाजीगर, गणिका आदि मनोरंजन करनेवाले वर्गके लोगोंका विशद वर्णन मिलता है। लोग नृत्य-संगीत, खेल-तमाशा, द्यूतक्रीड़ा; लाव, कुक्कुट, मेष-युद्ध आदिमें विशेप रस लेते थे। स्त्रियाँ भी खेलकूदमें सम्मिलित होती थीं। शराबका दौर चल जाना भी बुरा न समझा जाता था। लोगोंको खाने-पीने, ओढ़ने, रहने और मनोविनोद करनेकी पूरी सुविधा थी। ये सब समृद्ध और उन्नत समाजके लक्षण हैं। स्पष्ट है कि साम्राज्यवादी कालमें भारतकी प्रजा सुखी और प्रसन्न थी।

मनोविनोद

●

१—कौटलीय अर्थशास्त्र, ३।३।

२—जयचन्द्र विद्यालंकार : भारतीय इतिहासकी रूपरेखा, जिल्द २, पृष्ठ ७३७।

पौराणिक काल

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

विनकासिमसे मुहम्मद गोरी ! पाँच सौ वर्षका यह सन्धिकाल विचित्र उथलपुथलसे भरा था। विनकासिमकी विजय भारत और इस्लामी देशोंके वीचकी एक रोचक और परिणामशून्य घटना वतलायी जाती है। उसकी सिंध-विजय अधूरी ही रह गयी और खलीफाके आदेशसे वेचारा फांसीपर लटका दिया गया।

उस समय उत्तर तथा पूर्वमें राजपूतोंके वड़े राज्य थे। दक्षिणमें राष्ट्रकूटोंकी तूती वोलती थी। ये सव विदेशियोंका सामना करनेमें पूर्णतः समर्थ थे। ऐसी स्थितिमें यह सम्भव ही कैसे था कि वहां पर मुसलमानी शासनकी नींव जम सके ?

प्रतिहार

इस समय वत्सराज नामक एक प्रतिहारने उत्तरी भारतसे वंगाल-तक अपना सिक्का जमा लिया। पर जव उसका पतन आरम्भ हुआ तो कन्नौजके आसपास ही उसका सारा साम्राज्य केंन्द्रित हो गया।

जयचन्द्र

इस पौराणिक कालमें ग्वालियरके कच्छप घट, दहल (वघेलखंड)के कलचुरि, मालवाके परमार, वंगालके पाल, गुजरातके सोलंकी अथवा चालुक्य, कन्नौजके गहरवार अपनी वीरताके लिए विशेष रूपसे प्रख्यात रहे। गहरवारोंमें सवसे प्रतापी राजा गोविन्द चन्द्र था जिसने विहारके पश्चिमी भागपर अपना आधिपत्य जमा लिया था। उसका पौत्र जयचन्द्र दिल्लीपति पृथ्वीराजसे लड़ा था। इसी कारण उसने पृथ्वीराजको कोई सहायता न पहुंचायी और ११९२ में तराइनके मैदानमें हिन्दू साम्राज्यका अन्त हो गया। विजयका सेहरा मुहम्मद गोरीके माथे वँधा।

सातवाहनोंकी राज्यशक्ति लुप्त होनेके उपरान्त दक्षिणमें वातापिके चालुक्य, मान्यखेतके राष्ट्रकूट, पश्चिमी चालुक्य, लिंगायत, देवगिरिके

दक्षिणी राज्य

यादव, वरंगलके काकतीय, द्वारासमुद्रके होयसल, कलिंगके पूर्वी गंग, पल्लव, चोल, पांड्य और चेर वंश अपनी वीरताके लिए प्रख्यात हुए ; पर क्रमशः सबके सब पानीके बुलबुलेकी भांति विलीन हो गये।

इसी बीच गजनीके महमूदने अपनी गद्दीपर बैठकर प्रति वर्ष भारत-पर आक्रमण करनेका कार्यक्रम बनाया। १००० ई० से १०२६ ई०

गजनवी और गोरी

तक उसने १७ बार भारतपर आक्रमण किये और जितना बन सका भारतको लूटा। सोमनाथका आक्रमण तो इतिहास-प्रसिद्ध है। गजनवी तो लूट-पाटकर ही लौट गया पर उसके बाद मुहम्ममगोरी तो अपना प्रभुत्व स्थापित करनेके ही उद्देश्यसे यहां आया। गजनीपर कब्जेके बाद उसने भारतपर भी कब्जा कर लिया। राजपूतों और हिन्दू राजाओंकी पारस्परिक फूटने उसका काम बना दिया। अपने गुलाम कुतुबुद्दीनकी सहायतासे उसने भारतके भारी भूभागपर अपना आधिपत्य जमा लिया।

व्यापक राजनीतिक उथलपुथल होते रहनेपर भी इस कालका कृपक-जीवन पूर्ववत् ही था। किसानोंको चौपट करना तत्कालीन सैनिकोंका उद्देश्य न था। तभी तो सामने ही घमासान युद्ध मचा रहता था और बगलमें ही किसान मस्तीसे गीत गाता हुआ हल जोता करता था। उसकी खेतीमें कोई व्याघात न होता था।

कृपक-जीवन

इन दिनों भी किसान शान्तिपूर्वक खेती करता था। बहुत हलका कर चुकाता था। थोड़ासा लगान देता था[1]। राजा और सामन्त उसकी रक्षा और समृद्धिके लिए विशेष रूपसे सचेष्ट रहते थे। तालावों, कुओं और नहरोंसे सिंचाई होती थी। प्रत्येक नगर अथवा ग्राममें तालाब या कुंड अवश्य रहता था। राजा लोग सिंचाईके लिए बड़े-बड़े बांध बनवाकर, पर्वतोंके बीचकी भूमिको घेरकर झीलें बनवा देते थे। इनमें वर्षाका तथा आसपासकी नदियोंका जल एकत्र हो जाता था। आज भी राजपूतानेमें ऐसी कितनी ही झीलें हैं। धारा नगरीके राजा भोजने २५० वर्गमील परिमाणकी एक झील बनवायी थी। नहरोंका भी प्रचलन था। राजतरंगिणी आदि ग्रन्थोंसे इसका पता चलता है।[2]

सिंचाई

विक्रमकी तेरहवीं शताब्दीके पूर्वार्द्धतक यहांके गांवोंके संस्थानकी चर्चा करते हुए पंडित गौरीशंकर हीराचंद ओझाने लिखा था कि चोल राजराज (प्रथम)के शिलालेखसे १५० गांवोंमें ग्राम-सभाओंके अस्तित्वका पता चलता है। ग्राम-सभाओंके दो रूप—विचार सभा और शासन सभा—रहते थे। सारी

ग्राम संस्थाएं

१—रामदास गौड़: हमारे गांवोंकी कहानी, १९३९, पृष्ठ ७७–७८।

२—परमात्मा शरण: मध्यकालीन भारत, १९३५, पृष्ठ २५।

सभाके सदस्य कई समितियोंमें विभक्त कर दिये जाते थे। कृषि, उद्यान, सिंचाई, व्यापार, मन्दिर, दान आदिके लिए भिन्न-भिन्न समितियां थीं। एक समय एक तालावमें पानी अधिक आनेके कारण ग्रामको हानि पहुंचनेकी सम्भावना होनेपर ग्राम-सभाने तालाव समितिको इसका सुधार करनेके लिए विना मद रुपया दिया। उसने यह भी कहा कि इसका सूद मन्दिर समितिको दिया जाय। सिंचाईकी ओर विशेष ध्यान दिया जाता था। जलका कोई भी स्रोत व्यर्थ नहीं जाने दिया जाता था। नहरों, तालावों और कुओंकी समय-समयपर मरम्मत होती रहती थी। भारतवर्षमें इतने परिवर्तन हुए परन्तु किसीने पंचायतोंको नष्ट करनेका प्रयत्न नहीं किया।[1]

इससे सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि पौराणिक कालमें भी कृषि उन्नत अवस्थामें रही।

१—गौरीशंकर ही० ओझा : मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, पृष्ठ १५३—१५५।

साम्राज्यवादी कालमें उद्योग-व्यवसायोंकी उन्नतिका जो क्रम चल रहा था वह इस कालमें भी जारी रहा। युद्ध होते तो अवश्य थे, पर समाजपर उनका कोई विशेष प्रभाव नहीं दिखाई पड़ता था। यों साधारणतः समाज सुखी ही था। वह वैभवकी ही गोदमें पल रहा था। अतः उसके नाना उपकरणोंके लिए नाना प्रकारके उद्योग-व्यवसायोंका पनपना स्वाभाविक था।

उद्योगोंका विकास

वस्त्र-उद्योग उन्नतिपर था। सूती, ऊनी, रेशमी सभी प्रकारके वस्त्र प्रचुर मात्रामें तैयार होते थे। देशकी आवश्यकता तो वे पूरी करते ही थे, विदेशोंको भी उनका निर्यात होता था। वस्त्रोंकी बुनावटमें नित नयी कारीगरियां निकल रही थीं।

वस्त्र उद्योग

विभिन्न धातुओंके उद्योग उत्तरोत्तर विकसित हो रहे थे। देशमें सोना, चाँदी, लोहा, ताँबा, जस्ता, पीतल आदिकी कमी न थी। इन सबसे आवश्यक वस्तुएँ तैयार होती थीं।

धातुओंके उद्योग

सोने, चाँदीके आभूषणोंका विशेष प्रचलन था। हीरा, मोती आदि रत्न आभूषणोंमें लगाये जाते थे। महमूद गजनवी रत्नों और आभूषणोंके रूपमें ही देशकी भारी सम्पत्ति लूटकर लेगया था।

लोहा तथा अन्य धातुओंको गलाकर उत्तमसे उत्तम वस्तुए तैयार की जाती थीं। यह कला और यह उद्योग कितनी उन्नत अवस्थामें था इसका अनुमान धार तथा दिल्लीके विशाल लौह-स्तम्भोंसे किया जा सकता है। साम्राज्यवादी कालमें बने ये स्तम्भ आजके युगमें आश्चर्य उत्पन्न करते हैं। श्री के० टी० शाहने ठीक ही लिखा है कि जिन कारीगरोंने ऐसे विशाल स्तम्भोंका निर्माण किया उनकी कारीगरीको

विकसित होनेमें अवश्य ही कई शताब्दियाँ लगी होंगी।[1] पौराणिक कालमें इस उद्योगके ह्रासके कोई प्रमाण नहीं मिलते। यह माना जा सकता है कि इस कालमें भी यह उद्योग उन्नतिपर था।

वास्तु कला

इस कालमें विभिन्न शिल्प, उद्योग और कलाएँ विकसित हो रही थीं। अनेक चट्टानोंको काट काटकर बनाये गये विहार, चैत्य और आर्य तथा द्रविड़ शैलियोंके मंदिर, अजन्ताकी गुफाओंकी उत्कृष्ट चित्रकला आदि उसके प्रमाण हैं। इन चित्रोंपर समयने कुछ भी प्रभाव नहीं डाला। इससे प्रकट है कि यह उन्नति किस सीमातक पहुँच चुकी थी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि उथलपुथलवाला काल होनेपर भी इस कालमें भारतीय उद्योग-व्यवसायोंने उन्नति ही की, अवनति नहीं।

१—के० टी० शाह : ट्रेड, टेरिफ एंड ट्रांसपोर्ट इन इंडिया, १९२३, पृष्ठ १७।

साम्राज्यवादी कालकी व्यापारिक परम्परा इस कालमें भी चलती आरही थी। देशी और विदेशी व्यापार पूर्ववत् उन्नतिपर था।

विदेशी व्यापार

विदेशी यात्रियोंके विवरणोंसे यह वात पूर्णतः सिद्ध हो जाती है कि इतिहासके आरम्भसे लेकर अशोक कालतक ही नहीं, सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दीतक वस्त्र-उद्योगमें भारत ही विश्वमें अग्रणी रहा।[1]

इस कालमें सूती, रेशमी वस्त्रके अतिरिक्त हाथी-दांतकी वस्तुओं, विभिन्न धातुओंके पदार्थों, चन्दन, नील, अफीम, मसालों, ओपधियों, सुगन्धित पदार्थों, जवाहरात आदि अनेक वस्तुओंका विदेशोंसे व्यापार होता था। भारतसे विदेशोंको जानेवाली वस्तुओंमें अधिक संख्या विलासिताकी वस्तुओंकी होती थी। विदेशोंसे जो वस्तुएँ यहाँ आती थीं उनमें प्रमुख वस्तुएँ होती थीं: शीशे और चीनी मिट्टीके वर्तन, फल, शराव, घोड़े आदि। यहाँसे भारतीय माल प्रचुर मात्रामें विदेश जाता था और उसका पैसा भी अधिक मिलता था। आयातकी अपेक्षा निर्यात अधिक होनेसे विदेशोंसे सोना-चाँदी भारी मात्रामें आता था।

विदेशी व्यापारी यहाँ सातवीं शताब्दीसे ही आने लगे थे। चेर, पांड्य और चोल नरेश उन्हें पर्याप्त सहायता देते थे। इस प्रकार विदेशी सम्पत्ति यहांपर खूब एकत्र होती चल रही थी। यही कारण था कि महमूद गजनवी जैसे साहसिकोंकी लूटसे भारतकी कोई विशेष क्षति नहीं हुई। यों इनकी लूट इतनी भारी थी कि साधारण खाता-पीता देश तो एक वारकी ही लूटमें अधमरा हो जाता।

१—के० टी० शाह: ट्रेड, टेरिफ एंड ट्रांसपोर्ट इन इंडिया, पृष्ठ १२।

देशके भीतर व्यापार क्रमशः उन्नति कर रहा था। अलबेरुनीने लिखा है कि इस समय व्यापार-वाणिज्य उन्नतिपर थे। राजा लोग

देशी व्यापार

किसानों, मजदूरों, शिल्पियों और व्यापारियोंसे आय-कर लेते थे। केवल ब्राह्मण करमुक्त थे। प्राचीन तमिल इतिहाससे पता चलता है कि तत्कालीन शासकोंको राजकार्यमें सहायता देनेके लिए ५ समितियाँ होती थीं। इनके अतिरिक्त जिलोंमें ३ सभाएँ होती थीं जिनमेंसे व्यापारियोंकी सभा व्यापारादिका प्रबन्ध करती थी।[१]

वस्तुओंका आदानप्रदान. पलटौन बहुत कम हो रहा था। देशमें

मुद्रा

सोने, चाँदी और ताँबेके सिक्के पूर्ववत् चल रहे थे। उनपर विदेशियोंके आक्रमणका कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा था।

स्पष्ट है कि इस कालमें भी व्यापार-वाणिज्य उन्नतिपर था।

१–गौरीशंकर ही० ओझा : मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, पृष्ठ १५३–१५५।

भिक्षुओंके पारस्परिक वैमनस्य और राजकीय आश्रयके अभाव आदिके कारण बौद्ध धर्म क्रमशः विलुप्त होगया। कुमारिल भट्ट तथा स्वामी शंकराचार्य जैसे धुरंधर विद्वानों और दार्शनिकोंके प्रयत्नसे ब्राह्मण धर्मका पुनरुत्थान हुआ। रामानुज जैसे आचार्योंके प्रयत्नसे जैनधर्म भी धूमिल पड़ गया।

वर्ण व्यवस्था

इस समय वर्ण-व्यवस्था जोरपर थी। ब्राह्मण त्याग-तपस्यामय जीवन बिताते थे। सभी वर्णोंमें अनेक शाखा-प्रशाखाएँ निकल आयीं। चांडालोंको सर्वथा अलग रहना पड़ता था।

नारीकी स्थिति

महिलाओंका समाजमें आदर था। उनकी शिक्षा-दीक्षाकी ओर ध्यान दिया जाता था। मंडन मिश्रकी पत्नीकी भाँति पंडिताओंकी कमी न थी। राजकुमारियाँ अश्वारोहण और शस्त्र-संचालनकी शिक्षा ग्रहण करती थीं। संगीत और नृत्यमें पारंगत होना महिलाओंका विशेष गुण समझा जाता था। पर्दा-प्रथाका अभी जन्म नहीं हुआ था। कन्नौजके राजा जयचन्द्रकी पुत्रीके स्वयंवरसे ज्ञात होता है कि उस समय यह प्रथा जीवित थी। राजकुलमें सती प्रथा भी चालू थी।

शासन व्यवस्था

राजपूत नरेश स्वेच्छाचारी होते हुए भी राजामात्य, पुरोहित, महाधर्माध्यक्ष, महासंधिविग्रहक, महासेनापति आदि मंत्रियोंकी मंत्रणासे ही शासन करते थे। सारा राज्य भुक्तियों (प्रान्तों) और प्रत्येक प्रान्त विषयों (जिलोंमें) विभक्त रहता था। प्रत्येक जिलेमें अनेक ग्राम होते थे जिनका प्रबन्ध स्थानीय कर्मचारी ग्रामिक (मुखिया), शौल्किक (कर वसूलकर्ता) तथा तलवल्कर (पटवारी) करते थे। राजपूत राज्योंमें पंचायतोंके हाथमें ग्रामका शासन प्रबन्ध रहता था।[1] ओझाजी भी इस बातका समर्थन करते हैं।[2]

१—टाड : टाडका राजस्थान।

२—गौरीशंकर हो॰ ओझा : मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, पृष्ठ १५३-१५५।

जमीनकी नापजोख करके उपजका छठा अंश किसानोंसे लगानके रूपमें लिया जाता था। सेना भी पर्याप्त रहती थी। न्याय कठोर था पर ब्राह्मण, क्षत्रिय फाँसीके दंडसे मुक्त थे। अपनेको निर्दोष सिद्ध करनेके लिए लोगोंको कभी-कभी आगपर चलना पड़ता था। व्यापार. कृषि, कर, एकाधिकार आदिके विषयमें राजा द्वारा निर्मित नियम ही कानून माने जाते थे।

कला और साहित्य

पौराणिक कालकी वास्तु-कलाके अवशेष आज भी उपलब्ध हैं। नगर, वेसर और द्रविड़ तीनों ही शैलियाँ इस कालमें खूब विकसित हुईं। बौद्ध गयासे लेकर सीमान्ततक, कांगड़ासे धारवाड़तक, वेसर शैलीके चिह्न मिलते हैं। उड़ीसाका भुवनेश्वर मंदिर, बुन्देलखंडका खजुराहो मन्दिर, आबूका जैन मंदिर नगर शैलीका उत्तम उदाहरण है। ऐलोराका कैलाश मंदिर, ममल्लपुरम्‌का रथ मंदिर, कांचीका पल्लव मंदिर द्रविड़ शैलीका प्रतिनिधित्व करता है। दक्षिणमें चालुक्य शैलीके उत्तम प्रमाण मिलते हैं।

राजपूत नरेशोंने विद्वानों और गुणियोंको आश्रय दे रखा था। इस कारण इस कालमें साहित्यकी अच्छी अभिवृद्धि हुई। माघका शिशुपालवध, भर्तृहरिका भट्टि काव्य, श्रीहर्षका नैषध चरित्र, जयदेवका गीतगोविन्द, भवभूतिके उत्तर रामचरित, मालती माधव, महावीर चरित, राजशेखरकी कर्पूरमंजरी, सोमदेवका कथा सरित्सागर, कल्हण-की राजतरंगिणी, वल्लालका भोजप्रबन्ध इसी कालकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। भास्कराचार्य जैसे ज्योतिषी, वाग्भट्ट जैसे आयुर्वेदके पंडित, मिता-क्षरा भाष्यके रचयिता विज्ञानेश्वर जैसे पंडित इसी कालकी उपज हैं।

जनता सुखी थी। घरघरमें धनधान्य भरा था। समाजमें कुछ वैषम्य था सही, पर वह नगण्य था। घरेलू दासोंतककी स्थिति अच्छी थी।

मध्य-कालीन युग

सन् १२०६ ईसवीसे १७६० ईसवीतक

पठान काल १२०६ ई० से १५२६ ई०

मुगल काल १५२६ ई० से १७६० ई०

पठान काल

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

मुहम्मदगोरीको यह चिन्ता न थी कि कोई पुत्र नहीं है तो राजसिंहासनपर कौन बैठेगा। कहता था 'कोई बेटा नहीं तो क्या, हजारों तुर्क गुलाम मेरे बेटे हैं।' उसके गुलामोंने उसकी बात रखी। वह मरा तो उसका दास कुतुबुद्दीन ऐबक, जो भारतमें उसका वाइसराय था दिल्लीका सुल्तान बना।

दास वंश

कुतुबुद्दीन ऐबकने जिस दास परम्पराकी नींव डाली वह लगभग ८५ वर्ष तक जीवित रही। वह स्वयं योग्य शासक था, उदार था और दानी था। लोग उसे 'लाख-बख्श' कहकर पुकारते थे। बुद्धिमत्ता और न्याय-प्रियताके लिए वह प्रसिद्ध था। उसका बेटा आरामशाह अयोग्य निकला तब उसका दामाद शमसुद्दीन ईल्तुतमिश उसे पराजितकर दिल्लीकी गद्दीपर बैठा।

ईल्तुतमिश जब सन् १२२१ में गद्दीपर आया तो बहुत थोड़ा सा प्रदेश उसके अधिकारमें था पर सन् १२३६ में, जब वह मरा, तो हिमालयसे नर्मदा और बंगालसे सिन्धतकका सारा प्रदेश उसके अधिकारमें था। ईल्तुतमिश दासवंशीय सुलतानोंमें सबसे योग्य और श्रेष्ठ था।

ईल्तुतमिशकी बेटी रजियाने गद्दीपर बैठकर अपनी योग्यता द्वारा सिद्ध कर दिया कि वह अपने बिलासी और अयोग्य सभी भाइयोंसे कहीं योग्य है। उसने मर्दानी पोशाक पहन, बुर्का त्यागकर जब दरबारमें बैठना आरम्भ किया तो कुछ अमीरोंको विरोधका मौका हाथ लगा। इस विरोधने इतना उग्ररूप धारण किया कि रजिया और उसका पति दोनों ही कैद कर लिये गये। चालीस अमीरोंका गुट बड़ा प्रबल हो उठा, जिसका दमन करना टेढ़ी समस्या हो गयी।

१२४६ में ईल्तुतमिशका बेटा नासिरुद्दीन महमूद गद्दीपर बैठा। मुसलमान लेखकोंने उसकी दयालुता और सच्चरित्रताकी बड़ी प्रशंसा की है। उसका वजीर गयासुद्दीन बलबन आरम्भसे ही उस पर हावी हो गया, जिसके सम्मुख सुलतान फीका पड़ गया।

बलबन ईल्तुतमिशका खरीदा हुआ गुलाम था। वह बड़ा कट्टर और कठोर शासक था। उसका २० वर्षका शासन कठोर दमनकी घटनाओंसे भरा पड़ा है। बलबनके दोनों ही बेटे, बुगराखां और केकुबाद, विलासी और अयोग्य निकले। उन्होंने दासवंशकी लुटिया डुबो दी। फलत: १२९० में दिल्लीको गद्दीपर खिलजी वंशका आधिपत्य जमा।

खिलजी वंश

जलालुद्दीन फीरोज खिलजी इस वंशका पहला सुलतान था। गद्दी-पर बैठते समय उसकी अवस्था ७० वर्षकी थी। वह दयालु और उदार था। उसका भतीजा और दामाद अलाउद्दीन उसका कत्लकर गद्दीपर बैठा। अलाउद्दीन वीर सैनिक, कुशल सेनापति और कठोर तथा योग्य शासक था। उसके साम्राज्य और उसकी रूपलिप्साके साथ पद्मिनी जैसी सैकड़ों राज-पूत रमणियोंके जौहरकी कहानियां जुड़ी हैं। २० वर्ष तक खूब कड़ाई-से शासन करके सन् १३१६ में वह मर गया। मरते ही खिलजी वंशका खात्मा हो गया। खुसरोने अपने मालिक और उसके बच्चोंके रक्तसे हाथ रंगकर दिल्लीका सिंहासन प्राप्त किया पर शीघ्र ही उसे भी मौतके घाट उतरना पड़ा।

तुगलक वंश

खिलजी वंशमें जब कोई 'नाम लेवा पानी देवा' न रहा तो शासन-की बागडोर तुगलक वंशके हाथमें आयी। गयासुद्दीन तुगलक सन् १३२० में जिस समय दिल्लीके सिंहासनपर बैठा उस समय सारा साम्राज्य तो छिन्न-भिन्न हो रहा था, शाही खजाना भी खाली था। गयास वृद्ध था पर उसमें पराक्रम और कर्तव्यनिष्ठा भरी थी। उसने प्रजाके असंतोषको दूरकर उसे सुखी बनानेका प्रयत्न किया।

गयासके वाद मुहम्मद विन तुगलकशाह गद्दीपर वैठा। वह कुशाग्र-वुद्धि, विद्या-प्रेमी, कवि और लेखक था। वीर सैनिक और कुशल सेनापति भी था। वह सनकी था। तांवेका सिक्का उसीके मस्तिष्क-की उपज है। दिल्लीसे राजधानी हटाकर साम्राज्यके वीचोंवीच स्थित देवगिरिमें ले जानेकी वात उसे जैसे ही सूझी वैसे ही उसने उसे कार्यान्वित कर दिया, पर योजना असफल हुई और असंख्य व्यक्ति वीचमें ही मर गये। तांवेका सिक्का चलानेकी योजनासे भी हानि हुई। उसका साम्राज्य दिन-दिन जर्जर होता जा रहा था। सूवेदार विद्रोह कर रहे थे। उन्हें दवानेके प्रयत्नमें १३५१ में उसकी मृत्यु हो गयी। उसके वाद उसका चचेरा भाई फीरोज तुगलक दिल्लीके सिंहासनपर वैठा।

फीरोज तुगलक संकीर्ण हृदयवाला धर्मान्ध शासक निकला। शासन-व्यवस्था तो उसने ठीक कर ली, किन्तु साम्राज्यके खोये हुए अंशों-को लौटानेमें उसे सफलता नहीं मिली। १३८८ में फीरोज तुगलकके मरते ही राजगद्दीके लिए शाहजादोंमें लड़ाई ठन गयी। अमीरोंकी वन आयी। वे जिसे चाहते गद्दीपर वैठाते, जिसे चाहते उतारते। इस वंशका अन्तिम शासक महमूद तुगलक सर्वथा अयोग्य निकला। तैमूर-लंगने भारतपर आक्रमणकर तुगलक वंशकी रीढ़ तोड़ दी। १४१२ में महमूदकी मृत्युके साथ तुगलक वंश भी सदाके लिए कब्रके भीतर सो गया।

सैय्यद वंश

महमूद तुगलकके वाद खिज्रखां सैयदने सन् १४१४ में दिल्लीके सिंहासनपर अपना आधिपत्य जमाया पर इस समय साम्राज्यका विस्तार ५० मील भी नहीं था। इसी स्थितिमें खिज्रखांने ७ वर्षतक दिल्लीपर शासन किया। उसके वंशके तीन शासक और इस गद्दीपर वैठे, पर सवके सव निकम्मे निकले। १४४३ में अन्तिम सुलतान आलमशाह गद्दीपर वैठा किन्तु पंजावके सूवेदार वहलोल लोदीने उसका आधिपत्य माननेसे इनकार

कर दिया। १४५१ में लोदी सुलतान बना। बेचारा आलमशाह फकीर बनकर बदायूंकी ओर चल दिया।

लोदी वंश

बहलोल वीर और साहसी तो था ही, योग्य शासक भी था। उसने योग्यतापूर्वक अमीर विद्रोहियोंका दमनकर उन्हें अपनी अधीनतामें रहनेके लिए विवश किया। प्रजाके प्रति उसका व्यवहार अच्छा था। १४८८ में उसकी मृत्यु होनेपर उसका बेटा निजामखां सिकन्दर लोदीके नामसे गद्दीपर बैठा। इसने अफगानोंको अपनी मुट्ठीमें किया, शासन-व्यवस्था ठीक की तथा भ्रष्टाचार और बेईमानी रोकनेके लिए सफल प्रयत्न किया। इब्राहीम लोदी पिताके समान चतुर न था। उसका जीवन लड़ते ही बीता। १५२६ में पानीपतके प्रसिद्ध मैदानमें दिल्लीके सिंहासनका फैसला हुआ। इब्राहीम लोदी पराजित हुआ और दिल्लीका साम्राज्य मुगल वंशके हाथमें चला गया।

स्वतंत्र साम्राज्य

तीनसौ वर्षके भीतर ही पठान साम्राज्य उठा, पनपा और सदाके लिए इतिहाससे विलीन हो गया। गयास और महमूद तुगलकको छोड़ इस कालके सभी शासकोंने धर्मान्धिता दिखायी। इसीका परिणाम था कि साम्राज्य जम न सका। उत्तर भारतमें जौनपुर और बंगाल, मध्य भारतमें मालवा, गुजरात, सिन्ध और खानदेश, दक्षिणमें बहमनी और विजय नगर राज्य समय पाकर बलिष्ठ होते गये और दिल्लीश्वर उनको बांधकर न रख सके। ये साम्राज्य छोटे-छोटे अवश्य थे पर प्रायः सभी सुव्यवस्थित थे। अलाउद्दीनने चित्तौड़पर थोड़े दिनोंके लिए अधिकार कर लिया था किन्तु उसके मरते ही राजपूत स्वतंत्र हो गये। राणा कुम्भा, राणा संग्रामसिंह, राणा सांगाकी वीरता, प्रतिभा और योग्यताका इतिहास साक्षी है।

सन् १३४७ में विदेशीय अमीरोंने संघटित होकर हसनकी अध्यक्षतामें एक स्वाधीन राज्यकी स्थापना की। १४८२ में उसके उत्तराधिकारी महमूदशाहकी अयोग्यता उक्त साम्राज्यके पतनका कारण बनी। उसके पांच टुकड़े हो गये और बरारमें ईमादशाही, अहमदनगर में निजामशाही, बीजापुरमें आदिलशाही, गोलकुंडामें कुतुबशाही तथा बीदरमें बरीदशाही राज्योंकी स्थापना हुई।

बहमनी राज्य

दक्षिण भारतमें कोई भी ऐसा राज्य अथवा हिन्दू राजवंश न था जिसकी समता विजय नगरसे की जाय। मध्ययुगमें केवल यही राज्य था जिसने हिन्दू गौरवकी रक्षा की।[1] तेरहवीं शतीके अन्तिम वर्षोंमें इस्लाम मतावलम्बी तुर्कों और अफगानोंने दक्षिणमें बढ़ना आरम्भ किया। खिलजी सेनाएं अपूर्ववेगसे बढ़ती हुई कांची, मथुरा, श्रीरंगम् एवं रामेश्वरम्‌तक पहुंच गयीं। दक्षिणके हिन्दू राज्योंके अस्त हो जानेसे वहांके समाजकी दशा दयनीय हो गयी तथापि हिन्दू शक्ति हताश न हुई। आत्म और गौरव-रक्षाके लिए प्रयत्न होते रहे। इनमें सबसे प्रमुख और सफल विजयनगर राज्यकी स्थापना हुई। १३३६ से १५६५ अर्थात् सवा दो सौ वर्ष तक इसने हिन्दू स्वतंत्रता और संस्कृतिकी पताका ऊंची रखी।[2] इस बीच यहां पर संगम, सालुव, तुलुव और आरविदु राजवंशोंने शासन किया।

१—वासुदेव उपाध्याय: विजय नगरका साम्राज्य, पृष्ठ २४६।

२—वही, भूमिका, लेखक—डाक्टर रामप्रसाद त्रिपाठी।

पठानकालमें भारतकी प्राचीन ग्राम-संस्था पूर्ववत् वनी रही। मुसलमान शासक ग्रामोंके प्रवन्ध आदिके पचड़ेमें नहीं पड़ना चाहते थे। उन्हें अपने करसे मतलव था। शेष प्रवन्ध ग्राम-पंचायतें ही किया करती थीं। ऐसी स्थितिमें जवतक करकी मात्रामें विशेष वृद्धि न हो तवतक स्थितिमें परिवर्तन होनेकी कोई वात ही नहीं थी। किसान अपनी खेतीमें लगे रहते, खाते-पीते मस्त रहते। गाँवोंके अधिकांश मामले पंचायतें ही तय करतीं। उत्तर भारतमें ही नहीं, दक्षिण भारतमें भी ग्राम पंचायतोंका प्रवन्ध था।

राज्यकी आयका मुख्य स्रोत मालगुजारी थी। साम्राज्य अनेक प्रान्तोंमें विभक्त रहता था और प्रत्येक प्रान्त एक अमीरके प्रवन्धमें रहता था, जो 'नायक' अर्थात् सुलतानका प्रतिनिधि कहा जाता था। वह अपना खर्च काटकर शेष मालगुजारी केन्द्रीय सरकारके खजानेमें भेज दिया करता था। कृषि विभागका प्रधान निरीक्षक 'अमीर कोह' कहलाता था। साधारणतः पठान सम्राट् उपजका तृतियांश अथवा ३३ फीसदी मालगुजारी लेते थे. पर कभी-कभी मालगुजारीमें अन्धाधुन्ध वृद्धि भी कर दी जाती थी। अलाउद्दीनने सैनिक-स्थिति सुधारनेके लिए जव किसानोंसे ५० फीसदी मालगुजारी अनाजके रूपमें ही लेने और सारा फालतू अन्न निश्चित भावपर सरकारको वेच देनेकी आज्ञा निकाली तो इसका किसानोंपर वुरा प्रभाव पड़ा। गयासुद्दीन तुगलकने खेतीकी उन्नति करनेकी ओर विशेष ध्यान दिया। ५० फीसदी मालगुजारी घटाकर १० फीसदी कर दी और उसकी वसूलीके लिए सरकारी अफसर नियुक्त कर दिये, जिन्हें कड़ी हिदायत थी कि प्रजाको लेशमात्र भी न सतायें। दुर्भिक्षोंके कारण मालगुजारी प्रायः घटानी-वढ़ानी पड़ती थी।

मालगुजारी

गयासने बँटाईकी प्रथा जारी की। फलतः किसानोंकी स्थितिमें सुधार हो गया। फीरोज तुगलकने भूमिकी विस्तृत रूपसे जाँच करनेके लिए ख्वाजा हिसामुद्दीन जुनैद नामक एक योग्य अमीरको नियुक्त किया जिसने ६ सालकी जाँचके बाद अपनी रिपोर्ट पेश की। तब फीरोजशाहने मालगुजारीकी दर इतनी हलकी कर दी कि किसानोंको वह कतई न खटके। सूबेदारोंसे जो वार्षिक भेंट ली जाती थी वह भी उसने बन्द कर दी। इससे खेती तो उन्नत हुई ही, सरकारी आयकी वृद्धि भी हो गयी।

विजयनगर साम्राज्यमें तत्कालीन 'पराशर माधवीय' ग्रन्थमें मालगुजारीके रूपमें धान्यका छठा भाग लेनेका उल्लेख मिलता है। तमिल देशमें धान्यका सातवाँ भाग वसूल किया जाता था।[1] शुक्रनीतिके अनुसार सिंचाईवाले प्रदेशका लगान बढ़ाकर चौथाई कर दिया जाता था।[2] १९वीं शताब्दीके आरम्भमें श्री बुचानन नामक यात्रीको कनाडाके एक पटेलसे ज्ञात हुआ था कि चावलपर कृष्णदेवरायकी पद्धतिके अनुसार पैदावारकी एक चौथाई मालगुजारी लगती थी।[3]

कुछ पठान शासकोंमें धार्मिक संकीर्णता थी, पर कुछ शासक न्यायानुकूल शासन करनेकी चेष्टा करते थे और कृषिकी उन्नतिकी ओर उनका ध्यान था। दुर्भिक्ष तथा फसल नष्ट होनेपर वे किसानोंकी समुचित सहायता करते थे। मुहम्मद तुगलकके शासनकालमें सन् १३३५ से १३४२ तक उत्तरी भारतमें वर्षाके अभावमें जो सप्तवर्षीय भयंकर दुर्भिक्ष पड़ा उसमें आदमी आदमीको मारकर खाने लगा था। सुलतानने दिल्ली निवासियोंको लगातार ६ मासतक पकाया हुआ भोजन बाँटा और किसानोंको खेतीमें सहायताके लिए धन दिया। स्थान-स्थानपर कुएँ खुदवाये। फीरोजने भी किसानोंकी अवस्था सुधारनेके लिए कितने ही

किसानोंकी सहायता

1—एपिग्रेफिका इंडिका, भाग ४, पृष्ठ १२३। 2—शुक्रनीति २।२।२२७

3—परमात्मा शरण : मध्यकालीन भारत, पृष्ठ १७२।

उपाय किये जिनमें मालगुजारी घटाना, नहरें खोदना आदि मुख्य हैं। सिकन्दर लोदीने भी खेतीकी वृद्धि और उन्नतिकी समुचित व्यवस्था की। दक्षिणके राज्य भी किसानोंके हितका ख्याल रखते थे। विजयनगर राज्यमें किसानोंकी अवस्था बिगड़ते देखकर और प्रजाको पलायन करते देख राजा लगान माफ कर देते थे।[1]

सिंचाई

कृषिके लिए सिंचाईकी व्यवस्था करनेकी ओर भी पठान सुलतानोंका ध्यान था। मुहम्मद तुगलकने दुर्भिक्षके दिनोंमें कितने ही कुएँ खुदवा दिये थे। फीरोज तुगलकने खेतीके लिए पाँच नहरें खुदवायी थीं जिनके चिह्न अबतक विद्यमान हैं। इनमेंसे एक नहर १५० मील लम्बी थी जो उसके नये शहर फीरोजाको पानी पहुँचानेके लिए यमुनासे काटी गयी थी। उसने खेती-बारी और यात्रियोंके आरामके लिए १५० कुएँ भी खुदवाये थे।[2] दक्षिणके विजयनगरके शासकोंने भी खेतीकी उन्नतिके लिए कुओं, तालावों और नहरोंकी व्यवस्था की थी।[3]

समृद्धि

पठानकालमें भारतमें कृषिकी उन्नतिकी ओर शासकोंका पूरा ध्यान था। मार्कोपोलोके अनुसार इस कालमें धनधान्य तो खूब होता ही था, कपासकी खेती सारे भारतमें फैली थी। कपासके पेड़ ६,६ हाथ ऊँचे होते थे और बीस-बीस सालतक रहते थे। इब्नबतूताके अनुसार उस समय सारे भारतमें सुख और समृद्धि थी तथा चीजें इतनी सस्ती थीं कि आदमी चार पैसेसे ही दूरतककी यात्रा मजेमें कर सकता था। कृषिके उन्नत हुए बिना ऐसा सम्भव ही कैसे था ?

●

१—एपिग्रेफिका कारनाटिका, भाग ११, पृष्ठ ७१।

२—परमात्मा शरणः मध्यकालीन भारत, पृष्ठ १३४।

३—वासुदेव उपाध्याय : विजयनगर साम्राज्यका इतिहास, पृष्ठ ११८–१७०।

पठानकालमें उद्योग-व्यवसायकी अनेक वस्तुओंपर कर लगा दिये गये थे, फिर भी उद्योगोंपर कोई बुरा प्रभाव नहीं पड़ा। राज्यकी

उद्योगोंका विकास

ओरसे भी कितने ही कारखाने खोल दिये गये थे। सरकारी कारखानोंमें रेशम बुननेवाले सैकड़ों कारीगर काम करते थे। रेशमी वस्त्रोंके अतिरिक्त और भी अनेक प्रकारकी विलासकी वस्तुएँ प्रस्तुत की जाती थीं। सुलतान, उनकी बेगमें और अमीर-उमरा विलासमय जीवनके अभ्यस्त थे। उनकी फरमायशोंकी पूर्त्तिके लिए नाना प्रकारकी वस्तुएँ बनायी जाती थीं। कीमखाब जैसे बहुमूल्य वस्त्र तो बनते ही थे, सलमे-सितारोंसे जड़ी चीजोंको बड़ा महत्त्व दिया जाता था। किसी समय शाही कारखानेमें केवल सलमा-सितारेका सुनहला काम करनेवाले कारीगरोंकी संख्या ५०० थी।[१] मार्कोपोलोने लिखा है कि लाल और नीले चमड़ेकी चटाइयाँ बनती थीं जिनमें चाँदी-सोनेके कामके पक्षी और पशुओंके चित्र कढ़े होते थे। इससे अनुमान किया जा सकता है कि इस कालमें उद्योगोंका कैसा विकास हो रहा था।

चौदहवीं शताब्दीके अन्तमें भारत आनेवाले विदेशी यात्री महवानने लिखा है कि देशमें पाँच-छै प्रकारके अत्यन्त बारीक सूती वस्त्र बुने जाते हैं। रेशमी रूमालों और टोपियोंपर सोनेका काम होता है। चित्र-कारी किये हुए सामान, तरह-तरहके नक्काशीदार बर्तन, कटोरे, तल-वार, छुरी, कैंची आदि इस्पातके सामान इस देशमें बनते हैं। एक प्रकारका सफेद कागज भी एक वृक्षकी छालसे बनता है जो हरिणकी खालकी भाँति चिकना और चमकदार होता है।[२]

१—जी० आर० रामचन्द्रराव : डिके आव इंडियन इंडस्ट्रीज, पृष्ठ १५—२६।

२—वही, पृष्ठ १८।

इस समयमें नौकाओंके निर्माणका कार्य खूब होता था। सन् १४२० में निकोलेकोन्टीने यहाँके विस्तृत जहाजोंकी चर्चा करते हुए लिखा था कि वे इतने दृढ़ बनाये जाते थे कि दैवात् मार्गमें उनका कोई भाग नष्ट भी हो जाय तो शेष भाग बिना किसी विघ्नके अपनी यात्रा पूरी कर सकता था।[1] डाक्टर राधा कुमुद मुखर्जीने विस्तारसे इसकी चर्चा की है।[2]

नौ निर्माण

१६वीं शताब्दी तक नौ-निर्माण-कला अत्यन्त उन्नत रही। वर्थमाने इसका विवरण देते हुए लिखा है कि शिल्पी सम्मूची, कपिल, पारु, छुरी फस्ता आदि अनेक नामों और विभिन्न आकारके जहाज प्रस्तुत करते हैं।[3]

इस बीच समाज समृद्ध जीवन बिता रहा था। लोगोंके पास पैसेकी कमी नहीं थी। धनधान्य खूब होता था। मुसलमानोंपर तो सरकारी कृपा रहती ही थी, अत्यधिक करोंसे पीड़ित होनेपर भी हिन्दू बुरी अवस्थामें न थे। दक्षिण भारतकी स्थिति उत्तर भारतसे अच्छी थी। विजयनगर साम्राज्यके विवरणसे स्पष्ट है कि इस समय उद्योगोंका समुचित विकास हुआ था। वस्त्र-उद्योगके अतिरिक्त सोना, चाँदी, लोहा, मोती, पन्ना आदि बहुमूल्य रत्नोंका उद्योग भी उन्नतिपर था। सोने चाँदीके हार तो सभीके गलेमें दिखाई पड़ते थे। मदुरा, तंजोर, उत्तरी अरकाट, सलेम आदि स्थान धातुओंकी कारीगरीके लिए प्रसिद्ध थे।[4] वस्त्राभूषण, आमोद-प्रमोदकी वस्तुएँ, वाहन, भवन सबमें एकसे एक उत्तम कारीगरी दिखाई पड़ती थी।[5] स्पष्ट है कि पठान कालमें उद्योगोंने अच्छी उन्नति की थी।

विभिन्न उद्योग

१—कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी : दि रिंडन दैट ब्रिटेन राट, पृष्ठ १०।
२—राधाकुमुद मुखर्जी : इण्डियन शिपिंग।
३—प्राणनाथ विद्यालंकार : भारतीय सम्पत्ति शास्त्र।
४—वासुदेव उपाध्याय : विजयनगर साम्राज्यका इतिहास, पृष्ठ १७६।
५—वासुदेव उपाध्याय : वही, पृष्ठ २०५–२११।

पठानकालके यात्रियों, ग्रन्थों और इतिहाससे इस बातकी पुष्टि होती है कि इस समय व्यापार उन्नत अवस्थामें था। व्यापार-कर भी सुलतानोंकी आयका बड़ा स्रोत था।

अलबेरुनी और मार्कोपोलोके विवरणोंसे स्पष्ट है कि समुद्री व्यापार उन्नत अवस्थामें था। नौ-निर्माण उद्योगकी बदौलत मालाबार तट, गुजरात और खम्भातमें सुदृढ़ नौकाओंका जाल-सा बिछा रहता था। मार्कोपोलोने लिखा है कि नौकाओंके आकार-प्रकारका अनुमान इस बातसे किया जा सकता है कि इनमें कालीमिर्च, लौंग आदिके ६-६ हजार भरे बोरे सरलतासे रखे जा सकते थे और तीन-तीन सौ नाविक इनके डांड़ चलाते थे। विदेशोंमें जानेवाली नौकाएं नील, सूती वस्त्र, मिर्च-मसाला आदिसे भरी रहती थीं। अबूबक्रके जमानेमें विदेशोंसे प्रतिवर्ष १० हजार घोड़ोंके आयातका पता चलता है।

विदेशी व्यापार

सुलतान फीरोजशाह तुगलकके जमानेमें कई सामुद्रिक युद्धोंका ववरण मिलता है। सन् १३७२ में फीरोजशाहने ५ हजार नौकाएं एकत्रकर इनके द्वारा ९० हजार अश्वारोही और ४८० हाथी सिन्धु नदीके पार किये। तैमूरलंगने केवल दो दिनके भीतर सिन्धु नदीपर नौकाओंका पुल तैयार कराकर अपनी भारी सेना इस पार उतारी।[1]

अब्दुर्रज्जाकने पन्द्रहवीं शताब्दीमें नौ-व्यवसायकी उन्नतिका वर्णन करते हुए लिखा है कि कालीकट संसारमें नौ-व्यवसायका मुख्य केन्द्र है। अनेक पोत यहांसे निरन्तर मक्का जाया करते हैं। डाकू जहाजोंका यह साहस नहीं कि वे इनपर आक्रमण कर सकें। कालीकट

१—प्राणनाथ विद्यालंकार : भारतीय सम्पत्तिशास्त्र, अध्याय "नौ-व्यवसायका इतिहास"

नगरसे व्यापार करनेमें अत्यधिक सुरक्षण है। विदेशी व्यापारी निर्भयतापूर्वक यहाँ आकर अपना माल वेचते हैं। 'नगराध्यक्ष' अत्यन्त सावधानीसे सारे पदार्थोंकी विक्री करवा देता है और उसका एक चौथाई करके रूपमें ले लेता है। भूले-भटके जहाजोंको अन्यत्र तो लूट लिया जाता है, पर यहाँ उन्हें ठीक रास्ता वता दिया जाता है। पन्द्रहवीं शताब्दीके आरम्भमें निकोलेकोन्टीने भारतकी यात्रा की थी। भारतीय व्यापारियोंकी चर्चा करते हुए उसने लिखा है कि उनमेंसे कुछ तो इतने सम्पन्न हैं कि वे निजी चालीस-चालीस जहाजोंमें माल लादकर लेजाते हैं और प्रत्येक जहाजमें लगभग १५ हजार मोहरोंका सामान रहता है।[1]

विजयनगरकी स्थापना तथा उन्नतिके साथ-साथ दक्षिणी भारतमें विदेशियोंका व्यापार भी उन्नत हो रहा था। साम्राज्यके वड़े-वड़े नगर व्यापारिक उन्नति तथा कारखानोंके केन्द्र होनेके कारण प्रसिद्ध थे।[2] विजयनगर राज्यमें स्थल तथा जल दोनों मार्गोंसे व्यापार होता था। स्थल-मार्ग तो दक्षिण भारतमें ही सीमित था परन्तु जल-मार्ग अधिक विस्तृत था। मुसलमान तथा पुर्तगीज लोगोंसे विजयनगरका व्यापारिक सम्वन्ध था। कृष्णानदीके दक्षिणमें मदुरा, नेलोर और रामेश्वरतक व्यापारके मार्ग वने थे।[3]

देशी व्यापार

पठानकालमें आरम्भमें तो शासकोंका अधिकतर ध्यान अपनी विजयकी ओर रहा पर खिजली शासनकालमें उद्योग-व्यवसाय और व्यापारकी ओर भी शासकोंकी दृष्टि गयी। आजसे साढ़े छः सौ वर्ष पूर्व, अलाउद्दीनने सैनिक आवश्यकतासे विवश होकर नियंत्रण व्यवस्था जारी की थी। खजाना खाली देखकर उसने निश्चय किया कि सिपाहियोंका वेतन घटा दिया जाय

१—इंडिया इन दि फिफटीन्थ सेंचुरी।

२—वासुदेव उपाध्याय : विजयनगर साम्राज्यका इतिहास, पृष्ठ १७१।

३—वासुदेव उपाध्याय : वही, पृष्ठ १७३–१७४।

और उनकी आवश्यकताकी पूर्त्तिके लिए सभी जीवनोपयोगी पदार्थोंका मूल्य निश्चित कर दिया जाय। फलतः भोजन, वस्त्र, शाक-सब्जी, ऊँट, घोड़ा, बकरी, गाय आदि सभी पदार्थोंका मूल्य निर्धारित कर दिया गया। तारीख फीरोजशाहीके अनुसार उस समय दिल्ली और आस-पासके लिए अलाउद्दीनने जो भाव निश्चित किया था वह संयुक्तप्रांतमें प्रचलित बटखरोंके अनुसार इस प्रकार था—

गेहूँ	एक पैसेमें	२ सेर	खाँड़	एक पैसेमें	४॥ छटांक
जौ	,,	३॥ सेर	गुड़	,,	१८ छटांक
धान	,,	३ सेर	मक्खन	,,	१४॥ छटांक
खड़ी माश	,,	३ सेर	तिल्लीका तेल	,,	१७॥ छटांक
चनेकी दाल	,,	३ सेर	नमक	,,	६ सेर
मोठकी दाल	,,	५ सेर			

अन्न-संचयके लिए अलाउद्दीनने कड़ी आज्ञाएँ जारी की थीं। दिल्लीमें अनाज भरवानेके लिए खत्तियाँ बनवायी गयीं। किसानोंसे

नियंत्रणकी व्यवस्था

५० प्रतिशत मालगुजारी अन्नके रूपमें वसूल की जाती थी और उन्हें कड़ी आज्ञा थी कि वे आवश्यकतासे अधिक एक दाना भी बचाकर न रखें। दिल्लीमें एक मंडी खोली गयी जिसमें व्यापारियोंको निश्चित भावपर माल बेचना पड़ता था। उन्हें आदेश था कि वे आसपास भी कहींपर महँगा माल न बेचें। 'शहन-ए-मंडी' नियमोंकी अवज्ञा करनेवालोंको कोड़े लगवाता था। ऐसे दुकानदार लात मारकर बाजारसे निकाल दिये जाते थे। कम तौलनेवालोंको अपने शरीरका मांस काटकर कमीकी पूर्त्ति करनी पड़ती थी। नियमोंकी कड़ाई, सिक्केके कम प्रचार और कर्मचारियोंकी ईमानदारीके कारण यह नियंत्रण व्यवस्था सुचारु रूपसे चलती थी।

फीरोजशाहने अपने समयमें मालगुजारीमें बहुत कमी कर दी थी। सिंचाई आदिकी भी उत्तम व्यवस्था थी। इसके फलस्वरूप कृषि और

व्यापारकी खूब उन्नति हुई। उसके समयमें शम्स सिराज अफीफके अनुसार मुख्य खाद्य-पदार्थोंका भाव इस प्रकार था—

गेहूँ	एक पैसेमें	१॥। सेर	दाल	एक पैसेमें	३॥ सेर
जौ	,,	३॥ सेर	घी	,,	३॥। छटाँक
अन्य अनाज	,,	३॥ सेर	चीनी	,,	२॥ छटाँक

तारीख फीरोजशाहीके अनुसार सुलतानने एक फर्मान निकाल रखा था कि पुलिस जैसे ही किसी कारीगरको वेकार अवस्थामें पाये उसे सरकारी कारखानोंमें ले आये और उसकी योग्यताके अनुसार उसे वेतन दिया जाय। शिल्पियोंका वड़ा आदर था। वे खूब माल तैयार करते थे। अरबी यात्री दमिश्कने लिखा है कि सुलतान प्रति वर्ष २ लाख पोशाकें दान करता है।[1] जहाँ इतनी अधिक पोशाकें दानमें दी जाती हों वहाँ इस बातकी सहज ही कल्पना की जा सकती है कि वस्त्र-उद्योग और उसका व्यापार कितना उन्नत था। मार्कोपोलोने भारतीय मसलिनकी प्रशंसा करते हुए लिखा है कि यहाँका वस्त्र मकड़ीके जालेको भी मात करता है। राजा-रानियोंको उसे पहननेमें गौरवका बोध होता है। उसने लिखा है कि मलाबारके लोग तो जन्मजात व्यापारी हैं। यहाँपर दक्षिणी चीन, अरब आदि देशोंसे अनेक व्यापारी आते हैं।

व्यापारकी उन्नति

उत्तर भारतमें राजनीतिक उथलपुथल तथा कुछ साम्प्रदायिक संकीर्णताके कारण यदा-कदा व्यापारको कुछ धक्का भी लगता रहा; पर दक्षिण भारतमें ऐसी उथल-पुथल बहुत कम रही और यही कारण है कि दक्षिणका व्यापार सदा उन्नत रहा। बहमनी और विजय-नगरके शासनकालमें व्यापारकी समृद्धिके अनेक प्रमाण मिलते हैं।[2]

१—पी० आर० रामचन्द्रराव : डिके आव इंडियन इंडस्ट्रीज, पृष्ठ १५-१७।

२—वासुदेव उपाध्याय : विजयनगर साम्राज्यका इतिहास, पृष्ठ १७०–१८२।

इस कालमें भारतीय व्यापारने इतनी उन्नति कर ली थी कि उसकी समता वर्तमान पश्चिमीय युरोपसे भी नहीं की जा सकती।[1]

महमूद तुगलकके पहले दिल्ली साम्राज्यमें सोने और चांदीके सिक्के चलते थे पर तुगलकने, जिसे मुद्राशास्त्रके प्रकाण्ड पंडित टामस एडवर्ड्सने 'मुद्रा-तत्त्वज्ञोंका राजा' की उपाधि दी है, १३३० में तांबेकी संकेत-मुद्रा चलायी। अलाउद्दीनके समयमें दक्षिणसे दिल्लीमें छकड़ों सोना आ जानेसे सोने-चांदीके मूल्यमें भारी अन्तर आ गया था। इसके अतिरिक्त संसारमें चांदीकी कमी पड़नेका प्रभाव भारतपर भी पड़ा था। प्रोफेसर ब्राउनके कथनानुसार मुहम्मद तुगलक अन्य एशियाई देशोंके इतिहाससे भली भांति परिचित था और चीन फारस आदि देशोंके शासकोंसे मैत्री रखता था। इन देशोंमें कागजके नोट प्रचलित हो चुके थे पर सरकार उन्हें अपने दवावसे स्वीकृत कराना चाहती थी, अतः वड़ा विरोध हो रहा था। इधर युरोपमें जेवरों आदिके वननेसे चांदीकी जो विश्वव्यापी कमी हुई तो सुलतानने शासन-संचालनमें सुविधा और व्यापारकी वृद्धिके उद्देश्यसे तांवेकी संकेत-मुद्रा चलायी और इसपरसे सरकारी नियंत्रण सर्वथा उठा लिया ताकि जनता इसके लाभका अनुभवकर इसे ग्रहण कर ले। पहले तो इससे प्रजामें वड़ी सनसनी फैली पर जव प्रजाने देखा कि सवको सिक्का ढालनेकी छूट है तव उसने इसका दुरुपयोग करना आरम्भ किया। घर-घर सिक्के ढलने लगे।

तांवेका सिक्का

यह संकेत-मुद्रा तीन वर्षसे कुछ अधिक समयतक प्रचलित रही। व्यापारियोंने सोने चांदीके सिक्के खरीदकर घरोंमें भर लिये। राज्यका कर तांवेके सिक्कोंमें चुकाया जाने लगा। व्यापारको भारी क्षति पहुंची। यह देख सुलतानने अत्यन्त उदारतापूर्वक तांवेके सिक्कोंका चलन वन्द करके आज्ञा दी कि जो चाहे वह तांवेके वदलेमें सोने-चांदीके

१—मोरलैण्ड: इण्डिया एट दि डेथ आव अकवर, पृष्ठ १५५।

सिक्के बदल ले जाय। देशके कोने-कोनेसे आकर लोग घटिया सिक्के सोने-चांदीके सिक्कोंसे बदल ले गये। तुगलकाबादके समीप तांबेके सिक्कोंका भारी ढेर लग गया। सुलतानने मुद्रा-विभागमें कितने ही महत्त्वपूर्ण संशोधन किये। उसने मुख्य-मुख्य स्थानोंपर टकसालें खुलवायीं, सिक्कोंकी मिलावट दूरकर टकसालोंमें उनकी ढलाईकी उत्तम व्यवस्था की और उनकी बनावटमें विशेष सुन्दरता ला दी। फीरोजके जमानेमें टकसालकी व्यवस्था बहुत बिगड़ गयी। सिक्कोंमें खूब मिलावट होने लगी। उसने छोटी खरीद विक्रीके लिए 'आधा' (आधा जितल) और 'विख' (चौथाई जितल) नामके सिक्के चलाये।

विजय नगरमें पहले गद्यानक, निक्ष, पण, द्रम, धरण आदि नामोंके सिक्के प्रचलित थे। इनमें कुछ ढाले और कुछ ठप्पेदार मिलते हैं।

दक्षिणके सिक्के वहाँ सिक्कोंके आकार-प्रकार और धातुका निश्चय हो जानेसे सर्वसाधारणको बड़ी सुविधा हो गयी। राजाओंने यह निश्चय कर दिया था कि कौनसा सिक्का किस धातुका बनेगा, उसका आकार क्या होगा और उसकी तौल कितनी होगी[1]।

विजयनगरके शासकोंने सोने, चांदी तथा तांबेके भी सिक्के तैयार कराये। सोनेके सिक्के 'वाराह' नामसे पुकारे जाते थे परन्तु विदेशी इन्हें 'पगोदा' नामसे पुकारते थे। चांदीके सिक्कोंको 'तार' नाम दिया गया था। तांबेके सिक्के 'जितल' नामसे प्रसिद्ध थे, जो वर्तमान पैसेके समान थे। इन सिक्कोंपर एक ओर हाथी, लक्ष्मी, शिव, पार्वती, गरुड़ आदि देवताओंकी मूर्ति रहती थी और दूसरी ओर शासकका नाम रहता था।

सर्वप्रथम कृष्णदेवरायके समयमें सिक्कोंपर नागरी लिपिका प्रयोग किया गया। इससे पूर्व सब लेख तेलगुमें अंकित किये जाते थे। नागरी लिपिका कारण व्यापारकी वृद्धि ही ज्ञात होती है[2]। कृष्णदेवराय,

१—वासुदेव उपाध्यायः विजयनगर साम्राज्यका इतिहास, पृष्ठ १८२-१८३।
२—वही, पृष्ठ १८७—१८८।

तिरुमलराय तथा वेंकट आदि नरेश अपने सिक्कोंपर धार्मिक चिन्हें रखनेका आग्रह रखते थे, यहांतक कि विजयनगर राज्यका पतन होनेपर भी श्रीरंगरायने ईस्ट इंडिया कम्पनीको सिक्के चलानेकी अनुमति इसी शर्तपर दी थी कि वह सिक्कोंपर शिव पार्वतीका चिन्ह सदा अंकित रखे।[1]

अब्दुर्रज्जाकने लिखा है कि विजयनगरमें सिक्कोंकी टकसाल राजमहलके निकट ही रहती थी।[2] पराशर माधवमें लिखा है कि राजा हरिहरने सिक्का बनानेवाली अन्य संस्थाओंपर कर लगा दिया था। इससे प्रकट होता है कि राज्यके अतिरिक्त अन्य संस्थाओंको भी सिक्के तैयार करनेकी अनुमति दे दी गयी थी। विजयनगरमें टकसालके निरीक्षणके लिए एक कर्मचारी नियुक्त रहता था जो सरकारी और गैर-सरकारी टकसालोंका निरीक्षण करता था।[3]

टकसाल

सिक्के विभिन्न भार और मूल्यके होते थे। सोनेके वाराह, गद्याण, पगोदा, प्रताप, पण तथा हाग नामके सिक्के प्रचलित थे। इनके मूल्यके विषयमें मतभेद है। अब्दुर्रज्जाकके अनुसार गद्याण मूल्यमें १० पणके बराबर समझा जाता था।[4] लेखोंमें उसका मूल्य ८ पण बताया गया है।[5] कृष्णदेवराव तथा देवरायके लेखोंसे पता चलता है कि उसका मूल्य घटकर ५ पण ही रह गया था।[6] वाराह ४० प्रतापके बराबर समझा जाता

सिक्कोंका मूल्य

१—वासुदेव उपाध्याय: वही, पृष्ठ १८७—१८८।

२—इलियट: हिस्ट्री आव इंडिया, भाग ४, पृष्ठ १११।

३—सिलोनीज क्वाइन एण्ड करेन्सी, पृष्ठ ६१।

४—इलियट: हिस्ट्री आव इंडिया, भाग ४, पृष्ठ १०९।

५—साउथ इंडियन इन्सक्रिप्शन्स, भाग ७, पृष्ठ ६४८।

६—मद्रास आर्क्योलाजिकल रिपोर्ट १३२, पृष्ठ २०६।

था। पगोदा २ प्रतापके बराबर समझा जाता था और एक पगोदामें ४ काटी होती थी। हाग या काकिनीका मूल्य १ पणके चौथाई भागके बराबर था।[१] चाँदीका सिक्का तारा कहा जाता था और तांबेके पण, जितल या कासु नामक सिक्के प्रचलित थे। सोनेके सिक्कोंकी प्रचुरता इस कालकी समृद्धिका प्रमाण है।

१—एपिग्रेफिका कर्नाटिका, भाग ४, पृष्ठ ३१।

पठानकालमें मुसलिम और भारतीय संस्कृतका प्रत्यक्ष संघर्ष आरंभ हुआ पर क्रमशः वह कुछ ढीला होता चला। ज्ञानदेव और रामानन्द, कबीर और चैतन्य, चिश्ती और फखरुद्दीन आदि सन्त कवियों और सूफी फकीरोंने दोनोंको जोड़ने और निकट लानेमें सिमेण्टका काम किया। इन्होंने जनताको सिखाया कि राम और रहीममें कोई भेद नहीं—

दामनी तोड़ी तो मालाकी गढ़ा,
पर निगाहे हकमें वह भी थी तिला!

पारस्परिक प्रेमकी यह धारा शताब्दियोंतक अविच्छिन्न रूपसे बहती चली। हिन्दू और मुसलमान भारतको ही अपना देश समझकर चल उठे।

इस कालमें प्रायः सारे देशमें समाजिक बन्धन दृढ़ हो चले थे। वर्णाश्रम धर्मकी प्रधानता थी। मूर्तिपूजा और नाना देवताओंकी उपासना प्रचलित थी। कर्मकाण्ड, पूजा-पाठ, तीर्थ-उपवास आदि कार्य धर्मके प्रमुख अंग माने जाते थे। जातिगत कट्टरता बहुत बढ़ गयी थी। ब्राह्मण धर्माधिकारी समाजके मानसिक, नैतिक और धार्मिक गुरुके पदपर आसीन थे। यों सबको धार्मिक स्वतंत्रता प्राप्त थी। पिता कृष्णकी आराधना करनेको स्वतंत्र था और पुत्र कालीकी। मां शिवकी तो बेटी हनुमानकी। बौद्धमतका लोप हो चुका था। वैष्णव और शैवधर्मोंका विस्तार होता चल रहा था। छुआछूत और धार्मिक संकीर्णता अत्यन्त दूषितरूपमें फैल रही थी। स्त्रियों और शूद्रोंको अनादरकी दृष्टिसे देखना, उनका तिरस्कार और अपमान करना, उन्हें शिक्षासे वंचित रखना नियम-सा बन गया। रामानन्द, कबीर आदि सन्तोंने ब्राह्मणोंके एकाधिकार, जात-पांतके भेदों तथा अन्य रूढ़ियोंके विरुद्ध तीव्र आन्दोलन छेड़ा और इसमें उन्हें सफलता भी मिली। इनके उपदेशोंसे समाजमें क्रमशः

धार्मिक अवस्था

सुधारके चिह्न दिखाई पड़ने लगे। दक्षिण भारतमें विजयनगर साम्राज्यमें ब्राह्मणोंका सर्वाधिकार माना जाता था। वे षड्-कर्मके अतिरिक्त कृषि, व्यापार, नौकरी आदि भी करते थे। क्षत्रिय मुख्यतः क्षात्र धर्म और वैश्य कृषि तथा वाणिज्य करते थे[1]।

इस कालमें महिलाओंमें उच्च शिक्षाका अभाव था। परिवारमें उनका आदर तो था, किन्तु प्राचीन युगकी भांति नहीं। स्त्रियोंके सतीत्वकी रक्षा करना पुरुषोंके गौरवकी वस्तु मानी जाती थी। कुछ जातियोंमें बहुपतिकी प्रथा भी थी। मुसलमानोंके सम्पर्क में आनेसे विशिष्ट परिवारोंमें पर्देका प्रचलन बढ़ता जा रहा था। अशिक्षाके कारण अन्ध-विश्वासोंका जोर था।

महिलाओंकी स्थिति

दक्षिण भारतमें महिलाओंकी स्थिति इससे अच्छी थी। अब्दुर्रज्जाकके अनुसार रानियां तथा अन्य महिलाएं विदुषी और गणित तथा ज्योतिषमें पारंगत होती थीं।[2] विजयनगरमें पर्देका सर्वथा अभाव था। युद्ध और यात्रामें महिलाएं पतिके साथ रहती थीं।[3] सतीकी प्रथा थी।[4] गणिकाएं पढ़ी लिखी और कामकला-प्रवीणा होती थीं। प्रति शनिवारको मन्दिरमें इनका नृत्य और संगीत हुआ करता था।[5]

पठान शासक स्वेच्छाचारी थे। उनकी सहायताके लिए 'मजलिसे'—मंत्रि-परिषद् रहती थी। सम्राट् ही मंत्रि-परिषद्का कर्ता, धर्ता,

---

१—वासुदेव उपाध्यायः विजयनगर साम्राज्यका इतिहास, पृष्ठ १९२–१९५।

२—सेवेल : ए फारगाटेन एम्पायर, पृष्ठ ३७१।

३—एपीग्रेफिका कर्नाटिका, भाग ९, पृष्ठ १०२।

४—पिलग्रिम्स, भाग १०, पृष्ठ १३९। मैसूर आर्क्योलाजिकल रिपोर्ट, १९२३, पृष्ठ ९०।

५—सेवेलः ए फारगाटेन एम्पायर, पृष्ठ २४।

हर्ता था। उसके अधिकार अपरिमित थे। शरियत ही उसपर कुछ अंकुशका काम करती थी। उलमा सुलतानोंपर नियंत्रण रखनेकी चेष्टा करते थे, पर उनकी कौन सुनता था ?

सुलतानके बाद सबसे बड़ा अधिकारी 'वजीर-ए-ममालिक' समझा जाता था। वह राज्यके सभी विभागोंका निरीक्षण करता था। राजकीय कोप, आय-व्यय, टकसाल, सार्वजनिक वास्तु विभाग आदि सभी विभागोंका प्रबन्ध उसीके हाथमें रहता था किन्तु उसे सुलतानकी ही मर्जीपर आश्रित रहना पड़ता था। हां, कभी-कभी सबल होनेपर वह सम्राट्को भी उंगलियोंपर नचाया करता था। मंत्रिमंडलमें वजीर-ए-ममालिकके अतिरिक्त 'दीवान-ए-रिसालत' (बाह्य अथवा अन्तर्जातीय-सम्बन्ध विभागका मंत्री), 'दीवान-ए-अर्ज' (प्रार्थनापत्र आदिका निरीक्षण करनेवाला मंत्री), 'दीवानए इंशा' (राजकीय पत्रव्यवहार विभागका मंत्री), 'दीवान-ए-वजारत' (राजकीय आय तथा कर वसूल करनेवाले विभागका मंत्री) आदि मंत्री हुआ करते थे। पर इन्हें स्वतन्त्र रूपसे किसी विभागका मंत्री नहीं कहा जा सकता था। कारण, वजीरकी आज्ञा तथा परामर्शके बिना वे कोई भी कार्य नहीं कर सकते थे।[1]

सेना

सेनाका संचालन सुलतान ही किया करता था। स्थायी सेना बहुत कम रहती थी। युद्धकालमें सूबेदारों और जागीरदारोंको बहुत-सी सेना अनिवार्यतः भेजनी पड़ती थी। सेना कुछ अश्वारोही होती थी, कुछ पैदल। सेनाके शिक्षण, पोशाक तथा अन्य बातोंके विषयमें निर्दिष्ट नियम नहीं थे। अवसर आनेपर सभी नोसिखुए पलटनमें भरतीकर लामपर भेज दिये जाते थे।

सुलतान ही प्रधान न्यायाधीश माना जाता था। उसके नीचे

१—परमात्माशरणः मध्यकालीन भारत, पृष्ठ १४७—१८९।

सरदार काजी था। उसके नीचे दिल्ली, बदायूँ, ग्वालियर, अवध, मालवा, गुजरात, कड़ा, दक्खिन, बंगाल आदि विभिन्न प्रान्तोंके काजी होते थे। सेनाके लिए भी एक पृथक् काजी रहता था। मुकदमोंमें कागजी काम तो नाममात्रको होता था। धर्म पुस्तकें ही कानूनकी पोथियाँ मानी जाती थीं। उन्हीं-की रूसे मौखिक फैसले सुना दिये जाते थे। फौजदारी मुकदमोंका फैसला कुरानकी रूसे ही होता था, फिर वह मामला चाहे हिन्दूका हो चाहे मुसलमानका। गाँवोंके मुकदमोंका निर्णय अधिकतर ग्राम पंचायतें ही किया करती थीं।

न्याय

मालगुजारी ही आयका मुख्य स्रोत थी। प्रजासे और भी कई कर लिये जाते थे। जो हिन्दू इसलाम धर्म नहीं स्वीकार करते थे उन्हें दंड-स्वरूप जजिया देना पड़ता था। व्यापार-करसे भी सरकारको अच्छी आय थी। हिन्दू जागीरदारोंसे खिराज और मुसलमान जागीरदारोंसे उश्र नामक कर लिया जाता था। सम्पन्न मुसलमानोंसे दरिद्र मुसलमानोंके पालन-पोषणके लिए जकात ली जाती थी। युद्धकी लूटका पांचवाँ भाग खम्जके नामसे सरकारी खजानेमें जमा कर लिया जाता था।

आयव्यय

प्रान्तीय शासन सूबेदारोंके हाथमें रहता था जो, प्रायः सुलतानकी भांति ही स्वेच्छाचारी होते थे। जागीरदार भी मौज करते थे। सूबे-दारों और जागीरदारोंको केवल युद्धकालमें सुलतान-की सहायता करनी पड़ती थी। नगर कोतवालको शासन और न्याय दोनोंके व्यापक अधिकार रहते थे। छोटे कस्बों और ग्रामोंमें ग्राम पंचायतें शासन करती थीं।

प्रान्तीय शासन

मसजिदों, कब्रों, कुओं, तालावों, किलों, वावड़ियों आदिके निर्माण-के लिए भी एक विभाग था। गयासुद्दीन तथा फीरोज तुगलकने इस ओर विशेष ध्यान दिया। फीरोजने तो डाककी नियमित व्यवस्था

करनेके लिए स्थान-स्थानपर डाककी चौकियां भी बनवायी थीं। पाठ-शालाएँ हिन्दुओंके दानसे और मकतब मुसलमानोंकी सहायतासे मसजिदोंमें चलते थे।

दक्षिणमें बहमनी शासन तथा अन्य मुसलमानी राज्योंकी शासन-व्यवस्था उत्तर भारतके पठान शासनके ढंगकी ही थी, पर विजय-

विजयनगरकी शासन प्रणाली

नगरकी शासन-प्रणाली उत्तम थी। वहाँके शासक शासनको केन्द्रीय, प्रान्तीय, अधीनस्थ राज्य शासन और ग्राम शासन—इस प्रकार चार भागोंमें बाँटकर शासन करते थे। राज्य-प्रबन्धके लिए एक राज-सभा थी, जिसका प्रधान राजा होता था। उसकी सहायताके लिए एक मंत्रिमंडल रहता था, जिसमें प्रधान मंत्रीके अतिरिक्त प्रान्तीय सूबेदार, सेनापति और राजगुरु रहते थे। राजधानीका प्रबन्ध पुलिसका उच्च अधिकारी करता था जो राज-सभाका सदस्य माना जाता था। सेनापतिको 'दंड नायक' का पद दिया गया था। राजा प्रधान न्यायाधीश माना जाता था और प्रजाको सम्राट्तक अपील करनेका अधिकार था। फौजदारीके मामलोंमें दोषीको कठोर दंड दिया जाता था। सेनाओंका संघटन सुदृढ़ था। कारण, बहमनीके मुसलमान शासकोंसे सदा ही लोहा लेना पड़ता था। पैदल, अश्वारोही, हाथी, धनुषधारी, तोपखाना—इन हिस्सोंमें सेनाको बाँट रखा गया था। घुड़सवारोंके लिए अरबसे घोड़े मँगाये जाते थे। जल-सेनाका भी प्रबन्ध था। राज्य और शत्रुओंकी स्थितिका पता लगानेके लिए गुप्तचर रखे जाते थे। भूमिकरकी वसूली और भूमि-विक्रयके लिए निश्चित नियम और खाते रहते थे। नगरके फाटकपर चुंगी वसूल की जाती थी। पशुओं, जंगलों और मद्यकी बिक्रीपर, वस्त्र, तेल और शकरके कारखानोंपर तथा उद्योग-व्यवसायों-पर भी कर लगानेकी व्यवस्था थी। प्रान्तीय अधिकारी प्रति वर्ष केन्द्रीय सरकारको निश्चित रकम भेंट करते थे। राजकीय महलों,

विलासकी सामग्रियों, सेनापर तथा दानमें यह आय खर्च की जाती थी। प्रजा-हितका पूरा ध्यान रखा जाता था। दुर्भिक्ष अथवा फसल खराब होनेपर लगान माफ कर दिया जाता था। प्रान्तीय शासक 'नायक' कहलाते थे जो एक तिहाई आय केन्द्रोंको देकर दो तिहाईसे अपनी व्यवस्था करते और उसीसे कृषिकी उन्नतिके लिए नहरें खुदवाते, मन्दिर बनवाते और दान देते थे। ग्रामोंकी व्यवस्था पंचायतों द्वारा होती। पंचायत ही जमीनके झगड़ोंका फैसला करती, अपराधियोंको दंड देती, गांवके लेखक, पुलिस और आयंगर आदि कर्मचारियोंको नियुक्त करती और रक्षा आदिकी व्यवस्था करती। ग्रामका सारा प्रबन्ध उसीके जिम्मे रहता[1]।

साहित्य और कला

पठान कालमें मुसलमान शासकोंकी संकीर्ण और दमनात्मक नीतिसे देवालयों, मन्दिरों, मठोंके अतिरिक्त साहित्यिक ग्रन्थोंकी भी अपूरणीय क्षति हुई। हिन्दू जातिका मानसिक विकास रुक गया। इस बीच अत्यन्त उच्च कोटिके ग्रन्थोंका प्रणयन नहीं हो सका। अनुवाद और टीकाओंकी ही भरमार रही। इस कालमें मिन्हराज, उस्सिराज, जियाउद्दीन बरनी, शम्से सिराज अफीफ जैसे इतिहासज्ञ हुए। जौनपुरमें विद्या और कलाका अच्छा विकास हुआ। कितने ही संस्कृत ग्रन्थोंका अरबी, फारसीमें अनुवाद हुआ। महमूद गजनवीके जमानेमें आये अलबेरुनीने संस्कृत सीखकर कितने ही ग्रन्थोंका अरबीमें अनुवाद किया। जयदेवका गीत गोविन्द, बोपदेवके व्याकरण ग्रन्थ और अमीर खुसरोकी पहेलियां इस कालकी उत्तम रचनाएं हैं। इस कालमें मुसलमानी दृष्टिकोणके कारण चित्रण, मूर्तिनिर्माण आदि तो नष्ट-प्राय हो गया था ; हां, मसजिदों और मकबरोंमें वास्तुकलाकी झांकी अवश्य मिलती है। संगीत कला भी इस बीच कुछ पनपी।

१—वासुदेव उपाध्यायः विजयनगर साम्राज्यका इतिहास, पृष्ठ १००-१३४।

पठानकालमें सामाजिक जीवन यद्यपि अस्थिर-सा ही था तथापि प्रजा सामान्यतया सन्तुष्ट थी। किसीको खाने-पीनेकी कमी न थी। दैनिक आवश्यकताकी वस्तुएं अत्यन्त सस्ती थीं। दुर्भिक्षके समय सम्राट् खत्तियोंका मुंह खुलवा देते थे और प्रत्येक दुर्भिक्ष-पीड़ितको अन्न, भोजन और पैसा बांटते थे। महमूद तुगलकने दीर्घकालीन दुर्भिक्ष रोकनेके लिए जो व्यवस्था की थी उसकी प्रशंसा कौन न करेगा ? मुसलमानोंको सरकारी आश्रय था, अतः वे विलासी अधिक हो गये। दक्षिणमें विजयनगरकी प्रजा सम्पन्न, सुखी और संतुष्ट थी। उसके साहित्यके विकास, उसकी धार्मिक, आर्थिक एवं सामाजिक अवस्था, उसके भौतिक जीवन, उसकी ललित कला आदिसे इसकी पूर्णतः पुष्टि होती है कि वहांकी प्रजा प्रसन्न थी[1]।

प्रजामें सन्तोष

१—वासुदेव उपाध्याय: विजयनगर साम्राज्यका इतिहास।

मुगल काल

●

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

१५२६ ई० के पानीपतके युद्धमें चंगेज खां और तैमूरके वंशज जहीरुद्दीन मुहम्मद वावरने लोदी वंशका खात्मा करके जिस मुगल शासनकी नींव डाली वह मुगल वंश लगभग सवा दो सौ वर्षतक जीवित रहा।

वावरने १६ वीं शताब्दीके आरम्भमें भारतकी स्थितिका जो वर्णन किया है उससे पता चलता है कि उस समय भारतमें उल्लेखनीय केवल पांच मुसलमान शासक थे और दो हिन्दू शासक। हिन्दुओंमें विजयनगरके राजा और चित्तौड़के राणा सांगा प्रमुख थे। इन शासकोंके पास पर्याप्त सेनाएं और विशाल साम्राज्य थे, किन्तु किसी उत्साही आक्रमणकारीके लिए इन पर आक्रमण करना कठिन न था। वावरने वही किया।

वावर

वावरका व्यक्तित्व असाधारण था। उसमें दिल भी था, दिमाग भी। शरीरसे तो वह वलिष्ठ था ही, हृदयसे साहसी और वीर था। कलमका भी धनी था। उसमें व्यवहार और कला, धैर्य और कल्पना, वीरता और कवित्व, साहस और शौर्यका अद्भुत सम्मिश्रण था।

ईश्वरने वावरको औलाद भी वैसी ही दी। हुमायूंमें वावरके कितने ही गुण उतर आये थे। वीरता और साहस, उदारता और सहनशीलता, साहित्यप्रेम और वुद्धिमत्ता उसमें भरपूर थी किन्तु भाग्यका वह वैसा धनी न निकला। पिता द्वारा अर्जित राज्यको वह भली भाँति सम्हालनेमें समर्थ न हो सका। दुर्दैवके फेरमें वह मारा-मारा फिरता ही रहा। शेरशाह जैसे

हुमायूं

प्रवल प्रतापी योद्धासे उसका मुकावला पड़ा था, फिर भी खानदानी धैर्य उसमें बना रहा और उसने खोया हुआ राज्य अन्तमें वापिस पा लिया।

बिहार स्थित सहसरामके जागीरदार हसनका बेटा फरीद बचपनमें पिता द्वारा बड़ा उपेक्षित रहा। सौतेली माँके दुर्व्यवहारसे ऊबकर वह घरसे निकल गया। बिहारके शासक बिहारखाँके यहाँ फरीदने नौकरी की। शिकारमें एक दिन शेर मारनेपर बिहारखाँने उसे 'शेरखाँ' की उपाधिसे विभूषित किया, पर थोड़े ही दिन बाद बिहारखाँसे खटपट होनेपर शेरखाँ बाबरकी सेवामें चला गया। बाबरके साथ उसने पूर्वमें अफगानोंको हराया। उसकी सहायतापर मुग्ध होकर बाबरने उसके पिताकी जागीर उसीको वापस कर दी।

शेरशाह

बिहारखाँकी मृत्युपर उसके बेटे जलालखाँको बाबरने उसकी मिलकियत सौंप दी पर वह नाबालिग था। शेरखाँ उसका सरपरस्त बना। बालिग होनेपर जलालखाँने शेरखाँके पंजेसे छूटनेकी कोशिश की और बंगालके शासककी सहायता लेकर अपना उद्देश्य सिद्ध करना चाहा, परन्तु शेरखाँने दोनोंकी सेनाओंको परास्त कर दिया और इस तरह वह सहजहो बिहारका शासक बन बैठा। बिहारके बाद शेरखाँने बंगालपर अधिकार कर लिया। हुमायूँको उसने चौसामें जोरकी शिकस्त दी और 'शेरशाह' का नाम धारणकर वह गद्दीपर बैठा।

इसके बाद शेरशाह पंजाबमें सिन्धु और झेलमके बीचके प्रदेशकी विजयके लिए चल पड़ा। मालवा, रासिन और सिंव जीतकर उसने धूर्ततासे जोधपुरके मालदेवको पराजित किया। क्रमशः उसने आबू पर्वत और चित्तौड़के किलेपर कब्जाकर राजपूताना भी हथिया लिया। उसका अन्तिम युद्ध कलंजरके राजासे हुआ। किला तो हाथमें आ गया, पर बारूदसे जलकर शेरशाहको अपने प्राण गँवाने पड़े।

शेरशाह मध्यकालीन युगका सबसे बड़ा शासक समझा जाता है। वीर तो वह था ही, रणनिपुणता और चालाकीमें उसने मुगलोंको गहरी मात दी थी। उसका व्यक्तिगत आचरण प्रशंसनीय था। सोते-जागते उसे प्रजाके हितका ध्यान रहता था। गरीबों और पीड़ितोंकी वह यथाशक्ति सहायता करता था। हिन्दुओंको शासन-व्यवस्थामें उसने ऊँचे पद दे रखे थे। अपनी धार्मिक सहिष्णुता और राजनीतिक सुधारोंके लिए वह प्रख्यात है। टोडरमलने अकबरके जमानेमें जिस उत्तम भूमि और लगान-व्यवस्थाके लिए इतना नाम कमाया, उसका श्रेय शेरशाहको ही मिलना चाहिये।

अकबर

१५५६ में पिताकी मृत्युपर १३ वर्षका नन्हा-सा अकबर जब मुगल राजगद्दीपर बैठा तब उसका राज्य नाममात्रका ही था। सरहदकी लड़ाईने अवश्य ही उसे दिल्ली और पंजाबका शासक बना दिया था पर इस छोटीसी हुकूमतकी बिसात ही क्या? शुरूसे ही अकबरका सितारा बुलन्द था। १५५८ में ग्वालियर और अजमेर, १५६१में लखनऊ और जौनपुर, १५६२में मालवा, १५६७ में चित्तौड़, १५७२ में गुजरात और १५७५ में बंगाल उसके अधिकारमें आ गया। गुजरातने फिर सिर उठाया तो अकबरने १५८४ में उसे दुबारा सर कर लिया। १५८७में काश्मीर, १५९० में उड़ीसा, १५९२ में सिन्ध, १५९४ में कन्धार और १६०० में खानदेश भी मुगल साम्राज्यमें शामिल हो गया। अकबरकी मृत्युके समय दक्षिण भारत और मेवाड़के कुछ जंगली प्रदेशोंको छोड़कर सारे भारतपर मुगल पताका फहरा रही थी।

अकबरके शासनकालसे मुगलराज्यका स्वर्णकाल आरम्भ होता है। अकबर स्वयं बड़ा वीर, प्रतिभाशाली और रणनिपुण योद्धा था। सभी धर्मोंमें उसकी आस्था थी। सभी धर्मोंके महात्माओंका वह आदर करता था। गुणी, किसी भी जातिका हो, अकबरके आदरका पात्र था।

उसकी सभाके नवरत्नोंमें हिन्दुओंका स्थान प्रमुख था। उसने 'दीन इलाही' धर्म चलाया जिससे साम्प्रदायिक एकताको बड़ा बल मिला।

अकबरने हिन्दुओंका सहयोग पानेके लिए 'जजिया कर' उठा दिया। तीर्थोंमें स्नानार्थी हिन्दुओंपर लगनेवाला विशेष कर भी उठा दिया। राज्यमें गोवध सर्वथा बन्द कर दिया। अनेक हिंदू राजाओंने अपनी बहिन-बेटियाँ उसे देकर सद्भाव बढ़ाया पर महाराणा प्रताप जैसे '*भूखे प्राण भले तजें, केहरि खरु नहिं खाहिं।*' आदर्शवाले प्रतापियोंने वनवन भटकते हुए और घासकी रोटी खाते हुए भी मुगलोंकी अधीनता स्वीकार न की।

अकबर अपने गवर्नरोंपर कड़ी दृष्टि रखता था। उसने शासन-यंत्रको खूब मजबूत बना दिया। अधीनस्थ सरदार जब कभी विद्रोह करते तो वह उनकी पूरी खबर लेता। किसानोंकी अवस्था सुधारनेके लिए उसने राजा टोडरमलकी सहायतासे लगान-पद्धतिमें पर्याप्त सुधार किया।

जहाँगीर

जहाँगीरने अकबरकी गद्दी सम्भाली अवश्य, पर वह प्रथम श्रेणीका विलासी निकला। अनिंद्य सुन्दरी नूरजहाँको पानेके लिए उसने उसके पति शेर अफगनको तलवारके घाट उतरवा दिया। उसके बाद उसका मूलमंत्र ही यह बन गया कि—

हो आधसेर कबाब मुझको, एक सेर शराब हो,
नूरेजहाँकी सलतनत है, खूब हो कि खराब हो!

सुरा और साकी, हाला और प्याला, नूरजहां और शराब बस यही दो चीजें जहाँगीरको चाहिये थीं। नूरजहांके इशारोंपर नाचते हुए जहाँगीरने अपनी सारी उम्र गुजार दी। राज्यका सारा प्रबन्ध नूरजहांके हाथमें था। वह जिसे जैसा चाहती, नचाती। जहाँगीर और नूरजहां दोनोंके नामके सिक्के चलते। जवानीके आरम्भमें जहाँगीर अपने पितासे

असफल विद्रोह कर चुका था। जहाँगीरकी वुढ़ौतीतक विद्रोहका रोग इस खानदानमें वाक़ायदा फैल गया। उसके बेटे खुसरो, खुर्रम और परवेज गद्दीके लिए अपने-अपने दाँव-पेंच लगाने लगे। खुसरो सबसे बड़ा था। प्रजा उसे चाहती भी थी, पर बेचारेकी वदकिस्मती! सारा जीवन जेलमें कटा। उसकी आँखें सी दी गयीं। वादमें वह खुसरोके हवाले कर दिया गया। थोड़े दिन वाद बेचारा चल बसा। खुर्रम सबसे तेज़ निकला। परवेज उसके आगे टिक न सका। जहाँगीरके मरनेपर खुर्रम ही शाहजहाँके नामसे गद्दीपर बैठा।

शाहजहाँ

पितासे विद्रोहकर और अग्रज खुसरोकी हत्याका पाप सिर चढ़ाकर १६२८ ई० में ३७ वर्षकी आयुमें शाहजहाँ भारतका एकच्छत्र सम्राट् वन बैठा। शाहजहाँ वीर भी था, प्रतिभाशाली भी। उसके शासनकालमें मुगल साम्राज्य उन्नतिके सर्वोच्च शिखरपर पहुँचा। मुगलोंमें शाहजहाँ वड़ा 'शानदार' वादशाह समझा जाता है। कुछ धार्मिक कट्टरता उसमें थी जिसका प्रभाव अच्छा नहीं हुआ। उसने दक्षिणमें भी मुगल साम्राज्यका विस्तार करनेकी चेष्टा की। उत्तरमें शाहजहाँकी सेना शत्रुओंपर विजय पाती हुई वलखतक जा पहुँची थी। 'मुगल' नामका सर्वत्र वड़ा दवदवा हो गया और फारस तथा अन्य देशोंमें शाहजहाँके राजदूतोंका वड़ा आदर होने लगा।

शाहजहाँको सुन्दर भवन वनवाने और बाग लगवानेका वड़ा शौक था। शाहजहानावाद शहर और वहाँका किला करोड़ों रुपया खर्च करके १८ सालमें वना। राजमहल की शानदार इमारतकी प्रशंसा कौन न करेगा? लाल पत्थर और संगमरमरमें हीरे मोती जड़कर जिस अद्भुत कलाका प्रदर्शन किया गया उसे देखकर निर्माताका यह दावा उचित ही है कि—

'गर फ़िर्दौस वर रुये ज़मीनस्त
हमीनस्तो, हमीनस्तो, हमीनस्त।'

'पृथ्वीपर यदि कहीं स्वर्ग है तो यहीं है, यहीं है, यहीं है।'

शाहजहाँने गद्दीपर बैठनेके कुछ समय बाद पिताकी विलासिताकी विरासत अच्छी तरह सम्हालनी शुरू कर दी। उसकी अवस्था भी जहाँगीरकी-सी हो चली। जहाँगीरको सम्हालनेके लिए तो नूरजहाँ थी, पर शाहजहाँकी प्यारी ताजमहल तो उसे पहले ही दगा दे गयी थी! वह चाहता था कि अपने बेटोंके सहारे अपना बुढ़ापा काट दे पर बेटे तो एकसे एक नालायक निकले। फलतः शाहजहाँकी बुढ़ौती बर्बाद हो गयी। बेचारेको एकएक चीजके लिए तरसते हुए बेटेकी कैदमें जीवनकी अन्तिम घड़ियाँ काटनी पड़ीं। एक बार तो पानीके लिए गला सूखनेपर उसने कवितामें अपने बेटेको यह दर्दभरा पत्र लिखा था —

'ऐ मेरे बेटे, ऐ मेरे बहादुर,
मैं किस्मतकी शिकायत क्या करूँ!
क्योंकि, मुझे मालूम है कि ईश्वरकी इच्छाके बिना एक पत्ता भी नहीं हिलता।
अभी कल मैं ९ लाख सिपाहियोंका बादशाह था,
और आज मैं पानीके एक कुल्हड़के लिए तरस रहा हूँ!
मैं तो उन हिन्दुओंकी ही तारीफ करता हूँ,
जो अपने मरे हुए बुजुर्गोंको भी पानी देते हैं!
ऐ बेटे तू अजीब मुसलमान है,
कि अपने बापको पानीके लिए तरसाता है!
ऐ सौभाग्यवान बेटे, इस सौभाग्यपर अभिमान मत कर।
अपने समझदार सिरपर नासमझी और दर्पकी खाक मत डाल।
याद रख कि यह क्षणिक दुनिया केवल दोज़खका रास्ता है,
स्थिर ऐश्वर्य उसीको मिलता है जो खुदाको याद करता और मनुष्यों-पर दया करता है।'

पर पत्थर औरंजेब ऐसे पत्रोंसे पिघलनेवाला थोड़े ही था। उसने लिख दिया—'यह तुम्हारे ही कर्मोंका फल है !'

शाहजहाँके ढलते दिनोंमें ही उसके लड़के गद्दीके लिए चालें चलने लगे थे। पूरा महाभारत मच गया। औरंगजेबका सितारा सबसे

औरंगजेब

बुलन्द निकला। उसकी वीरता, साहस, बुद्धिमत्ता, धूर्तता, षड्यंत्र और बुद्धिकौशलने उसका साथ दिया। राजलक्ष्मीके सभी उम्मेदवार मौतके घाट उतर गये। पिताको क़ैदकर, भाई भतीजोंकी लाशोंपर पैर रखकर जून १६५६ में औरंजेबने बड़ी धूमधामसे दिल्लीके रक्तरंजित सिंहासनपर कदम रखा।

सिंहासनपर बैठते ही औरंगजेबने साम्प्रदायिक नीति चलायी, जिसके कारण मुगल साम्राज्यका किला ढहने लगा और औरंगजेबकी आँख मुंदनेके कुछ ही दिनों बाद वह अरराकर जमीनपर गिर पड़ा। उसकी धार्मिक कट्टरताके कारण हिन्दू ही नहीं, शीया भी उसके विरुद्ध होगये।

औरंगजेब आचार सम्बन्धी कई दोषसे मुक्त था। मदिरा तथा अन्य मादक पदार्थोंसे दूर रहता था। संगीत और वेश्याओंको उसने देश-निकाला दे रखा था। प्रजाको भी इन चीजोंकी सख्त मनाही थी, किन्तु स्वयं औरंगजेबके महलोंमें, उसकी पीठके पीछे मदिराके दौर चलते, सरदार और दरबारी उस विलासकी नदीमें कण्ठतक गोते लगाकर बादशाहकी आज्ञाओंकी धज्जियाँ उड़ाया करते !

औरंगजेब परले सिरेका अविश्वासी था। न उसे अपने पुत्रोंपर विश्वास था, न मंत्रियोंपर; न सरदारोंपर और न और ही किसीपर। इस्लाम-के प्रचारकी धुन और इस तीव्र अविश्वासने उसे घर बाहर सर्वत्र अविश्वसनीय बना दिया था। दक्षिणपर विजय पानेकी भी एक तीव्र महत्त्वाकांक्षा उसके हृदयमें बस गयी थी। इसके लिए उसने अपना सारा खजाना पानीकी तरह बहा दिया और भारी सेना गाजर-मूलीकी तरह कटवा दी।

औरंगजेबके बाद मुगलोंके वंशज परम चरित्रहीन, निर्बल और कायर निकले। उनकी वीरता, साहस, बुद्धिमत्ता और बल आदि सर्वस्व सुरा और सुन्दरीकी भेंट हो चुका था। कोई सशक्त उत्तराधिकारी पैदा न हुआ। जो थे वे वजीरोंके हाथकी कठपुतली बनकर रहते थे। विलासिता इस सीमातक जा पहुँची थी कि ये लोग युद्धके मैदानमें भी पूरा हरम अपने साथ रखते थे। फलतः साम्राज्य धीरे-धीरे हाथसे निकलने लगा, खजाना खाली होने लगा। नादिरशाहने कत्ले-आमके साथ लगभग ७० करोड़ रुपया लूटा। मुगलवंशकी रही-बची नाक अब्दालीने साफ कर दी। उसके आगमनकी खबर पाकर साम्राज्यके वजीर गाजीउद्दीनने बादशाह आलमगीरको तलवारके घाट उतार दिया और दिल्लीका सिंहासन मुगलोंसे छिन गया।

उत्तराधिकारी

औरंगजेबकी साम्प्रदायिक नीतिके कारण देशमें सर्वत्र विद्रोहकी चिनगारियाँ दिखाई पड़ने लगीं। मध्यभारतमें, बुन्देलखण्डमें चम्पत-राय और छत्रसालके वीरतापूर्ण कार्य, उत्तरीय भारतमें जाटोंके विद्रोह और सतनामी विद्रोह, पंजाबमें सिखोंकी राज्यक्रान्ति, राजपूतानेमें राजपूतोंका विद्रोह, असंतुष्ट हिन्दुओंकी भावनाओंके प्रतीक थे। इन धक्कोंसे मुगल साम्राज्य की जड़ें हिलीं तो, पर भवन खड़ा ही रहा। जिस प्रचण्ड धक्केसे मुगल साम्राज्य धराशायी हो चारों-खाने चित्त हो गया, वह था महाराष्ट्रका भीषण धक्का।

शिवाजी

सामना बड़े गजबका था। एक ओर था हीरामोतियोंकी गोदीमें पला भारतका सम्राट् औरंगजेब, जिसके हाथोंमें धन और जन, सोना और सेना, सम्पत्ति और साधन—सब कुछ थे। दूसरी ओर था एक अत्यन्त साधारण जागीरदारका बेटा शिवाजी, जिसे पिताने भी छोड़ रखा था। न उसके पास धन था, न नाम; न सेना थी न खजाना; न ओहदा था न

जागीर। पर भाग्यका वह धनी था। हिन्दुओंकी सद्भावना उसके साथ थी। उसकी वीरता, उसका आत्मावलम्बन, उसकी युद्धकला उसके साथ थी और इसीके बलपर उसने प्रबल प्रतापी सम्राट् औरंगजेबको नाकों चने चबवा दिये और दक्षिण भारतमें साम्राज्य-विस्तारके उसके सुनहले स्वप्नको चकनाचूर कर दिया। मुगल सम्राट् अहमदनगर, बीजापुर और गोलकुण्डा जैसी तीन-तीन बड़ी-बड़ी मुसलमानी रियासतोंकी मदद लेकर शिवाजीसे लड़ा, फ़िर भी औरंग-जेबको विजयिनी तलवार शिवाजीको परास्त न कर सकी।

कारण स्पष्ट थे। औरंगजेब वीर और साहसी अवश्य था, पर उसकी हिन्दू-विरोधिनी नीति, धार्मिक कठमुल्लापन और प्रत्येक व्यक्तिपर अविश्वास ही उसका वैरी बन गया था। उधर निर्धन और साधनहीन शिवाजी अपनी वीरता, साहस, आत्मावलम्बन, उदारता, रणनिपुणता और सद्व्यवहारसे हिन्दू जातिका सिरमौर बन बैठा। उसने मराठा राज्यकी स्थापना तो की ही, हिन्दुओंके हृदयमें आत्म-सम्मान और स्वाधीनताकी भावना भी उत्पन्न की। विदेशी और विधर्मी लेखकोंतकने इस बातको स्वीकार किया है कि शिवाजीके जीवनका प्रधान लक्ष्य हिन्दू धर्मकी रक्षा करना अवश्य था, पर उन्होंने कभी भी किसी अन्य धर्मके प्रति अन्याय नहीं किया। उनके कोषसे मन्दिरोंका ही नहीं, मसजिदोंका भी निर्माण होता था। कितने ही पीरोंको शिवाजीके खजानेसे जीवन-वृत्ति मिलती थी। मुसलमान स्त्रियाँ यदि बन्दी भी बनती थीं तो शिवाजी मुसलमान विजेताओंकी नीतिके विरुद्ध, उन्हें सम्मानपूर्वक सुरक्षित रूपमें उनके घर भेज देते थे।

रणकौशलमें शिवाजीने औरंगजेबको जैसा छकाया उसका पता किसे नहीं? औरंगजेब इस 'पहाड़ी चूहा' से बुरी तरह काँपने लगा। अपनी सारी शक्ति, अपना सारा खजाना और सारी सैनिक शक्ति

औरंगजेबने इस पहाड़ी चूहेको सर करनेके लिए लगा दी, फिर भी पार न पा सका। मराठोंकी शक्ति बढ़ती ही गयी। शिवाजीका देहान्त होजानेपर भी मराठा शक्ति धूमिल न हुई और बादमें तो वह इतनी विस्तृत हुई कि सारे भारतपर छा गयी। शिवाजीकी शासन-व्यवस्था, किलोंका प्रबन्ध, मालगुजारीकी वसूली, सेनाका नियम आदि इतना उत्तम और दूरदर्शितापूर्ण था कि सभी उसकी प्रशंसा करते हैं।

१६८० में शिवाजीका निधन हुआ और १७६० तक तीन शासक गद्दीपर बैठे। गद्दीके लिए गृह-कलह भी चलता रहा और अनेक मराठा सरदारोंने जाति-द्रोह करनेमें भी कसर नहीं की, फिर भी शिवाजी द्वारा निर्मित राज्य-संघटन ऐसा सशक्त बना रहा कि स्वाधीन महाराष्ट्रका झण्डा दिन-दिन आगे ही बढ़ता गया। बालाजी विश्वनाथ भट्ट जैसे सुयोग्य मंत्रियों और बालाजी बाजीराव जैसे वीरोंने महाराष्ट्रके गौरवमें जो चार चाँद लगाये उसका सारा इतिहास साक्षी है।

१७५७ में अहमदशाह दुर्रानीके सैनिकोंको अटकके पार खदेड़कर जब महाराष्ट्र सेनापति राघोबाने अटकके तटपर महाराष्ट्र ध्वजा गाड़ दी तो कर्नाटकसे अटकतक मराठोंकी विजयिनी ध्वजा फहरा रही थी। लगभग सारे भारततपर मराठोंका ही अधिकार हो गया था।

अब्दालीका आक्रमण

किन्तु राजनीतिका खेल बड़ा पेचीदा होता है। मराठा राज्यके संचालकोंने थोड़ी सी अदूरदर्शिता दिखायी। अहमदशाह अब्दालीको उन्होंने भड़का तो दिया पर उसका पुनराक्रमण रोकनेके लिए यथेष्ट व्यवस्था नहीं की। अब्दाली फिर आया तब मराठोंकी अपनी भूल सूझी। सन् १७६० में सदाशिवरावकी अध्यक्षतामें मराठोंकी विराट सेना दिल्ली पहुंची पर सदाशिवरावने बुद्धिमत्तासे काम नहीं किया। अब्दालीने छिपे-छिपे शत्रुओंको मित्र बनाया और सदाशिवरावने ऐसी नीति बरती जिससे मित्र भी शत्रु बन गये।

सन् १७६० में पानीपतके प्रसिद्ध मैदानमें फिर एकवार भारतके भविष्यका निपटारा हुआ। मराठा सैनिक जी होमकर लड़े किन्तु भाग्यका खेल प्रवल है। वाजी अहमदशाहके हाथ रही। इस युद्धमें मराठा शक्तिकी कमर टूट गयी। लगभग २ लाख सैनिक खेत रहे। अहमदशाहने मुगल साम्राज्यका तो अन्त कर ही दिया, मराठा शक्ति-को भी जवर्दस्त ठेस लगायी, पर मराठा शक्ति फिर भी मरी नहीं। पानीपतके युद्धके वाद भी वहुत दिनोंतक मराठा शक्ति भारतपर हावी रही और वणिक अंग्रेज जव भारतमें व्रिटिश साम्राज्यका निर्माण करने लगे तो उन्हें अन्तिम फैसला मराठोंसे ही करना पड़ा।

मुगलकालमें शासक भूमिपर सरकारी स्वत्व मानने लगे थे, पर किसानके अधिकारोंपर पदाघात न होता था। जहाँगीरने एक फर्मान निकालकर मनाही की थी कि अधिकारी प्रजाकी भूमि न छीनें।[1]

शेरशाहने सबसे पहले जमीनकी व्यवस्था और किसानोंके कल्याणकी ओर ध्यान दिया। राजा टोडरमलने उसीकी पद्धतिपर जमीनका

जमीनका वन्दोवस्त

ऐसा प्रवन्ध किया जो मुगलकालमें तो चालू रहा ही, ब्रिटिश सरकारने भी उसे ग्रहण कर लिया। आज भी भारतके अनेक भागोंमें भूमिकी यही व्यवस्था चालू है। इस व्यवस्थासे अकवरकी वड़ी ख्याति हुई।[2]

शेरशाहके समयमें पैमायशके अनुसार भूमिका लगान निश्चित किया गया था। जागीरदार और मुकद्दम किसानको सताते थे और अधिक लगान वसूल किया करते थे। कृषिकी उन्नतिसे उन्हें कोई वास्ता न था। किसानकी दोहरी मुसीवत थी। न तो यही निश्चित था कि उसे कितना लगान देना पड़ेगा और न यही कहा जा सकता था कि उसकी भूमि कव उससे छीन ली जायगी।

टोडरमलने भूमिकी नये सिरेसे व्यवस्था की। उन्होंने रस्सियोंके स्थानपर वाँसोंकी वनी ६० गजकी जरीवसे पैमायश करनेका उपाय

टोडरमलकी व्यवस्था

निकाला। ३६०० वर्गगजका एक वीघा माना गया। सरकारी कर्मचारी वोयी हुई भूमि, अनाजकी किस्म और जमीनकी जाँच करते थे। जमीन चार श्रेणियोंमें वाँट दी गयी थी—पूलेज, परवटी, चाचर, वंजर। जिस जमीनमें सालभर खेती होती थी वह 'पूलेज', जिसमें एक दो सालका अन्तर देकर खेती

१–डब्लू० एच० मोरलैंड : इंडिया एट दि डेथ आव अकवर, पृष्ठ १२६।

२–डी० पन्त : दि कामर्शियल पालिसी आव दि मुगल्स, पृष्ठ ६०।

होती थी वह 'परवट', जिसमें तीन चार सालके अन्तरपर खेती होती थी वह 'चाचर' और पाँच साल या ऊपरतक बंजर पड़ी रहनेवाली जमीन 'बंजर' कहलाती थी। लगान निश्चित करते समय जमीनकी किस्म, अनाजकी किस्म और भूमिके क्षेत्रफलका पूरा ध्यान रखा जाता था।

लगान

मुसलमानी धर्म-ग्रन्थोंमें उपजका केवल पंचमांश लगान रूपमें लेनेका आदेश था किन्तु मुसलमान शासकोंने इसे न मानकर मनमाना लगान लगा रखा था[1]। अकबरने उपजका एक तिहाई भाग लगान रूपमें लेनेका निश्चय किया था। उत्तम, मध्यम और निकृष्ट श्रेणीकी भूमिकी उपज जोड़कर जितना औसत होता उसका एक तिहाई लगान लिया जाता। जैसे, उत्तम भूमिमें यदि गेहूंकी उपज १८ मन, मध्यममें १२ मन और निकृष्टमें ९ मन कूती जाती तो १३ मन औसत उपज मान ली जाती और इसका लगान ४⅓ मन निश्चित किया जाता। इसे 'जब्त' कहते थे। औसत निकालनेके लिए टोडरमलने पिछले दस वर्षकी उपजकी औसतके अनुसार खेतोंका लगान नकद रुपयेमें निश्चित कर दिया। भिन्न-भिन्न प्रकारकी फसलोंके लिए भिन्न-भिन्न लगान लगाया गया।

लगानकी भिन्नता समझनेके लिए गेहूंका लगान यदि १०० दाम लिया जाय तो अन्य फसलोंका लगान इस प्रकार समझना चाहिये[2]—

गेहूं	१००	महुवा	४४	पोस्ता	२१०
जौ	६७	सांवा	२२	गन्ना	२१३
चना	६०	अलसी	५१	कपास	१५०
ज्वार	५९	सरसों	५३	नील	२५४

किसानोंको लगान नकदीमें या जिन्समें देनेकी छूट थी, किन्तु गन्ना, नील, पोस्ता आदि कीमती चीजोंका लगान नकद ही देना पड़ता था।

१—डी० पंतः दि कामर्शियल पालिसी आव दि मुगल्स, पृष्ठ ५६।
२—मोरलैण्ड: इंडिया एट दि डेथ आव अकबर, पृष्ठ १००–१०५।

अकबरको किसानोंकी भलाईकी पूरी चिन्ता थी। मोरलैंड जैसे विदेशी लेखकोंने उसके लगानको बहुत भारी बताया है। कहा है कि उसके लगानकी दर गेहूंपर १७) से २०), जौपर १३) से १५), चनापर १०) से १२), ज्वारपर ६) से १०), सांवापर ३।।।) से ४), अलसीपर ८) से १०।), पोस्तापर ३६।) से ४२), गन्नेपर ३६) से ४२।) कपासपर २६ से ३०), नीलपर ४३।।।) से ५०।।।) प्रति एकड़ थी।[1] माना इतना लगान अधिक था पर कम्पनीकाल और ब्रिटिश कालके लगानको ये लोग क्यों भूल जाते हैं ? श्री रमेशचन्द्रदत्तके कथनानुसार 'सम्राट् अकबरने उपजका एक तिहाई अंश लगानके रूपमें लेनेका निश्चय किया था अवश्य, पर वस्तुतः उसको जो लगान मिलता था वह उपजके छठे अंशसे किसी भी हालतमें अधिक नहीं था[2]।' आईन-ए-अकबरीमें भी लिखा है कि 'बहुतसे प्रान्तोंमें अन्दाजिया लगान निर्धारित किया गया है। इसके लिए मुख्यत: किसानों और मुखियों आदिपर ही आश्रित रहना पड़ता है। ये भला क्यों अपनी पैदावार अधिक बताने लगे ? इससे राज्यको प्रायः पूरा लगान नहीं मिलता।' पर मोरलैंड साहब तो अबुल-फजलकी बातोंपर विश्वास ही नहीं करते। कहते हैं कि वह तो बड़ा चापलूस था और बिन्दियाँ बढ़ा देना 'सौके हजार और हजारके दस हजार बना देना' उसके बायें हाथका खेल था।[3] होगा, पर मुगलकालके विषयमें 'इंडिया एट दि डैथ आव अकबर', 'फ्राम अकबर टू औरंगजेब' आदि आपकी रचनाओंको पढ़कर कोई भी निष्पक्ष व्यक्ति इसी निष्कर्ष-पर पहुँचेगा कि आपने अपनी आँखोंपर पक्षपातका चश्मा चढ़ा रखा है।

अकबरने राज्यके अधिकारियोंको जो आदेश दे रखे थे वे इस

१—मोरलैंड: वही, पृष्ठ १३२।

२—रमेशचन्द्रदत्त: फैमीन्स इन इंडिया, परिशिष्ट।

३—मोरलैंड : इंडिया एट दि डेथ आव अकबर, पृष्ठ १७५।

बातके प्रमाण हैं कि किसानोंकी अवस्था सुधारनेकी ओर उसका पूरा ध्यान था। उसने लगान वसूल करनेवाले 'आमिल गुजार'को आदेश दे रखा था कि वह किसानोंके सच्चे मित्रकी भाँति कार्य करे। किसानोंसे वह अपना सीधा और प्रत्यक्ष परिचय रखे। उनकी स्थिति और उनके सुख-दुःखकी पूरी जानकारी रखे और उनके काम आये। बीज, बैल तथा किसानकी अन्य आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिए वह उसे कर्ज दे और फिर धीरे-धीरे लम्बी किस्त बाँधकर वसूले। खेतीका भूमि-क्षेत्र बढ़ानेका प्रयत्न करे। कीमती जिन्सोंकी उपजमें वृद्धि करनेके लिए किसानोंको प्रोत्साहित करे। आँधी, वर्षा, तूफ़ान, पाला आदिके कारण फसल खराब होनेपर छूट दे, किसानोंको आर्थिक सहायता और तकावी दे। न तो समयसे पहले उनसे लगान माँगे और न उचितसे अधिक ही माँगे। किसान नकद या जिन्स जिस भाँतिसे लगान देना चाहे उसी रूपमें उसे स्वीकार करले। गल्ला लेनेके 'कनकूत', 'बटाई', 'खेत बटाई' और 'लंग ढेर बटाई'मेंसे जो पद्धति किसान पसन्द करे उसीको मान ले। इस बातका पूरा ध्यान रखे कि मुहर्रिर और पटवारी किसानके खेतोंका सही हिसाब रखते हैं कि नहीं। नजिया आदिक जो कर माफ कर दिये गये हैं वे कतई न लिये जायँ और न किसी तरहकी 'सलामी' ही ली जाय। आमिल पूरी ईमानदारीसे अपना काम करें।'[1]

अधिकारियोंको आदेश

अकबरने प्रजा और विशेषतः किसानोंपर लगनेवाले अनेक कर माफ कर दिये थे। इनमेंसे प्रमुख कर ये हैं—जजिया, मीरबहरी (जकात), किरिया (धार्मिक, उत्सव आदिपर लगनेवाला), गोश्मारी (बैलोंपर), नजराना, पेड़, कारीगर, तहसीलदारी, फोतदारी, पशुओंकी बिक्री-खरीद, बाजारकी चुंगी, मकानका

अनेक कर माफ

१-ग्लाडविन : आईन-ए-अकबरी, पृष्ठ २६१-२६५, ई०एस० होल्डेन : दि मुगल एम्परर्स आव हिन्दुस्तान, पृष्ठ १५३।

लेन-देन, राहदारी, चूना, दलाली, महुआ, नापजोख जमीन, सन, कम्वल, तेल, कच्चा चमड़ा आदिके कर। हमें स्मरण रखना चाहिये कि नमक-पर कर उठानेवाला प्रथम सम्राट् अकवर ही था।

फिर भी कुछ कर तो किसानोंसे लिये ही जाते थे, जिनमें दहसेरी (हर वीघेपर दससेर गल्ला), भी एक था, पर इससे सरकारी पशुओंकी रक्षा होती थी और कष्ट-पीड़ित किसानोंको सहायता मिलती थी। दुर्भिक्षके दिनोंमें वही गल्ला सस्ते मूल्यपर वेचा भी जाता था।[1] वदायूंनीने अकवरके सुधारोंका वड़ा मखौल उड़ाया है, जिसकी टीका करते हुए स्टेनले लेनपूलने ठीक ही लिखा है कि अकवरके प्रयत्नोंमें अनेक खामियाँ और खरावियाँ हो सकती हैं, पर सभी अच्छे नियमोंका संसारमें दुरु-पयोग हो सकता है। वदायूंनीको अकवरके सुधार इसलिए नहीं भाये कि अकवर हिन्दू और मुसलमानोंको एक दृष्टिसे देखना चाहता था, जब कि वदायूंनीकी आंखोंपर साम्प्रदायिकताका चश्मा चढ़ा है।[2]

अकवरने भूमिके प्रवन्ध और लगान आदिके सम्वन्धमें जो व्य-वस्था की वह उसके उत्तराधिकारियोंने भी चालू रखी। जहाँगीरको कुछ अधिक लोभ समाया। भूमिकी उर्वरा शक्तिमें भी कुछ कमी आनेसे किसानोंपर वुरा प्रभाव पड़ा और कुछ लोग खेत छोड़कर भाग गये।[3] शाहजहाँने आमिलों या १ करोड़ 'दाम' वसूल करनेवाले करोड़ियोंको फौजदार भी वना दिया। उन्हें लगान-वसूलीका जो ८ प्रतिशत अंश मिलता था वह वढ़ाकर १० प्रतिशत कर दिया। उन्हें पुलिसके अधि-कार दे दिये। इससे कुछ कर्मचारियोंने किसानोंको सताया।[4] औरंग-जेवने लगान कुछ वढ़ा दिया और उपजका आधा भागतक लेने लगा।

१—आईन-ए-अकवरी, पृष्ठ १८९।

२—स्टेनले लेनपूल: मिडीवल इंडिया अण्डर मोहमडन रूल, पृष्ठ २६८–२६९।

३—डी० पन्त : दि कामर्शियल पालिसी आव दि मुगलस, पृष्ठ १३०।

४—वही, १८५–१८६।

करोड़ियोंका अंश उसने १० प्रतिशतसे ४ प्रतिशत कर दिया जिसका परिणाम किसानोंको ही भोगना पड़ा।[1] मुगलशासनके अन्तिम दिनोंमें किसानोंकी स्थिति दयनीय हो गयी।

जिस भाँति अकवरने किसान और सरकारके वीच मध्यस्थका अन्त कर दिया था उसी भाँति दक्षिणमें शिवाजीने जमीदार, देसाई या देशमुखको वीचसे निकालकर किसानसे प्रत्यक्ष संबंध वनाया था। निजामशाही और आदिलशाहीके मीरासदार किसानोंसे ज्यादा वसूलकर मालिकोंको वहुत थोड़ा टिकाते रहे और स्वयं वीचमें मालदार वनते गये। वे अपने किले वनवाते, सेना रखते और अपनी शक्ति वढ़ाते। शिवाजीने यह पद्धति तोड़ दी।[2] उन्होंने मध्यस्थकी परम्परा तोड़कर किसानसे प्रत्यक्ष सम्पर्क स्थापित किया। मध्यस्थोंका उचित अंश निश्चित कर दिया गया। इनके खेतोंका लगान इनके वेतनसे काट लिया गया। पहलेकी-सी छूट, स्वच्छन्दता और मनमानी जाती रही। सरकारी कारकुन, सैरे-नौवत और मजमूआदार आदि सवको शिवाजीकी पद्धति स्वीकार करनी पड़ी।

शिवाजीके राज्यमें जमीन नापकर उसका क्षेत्रफल निकाला जाता। प्रति वीघाकी उपजका अनुमान करके ५ में २ भाग लगान लिया जाता और ३ भाग किसानके पास रहता। लगानके लिए यह आवश्यक नहीं था कि वह नकदीमें ही दिया जाय। किसान चाहे नकदीके रूपमें देता चाहे जिन्सके रूपमें। खेतीके विस्तारकी ओर शिवाजीका ध्यान था और उन्होंने वीज और पशु खरीदनेमें सहायता करनेके लिए किसानोंको ऋण देनेकी व्यवस्था कर रखी थी। यह ऋण २, ४ वर्षोंमें किस्तोंके रूपमें अदा किया जा सकता था।[3]

१–वही, २२४–२२६।

२–यदुनाथ सरकार : शिवाजी एण्ड हिज टाइम्स, पृष्ठ ३७७–३८१।

३–वही, पृष्ठ ३७८–३८१।

मुगलकालमें आईन-ए-अकबरीके अनुसार प्रायः सभी तरहकी फसलें होती थीं। गेहूँ, जौ, चावल, ज्वार, बाजरा, साँवा, कोदों, ककुन,

उत्पत्ति और साधन

मंडवा, कुदरी आदि अन्न, चना, मसूर, मटर, मूँग, उड़द, मोठ, अरहर आदि दालें, तिल, अलसी-सरसों आदि तेलहनकी फसल खूब होती थी। इसके अतिरिक्त गन्ना, कपास, सन, नील, पोस्ता, पान, शाकसब्जी, सिंघाड़ा, तरबूज, ककड़ी आदिकी पैदावार भी होती थी। अकबरको फलोंका विशेष शौक था। अमीर उमराके भोजनमें फलका विशेष भाग रहता था, अतः फलोंकी उपजकी ओर भी पर्याप्त ध्यान दिया जाता था। १२ सूबोंके वर्णनसे पता चलता है कि बंगाल और उड़ीसामें चावल अधिक होता था। पैदावार भी अच्छी थी। इन सूबोंमें गन्नेकी फसल भी अच्छी होती थी। बिहारमें यद्यपि आजके लगभग पाँचवें भागमें खेती होती थी तथापि फिचके अनुसार पटना कपास, चीनी और पोस्ताके निर्यातके लिए प्रसिद्ध था। यहाँ चावलके अतिरिक्त गेहूँ, गन्ना, कपास, नील और पोस्ताकी खेती विशेष रूपसे होती थी। इलाहाबादमें आजके लगभग पाँचवें भागमें खेती होती थी। ज्वार, बाजरा छोड़कर अन्य वस्तुओंकी उपज अच्छी थी। आगरामें आजके तीन चौथाई क्षेत्रमें खेती होती थी। आगरा, अजमेर आदिको अन्य सूबोंपर निर्भर रहना पड़ता था।[१]

अकबरके समयमें तम्बाकूकी खेती नहीं होती थी। जहाँगीरके समय इसकी खेती आरम्भ हुई। यद्यपि जहाँगीरने धूम्रपानका निषेध कर दिया था तथापि तम्बाकूकी उत्पत्ति इतनी बढ़ रही थी कि मनूचीके कथनानुसार किसान तम्बाकूपर प्रतिदिन ५,०००) कर देते थे। इसमें अतिशयोक्ति हो सकती है पर इसमें सन्देह नहीं कि तम्बाकूकी खेती बढ़

१—मोरलैंड : इंडिया एट दि डेथ आव अकबर, पृष्ठ ११८–१२४।

रही थी।[1] कपासकी खेती अधिक क्षेत्रमें होती थी, भले ही कुल उपज आजकी अपेक्षा कम हो। भोजन-वस्त्रके मामलेमें अधिकतर प्रान्त स्वावलम्बी थे।[2] दक्षिण भारतमें विदेशी यात्रियोंके अनुसार चावल, गेहूँ, ज्वार, रगी, चना, मूंग, गन्ना, कपास, नील, तिल, अलसी, कालीमिर्च, गरी, अदरखकी अच्छी पैदावार होती थी।[3]

कृषिके औजार पुराने ढंगके थे और खेतीका ढंग भी पुराना ही था। हल और बैल, पुर और चरस, पहले जैसे ही थे। चरागाह अधिक थे। पशु बहुत सस्ते थे। सिंचाईके लिए वर्षा और कुओंपर ही अधिकतर निर्भर रहना पड़ता था। शाहजहाँने अवश्य ही रावी नहर और नहरे बिहिश्त खुदवायी थी। खिरजाबादसे सफीदुनतककी नहरका उसने पुर्ननिर्माण कराया था।

दुर्भिक्ष

भारतके दुर्भिक्षके इतिहासमें भारतीय पराधीनताका मुख्य हाथ है। मुसलमानी शासनकालके ६०० वर्षोंमें १६ दुर्भिक्षोंका विवरण मिलता है। इनमें तेरहवीं शताब्दीमें १, चौदहवींमें ३, पन्द्रहवींमें २, सोलहवींमें ३, सत्रहवींमें ३, अठारहवींमें सन् १७४५ तक ४ दुर्भिक्ष पड़े। इन दुर्भिक्षोंके विषयमें ध्यानमें रखनेकी बात यह है कि ये देश-व्यापी दुर्भिक्ष नहीं थे। किसी विशेष प्रान्तमें वर्षा, तूफान, ओलों आदिके कारण अन्नाभावके कारण ही ये पड़े थे।

सन् १६३०-३२का दुर्भिक्ष बड़ा भयंकर था। गुजरात और दक्षिण इससे बुरी तरह प्रभावित हुए। अब्दुल हमीद लाहोरीने इसका वर्णन करते हुए लिखा है कि पानी न बरसने और फसल चौपट होनेसे बालाघाट, दौलताबाद, दक्षिण और गुजरातकी अवस्था अत्यन्त भयंकर हो

१—मोरलैंड : फ्राम अकबर टू औरंगजेब, पृष्ठ १८६।

२—मोरलैंड : इंडिया एट दि डेथ आव अकबर, पृष्ठ १०५।

३—वही, पृष्ठ २०३–२०४।

गयी है। दरिद्रता चरम सीमापर जा पहुँची है। ऊँट कौड़ी मोल लगा है पर कौड़ीके लाले हैं। जिन्होंने कभी हाथ नहीं पसारा वे एक-एक दानेकी तलाशमें मुंह वाये फिर रहे हैं। पहले तो वहुत दिनोंतक वकरेके नामपर कुत्तेका गोश्त विकता रहा। दुकानदार हड्डियाँ पीसकर आटेमें मिला देते। वादमें हालत इतनी विगड़ी कि वाप वेटेंको मारकर खाने लगा। सड़कें लोथोंसे पट गयीं। अधमरे लोग भूतप्रेतोंकी भाँति गाँव-गाँव घूमने लगे। वादशाहने अनेक लंगर खुलवाये, रुपया वाँटा, लगानमें छूट दी।[1]

ईस्ट इंडिया कम्पनीके कर्मचारी पीटर मन्डीने इन्हीं दिनों सूरतसे आगरा और आगरासे सूरततककी यात्रा की थी। उसने भी दुर्भिक्षका वड़ा हृदय-विदारक वर्णन किया है। लिखा है कि सूरतमें लगभग १० लाख आदमी मरे हैं। स्त्री-पुरुष वालवच्चोंको मारकर खा गये हैं। भड़ोंचमें दसमें कहीं एक वचा है। जुलाहोंकी दुर्दशाका ठिकाना नहीं।[2] अवस्था तो इतनी खराव थी कि लोग अकेले-दुकेले किसीको पाकर उसपर आक्रमण कर देते और मारकर टुकड़े-टुकड़े करके खाजाते। इस डरसे लोगोंने यात्रा करना भी वन्दकर दिया था।[3]

१७०७ से १७५७ तक ५० वर्षके भीतर मद्रास और वम्वईमें कमसे कम ८ दुर्भिक्षोंका पता चलता है। ईस्ट इंडिया कम्पनीने लन्दन स्थित अपने डाइरेक्टरोंको जो पत्र लिखे हैं उनसे दुर्भिक्षोंकी भयंकरताका अनुमान किया जा सकता है। इनके फलस्वरूप मँहगी, अन्नाभाव,

---

१—अब्दुल हमीद लाहोरी : वादशाहनामा। सैयद हुसेन विलग्रामी और सी० विलमोर : हिस्टारिकल एण्ड डिस्क्रिप्टिव स्केच आव दि निजाम्स डोमीनियन्स, खंड २, पृष्ठ १६, १७।

२—आर० सी० कार्नक टेम्पल वार्टे : दि ट्रेवेल्स आव पीटर मण्डी इन युरोप एण्ड एशिया, (१६०८–६७ खण्ड २।

३—डब्लू० फोस्टर : दि इंगलिश फैक्टरीज इन इंडिया, १६३०–३३।

मनुष्यों और पशुओंकी भारी संख्यामें मृत्यु, बीमारी, चोरी, भ्रष्टाचार आदिका जो प्रावल्य हुआ उसका विवरण दोहरानेकी आवश्यकता नहीं। लोग अन्नके अभावमें बिना जलकी मछली की भाँति तड़प-तड़पकर प्राण देते, कौड़ियोंमें बच्चोंको बेचते और एक-एक दानेके लिए जघन्यसे जघन्य अपराध करनेमें न शर्माते।[1]

सरकारी सहायता

शाहजहाँने अपने शासनकालीन दुर्भिक्षोंको रोकनेके लिए अनेक केन्द्रोंमें रोटी-शोरबा बँटवानेकी व्यवस्था की था। बरहानपुरको एक लाख और अहमदाबादको ५० हजार रुपयेकी सहायता दी और लगानमें ७० लाख रुपयेकी छूट दी। औरंगजेबने भी अपने शासनकालमें दुर्भिक्षोंको रोकनेके लिए जगह-जगह लंगर खुलवाये और पीड़ितोंकी सहायता की।[2]

मुगल शासकोंने किसानोंपर जो लगान और अनेक कर लगाये और अकबरके बाद किसानोंकी स्थिति सुधारनेकी ओर जो उपेक्षा बरती उसीका परिणाम था कि किसानोंकी अवस्था उत्तरोत्तर बिगड़ती गयी और उन्हें कई बार भयंकर दुर्भिक्षोंका सामना करना पड़ा। उनका कर-भार कितनी तेजीसे बढ़ता गया इसका अनुमान नीचेके आँकड़ोंसे किया जा सकता है[3]—

सम्राट्	सन्	लगान	करोंसे कुल आय
अकबर	१५९४	२४ करोड़ रु०	४८ करोड़ रु०
जहांगीर	१६०९-११	२६ करोड़ रु०	७५ करोड़ रु०
शाहजहां	१६४८-४९	३३ करोड़ रु०	अज्ञात
औरंगजेब	१६५५	५१ करोड़ रु०	१२० करोड़ रु०

१—थियोडोर मारिसन: दि इकोनामिक ट्रांजीशन इन इंडिया, अध्याय दुर्भिक्ष।

२—डी० पन्त : दि कामर्शियल पालिसी आव दि मुगल्स, पृष्ठ १८५-१८६, २२४-२२६।

३—एडवर्ड टामस : रेवेन्यू रिसोर्सेज आव दि मुगल एम्परर्स, पृष्ठ ५४।

स्टेनले लेनपूल द्वारा दिये गये आंकड़े इस प्रकार हैं[1]—

सम्राट्	सन्	लगान
अकबर	१५९४	२७ करोड़ रु०
,,	१६०५	२८ ,, ,,
जहांगीर	१६२८	२९ ,, ,,
शाहजहां	१६४८	३६ ,, ,,
,,	१६५५	४५ ,, ,,
औरंगजेब	१६६७	४६ ,, ,,
,,	१६९७	६० ,, ,,

इन सब आंकड़ों और स्थितियोंके बलपर मोरलैंड साहब यदि यह निष्कर्ष निकालते हैं कि मुगल शासनमें किसानोंकी स्थिति अत्यन्त दयनीय थी तथा शासकोंने अपने हाथों अपने आर्थिक और राजनीतिक सर्वनाशका बीज बो लिया था,[2] और दूसरोंको ढकनेवाले जुलाहे खुद नंगे रहते और दूसरोंको खिलानेवाले किसान स्वयं भूखों मरते, तो इसमें हमें आश्चर्य न होना चाहिये[3]। पर वस्तुतः स्थिति इतनी भयंकर न थी।

जहाँतक किसानोंका सम्बन्ध है मुगलकालमें निरन्तर शान्तिका साम्राज्य था। औरंगजेब अपनी साम्प्रदायिक नीतिके लिए बदनाम है पर

किसानोंकी स्थिति

किसानोंके हितचिन्तनमें हम उसे अन्ततक सचेष्ट देखते हैं। उसने अपने पुत्रोंको बारबार उपदेश दिया कि वे प्रजा और किसानोंकी अवस्था सुधारनेका सदा ध्यान रखें। राहदारी आदि करोंसे किसानोंपर अधिक बोझ पड़ते देख उसने ऐसे कितने ही कर उठा दिये। इसका प्रत्यक्ष फल यह हुआ कि अनाजका भाव सुधर गया और वह ठीक तरहसे बिकने लगा। मुगलोंके

१—स्टेनले लेनपूल: मिडीवल इंडिया, पृष्ठ २५२।

२—मोरलैंड: इंडिया एट दि डेथ आव अकबर, पृष्ठ ३००।

३—मोरलैंड: फ्राम अकबर टू औरंगजेब, पृष्ठ ३०४–५।

साम्राज्यके अन्तिम दिनोंमें भी गल्लेका भाव अकबरके समयके ही लगभग रहा। यह भाव आजकलके हिसाबसे इस प्रकार था[१]—

गेहूं	१ पैसेमें	२३ छटांक	चना	१ पैसेमें	१६ छटांक
जौ	,,	३५ ,,	ज्वार	,,	२८ ,,
उत्तम चावल	,,	२ ,,	चीनी सफेद	,,	२ ,,
घटिया	,,	१४ ,,	शकर	,,	४ ,,
मूंगकी दाल	,,	१५ ,,	घी	,,	२ ,,
मोठकी दाल	,,	२३ ,,	तिलका तैल	,,	३ ,,
दूध	,,	११ ,,	नमक	,,	७० ,,

इस भावसे आजके भावकी तुलना करनेसे सहज ही पता लग सकता है कि मुगल कालका किसान मजेमें था या आजका। हमारे विचारसे आजकी अपेक्षा मुगलकालमें भारतीय किसान कहीं अधिक सुखी, प्रसन्न और समृद्ध था। ब्रिटिश शासनने तो उसकी कमर ही तोड़ दी।

१—रामदास गौड़: हमारे गांवोंकी कहानी, पृष्ठ ९०-९८।

भारतीय इतिहासमें मुगलकाल 'ऐश्वर्य-काल' कहा जाता है। ठीक भी है। इस कालमें बाहरसे आनेवाले विदेशियोंका आक्रमण बन्द हो गया था और ये विदेशी अब स्वदेशी बन गये थे। मुगलकालमें हिन्दू मुसलमानोंके समन्वयसे एक नयी सभ्यता और संस्कृतिका उदय हुआ। कुछ शासकोंकी धर्मान्धता दूसरी चीज है पर यों इस कालमें भारतीयों-ने यह अनुभव नहीं किया कि कोई विदेशी उनपर शासन कर रहा है। शासक शासितोंमें मिलकर एक हो गये[1]। सभी मुगल शासक इस विषय-में एकमत रहे कि प्रजाको कृषि, कला, उद्योग और व्यापारमें पूरी सहायता दी जाय।

मुगल शासनकालमें उद्योगोंको भरपूर प्रोत्साहन दिया जाता था।

शिल्पियोंका आदर

शिल्पियों और कारीगरोंका अत्यधिक आदर था। जैसे ही किसी कारीगरकी ख्याति सम्राट्के कानोंमें पहुंचती वह बुलवाकर शाही कारखानेमें रख लिया जाता[2]।

मुगलकालमें प्रायः सभी मुख्य उद्योग सरकारने अपने हाथमें कर लिये थे। अकबरने महलोंमें ही इसके लिए कारखाने खोल रखे थे।

सरकारी नियन्त्रण

दिल्लीके महलका वर्णन करते हुए बर्नियरने लिखा है कि महलमें बड़े बड़े दालान थे जो कार-खाना कहलाते थे। किसीमें कसीदेका काम होता था, किसीमें स्वर्ण-कारीका, किसीमें वार्निशका, किसीमें दर्जीगीरीका तो किसीमें मोचीगीरी-का, किसीमें बर्तन बनानेका तो किसीमें बर्तनपर सुनहली पालिश चढ़ाने-का, किसीमें रेशम बुननेका तो किसीमें बढ़िया मसलिन तैयार करने-

---

१—जवाहरलाल नेहरू: डिस्कवरी आव इंडिया, पृष्ठ ३५६।

२—डी० पन्त: दि कामर्शियल पालिसी आव दि मुगल्स, पृष्ठ ६०।

का, किसीमें जर्र या कीमखावका तो किसीमें और कुछ।[1] तात्पर्य यह कि सरकारी कारखानोंमें विभिन्न उद्योगोंका विकास होता था।

ये कारखाने केवल दिल्लीमें सीमित नहीं थे। अबुलफजलने आईन-ए-अकबरीमें लिखा है कि बादशाह अकबरने विदेशी मालके उत्पादन और उसकी बारीकियोंको अच्छी तरह समझ लिया है। विदेशी कारीगर भी भारतमें बस गये हैं और सरकारी कारखानोंमें माल तैयार होने लगा है। काश्मीरी शालका लाहौरमें जो सरकारी कारखाना है उसमें एक हजारसे अधिक कारीगर काम करते हैं। शाही महलमें एक सौ-से अधिक ऐसे कारखाने थे।

सत्रहवीं शताब्दीमें भारत आनेवाले फरासीसी यात्री ट्रेवर्नियरने लिखा था कि बनारसमें दो गलियाँ हैं जिनमें सूती, रेशमी तथा अन्य वस्त्र मिलते हैं। इनमें अधिकतर विक्रेता वे ही होते हैं जो स्वयं इन वस्तुओंको प्रस्तुत करते हैं अतः विदेशियोंको यह माल सीधा उत्पादकोंसे मिल जाता है।[2]

प्रमुख उद्योग

ऐश्वर्यके इस युगमें उद्योगोंका भरपूर विकास हुआ। सम्राट् और दरबारी, अमीर और उमरा सभी तबीयतदार थे। इसलिए उन्हें नित नयी वस्तुएँ चाहिये थीं। नाना प्रकारकी कला और कारीगरी उनके आश्रयमें पनपी। मुगलकालके प्रमुख उद्योग ये थे—

१—वस्त्र उद्योग। २—लोहा और इस्पातका उद्योग। ३—मीनाका उद्योग। ४—शीशेका उद्योग और ५—नौ-निर्माण।

मुगलकालमें भारतीय वस्त्र-उद्योगने खूब उन्नति की। आरम्भसे लेकर १८ वीं शताब्दीतक भारतका यह उद्योग इतना अधिक विकसित रहा कि अपनी आवश्यकताओंकी पूर्ति करनेके उपरांत वह विश्व-

१—वर्नीयरः ट्रेवेल्स इन दि मुगल एम्पायर (१६५६–६८), पृष्ठ २५१।
२—पी० आर० रामचन्द्रराव: डिके आव इंडियन इंडस्ट्रीज, पृष्ठ २०।

के अन्य अंचलोंके निवासियोंकी भी लज्जा ढकता था। पाइरार्ड नामक तत्कालीन पुर्तगीज लेखकने लिखा था कि उत्तमाशा अन्तरीपसे लेकर चीनतक, सभी स्त्री-पुरुष सिरसे पैर तक भारतीय वस्त्रसे ढके रहते हैं। भारतीय उद्योगोंको सर्वथा नगण्य वतानेवाले मोरलैंडको भी अन्तमें यह वात स्वीकार करनी पड़ी कि इसमें अतिशयोक्ति भले हो, पर इसमें सन्देह नहीं कि भारतका वस्त्र-उद्योग सबसे अधिक व्यापक था। इस जमानेमें भारतकी इतनी उन्नति विश्वके औद्योगिक इतिहासमें अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटना है।[1] वर्थेमाने लिखा है कि फारस, तारतरी, तुर्की, सीरिया, वार्वरी, अरव, अवीसीनिया तथा कुछ अन्य स्थानोंमें गुजरातसे सूती और रेशमी वस्त्र जाता है[2]। भारतीय वस्त्र पूर्व और पश्चिम दोनों ही दिशाओंमें जाता था। गर्डाफ्यू अन्तरीपसे उत्तमाशा अन्तरीपतक, अरव, मिस्र, मलाका द्वीप, फिलिपाइन, मैक्सिको, वर्मा, जापानमें इसकी खपत थी। इस कालमें सूरत, कालीकट, मसलीपट्टम आदि प्रसिद्ध वन्दरोंसे भारतीय वस्त्र यूरोपमें विकने जाता था।[3]

मुगलकालमें गाँव-गाँव वस्त्र उद्योग चलता था।[4] वस्त्रके विषयमें सभी गांव स्वावलम्वी थे। चरखे और करघेके कार्यने ऐसी उन्नति की

सूती वस्त्र

थी कि लोग दाँतोंतले उंगली दवाते थे। ट्रैवर्नियरने एक उदाहरण देते हुए वताया है कि फारसका भारत स्थित राजदूत मुहम्मद अलीवेग जव अपने देशको लौटा तो उसने एक मोतियोंसे जाज्वल्यमान नारियल द्वितीय चोसेफको भेंट किया। यह नारियल शुतुर्मुर्गके अंडेके वरावर था। उसे खोलनेपर

१—मोरलैंड : इंडिया एट दि डेथ आव अकबर, पृष्ठ १७६–१८४।

२—दि ट्रैवेल्स आव लुडो विकोडी वर्थेमा, १८६३।

३—आर० पालित: इंडियन इकोनामिक्स, पृष्ठ ११२–१२४।

४—डब्लू० डब्लू० हंटर : दि इंडियन एम्पायर, पृष्ठ ५५६; रामचन्द्रराव : डिके आव इंडियन इंडस्ट्रीज, पृष्ठ २५।

उसके भीतरसे कालीकटका बना कपड़ेका एक ऐसा बारीक थान निकला जो लम्बाई में ६० घनफुट था पर हाथमें लेनेसे कुछ जान ही न पड़ता था। वस्त्र इतना महीन था कि आंखसे सहज दिखाई नहीं पड़ता था। वस्त्रकी बारीकीके विषयमें औरंगजेबकी पुत्रीकी कथा तो सभी जानते हैं। पिताने उसे देखकर डाँटा कि, 'तू नंगी क्यों खड़ी है; लाज नहीं आती ?' बेटी बोली—'अब्बाजान, आप नाहक बिगड़ते हैं। मैंने तो कपड़ेकी सात तहें करके उसे लपेटा है फिर भी अंग झलकता है तो मेरा क्या कसूर ?'[1]

वस्त्रका उद्योग इतना व्यापक था कि राबर्ट ओर्मने लिखा है कि ऐसा कोई गाँव ढूंढ़ निकालना कठिन है जहाँ सभी स्त्री, पुरुष, बच्चे वस्त्र-उत्पादनमें न लगे हों। उसने लिखा है कि भारतके आधे निवासी इस उद्योगमें संलग्न हैं। १८०० में डाक्टर बुचानन हैमिल्टनने लिखा कि कताई-बुनाई लोगोंका लाभदायक व्यवसाय है। बिहारमें कताईका सारा उद्योग महिलाओंके हाथमें है। कमसे कम ३,३०,००० स्त्रियाँ इस काममें लगी है। शाहाबाद जिलेमें ५६,५००, भागलपुर जिलेमें १,६०,००० और गोरखपुर जिलेमें १,७५,००० कत्तिनें हैं।[2]

ढाकाकी मसलिन अति प्राचीनकालसे प्रसिद्ध रही है। मुगलकालमें उसका विकास चरम सीमापर पहुँच गया था। अंगूठीके भीतरसे पूरा थान निकल जाना साधारण बात होगयी थी। मसलिनके अतिरिक्त आबेरवां, बाफ्ता, शबनम् आदि श्रेणीके वस्त्र भी प्रसिद्ध थे। ये सब इतने उत्तम और महीन होते थे कि लोग चकित होकर इन्हें परियों अथवा कीड़ोंकी कारीगरी बताते।[3]

ढाकाके अतिरिक्त मसलीपट्टम, कोरोमण्डल और गुजरात वस्त्र

१—पी० जे० टामस : लेख, माडर्न रिव्यू, जनवरी १९२४।
२—पी० आर० रामचन्द्राव : डिके आव इंडियन इंडस्ट्रीज, पृष्ठ २५–२७
३—वही, पृष्ठ २५–३१।

उद्योगके लिए प्रसिद्ध थे। मसलिन ढाकामें तो बनती ही थी, सोनार गाँव, तोतबाडो, जंगलबाड़ी, बाजतपुरमें भी तैयार होती थी। बंगालके अतिरिक्त काशी, कोटा, ग्वालियर, उत्तरी अरकाट जिलेका अरणी भी इसके लिए प्रसिद्ध था। ट्रैवर्नियरके अनुसार आगरा, लाहौर, बंगाल, बड़ौदा, भड़ौंच, रेमनसारी आदि स्थान इसके लिए विशेष रूपसे प्रसिद्ध थे। विजगापट्टम, पालीकट, अरकाट, मद्रास, अहमदाबाद, पाटन, भड़ौंच, बड़ोदा, सूरत, लाहौर, मुलतान, सक्खर, थट्टा, पेशावर, कोहाट, उमरेट, पावनी, यवलानासिक, राजमण्डी आदि स्थान विभिन्न प्रकारके वस्त्रोंके लिए प्रख्यात थे।

सूती वस्त्र भाँति भाँतिके बनते थे। सादा, धुला, कोरा, रंगीन, छींटें, चैक आदि विभिन्न श्रेणियाँ थी। कोरोमण्डलका लंकलाट प्रसिद्ध था।[2] गुजरातका वाफ्ता, पेशावर की लुंगी, थत्ताकी छींटें, युक्तप्रान्तकी गबरून, उमरेर पावनीकी धोतियाँ दूर दूरतक प्रसिद्ध थीं।[1] आईन-ए-अकबरीमें खासा मलमल, सालू, छींट, डोरिया आदि अनेक प्रकारके वस्त्रोंका मूल्य दिया हुआ है। स्पष्ट है कि वस्त्र उद्योग अत्यन्त उन्नत था। वस्त्रोंमें तरह-तरहकी कारीगरी, बेलबूटे, कसीदे आदि सुनहली काम भी खूब होते थे।

ऊनी वस्त्रोंके लिए काश्मीरकी ख्याति अत्यन्त प्राचीन कालसे है। आज भी वहाँके शाल, तूश, पश्मीना आदि अपनी उत्तमता और कारीगरीके लिए प्रख्यात हैं।

ऊनी

अकबरके जमानेमें काश्मीरके ऊनी वस्त्र-उद्योगको सरकारी प्रोत्साहन खूब मिला। आईन-ए-अकबरीमें अबुलफजलने लिखा है कि शालके उत्पादनका कार्य लाहौरमें भी आरम्भ हो गया है और वहाँ एक हजारसे

१—वही, पृष्ठ २८-३१।
२—डॉ० पन्त : दी कामर्शियल पालिसी आव दि मुगल्स, पृष्ठ ६४।
३—रामचन्द्रराव : डिके आव इंडियन इंडस्ट्रीज, पृष्ठ २८-३१।

अधिक कारखाने हैं। उस समयके प्रायः सभी यात्रियोंने और इतिहास-कारोंने यह बात मानी है कि काश्मीरका ऊनी-वस्त्र-उद्योग उन्नत अवस्थामें था[१]।

गलीचोंका काम भी इस कालमें उन्नतिपर था। मुलतान, लाहौर, और आगराके अतिरिक्त दक्षिणी भारतके मसलीपट्टम और कोकनाड-के कालीनोंकी युरोप आदि देशोंमें बड़ी मांग थी। गुजरात, राजपूताना और मध्यभारतके कालीनोंने बड़ी ख्याति पायी थी। अदोनी (मद्रास), रंगपुर (बंगाल), खम्भात, धारवाड़, अहमद नगर (बम्बई), मुलतान, स्यालकोट (पंजाब), क्वेटा (बिलोचिस्तान) के शतरंजी कालीनने बड़ी प्रसिद्धि पायी थी[२]।

रेशमी वस्त्र

आईन-ए-अकबरीमें लिखा है कि उस समयका धनिक वर्ग रेशमी वस्त्रोंका ही मुख्यतः व्यवहार करता था। अच्छे सभ्य और शिक्षित समाजमें प्रवेश पानेके लिए रेशम पहनना अनिवार्य-सा था। यह स्थिति सारे देशकी थी। बारदोसाने लिखा है कि विजयनगरके धनिक रेशमी वस्त्रोंका भरपूर उपयोग करते करते थे। उसका कहना है कि गुजरातसे पूर्वी अफ्रिका और पेगूतक भारतीय रेशम जाया करता था।[३] वर्थेमाके विवरणसे भी इसी बातकी पुष्टि होती है। बर्नियरने लिखा है कि बंगालमें सूती और रेशमी वस्त्रका इतना भारी भण्डार है जिससे केवल मुगल साम्राज्यकी ही आवश्यकताकी पूर्ति नहीं होती, अपितु सभी निकटस्थ साम्राज्यों और यहां तक कि युरोपकी आवश्यकताकी पूर्ति भी होती है।[४]

१—डी० पन्त: दि कामर्शियल पालिसी आव दि मुगल्स, पृष्ठ ६२-६४।
२—पी० आर० रामचन्द्रराव: डिके आव इंडियन इंडस्ट्रीज, पृष्ठ ३१-३५।
३—डी० पंत: दि कामर्शियल पालिसी आव दि मुगल्स, पृष्ठ ६४-६६।
४—पी० आर० रामचन्द्रराव: डिके आव इंडियन इंडस्ट्रीज, पृष्ठ ३७-३८।

परन्तु मोरलैण्ड साहबको, उपर्युक्त विवरणमें अतिरंजना प्रतीत होती है ![1]

भारतमें प्राचीन कालसे रेशम होता रहा है। टसर, मूंगा और अंडी भारतकी निजी उत्पत्ति है। हिमालयके दक्षिणी ढालपर और मध्य-भारतके पठारपर टसर, आसाम और पूर्वी बंगालमें मूंगा और आसाममें अंडी एक जमानेसे होती आ रही है। असामियोंकी और विशेषतः स्त्रियोंकी वह साधारण पोशाकमें शामिल है। शायद ही कोई असामी ऐसा हो जिसके पास पहननेके लिए अंडीके वस्त्र न हों। खसी पर्वत-मालाके निवासियोंने इस उद्योगपर बहुत प्राचीन कालसे एकाधिकार जमा रखा है।[2]

रेशमके उद्योगपर बंगालका बहुत पुरातन आधिपत्य है। मालदा, मुर्शिदाबाद, राजशाहीके रेशमकी बड़ी ख्याति है। दक्षिणमें मैसूर और बंगलोरमें भी यह उद्योग खूब पनपता रहा है। इसके अतिरिक्त काशी, अहमदाबाद, सूरत, रायचूर, त्रिचनापल्ली आदि भी रेशमके उत्पादन और उसकी अनेक प्रकारकी वस्तुएं बनानेके लिए प्रख्यात रहे हैं। कीमखाब, चांदतारा, मुर्गला, शिकारगाह, मजहर आदि किस्में खूब प्रचलित रहीं हैं। उनमें तरह-तरहके गोटे, किनारियां, पाड़ें, और बुनावटें आरम्भसे ही जनताके आकर्षणकी वस्तु रही हैं। उनकी देशविदेशमें खूब खपत होती रही है। शुद्ध रेशमके अतिरिक्त सूती मिलावटवाली चीजें भी प्रचलित रही हैं। उत्सवोंपर इसलामने शुद्ध रेशमी वस्त्र पहननेका निषेध किया है। अतः ऐसी वस्तुओंको प्रोत्साहन मिलता रहा है। औरंगाबाद और त्रिचनापल्लीके हिमरूस, आगरा, हैदराबाद, तंजोर, त्रिचनापल्ली आदिके मशरूकी भी अच्छी खपत रही है।

१—मोरलैंडः इण्डिया एट दि डेथ आव अकबर, पृष्ठ १७१, १७६-१८१।

२—रामचन्द्रराव: वही, पृष्ठ ३८—३६।

लोहेका उद्योग पहलेसे ही भारतमें पर्याप्त उन्नति कर रहा था। देहातोंके लुहार कृषिके मामूली औजार बनाते थे। शस्त्रास्त्रके लिए

लोहा और इस्पात

लोहेका उद्योग बहुत प्राचीन कालसे पनपता रहा है। तीर और तलवार, भाले और छुरे, कवच और बख्तरका जबसे उपयोग होता रहा है तभीसे यह उद्योग विकसित होता आ रहा है। जस्टिस रानाडेके शब्दोंमें यह उद्योग इतना उन्नत हो चुका था कि केवल देशकी ही आवश्यकता-पूर्ति करनेमें समर्थ नहीं था, विदेशोंमें भी यहाँके मालकी खूब खपत थी। आसाममें बड़ी-बड़ी तोपें बनती थीं। अकबरके जमानेमें भड़ोंचकी तलवारें, छुरे, कमान तो प्रसिद्ध थे ही, वहाँके इस्पातके हिन्दवानी ब्लेड तो सारे विश्वमें प्रख्यात थे।[1] इंग्लैंडमें इस्पात तो अभी हालकी ही चीज़ है भारतमें 'वीज' पुरानी चीज है और इसका लोहा सभीने माना है।[2] अबुलफजलने लिखा है कि बंगाल, इलाहाबाद, आगरा, बरार, गुजरात, दिल्ली और काश्मीर सूबोंमें उत्तम श्रेणीके लोहेका उत्पादन होता है और उसकी अनेक उपयोगी वस्तुएँ तैयार होती हैं। मसलीपट्टमसे १६६० के लगभग डच खूब लोहा ले जाते थे।[3] इस उद्योगमें इतनी उन्नति हुई थी कि तलवारपर पानी चढ़ानेके साथ उसपर नाम और तारीख भी अंकित कर दी जाती थी। पंजाब, सिंध, मुंगेर, विजयनगर, काश्मीर, कच्छ, अहमदनगर, गुजरात, स्यालकोट, हैदराबाद आदि स्थान लोहेके उद्योग और कोफ्तागीरीके लिए विशेष रूपसे प्रख्यात थे।[4]

मीनेके कामके लिए जयपुर प्राचीन कालसे प्रख्यात है। इस उद्योगका

१—डी० पन्त : दि कामर्शियल पालिसी आव दि मुगल्स, पृष्ठ ९०–९२।
२—रामचन्द्र राव : डिके आव इंडियन इंडस्ट्रीज, पृष्ठ ४२–४३।
३—वही, पृष्ठ ४३–४४। ४—वही, पृष्ठ ४५–४७।

इतिहास अलभ्य है। लेवार्ट फ्यूनिशियाको इसका जन्मस्थान बताता है, हैन्डले तुरानियाको। बैडेनपावल कहते हैं कि काबुलसे भारतमें यह कला आयी। भारतमें जो सबसे प्राचीन प्रमाण उपलब्ध है वह जयपुर नरेश मानसिंहके यहाँका है। जयपुरने इस उद्योगमें पर्याप्त उन्नति की थी और यहाँका काम भारतमें सर्वश्रेष्ठ माना जाता था। जयपुर, बहावलपुर और कच्छमें सोनेपर, मुलतान, लखनऊ और रामपुरमें चाँदीपर और काश्मीरमें ताँबा-पीतलपर मीनेका बहुत अच्छा काम होता था।[1]

मीनागीरी

शीशेका उद्योग भारतमें अत्यधिक प्राचीन है। नर्मदाकी उपत्यकामें कुछ दिन पूर्व राजपीपला राज्यके पुरातत्त्व विभागके अध्यक्ष श्री अमृत वी० पंड्याने जो खोज की है और हमारी पौराणिक गाथाके 'माहिष्मती' नगरके भग्नावशेषका जो पता लगाया है उससे मोहनजोदड़ोका आविष्कार भी एक हजार वर्ष पीछे पड़ गया है। नर्मदा उपत्यकाकी खोजसे यह बात सिद्ध हो गयी है कि ईसासे ४ हजार वर्ष पूर्व भारतमें शीशेका उद्योग इतना विकसित था कि उसकी बढ़ियां मालाएँ और चूड़ियाँ आदि बनती थीं।[2] ऋग्वेद, अर्थशास्त्र, शुक्रनीति, अमरकोष आदि सभी प्राचीन ग्रन्थोंमें शीशेके आभूषणोंका उल्लेख मिलता है। मुगलकालमें यह उद्योग खूब उन्नत था। मेजर कोलने शिमलाकी कला प्रदर्शनीमें शीशेके बने एक गुलदस्ते और एक हुक्केकी कलीका प्रदर्शन किया था। उनका कहना था कि ये वस्तुएं १६वीं शताब्दीकी बनी हैं। मुसलमानी शासकोंको शीशेकी रंगबिरंगी चीजोंका बड़ा शौक था। इस कारण इस उद्योगको पनपनेमें विशेष सुविधा मिली।[3] आगरा और फीरोजाबादमें

शीशेका काम

१—वही, पृष्ठ ४५-४७।

२—पुरानिक सिटी डिस्कवर्ड इन नर्मदा वैली, लेख, हिन्दुस्तान टाइम्स, २४ मार्च, १९४७।

३—रामचन्द्रराव : डिके आव इंडियन इंडस्ट्रीज, पृष्ठ ४८।

आज भी इस उद्योगका ध्वंसावशेष मिलता है।[1] युक्त प्रान्तके अतिरिक्त पंजाब, बंगाल, विहार और बम्बईमें भी यह उद्योग उन्नतिपर था।[2]

प्रोफेसर राधाकुमुद मुखर्जीने नौ-व्यवसायकी कहानी विस्तारसे कही है। वाबरनामा, आईन-ए-अकवरी तथा तत्कालीन ग्रन्थोंसे यह

नौ निर्माण

बात सर्वथा स्पष्ट हो जाती है कि मुगलकालमें नौ-निर्माणका उद्योग अत्यन्त विकसित अवस्थामें था। अकबरने अपने शासनकालमें कितने ही नौ-युद्ध किये थे। ढाकाको अकबरने अपनी नौशक्तिका केन्द्र बनाया था। वहाँपर युद्धपोतोंका जमघट रहता था। ये पोत डाकूपोतोंका पीछा करते थे। कारण, अकबरके शासनकालमें ही युरोपियन समुद्री डाकू अपनी कारगुजारियाँ दिखाने लगे थे। फारसके एक लेखकने लिखा है कि युरोपियन समुद्री-डाकू बंगालके हिन्दू मुसलमानोंको पकड़ ले जाते और दक्षिणके बन्दरगाहोंमें उन्हें अंग्रेज और फरांसीसी व्यापारियोंके हाथ अच्छे दामोंपर बेच डालते थे।[3] अबुलफजलके अनुसार बंगालके अतिरिक्त सिंधमें भी नौनिर्माण कार्य चलता था और यहाँपर ४० हजार नौकाएँ हर समय तैयार रहती थीं। सिंधमें लाहौरी बन्दर इसके लिए प्रख्यात था।

अकबरने नौविभागको चार भागोंमें विभाजित कर रखा था—(१) नौकाओंको तैयार कराना, उनका हिसाब रखना, (२) योग्य नाविकोंका प्रबन्ध करना, (३) नदियोंका निरीक्षण करना और स्थान-स्थानपर कर आदि लगाना और (४) तटकर लगाना। नौकाओंके संचालनके लिए नखोदा (नौसेनापति), मालिन (मार्गदर्शक), भंडारी, करानी (आय-व्यय लेखक), सुकंगीक (कर्णधार), गुअी (जहाजसे पानी निकालनेवाला), खर्वाह (मल्लाह) आदि अनेक कर्म-

---

१—डी० पंत : दि कामर्शियल पालिसी आव दि मुगल्स, पृष्ठ ६०—६३।

२—रामचन्द्रराव : डिके आव इंडियन इंडस्ट्रीज, पृष्ठ ४८।

३—मुखर्जी : हिस्ट्री आव इंडियन शिपिंग, पृष्ठ २१२।

चारी रहते थे। इस विभागपर सरकारी कोषका २६,२८२) मासिक व्यय होता था। पुरानी नौकाओंकी मरम्मत आदिक व्यय भी इसमें जोड़ लिया जाय तो यह व्यय ८,४३,४५२) तक जा पहुँचता था। नौका बनानेवाले कारीगरोंका बड़ा आदर था। उन्हें लगानसे मुक्त उत्तम भूमि दी जाती थी तथा सरकारसे और भी सहायता मिलती थी।[1]

मोरलैंडने लिखा है कि मुगलकालमें नौनिर्माणका उद्योग तेजीपर था और गंगा और सिंधसे नौकाओं द्वारा खूब व्यापार होता था[2]। अकबरके जमानेमें सन्दीप, दूबाली, जहाजघाट, चाकसी, ंडा, बक्ल, श्रीपुर, सीनारज्ञान, सनज्ञान, और बार इस व्यवसायके लिए प्रसिद्ध थे। अकबरसे औरंगजेबतक सभी मुगल शासक नौनिर्माणपर जोर देते रहे। औरंगजेबके जमानेमें हुगली, बालेश्वर, मूरंग, चिलमारी, जैसोर, आदि नौनिर्माणके लिए प्रसिद्ध थे। बंगालके अतिरिक्त भारतके अन्य प्रदेशोंमेंभी नौव्यवसाय उन्नत था। मद्रासमें मसलीपट्टम सामुद्रिक व्यापारका केन्द्र था। गोलकुण्डा, बसीपुरस, बालासोर, मासापुर, मादा पालम आदि भी प्रसिद्ध थे। बाबरीने लिखा है कि औरंगजेबके जमानेमें मासूला, काट, भारनी, पटेला, ओलुका, बदगारू, बज्र, पर्गु, बूटा नामक विभिन्न श्रेणियोंके जहाज बनाये जाते थे।[3]

मुगलकालमें इन प्रमुख उद्योगोंके अतिरिक्त छोटे मोटे कितने ही उद्योग प्रचलित थे। जौहरी और सुनार, हाथीदांतके कारीगर आदि स्वच्छन्दतापूर्वक अपने उद्योगोंमें लगे थे। इत्रका

अन्य उद्योग

विकास इसी कालमें हुआ। नूरजहांकी माँने इत्रका आविष्कारकर अत्तारोंको अभूतपूर्व प्रोत्साहन दिया। शाही महलोंमें

१—प्राणनाथ विद्यालंकारः भारतीय सम्पत्तिशास्त्र, 'नौव्यवसायका इतिहास'।

२—मोरलैंडः इंडिया एट दि डेथ आव अकबर, पृष्ठ १४४।

३—प्राणनाथ विद्यालंकार : वही।

इत्र और फुलेलकी पिचकारियां चलतीं। उनके रत्नजटित दीपकोंसे सारे महल दमकते।[1]

मुगलकालकी इमारतें आजतक बताती हैं कि राजगीरी अत्यन्त उन्नत अवस्थामें थी। आटेकी चक्कियां न होनेसे आटा पीसनेका उद्योग प्रचलित था। गन्नेका गुड़ बनानेका उद्योग खूब चलता था। शकर कम बनती थी। राजपूतानेमें शीशा और जस्ताकी खानें थीं। हिमालय तटवर्ती प्रदेशोंमें तथा राजपूताना, छोटा नागपुर, बुन्देलखंडमें तांबा; बंगाल, प्रयाग, आगरा, बरार, गुजरात, दिल्ली, काश्मीरमें लोहा अधिक पाया जाता था। नमक और शोरा भी जहां-तहां पाया जाता था। इन धातुओंको खुदाईका काम चालू था। नीलकी खेती और उसके रंग-का उद्योग, तेल घानीका उद्योग, मछली मारने और उसका तेल निकालनेका उद्योग भी प्रचलित था। कागज बनाने और चमड़ेकी कमाई-का उद्योग भी छोटे पैमानेपर चालू था। एक्कागाड़ीका प्रचलन होनेसे इनकी तैयारीका उद्योग भी उन्नत अवस्थामें था।[2] देशके विभिन्न भागोंमें विभिन्न उद्योग पनप रहे थे।[3]

स्पष्ट है कि विलास और वैभवके इस कालमें भाँति-भाँति के उद्योग खूब पुष्पित और पल्लवित हुए। हमारी कारीगरी, कला और उद्योगों-का केवल देशमें ही नहीं, विदेशोंमें भी आदर था।

●

१—डी० पन्त : दि कामर्शियल पालिसी आव दि मुगल्स, पृष्ठ ६० ।
२—मोरलैंड : इंडिया एट दि डेथ आव अकबर, पृष्ठ १४१–१५६ ।
३—डी० पंत : दि कामर्शियल पालिसी आव दि मुगल्स, पृष्ठ ६०–६६ ।

मोरलैंडने भारतीय उद्योगोंको नगण्य बतानेकी यथाशक्ति चेष्टा की है फिर भी उन्हें यह बात स्वीकार करनी पड़ी है कि मुगलकालमें भारत औद्योगिक दृष्टिसे पश्चिमी युरोपकी अपेक्षा कहीं अधिक उन्नत था[1]। मुगलकालमें भारतीय व्यापारने उन्नति की। उत्तर और दक्षिण, पूर्व और पश्चिम, सभी ओर भारतीय व्यापारकी धूम थी। बंगाल और मद्रास, गुजरात और सिन्ध सभी प्रान्त व्यापारमें अग्रणी थे।

विदेशी व्यापार

मुगलकालमें भारतका विदेशी व्यापार खूब चमका। उस व्यापारमें पुर्तगीजोंका हाथ अधिक था। मोरलैंडके कथनानुसार युरोप, चीन, जापान, मलाका, ओरमुज और मोजम्बिकसे उनका सीधा व्यापार होता था और इससे वे पूरा लाभ उठाते थे। वे भारतीय व्यापारियोंके मार्गमें बाधाएं भी डालते थे और इस बातकी चेष्टा करते थे कि भारतीय व्यापारियोंपर अधिक लैसंस-फीस लगे और उन्हें अधिक चुंगी, रिश्वत और नजराना आदि देना पड़े, ताकि पुर्तगीज स्वयं अधिक लाभ उठा सकें[2]। प्रतिवर्ष लिसबनसे एक जहाजी बेड़ा भारत आता था। वह गोआ या कोचीनपर लगता। इससे खूब मालका आदान-प्रदान और क्रय-विक्रय हुआ करता था[3]।

आयात निर्यात

इस कालमें भारतसे विदेश जानेवाली वस्तुओंमें मुख्य वस्तुएं ये थीं—सूती और रेशमी वस्त्र, नील, अफीम, मसाले आदि। विदेशोंसे भारत आनेवाली वस्तुओंमे घोड़े, कच्चा रेशम, धातुएं, हाथीदांत, कीमती जवाहरात, सुगन्ध, चीनीकी वस्तुएं, युरोपीय मदिरा आदि मुख्य थीं[4]। मोरलैंडने

१—मोरलैण्ड: इंडिया एट दि डेथ आव अकबर, पृष्ठ १५६।
२—वही, पृष्ठ २३१।   ३—वही, पृष्ठ २०३-२१२।
४—वही, पृष्ठ १६७।

इस व्यापारके सम्बन्धमें यह अनुमान लगाया है कि पश्चिमके देशोंके साथ भारतका व्यापार २५ से ३० हजार टन तकका था और पूर्वीय देशोंके साथ लगभग २७ हजार टन, अर्थात्, सारा विदेशी व्यापार ६० हजार टनसे कम ही था और यह वर्तमान हिसावके अनुसार २४ से ३६ हजारतक टनसे किसी भी हालतमें अधिक न रहा होगा।[1] यह मोरलैंडका अन्दाज है, अतः यह माना जा सकता है कि हमारा तत्कालीन व्यापार अवश्य ही इससे अधिक रहा होगा।

मुख्य वन्दर

अफ्रिका, अरव, मिस्र, वर्मा, सुदूरपूर्व आदि देशोंसे भारतका विदेशी व्यापार खूव चलता था। लहारी वन्दर, खम्भात, सूरत, भड़ोंच, गोआ, कालीकट, कोचीन, नेगापट्टम, मसलीपट्टम, हुगली, श्रीपुर, चटगाँव, भाटकाल आदि वन्दर प्रसिद्ध थे।

व्यापारी

वारदोसा और वर्थेमाके अनुसार मलावार तट, खम्भातकी खाड़ी, कोरोमण्डल तथा वंगालमें अविकतर समुद्री व्यापार मुसलमानोंके हाथमें था।[2] गुजराती और वंगालियोंके हाथमें विदेशी व्यापार वहुत कम था। कोरोमण्डलके चेट्टी और गुजरातके वनिया भी व्यापारमें हाथ रखते थे। यों तो पुर्तगीज व्यापारी ही अधिक लाभ उठाते थे पर भारतीय व्यापारी भी व्यावसायिक वुद्धिमें कम न थे। १६१९–७० के वीच सूरतमें वीरजी वोहरा नामक सौदागर वहाँके सम्पूर्ण व्यापारका स्वामी था और वह संसार भरमें सवसे अधिक वनाढ्य समझा जाता था।[3]

देशी व्यापार

विदेशी व्यापारकी भाँति देशी व्यापार भी समृद्ध था। उद्योगोंके विस्तारके साथ व्यापार वढ़ रहा था और औद्योगिक केन्द्र तथा शहर वढ़ते जा रहे थे। अन्नके अतिरिक्त नमक, शकर, अफीम, नील और शरावका व्यापार मुख्य रूपसे

१—मोरलैंड : इंडिया एट दि डेथ आव अकवर, पृष्ठ २३५–२३७।
२—वही, पृष्ठ १९८–२०२।
३—ईश्वरी प्रसाद : भारतवर्षका इतिहास, पृष्ठ ४३९।

होता था। बादमें तम्बाकूका व्यापार भी खूब पनपा। दस्तकारीकी चीजोंमें सन्दूक, तिपाई आदि लकड़ीका सामान, चमड़ेकी चीजें तथा कागज और मिट्टीके वर्तन बनते थे। सूती, ऊनी और रेशमी वस्त्रोंका व्यापार खूब उन्नतिपर था। अनेक छोटी-मोटी वस्तुओंका व्यापार भी चलता था।

व्यापार मार्ग और साधन

इस समय यातायातका विकास कम ही हो सका था। रेलें तो थी ही नहीं। पक्की सड़कोंका भी अभाव था।[४] सड़कें बनवाने और उनका सुधार करनेकी ओर सबसे पहले शेरशाहका ध्यान गया। उसने बंगालसे लाहौर और लाहौरसे पेशावर-को जोड़ दिया था। अकबरने इस विषयमें कुछ प्रगति की और उत्तरोत्तर सड़कोंके सुधारका कुछ प्रयत्न चलता रहा। अकबरके जमानेमें देशके सभी प्रमुख नगर और बन्दरगाह सड़कोंसे जुड़े थे। यहीं तक नहीं, एक ओर फारस, दूसरी ओर चीनतकसे सीधा सम्बन्ध स्थापित होगया था। सूरतसे बरहानपुर, ग्वालियर, धौलपुर, आगरा, दिल्ली, लाहौर और काबुलके रास्ते चीनतक जानेका मार्ग था और लाहौरसे मुलतान और कन्दहार होकर फारस तकका। सूरतसे भड़ोंच, बड़ौदा, अहमदाबाद, रोहा, बागरा, अजमेर, बन्दरसिरी, बयाना और सीकरी होकर आगरा जा सकते थे और आगरा से इटावा, प्रयाग, काशी, मुगलसराय और पटना होकर बंगालतकका मार्ग खुला था। इसी प्रकार आगरासे कन्नौज, लखनऊ, अयोध्या, फैजाबाद, जौन-पुर, प्रयाग आदि जुड़े थे। पटनासे चम्पारन होकर काठमण्डू (नैपाल) जा सकते थे। दक्षिणमें भी सड़कोंका अच्छा जाल बिछा था और उनके द्वारा गोलकुण्डा, बुरहानपुर, दौलताबाद, सूरत, गोआ, बीजापुर, मसलीपट्टम एक सूत्रमें गुंथे थे और उत्तर भारतके आगरा आदि भी मिल गये थे।[१]

४—मोरलैंड : इंडिया एट दि डेथ आव अकबर, पृष्ठ १६८–२०२।
१—डी० पन्त : दि कामर्शियल पालिसी आव दि मुगल्स, पृष्ठ ५३–५८।

वहुतसा व्यापार जलमार्गसे होता था। गंगा और सिंधुका व्यापारके लिए उपयोग होता था। वंगालसे मालसे लदी नावें काशी आया करतीं और काशीसे प्रयाग। जमुनामें भी खूब व्यापारी-नावें चलतीं।[1] राजपूतानेका नमक गंगाके रास्ते देशके अन्य भागोंमें पहुँचता था। सिन्धु नदीके मार्गसे वस्त्र और नीलका व्यापार अच्छा चलता था। चीनीका व्यापार समुद्री मार्गसे होता था। समुद्रके रास्ते ही चीनी प्रमुख वन्दरोंमें पहुँचती और फिर देशके विभिन्न भागोंमें वितरित होती।[2]

जलमार्गके अतिरिक्त स्थलमार्गसे भी व्यापार होता था। इसके लिए भारवाही पशुओं—वैलों, घोड़ों, ऊँटों, हाथियों, खच्चरों आदिका उपयोग किया जाता था। एक्का-गाड़ी आदि थे अवश्य, पर कम थे। इस कारण राजमार्गोंके निकटके स्थानोंपर माल पहुँचनेमें तो सुभीता रहता था परन्तु देशके भीतरी भागोंमें माल पहुँचनेमें वाधा थी।[3]

सड़कें थी तो, पर अधिक सुरक्षित नहीं थीं। डाक लेजानेके लिए प्रति पाँच कोसपर व्यवस्था थी। ४०० के लगभग स्थायी हरकारे थे,

मार्गमें खतरा

पर राजमार्ग सर्वथा सुरक्षित नहीं थे। प्रायः ही लोग लुट जाते थे। अतः व्यापारी अपना गोल वनाकर चलते थे। इस अरक्षित स्थितिके कारण व्यापारमें वाधा पड़ती थी।[4] समुद्री मार्गमें भी खतरा रहता था जिससे रक्षाके लिए मुगल शासकोंने भारी वेड़ा रख छोड़ा था।

पहले नाके-नाकेपर, घाटोंपर, पहाड़ी मार्गोंपर और सीमाओंपरसे होकर गुजरनेवाले सभी मालपर कर लगा करता था। इसे राहदारीका

१—वही, पृष्ठ ५३-५८।

२—मोरलैंड : इंडिया एट दि डेथ आव अकवर, पृष्ठ २४३-२४४।

३—वही, पृष्ठ २४३, १७०।

४—डी० पन्त : दि कामर्शियल पालिसी आव दि मुगल्स, पृष्ठ ५८।

महसूल कहा जाता था। आईन-ए-अकबरीसे स्पष्ट है कि अकबरने ऐसे सभी करोंके अतिरिक्त कम्बल, चमड़ेकी चीजों तथा ऐसे ही अन्य उद्योगोंपरसे कर उठा लिये थे। इससे उद्योग-व्यवसाय और वाणिज्य-व्यापारको अच्छा प्रोत्साहन मिला। अकबरके बाद धीरे-धीरे ये कर फिर चालू हो गये थे परन्तु औरंगजेबने इनके कारण कृषि, उद्योग और व्यापार—तीनोंको अवनत होते देखा तो ऐसे कर उठा लिये। मुगलकालमें व्यापारमें बाधाएं होनेपर भी वह बुरी स्थितिमें नहीं था। स्वयं मोरलैंडने यह बात स्वीकार की है कि आजकी अपेक्षा कम होनेपर भी तत्कालीन स्थितिको देखते हुए व्यापार उन्नत अवस्थामें था। दक्षिण भारत तो व्यापारके मामलेमें पूर्ण स्वावलम्बी था।[1]

करोंमें कमी

मराठोंके शासनकालमें उद्योग और व्यापारकी उन्नतिकी ओर विशेष ध्यान नहीं दिया गया। कुछ शासकोंने इस ओर थोड़ासा ध्यान दिया पर अधिकतर शासक व्यापारमें बाधक ही सिद्ध हुए।[2]

शेरशाहने मुद्रा-सुधारकी ओर विशेष ध्यान दिया। अकबर उसीके चरण-चिह्नोंपर चला। उसने सिक्कोंकी शुद्धतापर विशेष ध्यान दिया। उनकी आकृतिमें भी सुधार किया। अकबरके जमानेमें प्रचलित प्रमुख सिक्के इस प्रकार थे।

मुद्राकी स्थिति

सोनेके सिक्के	वजन	आकार	मूल्य
सहनसह	१०१ तोला ९ माशा ७ रत्ती	गोल	१०० लाल जिलाली मुहर
,,	९१ तोला ८ माशा	,,	१०८ गोल मुहर
रहस	सहनसहका आधा	चौकोर और गोल	५० लाल जिलाली
आतमा	,, चौथाई	,, ,,	२५ ,,

१—मोरलैंड : इंडिया एट दि डेथ आव अकबर, पृष्ठ २४३–२४४।

२—यदुनाथ सरकार : शिवाजी एण्ड हिज टाइम्स, १९२९, पृष्ठ ३९७।

बिशत	सहनसहका पंचमांश	चौकोर और गोल	२० लाल जिलाली
जुगल	सहनसहका $\frac{१}{५०}$	चौकोर	२ लाल जिलाली
लाल जिलाली	१२ माशा १३$\frac{३}{४}$ रत्ती	गोल	२ मुहर
आफतावी	१२तोला २ माशा ४$\frac{३}{४}$ रत्ती	गोल	१२)
इलाही	१२ माशा १३$\frac{३}{४}$ रत्ती	,,	१०)
अदल गुतका	११ माशा	,,	६)
मिहरावी	११ माशा	,,	६)

इनके अतिरिक्त इलाहीका आधा 'गीरद', चौथाई 'मन', पंचमांश 'पंज', पष्टांश 'कला', अदल गुतकाका आधा 'सलीमी', पंचमांश 'निस्फी सलीमी' आदि कितने ही सिक्के प्रचलित थे।

चाँदीके मुख्य सिक्के रुपया, जिलाली, दुरब, चरन, पाण्डो, अष्ट, दशा, कला, सूकी आदि थे। रुपया चाँदीका ११$\frac{१}{२}$ माशा (१७२.५ ग्रेन) वजनका, गोल होता था। उसका मूल्य ४० दाम माना जाता था। जिलाली चौकोर होती थी। वजन और छाप रुपयेकी ही रहती। जिलालीका अर्धांश 'दुरब', चतुर्थांश 'चरन', पंचमांश 'पाण्डो', अष्टांश 'अष्ट', दशांश 'दशा', सोलहवाँ अंश 'कला' और बीसवाँ अंश 'सूकी' कहा जाता था।

तांबेका सिक्का 'दाम' था। उसका वजन ३२३.५ ग्रेन रहता था। दामका आधा 'अधेला', चतुर्थांश 'पावला' और अष्टांश 'दमड़ी' कहलाता था। हिसाबकी बारीकियोंके लिए दाम २५ अंशोंमें भी विभक्त मान लिया गया था। पचीसवां अंश 'जीतल' कहलाता था[1]।

नूरजहांके सम्मुख विनाशर्त आत्म-समर्पण करनेवाले मुगल सम्राट्

१—ग्लाडविन: आईन-ए-अकबरी (१७८३), पृष्ठ १७–२४।
डी० पंत: दि कामर्शियल पालिसी आव दि मुगल्स, पृष्ठ ७२–६७।
वी० ए० स्मिथ: अकबर दि ग्रेट मुगल, पृष्ठ ३८८।

जहाँगीरने अकबरी सिक्कोंके साथ जहांगीरी सिक्के भी चलाये। सिक्कोंमें भी उसके साथ-साथ नूरजहां आ विराजी। 'तुजुके जहाँगीर'में लिखा है कि सिक्कोंके नाम बदल दिये हैं। सोनेकी १०० तोलेकी मुहरका नाम 'नूरेशाही', ५० तोलेकी मुहरका 'नूरे सुलतानी', २० तोलेकी मुहरका नाम 'नूरे दौलत', १० तोलेकी मुहरका 'नूरेकरम', ५ तोले की मुहरका नाम 'नूरे मेहर' और १ तोलेकी मुहरका नाम 'नूरे जहानी' रख दिया है। चांदीके सिक्कोंका नाम इस प्रकार रखा है—१०० तोलेका 'कोकवेतालों', ५० तोलेका 'कोकवे इकबाल', २० तोलेका 'कोकवे मुराद', १० तोलेका 'कोकवे बख्त', ५ तोलेका 'कोकवे असद', १ तोलेका 'जहाँगीरी', आधे तोलेका 'सुलतानी', चौथाई तोलेका 'निसारी'।[1]

शाहजहाँने सूरत और अहमदाबादकी टकसालोंकी स्थितिमें साम्य लानेका प्रयत्न किया। उस समय सोनेकी मुहर, चांदीका रुपया, महमूदी और ताँबेका पैसा, वेला, पावलाके अतिरिक्त पुर्तगाल, इंग्लैंड, हालैंड, स्पेनके रोज नोवुल्स, ओल्ड जैकोब्यू, अल्वर्टू, रिक्सडेलर्स, स्पेनिश रीलस, सोल, डुकाट, पैगोडा आदि सिक्के भी प्रचलित थे। मुहर ३२ शिलिंगकी और रुपया ४ शिलिंग ६ पैंस का माना जाता था।[2] औरंगजेबने सिक्कोंकी शुद्धतापर विशेष जोर दिया।[3] उसकी धार्मिक कट्टरतासे ऊबकर अंग्रेजोंने बम्बईमें अपनी टकसाल खोली, जिसे चेष्टा करके भी सम्राट् बन्द न कर सका। उसके शासनकालके अन्तिम दिनोंमें बीजापुर, गोलकुण्डाके भी सिक्के धड़ल्लेसे चलते थे।[4] मुगलकालके सिक्कोंकी अवस्थाका वर्णन करते हुए विदेशी लेखकोंने लिखा है कि मुद्रा-

१—राजर्स एंड बेवरिजः तुजुके जहाँगीरी, खंड १, पृष्ठ १०-११।
२—डॉ० पन्तः दि कामर्शियल पालिसी आफ दि मुगल्स, पृष्ठ १८८-१८६।
३—विलियम फोस्टरः दि इंग्लिश फेक्टरीज इन इण्डिया, पृष्ठ २११।
४—पन्तः वही, पृष्ठ २२६-२३०।

का मूल्य चढ़ता उतरता रहता है और वनिये इसका लाभ उठाते हैं।[1]

मुगलकालमें शासकोंने मुद्रा और हुण्डी द्वारा व्यापारको पर्याप्त प्रोत्साहन दिया। अकवरके शासनकालमें सोने चाँदीका मूल्य निश्चित कर बाजारपर नियंत्रण कर दिया गया। उस समय चार प्रकारकी हुण्डियाँ चालू थीं—दर्शनी, मिती, शाहजोग और जोखमी। जोखमीका प्रचलन कुछ कम था।[1] जहाँगीरके समयमें राज्य सवसे वड़ा साहूकार रहा, पर उसने औरोंको भी छूट देदी। अतः कोठियाँ वनीं, हुण्डियोंका प्रचलन वढ़ा और वीमेका श्रीगणेश हुआ। समुद्री वीमा भी आरम्भ हो गया, यद्यपि उसकी दर वहुत ऊँची थी।[2] इस कालमें वीरजी वोहरा भारतका ही नहीं, संसारका सवसे धनी व्यापारी समझा जाता था। उसके अतिरिक्त कोरोमंडलके मलाय और मलावारके चेट्टी भी प्रमुख व्यापारी थे।[3]

व्यापारका विकास

शाहजहाँके समयमें शराफोंका व्यापार खूव चमक रहा था। यद्यपि टकसाल सवके लिए खुली थी तथापि अधिकतर कारवार शराफोंके मारफत ही होता था।[4] हुंडियाँ खूव चलतीं पर उनके विनिमयकी दर विभिन्न स्थानोंपर भिन्न-भिन्न थी।[5] औरंगजेवके सिंहासनारूढ़ होनेपर व्यापारको धक्का लगा। वह शरियतके अनुसार शासन चलानेको कटिवद्ध था। कुरानशरीफमें व्याज-पर रुपया उधार देनेकी मनाही होनेसे वहुतसा कारवार ठप्प होगया। हिन्दुओंके लिए भी व्याज लेनेकी मनाही कर दी गयी। फलतः

हुंडियोंका प्रचलन

१—जान ओगिल्वीः एशिया, खंड १, पृष्ठ १३४।

२—डी० पंत : दि कामर्शियल पालिसी आव दि मुगल्स, पृष्ठ ७६।

३—विलियम फोस्टर : दि इंगलिश फैक्टरीज इन इंडिया, पृष्ठ १०१।

४—ट्रैवेल्स आव पीटरमंडी (१६०८–१६६७), खंड २, पृष्ठ १३९।

५—पंतः वही, पृष्ठ १८६।

६—वही, पृष्ठ १६१।

व्यापार तो गिरा ही, हुंडियोंका प्रचलन भी बन्द-सा हो गया। यह अवस्था देख डच और अंग्रेज व्यापारियोंने भी देशी व्यापारसे अपना हाथ खींच लिया।[1]

मुगलकालमें व्यापार और विनिमयकी अवस्था आरंभ और मध्यमें अच्छी रही परन्तु अन्तिम दिनोंमें औरंगजेबकी अनुदार और साम्प्रदायिक नीतिके कारण वह शोचनीय होगयी। औरंगजेबके उत्तराधिकारियोंमें ऐसी योग्यता ही न थी जो वे इस दिशामें कोई प्रशंसनीय कार्य करते।

१—पन्तः वही, पृष्ठ २२६-२३०।

सामाजिक स्थिति

मुगलकालमें कृषि, उद्योग-व्यवसाय और वाणिज्य-व्यापारकी स्थितिपर विचार करनेसे हम इसी निष्कर्षपर पहुंचते हैं कि इस समय प्रजाकी स्थिति यदि बहुत अच्छी न थी, तो बुरी भी न थी। कुछ विदेशी इतिहासकारोंने अपने विवरणसे भ्रम उत्पन्न कर दिया है, पर वस्तुतः उस समयकी स्थिति शोचनीय नहीं थी और आदि तथा मध्यमें तो बहुत ही अच्छी थी।

मुगल शासकोंकी शासन-व्यवस्था उत्तम और सुदृढ़ थी। माना मुगल शासक निरंकुश थे पर उन्हें प्रजाका पूरा ध्यान रहता था और वे अन्याय करनेवालोंको कड़ा दंड देते थे। प्रजाकी स्थितिका पता लगानेके लिए गुप्तचर घूमा करते थे और उनकी रिपोर्ट मिलनेपर अन्याय करनेवाले अधिकारियोंको कड़ा दण्ड दिया जाता था।

शासन व्यवस्था

अकबरकी शासन-पद्धतिमें देशी और विदेशी दोनों ही शैलियोंका सम्मिश्रण था। यातायातकी असुविधाके कारण दूरवर्ती प्रान्तोंके शासकोंसे बारबार मिलना कठिन था पर उसकी पूर्तिके लिए लम्बे खरीते और फर्मान जारी होते थे। प्रधान मंत्री 'वकील', अर्थमंत्री 'वजीर', कोषाध्यक्ष 'बख्शी', न्यायाधीश 'प्रधान काजी', भोजनालयका अध्यक्ष 'खानसामा' और दानकी जायदादों और सम्पत्तिका निरीक्षक 'सदर-उस्सदर' कहलाता था। आवेदन मंत्री 'मीरअर्ज' कहलाता था। सब दर्खास्तें वही प्रधान मंत्रीके पास पहुंचाता था। उचित समझनेपर वह उन्हें सम्राट्के सामने पेश करता था। प्रत्येक अर्जीके साथ बादशाहको नजराना भेंट करना पड़ता था और नौकरोंको शुकराना देना पड़ता था।

केन्द्रीय

प्रान्तीय शासन सूबेदारोंके अधीन था। सूबेदारके नीचे 'दीवान' और उसके नीचे 'वकिया नवीस' रहते थे। सूबा कई सरकारों (जिलों) में बँटा रहता। प्रत्येक सरकारमें कई महाल या परगना रहते। महालका मुखिया चौधरी कहलाता। गाँवोंका प्रबन्ध पंचायतों द्वारा होता। पंचायतें चौधरीके प्रति जिम्मेदार थीं और सम्राट् किसीके प्रति नहीं। अंग्रेजी शासकोंने भी यही पद्धति अपनायी। सूबेदारोंको आदेश था कि प्रजाके हितका पूरा ध्यान रखें, जनताको न्याय तुरत मिले और सड़कें सुरक्षित रहें। किसानोंके खेतोंका पूरा-पूरा हिसाब रहता। मालगुजारीका मासिक हिसाब सरकारी खजानेमें भेजा जाता। सूबेदार सालाना रिपोर्ट देते। धाँधली और अत्याचार करनेवाले अफसरोंको कड़ा दण्ड मिलता। खेतीमें सहायताके लिए सरकारी सहायता दी जाती। लगान चार बारमें चुकाया जा सकता था।

प्रान्तीय

नगरका प्रबन्ध कोतवालके हाथमें रहता। वह पुलिस और मजिस्ट्रेट दोनोंका काम करता। उसे व्यापक अधिकार थे। खरीद-बिक्रीपर नियंत्रण रखने और बाजार-भाव सीमित रखनेका उसे निर्देश था।

न्याय

सम्राट् प्रधान न्यायाधीश माना जाता था। वह स्वयं भी न्यायालयमें बैठता था और बड़े-बड़े मुकदमोंका फैसला करता था। यों साधारणतः काजी ही मुकदमोंका निर्णय करता था और मीरअदल तथा मुफ्ती कानूनकी व्याख्या करते थे। धार्मिक ग्रन्थोंके निर्देशानुसार फैसला किया जाता था। औरंगजेबने 'फतवए आलमगीरी' नामक कानूनकी पुस्तक तैयार करा दी थी। दंड प्रायः कठोर ही रहता और अपराधियोंको भारी जुर्माना भी देना पड़ता था। गाँवोंके मुकदमोंका फैसला ग्राम पंचायतें किया करती थीं।

स्थायी सेनाके अतिरिक्त शाही सेनाके दो भाग और थे। एक

थी उन राजाओं और सरदारोंकी सेना जो सम्राट्का आधिपत्य स्वीकार कर लेते थे और दूसरी थी मनसवदारोंकी सेना। १० से लेकर १० हजार तकके मनसवदार हुआ करते थे। १० हजारी मनसवदार सबसे प्रतिष्ठित समझा जाता था। मनसवदारोंकी अध्यक्षतामें काम करनेवाली दाखिली सेना और होती थी। एक सेना सम्राट्की अंगरक्षाके लिए भी होती थी जो 'अहदी' कहलाती थी। इसे सरकारी खजानेसे वेतन मिलता था। तोपखाना, हाथी और नौ-सेना शाही सेनाके प्रमुख अंग माने जाते थे। तोपखानाका अध्यक्ष 'मीर आतिश' कहलाता था। अश्वारोही दलको अकबरने अधिक शक्तिशाली बना दिया था। युद्धमें हाथियोंसे भी काम लिया जाता था। नौसेना भी रहती थी।

सेना

राज्यकी आयके साधनोंमें मालगुजारीके अतिरिक्त विविध कर भी थे। अकबरने इनमेंसे कुछ माफ कर दिये थे। जहाँगीरके जमानेमें चुंगी, लड़ाईमें की गयी लूट और अधीन राजाओंके खिराजसे सरकारी खजानेमें गहरी रकम आती थी। जहाँगीरने भूमि-व्यवस्थामें कुछ हेरफेर कर दिया था। जागीरदारी प्रथा पुनः लागू कर दी थी। उसके समयमें मोरलैंडके कथनानुसार ?० भूमिकी मालगुजारी ठेकेसे वसूल की जाती थी। अफसरोंकी मृत्युके उपरान्त उनकी सारी सम्पत्ति शाही खजानेमें जमा कर ली जाती थी। औरंगजेबने उसमें साम्प्रदायिकताका पुट मिला दिया। सब काम कुरान-शरीफके अनुसार चलानेकी उसकी सनकका परिणाम शासन-व्यवस्थापर प्रत्यक्ष दिखाई पड़ने लगा।

आय

शिवाजी अपनी शासन-पटुताके लिए प्रख्यात हैं। उन्होंने राष्ट्रीय ढंगपर मराठा राज्यकी स्थापना की थी। वे अष्ट प्रधान—मुख्य प्रधान (पेशवा), अमात्य (राज्यके आयव्ययका निरीक्षक-मजूमदार), मंत्री (राजा और दरबारका कार्यविवरण प्रस्तुत करनेवाला—वाकानवीस), सचिव (राजकीय पत्रोंका मसविदा

मराठा पद्धति

बनानेवाला—शुरूनवीस), सुमन्त (परराष्ट्रीय विषयोंमें परामर्शदाता—दरबार), सेनापति (सर ए नौबत), पंडितराव या दानाध्यक्ष (सद्र), न्यायाधीश (काजीउल कुजात) के परामर्शसे शासनभार सँभालते थे। राज्य कई प्रान्तों और जिलोंमें विभक्त था, जिनका शासन सूबेदार करते थे।

शिवाजीने जागीरदारी प्रथा मिटा दी थी। धर्मशास्त्रके अनुकूल न्याय किया जाता था। गाँवोंमें दीवानी मामलोंका फैसला पंचायतें करतीं, फौजदारी मामलोंका पटेल। भूमिसे पर्याप्त आय न होनेके कारण मराठा शासक अपने सवारों द्वारा विजित देशोंसे चौथ और सरदेशमुखी वसूल करते थे। चौथे राज्यकी मालगुजारीका चतुर्थांश होती थी और सरदेशमुखी उसके अतिरिक्त दशांशका कर था।

शिवाजीका सैन्यसंघटन उत्तम था। अत्यन्त सुव्यवस्थित सेनाके बलपर ही उन्होंने इतना बड़ा साम्राज्य खड़ा किया था। ३० से ४० हजार स्थायी सेना और उससे दूनी अस्थायी सेना रहती जो आवश्यकता पड़ते ही बुला ली जाती। सेनाके साथ कोई भी स्त्री या वेश्या नहीं जा सकती थी। यह आदेश न माननेपर अपराधीका सिर धड़से उड़ा दिया जाता था। ब्राह्मण, महिला, गौ और बालककी रक्षा और आदरकी पूरी व्यवस्था थी।[1]

वास्तु कला

मुगलकालमें कृषि, उद्योग और व्यापारमें सामान्यतया उन्नति ही हुई। जनता प्रायः प्रसन्न और सुखी थी। उसका प्रमाण तत्कालीन वास्तुकला, चित्रकला, संगीत और साहित्यसे भी लगता है। मुगलोंके बनवाये महलों, किलों, मसजिदों, मकबरों तथा अन्य भवनोंमें सुन्दर गृह-निर्माण-कलाका परिचय मिलता है। इनमें भारतीय और फारसी कलाका अद्भुत सम्मिश्रण दीख पड़ता है। सीकरीका बुलन्द दर्वाजा, पंचमहल, दिल्लीकी जामा-मसजिद, दीवान खास ; लाहौरकी बादशाही मसजिद और आगरेका ताजमहल इस कालकी उत्कृष्ट रचनाएँ हैं।

१—यदुनाथ सरकार : शिवाजी एंड हिज टाइम्स, १९२९, पृष्ठ ३७८।

मुगल शासकोंने चित्रकलाके विकासकी ओर भी ध्यान दिया। जहाँगीरकी सौन्दर्य-प्रियता तो प्रसिद्ध है। शाहजहाँको चित्रकलाकी

चित्रकला

अपेक्षा वास्तुकलासे विशेष प्रेम था। औरंगजेबकी इधर विशेष रुचि न थी, पर उसके जमानेमें भी इस कलाका कुछ न कुछ विकास होता रहा।

बाबरसे शाहजहाँतक मुगल दरबारमें संगीतका बड़ा आदर रहा। तानसेन जैसे संगीतज्ञ मुगल दरबारकी शोभा-बढ़ाते रहे। पर

संगीत

औरंगजेबने शासनारूढ़ होते ही संगीतज्ञोंको निकाल बाहर किया। विरोधमें जब उन्होंने संगीतका जनाजा निकाला तो औरंगजेब बोला—'ठीक है, इसे इतने गहरे दफनाना कि कभी सिर न उठा सके!' धार्मिक चर्चाओंमें संगीतको मुख्य स्थान प्राप्त था। कबीरपंथियोंके भजन, बँगला वैष्णवोंके गीत, कथा-कीर्तन, रामदास, तुकाराम आदि संतोंके 'अभंग' संगीतकी धारासे आप्लावित होकर जनताको खूब प्रभावित करते थे।

आईन-ए-अकबरीसे पता चलता है कि इस समय हिन्दू मुसलिम संस्कृतियोंका अद्भुत समन्वय हुआ। दर्शन, ज्योतिष, वैद्यक आदि अनेक

साहित्य

विषयोंके ग्रन्थोंका फारसीमें अनुवाद हुआ। मुसलमानोंने संस्कृत तथा विभिन्न प्रान्तीय भाषाओंका ज्ञान प्राप्तकर वाङ्मयकी अभिवृद्धि की। रहीम और रसखान, ताज और जायसी, बिहारी और देव गालिब और नसीब, जौक और मोमिन जैसे कवि, तुलसी और सूर जैसे भक्तप्रवर इसी कालकी उपज हैं। इन कवियोंने जिस अमर साहित्यकी रचना की, उससे आज भी असंख्य प्राणी तृप्ति और आनन्दका बोध करते हैं। गुलबदन बेगम, निजामुद्दीन अहमद, बदायूँनी, अब्बास सरवानी, फिरिश्ता, अबुल हमीद लाहोरी, खाफीखां, सुभानराय खत्री, ईश्वरदास नागर और भीमसेन आदि प्रसिद्ध इतिहासकारोंकी रचनाओंसे इस कालकी अवस्थापर अच्छा

प्रकाश पड़ता है। मुगल सम्राट् स्वयं साहित्यके बड़े भक्त थे। महलोंके बाहर ही नहीं, भीतर भी साहित्य पुष्पित-पल्लवित होता था। बाबर और जहाँगीरकी आत्मकथाएँ, गुलबदनका इतिहास, जेबुन्निसाकी कविताएँ आज भी आदरकी दृष्टिसे देखी जाती हैं। नूरजहां बेगम और जहाँनारा आदिकी विद्वता प्रशंसनीय थी।

धार्मिक समन्वय

मुगलकालमें देशमें सामान्यतया शान्ति थी। आक्रमणकारी लुटेरोंका आतंक जाता रहा था। भूमिसे आनेवाले पुर्तगीज लोकजीवनको विशेष रूपसे प्रभावित न कर सके। पुर्तगीज तो समुद्री तटपर ही सीमित रहे उधर भारतीय संस्कृतिने विजयी मुगलोंको पराजित कर दिया।[1] यही कारण था कि अकबर भी हिन्दू त्योहार मनाता था और जहाँगीर भी। शाहजहाँ भी इनमें सम्मिलित होता था। रक्षाबन्धनपर जहाँगीर हिन्दू सरदारों और पंचोंसे अपने हाथमें राखी बँधवानेमें बड़े गौरवका बोध करता था। इस पर्वके महत्त्वका उसने अपनी आत्मकथामें सुन्दर वर्णन किया है। 'यथा राजा तथा प्रजा।' वह भी ईद बकरीद, मुहर्रम आदि त्योहारोंमें प्रेमपूर्वक सम्मिलित होती। हिन्दू और मुसलमान गले मिलते। यह सम्मिलन जीवनके सभी क्षेत्रोंमें दिखाई पड़ता था। तुलसी और सूर, चैतन्य और कबीर, चिश्ती और सरमद, वैष्णव और सूफी संतोंने प्रेम, भक्ति और ज्ञानकी जो त्रिवेणी प्रवाहित की उसका लोक-जीवनपर अत्यधिक प्रभाव पड़ा। अकबर और दारा आदिने धार्मिक सहिष्णुताका जो पाठ पढ़ाया उसके कारण हिन्दू और मुसलमान अत्यन्त निकट आ गये। राम और रहीमकी तात्विक समानताने मुगलकालमें बड़ा महत्त्व पाया। हिन्दू मुसलमानोंके अन्तरजातीय विवाहोंने भी साम्प्रदायिक एकतामें सहायता की। शासकोंके सद्व्यवहारसे प्रजाने यह बात कभी भी अनुभव नहीं की कि उसपर शासन करनेवाले विदेशी हैं। पंडित

१—डॉ० पन्त : दि कामर्शियल पालिसी आव दि मुगल्स, पृष्ठ २६।

जवाहरलाल नेहरूके कथनानुसार भारतपर विदेशी शासन तो तब आरम्भ हुआ जब अंग्रेजोंने सात समुद्र पार बैठकर भारतपर शासन करना आरम्भ किया।[1]

लोकजीवन

मुगलकालमें हिन्दुओंका जीवन सीधासादा था। वे पुराने ढर्रेपर ही चल रहे थे। रूढ़ियां वर्तमान थीं। कबीरके दोहों और पदों तथा रामायणकी चौपाइयोंसे तत्कालीन अवस्थाका परिचय मिलता है। महिलाओंका पद कुछ गिरता चल रहा था। बाल-विवाह आदिकी प्रथाएँ जोर पकड़ती जा रही थीं। अमीरोंमें, फिर वे हिन्दू हों या मुसलमान, विलासिताका प्रवेश होगया था। उनकी चालढाल, रहनसहनका स्तर और व्यवहार सभी रईसाना था। ट्रेवर्नियर और वर्नियरके विवरणोंसे तत्कालीन स्थितिपर प्रकाश पड़ता है, पर मनूची आदि लेखकोंने बड़ा विकृत और अतिशयोक्ति-पूर्ण विवरण दिया है। मोरलैंड जैसे लोग तो यहाँ तक कह बैठे हैं कि अकबरके जमानेमें भारतीय आजसे भी अधिक गरीब थे।[2] माना उस समय मजदूरी कम थी पर पैसेकी क्रय-शक्ति तो अधिक थी। उस समय दो दाम दैनिक पानेवाला मजदूर मजेमें गुजर कर सकता था, पर युद्धपूर्व ।=) दैनिक पानेवाला मजदूर पेटभर भोजन नहीं पा सकता था! हां, उसने ऊँचे रहन-सहनकी बदौलत 'पीना', जुआ खेलना, धुआँ उड़ाना भले ही सीख लिया हो।[3] औरंगजेबके जमानेतकके वस्तुओंके भाव इस बातका प्रमाण हैं कि जनता इस कालमें सामान्यतया सुखी और प्रसन्न थी।[4]

●

१—जवाहरलाल नेहरू : डिस्कवरी-आव इंडिया, पृष्ठ ३५६।

२—मोरलैंड : इंडिया एट दि डेथ आव अकबर, पृष्ठ २८८।

३—डी० पंत : कामर्शियल पालिसी आव दि मुगल्स, पृष्ठ ६८–६९।

४—रामदास गौड़ : हमारे गाँवोंकी कहानी, पृष्ठ ६८।

वर्तमान युग

सन् १७६० ईसवीसे १९४७ ईसवीतक

कम्पनी काल १७६० ई० से १८५७ ई०
ब्रिटिश काल १८५८ ई० से १९४७ ई०

कम्पनी काल

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

साढ़े तीन सौ वर्ष पूर्वकी बात है। सन् १६०० में इंग्लैंडके कुछ व्यापारियोंने भारत तथा अन्य पूर्वीय द्वीपोंसे व्यापार करनेके लिए महारानी ऐलिजाबेथसे अनुमति प्राप्त कर ली। इन्होंने भारत आकर मुगल सम्राट् जहाँगीरसे भी सूरतमें एक कोठी खोलनेका फरमान पा लिया। इस भाँति भारतमें ईस्ट इण्डिया कम्पनीका जन्म हुआ।

कम्पनीका जन्म

उस जमानेमें भारतवर्षका तैयार माल, बढ़िया मसलिन थान, रेशमी और सूती वस्त्र तथा अन्य उत्तम वस्तुएँ इंग्लैंडमें खूब खपती थीं। कम्पनीने इस स्थितिका भरपूर लाभ उठाया। दिन दूनी रात चौगुनी उसकी वृद्धि होने लगी। सूरत तो अंग्रेजी व्यापारका केन्द्र बना ही, धीरे-धीरे अन्य स्थानोंसे भी उसका विस्तार होने लगा। १६३३ में मछलीपट्टनमें कम्पनीकी एक कोठी खुली। १६४० में उसने दक्षिणमें भूमि खरीदकर मद्रासकी नींव डाली और फोर्ट विलियम खड़ा किया। १६६१ में पुर्तगालकी राजकुमारीसे जब इंग्लैंडके चार्ल्स द्वितीयका विवाह हुआ तो बम्बई नगर उसे दहेजस्वरूप प्राप्त हुआ। चार्ल्स द्वितीयने १६८८ में उक्त नगर कम्पनीको दे डाला। उसने कम्पनीको कुछ व्यापक अधिकार भी प्रदान किये।

साम्राज्यकी लिप्सा

अंग्रेजी कम्पनीका व्यापार धीरे-धीरे पूर्वीय तटकी ओर भी फैला। किन्तु इस बीच बम्बई आदिमें कम्पनीने जो अत्याचार आरम्भ किये उनसे मुगल सम्राट् औरंगजेबने क्रुद्ध होकर आज्ञा दी कि इनकी कोठियाँ जब्त कर ली जायें और इन्हें देशसे निकाल दिया जाय। कुछ कोठियाँ छीन भी ली गयीं, पर अंग्रेज वणिक कच्ची गोलियाँ न खेले थे। उन्होंने झट

औरंगजेबके चरणोंपर मस्तक नवा दिया और अपने कारनामोंके लिए क्षमा-याचना की।

बादमें औरंगजेबके पौत्र, आजमशाहने, जो बंगालका सूबेदार था, हुगली तटवर्त्ती तीन गांवों—कलकत्ता, गोविन्दपुर और छूतानटी—की जागीर कम्पनीको देदी। यह जागीर ही भारतके लिए काल बन गयी। यहींसे भारतमें अंग्रेजी अमलदारीकी नींव पड़ी। सत्रहवीं शताब्दीके अन्ततक अंग्रेजोंने भारतमें अपने पैर जमा लिये और कितने ही बन्दर-गाह उनके हाथमें आगये।

१७०७ में औरंगजेबकी मृत्यु होनेपर मुगल साम्राज्य बुरी तरह हिल उठा। पूर्वमें बंगालके शासक कुछ सशक्त न थे। कम्पनीने सबसे पहले बंगालमें ही अपने साम्राज्यकी नींव डालनेका निश्चय किया।

कोई भी न सोचता था कि कम्पनीका व्यापारिक उद्देश्य बदल गया है और अब वह साम्राज्य-स्थापनका स्वप्न देखने लगी है। कम्पनीके पास शिक्षित और अनुशासित सेना थी, उसके भारत आये प्रतिनिधि चतुर, धूर्त और कूटनीतिज्ञ थे। देशमें उस समय अव्यवस्था थी ही। कोई ऐसी प्रबल शक्ति न थी जो सारे देशको अपनी मुट्ठी-में बनाये रख सके। कम्पनीने देखा कि ऐसा मौका बारबार नहीं आता, क्यों न बहते दरियामें हाथ धो लिया जाय?

चार शक्तियाँ

उस समय देशके विभिन्न भागोंमें अपना अपना प्रभुत्व स्थापित करनेके लिए कई शक्तियोंमें होड़ चल रही थी। इनमें चार शक्तियाँ मुख्य थीं—मराठा, हैदर अली और उसका दिलेर बेटा टीपू सुलतान, फरांसीसी और अंग्रेज।

मराठा

अठारहवीं शताब्दीके पूर्वार्द्धमें मराठोंकी शक्ति प्रबल थी। १७३७ में दिल्लीतक उनके धावेसे इस बातकी आशा बँधने लगी थी कि अब शीघ्र ही मुगल सिंहासन उनके हाथमें आजायगा। नादिरशाहके आक्रमणसे यह आशा कुछ धूमिल-सी हुई परन्तु शीघ्र ही मराठोंकी शक्ति पुनः बढ़ती प्रतीत हुई। परन्तु

सन् १७६१ में पानीपतके मैदानमें उनकी बुरी तरह पराजय हुई। फिर भी पेशवाकी अध्यक्षतामें उन्होंने अपना संघटन करनेकी चेष्टा की।

हैदर अली

दक्षिणमें हैदर अलीकी शक्ति बढ़ती जा रही थी। १७६९ में उसने अंग्रेजोंको बुरी तरह पराजितकर एक अपमानजनक संधिपत्रपर हस्ताक्षर करनेके लिए उन्हें विवश किया। अंग्रेजोंने संकटमें उसकी सहायताका वचन दिया; किन्तु १७७१ में मैसूरपर जब मराठोंने आक्रमण किया और हैदरने अंग्रेजोंसे सहायता माँगी तो अंग्रेजोंने आनाकानी की। इस घटनासे वह अंग्रेजोंका कट्टर शत्रु बन गया और सोचने लगा कि जैसे भी हो, उन्हें देश से निकाल बाहर किया जाय। इसके लिए जहाजी बेड़े की शक्ति बढ़ाना आवश्यक समझ उसने इस ओर ध्यान दिया। माल द्वीप-समूहको उसने अपनी नौ-सेनाका केन्द्र बनाया। उसने मराठों, निजाम और अवधके शुजाउद्दौलासे भी अनुरोध किया कि सब लोग मिलकर अंग्रेजों से संयुक्त मोरचा लें पर किसीने उसकी बातोंपर विशेष ध्यान नहीं दिया। उसके बेटे टीपू सुलतानने भी इसीके लिए जी-तोड़ प्रयत्न किया पर तब बहुत विलम्ब हो चुका था।

फरांसीसी

फरांसीसियोंने भी अंग्रेजोंके ढंगकी ही एक ईस्ट इंडिया कम्पनी बना रखी थी। दोनोंमें व्यापारिक होड़के साथ राजनीतिक होड़ भी चलती थी। प्रायः ही युद्ध छिड़ जाता। इंग्लैंड और फ्रांसके युद्धका अन्त १७६० में हुआ, जिसके फलस्वरूप फरांसीसियोंकी शक्तिका बुरी भाँति ह्रास हो गया। यों भी भारतमें उनका संघटन अच्छा न था तथा आर्थिक और व्यापारिक स्थिति भी अच्छी न थी। १७६० के बाद तो उनकी शक्ति सर्वथा नगण्य होगयी।

अंग्रेज

अंग्रेजोंका सितारा ही सबसे बुलन्द निकला। उन्होंने तलवारके बलसे नहीं, धोखेबाजी, षड्यंत्र, धूर्तता और चातुरीके बलपर भारतमें अपना साम्राज्य स्थापित किया। प्रवंचना और विश्वासघातके अस्त्रसे उन्होंने लड़ाइयाँ जीतीं और भारतमें अपना सिक्का जमाया। व्यापारी बनकर वे यहाँ आये और

भोलेभाले भारतीयोंकी आँखमें धूल झोंककर उन्होंने व्यापारमें तो एकाधिपत्य स्थापित किया ही, अपने साम्राज्यका भी खूब विस्तार किया। जुल्म और अत्याचार, दगा और फरेब, चालाकी और जालसाजी सभीका प्रयोग करके उन्होंने यहाँ अपना आधिपत्य जमा लिया।

अठारहवीं शताब्दीके आरम्भमें अंग्रेज डाक्टरकी चिकित्साके पुरस्कार-स्वरूप फर्रुखशियरने ईस्ट इण्डिया कम्पनीको सारे मुगल राज्यमें

फरमानका दुरुपयोग

व्यापार करनेकी जो स्वतन्त्रता देदी थी उसका परिणाम भारतके लिए कितना घातक हुआ यह बतानेकी आवश्यकता नहीं। शाही फरमानके अनुसार अंग्रेज अपने मालपर चुंगी देनेसे मुक्त कर दिये गये थे, जिसके बदलेमें वे थोड़ासा रुपया वार्षिक कर दे दिया करते थे। दिल्लीमें मुगल सम्राट्के हाथसे जब शासनकी बागडोर निकल गयी तो बंगालके नालायक सूबेदार शाही फरमानका अक्षरशः अर्थ लगाने लगे और कम्पनीका माल चुंगीसे सर्वथा मुक्त हो गया। चाहे वह बाहरसे मँगाया जाता, चाहे बाहर भेजा जाता, कहीं उसपर चुंगी न लगती! एक प्रान्तसे दूसरे प्रान्तको जानेवाला माल चुंगीसे मुक्त नहीं था, किन्तु कम्पनीके धूर्त कारिन्दे यहाँ भी धूर्तता करते और चुंगी देनेमें बेईमानी करते। तात्पर्य यह कि शाही फरमानका बेजा फायदा उठाकर कम्पनीने अपनी जेब भरनी शुरू की।

साथ ही कम्पनी अपनी सेना द्वारा देशी कारीगरों और किसानोंको भी खूब सताने लगी। किसान त्राहि-त्राहि कर उठे। इधर देशी कारीगरी, उद्योग-व्यापार चौपट हो गया, उधर कम्पनी मालामाल होने लगी।

कम्पनीकी दगाबाजीका इतिहास इतना काला है कि उसे देखकर किसी भी अंग्रेजका मस्तक लज्जासे झुके बिना न रहेगा। कम्पनीके

सिराजुद्दौला

धूर्त कार्यकर्ता छिपे-छिपे अपना जाल फैला रहे थे और व्यापारके नामपर भारतकी चतुर्मुखी लूट मचा रहे थे। 'फूट डालो और राज्य करो' की नीतिका आश्रय लेकर उन्होंने

अपना उल्लू सीधा करना आरम्भ किया। बंगालके नवाब धीरे-धीरे कम्पनीके हाथकी कठपुतली बनने लगे। कम्पनीने अमीचन्द नामक सिख सौदागरको फाँसकर नवाब सिराजुद्दौलाके विरुद्ध षड्यंत्र रचा, अमीचन्दको गहरी रकम देनेका वादा किया पर एक झूठे दस्तावेजपर दस्तखतकर उसे भी चकमा दे दिया। २३ जनवरी १७५७ को प्लासीके मैदानमें सिराजुद्दौला और अंग्रेजोंके बीच युद्ध हुआ। नवाबकी विजय निश्चित-सी थी पर भीतर ही भीतर कम्पनीका चक्र चल रहा था। ऐन वक्तपर उसका प्रधान सेनापति मीरजाफर और सहायक सेनापति दुर्लभराम तथा यारलुत्फखां ४५ हजार सैनिकोंके साथ कम्पनीके सैनिकोंके साथ जा मिले। फलतः सिराजुद्दौला पराजित हुआ। वह कैद कर लिया गया और मार डाला गया। गद्दारीके एवजमें नवाबी मीरजाफरके हाल लगी।

रणकलाकी दृष्टिसे प्लासीका युद्ध विशेष महत्त्वपूर्ण नहीं, पर राजनीतिक दृष्टिसे उसका बड़ा महत्व है। इसके द्वारा भारतमें पहली बार ब्रिटिश साम्राज्यकी नींव मजबूतीसे जम गयी।

मीरजाफर

मीरजाफर इतिहासमें ठीक ही 'क्लाइवका गदहा' कहा जाता है। बूढ़ा, आरामतलब, स्वार्थी मीरजाफर अपने मालिकसे विश्वासघात करके नवाबी पागया पर उसका कोई सुख न भोग सका। गद्दीपर बैठनेके बाद उसका एक ही काम रह गया और वह था—अंग्रेजोंकी कठपुतली बने रहना और जैसे हो वैसे उनकी जेबें भरते जाना। सिंहासनारूढ़ होते ही उसने ७०० सन्दूकोंमें भरकर ७३ लाख रुपये कलकत्तामें अंग्रेज कमेटीके पास भेज दिये। ओर्मीके कथनानुसार इससे पहले अंग्रेजोंको इतना अधिक नकद धन और कभी नहीं मिला था! मुर्शिदाबादका खजाना खाली होगया लेकिन अंग्रेजोंकी धन-लिप्सा भला क्यों मिटने लगी? दिनदिन पैसेकी प्यास बढ़ते देख मीरजाफर बुरी तरह घबड़ा उठा। व्यापार चौपट हो रहा था। आयके सभी द्वार

वन्द थे। तव भी उसने इस वातकी पूरी चेष्टा की कि सन्धिकी शर्तोंके अनुसार वह अंग्रेजोंको किस्त चुकाता रहे। उधर सिराजुद्दौलाके न रहनेसे अंग्रेजोंकी और चढ़ वनी थी। १६१५ के शाही फरमानका कम्पनीवालोंने यह भी अर्थ निकाल लिया कि कम्पनीके कर्मचारी, वाहरी और भीतरी सभी प्रकारके व्यापारमें चुंगीसे मुक्त रहेंगे। 'क्लाइवका गदहा' यह सव देखकर हाथ मींजता और पछताता था कि उसने कठपुतली वननेके लिए यह क्या कर डाला !

इधर अंग्रेजोंने एक चाल और चली। राजकार्यमें साम्प्रदायिक भावना प्रविष्ट करा दी। हिन्दू सरदारोंको मीरजाफरका विरोधी वना दिया, ताकि मीरजाफर चाहे भी तो उनकी सहायतासे कभी सिर न उठा सके।

मीरजाफरको जव अच्छी तरह निचोड़ा जा चुका तो कम्पनीके चतुर भाग्य-विधाताओंने सोचा कि अव कोई नयी मुर्गी फाँसनी चाहिये

मीरकासिम

जो रोज सोनेका अंडा दे। मीरजाफरके दामाद मीरकासिमकी ओर उनकी दृष्टि गयी। षड्यंत्र रचा गया और मीरकासिमसे यह शर्त करा ली गयी कि षड्यंत्र सफल होनेपर जव नवावी उसे मिलेगी तो वदलेमें वह अंग्रेजोंको अनेक व्यापारिक सुविधाएँ तो देगा ही, २५ लाख रुपयेकी मोटी थैली भी भेंट करेगा।

सौदा पट गया। षड्यंत्र रचा गया। मीरजाफरपर तरह-तरहकी नालायकीके दोष लगाये गये। चार दिन पहले अंग्रेज जिसकी प्रशंसा करते नहीं अघाते थे, अव उसीके वे जानी दुश्मन वन गये। वह 'नालायक', 'दुष्ट', 'कमीना', 'फाँसी पानेके लायक' आदि कितने ही विशेषणोंसे भूषित किया जाने लगा। हालवेलने उसके विरुद्ध काल-कोठरीकी कहानी ही गढ़ डाली और २० अक्तूबर १७६० को सूर्योदयसे कुछ पहले ही मीरजाफर चारों ओरसे घेर लिया गया। उसकी आत्मा अपनी

बेवसीपर रो उठी ! मालिकके साथ किया गया विश्वासघात नग्नरूपमें सम्मुख आ उपस्थित हुआ, किन्तु 'अब पछताये होत का, जब चिड़ियाँ चुंग गयीं खेत !'

मीरजाफरने तो धोखा खाया ही, इस सौदेमें अंग्रेज भी धोखा खा गये। थोड़े ही दिनोंमें वे अनुभव करने लगे कि मीरकासिमका चुनाव करके उन्होंने भूल की। मीरजाफरकी तरह वे मीरकासिमको भी काठका उल्लू बनाकर रखना चाहते थे, पर वह तो लोहेका चना निकला जिसे चबाना कठिन ही नहीं, असम्भव था।

मीरकासिम बड़ा ही साहसी, वीर, दृढ़निश्चयी, चतुर और पक्का देशभक्त था। अंग्रेजोंके षड्यंत्रमें वह इसीलिए सम्मिलित हो गया था कि वह नहीं चाहता था कि ये विदेशी वणिक इस तरह उसके देशको लूटते रहें। मीरजाफरका दब्बूपन उसे बुरी तरह खलता था और इसीलिए वह चाहता था कि जैसे भी हो वह गद्दीपरसे हटे। गद्दीपर बैठते ही मीरकासिमने रंगमहलका खाका बदल दिया। नाच-रंग, शान-शौकत, भोग-विलाससे किनाराकशी कर ली। सन्धिकी शर्तोंका तो वह पालन करता ही जा रहा था, चुपके-चुपके अपनी शक्तिका भी संचय करता जा रहा था। उसे स्मरण था कि कुछ ही दिन पहले सिराजुद्दौलाके जमानेमें अंग्रेज गुमाश्ते मार्ग चलनेमें भय खाते थे, दरबारमें हाथ जोड़े खड़े रहते थे और हर तरहसे दीनता प्रदर्शित करते थे। पर इतने ही दिनोंमें ये शेर होगये और अब इनका मिजाज सातवें आसमानपर पहुँच गया है !

ऋण उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा था। उससे छुटकारा पानेके लिए मीरकासिमने तीन जिले अंग्रेजोंको सौंप दिये। ऋणसे मुक्त होकर उसने सेनाकी शक्ति बढ़ानी आरम्भ की और शीघ्र ही उसे युरोपियन ढंगपर शिक्षित बना लिया। राज्यकी आयके जो स्रोत सूख रहे थे

उनकी ओर भी उसने ध्यान दिया और अपनी सुव्यवस्था द्वारा शीघ्र ही अपनी आयमें पर्याप्त वृद्धि कर ली।

अंग्रेज शाही फरमानका दुरुपयोग करते जा रहे थे। वे जानबूझकर चुङ्गी नहीं देते थे। फलतः देशी व्यापारी घाटेमें रहते थे। उनका माल मँहगा पड़ता था। कम्पनीवाले अपनेको हर मामलेमें शेर समझते थे। मनमाना अन्याय और अत्याचार करते थे। कोई यदि अपनी चीज उनके मनोनुकूल भावपर बेचनेसे इनकार करता था तो उसे कोड़े लगवा देने और तरह-तरहसे जलील करनेमें वे कभी न चूकते थे। उन्होंने उचित अनुचितका विचार सर्वथा त्याग दिया था। यह स्वाभाविक भी था, क्योंकि वे समझते थे कि हम सर्वशक्तिशाली हैं और नवाब तो हमारे हाथके खिलौने हैं।

अंग्रेजोंकी हठधर्मी

मीरकासिम ऐसी हरकतोंको बर्दाश्त करनेवाला आसामी न था। उसने बारबार उन्हें सचेत किया, फिर भी जब वे न माने तो उसने उन्हें डण्डेसे ठीक करनेका निश्चय किया। कलकत्तामें कम्पनीके जो कौंसिलर थे उनमें व्यावहारिकताका अभाव था। नवाबके आगे झुकना और पुरानी परिपाटीके अनुसार चुङ्गी देना वे शानके खिलाफ मानते थे। हेस्टिंग्स और वांसिटार्ट आदिने उन्हें समझानेकी चेष्टा की कि नवाबकी माँग उचित है, पर उनपर तो प्रमाद छाया था।

बहुत कहनेपर कम्पनीवाले नमक पर २½ प्रतिशत चुंगी देनेको तो तैयार हो गये, परन्तु और सब मालपर चुंगी देनेके लिए वे किसी तरह राजी न हुए। तब मीरकासिमने, उनकी चाल विफल करनेके लिए, निजी व्यापारके मालपरसे सारे बंगालमें चुंगी उठा दी। कम्पनीवाले चाहते थे कि उनपर तो महसूल न लगे पर अन्य व्यापारियोंपर लगे जिससे देशी व्यापारियोंका माल मँहगा रहे और कम्पनीका सस्ता। प्रजा-हितैषी मीरकासिम भला इसे कैसे स्वीकार करता?

अब तो अंग्रेजी कौंसिलके क्रोधका ठिकाना न रहा। इस छूटसे उसकी आशाओंपर तुषारपात हो गया। नवावको समझानेके लिए कम्पनीके एजेंट मुंगेर दौड़ गये, पर दूसरी ओर उन्होंने मीरकासिमको झुकानेकी भी तैयारी की।

वक्सरका युद्ध

उन्होंने जहाँ एक ओर दरबारियों और सरदारोंको फोड़नेका प्रयत्न किया, वहाँ दूसरी ओर मीरजाफरको पुनः ठोंक-पीटकर नवाबीके लिए तैयार कर लिया। मीरकासिमने वीरता, दृढ़ता और साहसपूर्वक सारी स्थितिका सामना किया। समयसे पहले ही युद्ध छिड़ गया, फिर भी मीरकासिम अटल रहा। अंग्रेजोंने इस युद्धमें भी लज्जाजनक विश्वासघात, चालबाजियाँ और षड्यंत्र किये किन्तु उधवानाला और बक्सरके मैदानमें उन्हें लोहेके चने चबाने पड़ गये। भारतीयोंकी देशद्रोहिता और अंग्रेजोंकी कूटनीति, जालसाजी, छल-प्रपंच आदिके कारण मीरकासिमको पराजित होना पड़ा अवश्य, पर भारतीय इतिहासमें उसका नाम सदैव ही आदरके साथ लिया जायगा और उत्कट देशभक्तोंमें उसकी गणना होगी।

१७६४ में बक्सर युद्धने प्लासीके युद्धकी कमीको पूरा कर दिया। अंग्रेजोंका भारतमें अच्छी तरह सिक्का जम गया। इस युद्धमें मीरकासिमके साथ मुगल सम्राट् और उनके मंत्री भी पराजित हुए थे, अतः अंग्रेजोंकी यह विजय अत्यन्त महत्त्वपूर्ण थी।

अपनी धोखेबाजी, जालसाजी और धूर्ततापर गौरवान्वित होनेवाला क्लाइव इस बीच भारतसे लाखों रुपया अपनी जेबमें भरकर और अपने साथियोंको मालामालकर इंगलैंड चला गया था। १७६५ में वह पुनः लौटा और अबकी बार उसने कम्पनीकी नौकरियोंमें सुधार करनेकी ओर विशेष ध्यान दिया तथा अपनी कूटनीतिके बलपर शाहआलमसे बंगाल, बिहार और उड़ीसाकी दीवानी भी प्राप्त कर ली। मालगुजारी वसूल करनेका

दीवानी

सारा प्रवन्ध कम्पनीके हाथ आगया। सैनिक शक्ति और फौजदारीका इन्साफ नवाबके अधिकारमें रहा। इस द्वैध शासनके कारण कम्पनीके हाथमें अधिकार तो अत्यधिक आगया, उत्तरदायित्व कुछ न रहा। कम्पनीने जनताका इतनी वुरी तरह शोषण किया कि १७६९–७० में वंगालमें ऐसा भीषण दुर्भिक्ष पड़ा जिसका विवरण भी रोमांचकारी है। अवस्था इतनी भयंकर हो गयी कि लोग लाशोंतकको काटकाटकर खा गये। शस्यश्यामला भूमिमें दानेदानेकी तवाही मच गयी। एक तिहाई जनता दुर्भिक्षकी भेंट हो गयी और कम्पनीके नौकरोंने खूब ऊँचे दामोंपर संचित चावल वेंचकर सोने-चाँदीके महल खड़े किये। विदेशी हुकूमतका पहला कटु अनुभव भारतको इसी समय हुआ।

वारेन हेस्टिंग्स

क्लाइवके पुनः इंगलैंड लौट जानेके वाद वर्ल्स्ट और कार्टियर थोड़े दिनों भारतमें गवर्नर वनकर रहे और १७७२ में हेस्टिंग्स गवर्नर वनकर पुनः यहाँ आया। रुहेला युद्ध, मीरजाफरकी विधवा वेगमसे डेढ़ लाखकी रिश्वत, नन्दकुमारको फाँसी तथा उसके प्रति प्रतिशोधात्मक व्यवहार हेस्टिंग्सकी नीचताके उदाहरण हैं। धनके लिए उसने न्याय, ईमानदारी और सत्यको उठाकर ताकपर रख दिया। महाराज चेतसिंह और अवधकी वेगमोंपर रुपयेके लिए हेस्टिंग्सने जो अत्याचार किये उनकी तो चर्चा ही व्यर्थ है। कम्पनीके 'नमक-हलाल' नौकर जो कुछ करते थे वह उनकी दृष्टिमें उचित था और इग्लैंडके न्यायालय भी उन्हें पूर्णतः निर्दोष वता देते थे। क्लाइवने धूर्तता, धोखेवाजी, विश्वासघात और जालसाजीमें कौनसी कमी की थी, पर वह भारतमें अंग्रेजी राज्यका संस्थापक था! उसके सौ खून माफ थे। इंडिया आफिसके सम्मुख खड़ी की गयी उसकी मूर्ति इस वातका प्रमाण है कि ब्रिटिश जनता उसके कारनामोंके लिए उसकी कितनी कृतज्ञ है। उसीकी तरह हेस्टिंग्सकी प्रशंसा करनेमें अंग्रेजी इतिहासकार गौरवका वोध करते हैं।

भारतमें अंग्रेजी साम्राज्य स्थापित करनेके लिए अंग्रेजोंको जिन शक्तियोंसे लोहा लेना पड़ा उनमें हैदर और टीपू प्रमुख हैं। हैदरके

टीपू

निधनके उपरान्त टीपू अंग्रेजोंसे बराबर लोहा लेता रहा। सन् १७९९ में मैसूरकी चौथी लड़ाईमें वेलेजलीका सन्धिका प्रस्ताव उसने ठुकरा दिया और अपने किलेकी दीवारके नीचे अत्यन्त वीरतापूर्वक लड़ते-लड़ते वीरगति पायी।

साम्राज्यका अन्तिम फैसला अंग्रेजोंको मराठोंसे करना पड़ा। मराठोंमें राष्ट्रीय भावना थी और वीरता भी। नाना फड़नवीस,

मराठोंका पतन

पेशवा बाजीराव प्रथम, महादाजी सिंधिया, यशवन्तराव होल्कर, अहल्याबाई आदिकी वीरता, योग्यता, दृढ़ता और साहसकी शत्रुओंने भी प्रशंसा की है। इन लोगोंने अनेक बार अंग्रेजोंको लोहे के चने चबवा दिये, फिर भी १८१८–१८१९ तक सबने हथियार डालकर अंग्रेजोंसे सन्धि कर ली और काश्मीर, सिंध तथा पंजाबके अतिरिक्त सारे भारतपर यूनियनजैक फहराने लगा। कुछ दिनोंमें शेष प्रदेश भी ब्रिटिश छत्रछायामें आगये। १८४८ में सतारा, १८४९ में जैतपुर, सम्भलपुर और पंजाब, १८५० में बाघट, १८५२ में उदयपुर, दक्षिणी ब्रह्मा और १८५६ में अवध भी अंग्रेजी राज्यमें मिला लिया गया। भारत की मराठा, सिख, गुरखा आदि वीर जातियोंने अनेक बार अंग्रेजोंको बुरी भाँति पराजित किया फिर भी भारतमें अंग्रेजी शासनकी नींव जम ही गयी। कारण यही था कि अंग्रेज जाति वीरताकी अपेक्षा धूर्तता-में अधिक निपुण निकली। भारतमें अंग्रेजी राज्यकी स्थापनाका सारा इतिहास अंग्रेजोंकी चालबाजियों, षड़यंत्रों और धूर्तताओंसे भरा पड़ा है। ईसा और बाइबिलकी शपथ खाकर वे जो वादे करते रहे उन्हें तोड़नेमें उन्हें क्षणभरका विलम्ब न होता था। भोलेभाले भारतीय बहुत जल्द उनके चकमोंमें आ जाते थे! कम्पनीका पंचमांग

बड़ा चतुर था। अच्छे अच्छे सरदारों और अफसरोंको पैसोंसे खरीद लिया जाता था और स्थितिका पूरा लाभ उठाया जाता था। मराठोंमें वीरता थी, पर संघटन-शक्तिका अभाव था। आपसमें प्रतिद्वंद्विता भी चलती थी। राजनीतिज्ञताका अभाव था। उन्हें पता ही न लगता था कि शत्रु उनके खेमेमें कितनी दूरतक घुस आया है। इन्हीं कारणोंसे भारतमें अंग्रेजी शासनको फलने-फूलने तथा जीभरकर भारतको चूसनेका अवसर मिल गया।

सुधार

भारतमें ब्रिटिश शासन जमानेके साथ-साथ कम्पनीके कर्मचारी भूमि-संबंधी व्यवस्था करनेमें लगे थे। १७९३ में कम्पनीको २० वर्षके लिए जो नया आज्ञापत्र मिला उसके अनुसार कम्पनीके सभी अधिकार पूर्ववत् बने रहे, परन्तु १८१३ में व्यापारपरसे कम्पनीका एकाधिकार उठ गया, केवल चीनके व्यापारपर उसका स्वत्वाधिकार रहा। सन् १८३३ में चीनके व्यापारका भी ठेका कम्पनीके हाथ से लेलिया गया और अब उसे भारतपर शासन करनेका पूरा अधिकार दे दिया गया। शासनमें महत्त्वपूर्ण परिवर्तन कर दिये गये। यह भी घोषणा कर दी गयी कि भारतका कोई भी निवासी अथवा सम्राट्की कोई भी प्रजा अपने धर्म, जन्मस्थान, वंश, रंग, जाति आदि के कारण किसी सरकारी पदसे वंचित नहीं रखी जायगी। १८३५ में समाचार पत्रोंपरसे प्रतिबंध उठा लिये गये। शिक्षा आदिकी ओर भी कुछ ध्यान देनेकी चेष्टा की गयी और अंग्रेजी शिक्षाका माध्यम बना दी गयी। १८५३ में कम्पनीको जो नया आज्ञापत्र मिला उसके अनुसार विधान और शासनमें महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किये गये।

दुर्भिक्ष

इस बीच भारतका आर्थिक शोषण जारी था। फलतः देशमें अकालपर अकाल पड़ रहे थे। सन् १८०३ और १८०४ में बम्बई और उत्तर भारतमें अकाल पड़ा। १८१३ में बम्बईमें उसकी पुनरावृत्ति हुई। १८०७, १८२३ और १८३३ में भूमिकरसे पीड़ित मद्रास अकालोंसे बुरी तरह नष्ट

हुआ। १८३७ में उत्तरी भारतमें जो अकाल पड़ा उसने तो पिछले अनेक अकालोंको मात कर दिया।

सन् ५७ का गदर

लार्ड डलहौजीने देशीराज्योंको अंग्रेजी राज्यमें मिलानेकी जो नीति बरतनी आरम्भ की, जमीनके बन्दोबस्तकी जो तरह-तरहकी व्यवस्था शुरू हुई, रेल-तारके विस्तार और हिन्दुओंकी पुरानी सामाजिक रीतियोंकी अंग्रेज पादरियों द्वारा जो निन्दा आरम्भ हुई अथवा सेनामें भारतीय सैनिकोंके प्रति जो भेद-भावकी नीति चालू की गयी, किसीका भी परिणाम हो, इतना निश्चित है कि अंग्रेजी शासनके विरुद्ध विभिन्न कारणोंसे जनताके हृदयमें जो आग सुलग रही थी वह इस अफवाहसे ज्वालामुखीकी भाँति फूट पड़ी कि कारतूस गाय और सुअरकी चर्बीसे चिकने किये जाते हैं और अंग्रेज हिन्दू और मुसलमान दोनोंको धर्म-भ्रष्ट करना चाहते हैं। मेरठकी सैनिक छावनीसे इसका श्रीगणेश हुआ।

दिल्लीके बहादुरशाहके सम्बन्धी फीरोजशाह, तांतियाँ टोपी और झाँसीकी महारानी लक्ष्मीबाईने इस खुले विद्रोहके संचालनमें जिस वीरता, साहस, दृढ़ता और शक्तिका परिचय दिया उसका वर्णन करना व्यर्थ है। विरोधियोंतकने मुक्तकंठसे इनकी प्रशंसा की है। देशका दुर्भाग्य था कि उसकी आजादीकी यह पहली तड़प बेकार गयी। अंग्रेजी शासनकी नींव उखड़ते-उखड़ते रह गयी। इसके बदलेमें बेकसूर जनताका जितनी बुरी तरह दमन किया गया, निरपराध स्त्रियों और बच्चों, बूढ़ों और जवानोंको जैसे गोलियों और तलवारके घाट उतारा गया उसके प्रमाण पार्लमेण्टके कागजोंतकमें मौजूद हैं। अंग्रेजोंने अपनी बर्बरतासे यह दिखा दिया कि वे तैमूर और नादिर-शाहसे किसी भी हालतमें कम नहीं हैं!

मुगल शासकोंकी सदा यह नीति रहती थी कि प्रजापर किसी प्रकारका अत्याचार न होने पाये। अत्याचारी कर्मचारी, शिकायत मिलते ही, बर्खास्त कर दिये जाते थे।[1] मुगल सम्राट् किसानोंकी अवस्था सुधारने के लिए सदैव सचेष्ट रहते थे। यही कारण था कि मुगलकालका किसान सुखी और प्रसन्न था। तत्कालीन यूरोपियन तथा अन्य यात्रियोंने मुक्तकंठसे यह बात स्वीकार की है कि संसारके अन्य किसी भी देशमें उस समय किसानोंकी हालत इतनी अच्छी न थी।[2]

सर्वनाशका आरम्भ

पर कम्पनीकालमें ? कम्पनीका चरण पड़ते ही किसानके सर्वनाशकी नींव पड़ गयी। कम्पनी द्वारा भारतका ऐसा शोषण आरम्भ हुआ जिससे सम्पन्न और प्रसन्न किसान दानेदानेके लिए मोहताज हो उठा। जर-जमीन, रुपया-पैसा, भोजन-वस्त्र, कुछ भी उसके पास न रह गया। कम्पनीकालका एक दशक भी समाप्त नहीं हुआ कि बंगालमें ऐसा भयंकर दुर्भिक्ष पड़ा जिसमें बंगालकी एक तिहाई जनता साफ होगयी।[3] फिर भी कम्पनीके कर्मचारी लगान वसूल करनेमें लेशमात्र भी न झिझके। लगानकी एक-एक कौड़ी उन्होंने पूरी कठोरतासे वसूल की।[4] इतना ही नहीं, लगान और अधिक बढ़ा दिया गया। क्लाइव साहबने अपनी वफ़ादारी जताते हुए बड़ी शानसे कम्पनीके डाइरेक्टरोंको लिखा—'१७७१ का राजस्व १७६८ से भी बढ़ गया है।'

१—यदुनाथ सरकार : मुगल एडमिनिस्ट्रेशन, पृष्ठ १०८।

२—एस० सी० हिलः बंगाल इन १७५६–५७, खंड १।

३—थियोडोर मारिसनः दि इकोनामिक ट्रांजीशन इन इंडिया, दुर्भिक्ष अध्याय।

४—हन्टरः एनल्स आव रूरल बंगाल, पृष्ठ २१।

सन् १९४२ में बंगालके भयंकर दुर्भिक्षमें जो मुनाफाखोरी और चोरबाजार चला था उसका पथप्रदर्शन १७६८ में ही कम्पनीके

दुर्भिक्ष

कुशल कर्मचारियोंने कर दिया था। कम्पनीके सरकारी कागजोंमें यह बात स्वीकार की गयी है कि दुर्भिक्षके दिनोंमें कुछ एजेंटोंने चावलकी कोठियाँ भर लीं। वे जानते थे कि हिन्दू मांस खाकर धर्म भ्रष्ट न करेंगे। अतः चावल ही उनकी प्राण-रक्षाका एकमात्र साधन रहेगा। किसानोंकी सारी-उत्पत्ति उनकी आँखोंके समक्ष दूसरोंके हाथोंमें चली गयी। उन्होंने शंकित हृदयसे बीज बोया, दुर्भिक्ष पड़ा। फिर चावलके व्यापारपर एकाधिपत्य जमाये रखना अंग्रेज एजेन्टोंके लिए और अधिक सरल हो गया। महामारीका प्रकोप हुआ। कितने ही जिलोंमें जीवित, किन्तु अर्धमृत व्यक्ति अपने अगणित मृत सम्बन्धियोंके शवोंका सत्कार किये बिना ही चल दिये![1] दुर्भिक्ष और महामारीमें जनता मरती रही, पर मजाल क्या कि कम्पनीके गोरे एजेंट एक मुट्ठी चावल भी दयास्वरूप किसीको दे तो देंदे! उन्होंने मनमाने दामोंपर चावल बेचकर सोनेचाँदीके महल खड़े किये। भारतमें अंग्रेजी राज्यका यह पहला प्रयोग था।

अंग्रेजोंके आगमनके पूर्व देशमें उपजका कुछ अंश ही लगानके रूपमें लिया जाता था। किसानोंको स्वतन्त्रता थी कि वे चाहे नकदी

लगानमें अन्धेर

लगान चुकायें, चाहे जिन्सके रूपमें। साथ ही, निश्चित लगान पूरा तो कभी वसूल ही नहीं किया जाता था। कम्पनीने आते ही जिन्सके रूपमें लगान लेनेकी प्रथा सर्वथा बन्द करदी और जितना लगान निश्चित किया उससे अधिक

१—शार्ट हिस्ट्री आव दि इंगलिश ट्रांजेक्शन्स इन दि ईस्ट इंडीज, पृष्ठ १४५।

ही वसूल किया। कम्पनीने लगानमें प्रतिवर्ष वृद्धि करनी भी आरम्भ की। उसकी धन-पिपासाका प्रमाण ये आँकड़े हैं[1]—

१७६४ में नवाबके समय बंगालका लगान	८१ लाख ७५ हजार रु०
१७६५ में कम्पनीके समय ,,	१ करोड़ ४७ लाख ५ हजार रु०
१७९४ में कम्पनीके समय ,, ,,	२ करोड़ ६८ लाख रु०
नवाबके समय अवधका लगान	१ करोड़ ३५ लाख रु०
कम्पनी-शासनके प्रथम वर्षमें लगान	१ करोड़ ५६ लाख रु०
,, ,, द्वितीय वर्षमें ,,	१ करोड़ ६१॥। लाख रु०
,, ,, तृतीय वर्षमें ,,	१ करोड़ ६८। लाख रु०
मराठोंके समय बम्बईका लगान	८० लाख रु०
कम्पनीके शासनमें आनेके बाद ,,	१ करोड़ ५० लाख रु०

लगानमें यह अन्धेर देख किसान तिलमिला उठा। सन् १८२६ में हिव्रर नामक पादरीने सारे भारतका भ्रमण करनेके उपरान्त लिखा कि 'कोई भी देशी नरेश अपनी प्रजासे इतना अधिक लगान नहीं वसूल करता है जितना हम लेते हैं।' सन् १८३० में कर्नल ब्रिग्सने लिखा कि 'एशिया अथवा युरोपमें कभी भी भारतके समान भूमि-कर नहीं सुना गया।'

पर यह अवस्था कब तक चलती? किसान कृषिके प्रति उदासीन हो उठा। जमीन बेजुती पड़ी रहने लगी। शस्यश्यामला भूमि शस्य-शून्य हो उठी।

कम्पनीकालके पूर्व भारतमें एक सिरेसे दूसरे सिरेतक किसान सुख और आनन्दका जीवन बिताते थे। पादरी हिवरने भरतपुर आदि रियासतोंका चित्रण करते हुए लिखा था कि यहाँ 'शसि सम्पन्न सोह महि कैसी, उपकारीकी सम्पति जैसी।'[2] दक्षिणमें मैसूरके टीपू

१—रमेशचन्द्र दत्त : इकोनामिक हिस्ट्री आव ब्रिटिश इंडिया, भूमिका।

२—बिशप हीबर्स जनरल, खण्ड २, पृष्ठ १७।

सुलतानके राज्यकी अवस्थाका वर्णन करते हुए लेफ्टिनेन्ट कर्नल मूरने लिखा था कि यहाँ खूब खेती होती है, उद्योग-धन्धे खूब चलते हैं, व्यापार उन्नतिपर है और प्रजा खूब प्रसन्न है।[1] हालवेलने बंगालकी अवस्थाका दिग्दर्शन कराते हुए लिखा था कि यहाँ लोगोंकी सम्पत्ति सर्वथा सुरक्षित है। व्यापारियोंकी सहायता और उन्नतिके लिए सरकार पूर्णतः सचेष्ट है। ढाकाके प्रत्येक भागमें कृषि होती है। प्रजा परम सुखी और संतुष्ट है।[2] इसी प्रकार महाराष्ट्रका वर्णन करते हुए डूपेरोंने लिखा था कि इस देशमें आकर मैंने ऐसा अनुभव किया मानों मैं सतयुगके सादे और प्रसन्नतामय जीवनमें पहुँच गया हूँ—जहाँ पृथ्वी अविकारमयी है, दुःख और शोकका नाम भी नहीं है। प्रजा अत्यन्त सुखी, प्रसन्न तथा स्वस्थ है। अतिथि-सत्कार तो इन लोगोंका अतुलनीय है।[1]

कम्पनीके शासनके पूर्व जिस भारतकी यह अवस्था थी वही भारत कम्पनीके आधिपत्यमें आते ही संसारका दरिद्रतम देश बन गया। ईस्ट इंडिया कम्पनीकी गुप्त समितिके प्रेटी नामक एक गोरे कर्मचारीने अपनी गवाहीमें कहा था कि १७६८ में तंजोर प्रदेशको हम अत्यन्त सम्पन्न, उपजाऊ और खूब आबाद समझते थे पर १७८२ में इतनी तीव्र गतिसे उसकी अवनति हुई कि किसी भी जिलेमें उसकी समृद्धिके चिह्न खोजनेपर भी कठिनाईसे मिलेंगे!

बंगाल हो या उड़ीसा, मद्रास हो या अवध—सर्वत्र कम्पनीने भयंकर शोषण आरम्भ किया। किसानोंकी अवस्था दिन-दिन शोचनीय होती चली। बम्बईमें कम्पनी राज्य आरम्भ होते ही ८० लाख

१—मूरः नैरेटिव आव दि वार विथ टीपू सुलतान, पृष्ठ २०१।
२—लाजपतराय : इंग्लैंड्स डैट टू इंडिया, पृष्ठ २५।
३—जे० सी० कुमारप्पाः पब्लिक फिनान्स एण्ड अवर पावर्टी, पृष्ठ १०।

रुपया भूमिकर बढ़ाकर १ करोड़ ५०लाख रुपया कर दिया गया। परिणाम सरकारी रिपोर्टके अनुसार इस प्रकार है—

'अभागे किसानोंसे अधिकसे अधिक धन वसूल करनेके लिए उचित अनुचित सभी उपाय काममें लाये जाते थे। दरिद्र प्रजापर इसके लिए कभी-कभी अमानुषिक अत्याचार भी किये जाते थे। इससे त्रस्त होकर अनेक किसान समीपवर्ती रियासतोंमें भाग गये थे। बहुतसी भूमि यों ही उजाड़ पड़ी रही।'

हेस्टिंग्सके कारनामे

'सीअरुल-मुताखरीन'का कथन है कि बंगालमें पैदावार कम होती जा रही है। जनता दुष्काल और महामारीसे पीड़ित है। देश उजड़ता जा रहा है। अपार भूमि विना जोती बोयी पड़ी है।[1] टारेंसने लिखा था—काशीके महाराज बलवन्तसिंह बड़े अच्छे शासक हैं। उनकी प्रजा सुखी और देश सम्पन्न है। किसानोंको न बेजा माँगका डर रहता है, न किसी प्रकारके जोर-जुल्मका। वे बगीचोंकी सेवा करते हैं और परिश्रमकी बदौलत खूब फूले-फले हैं।[2] पर वारेन हेस्टिंग्स दो साल बाद जब काशी गया तो उसे सारा नगर उजड़ा ही दिखाई दिया।[3]

१७७८ में वारेन हेस्टिंग्सने अपने एक अफसर कर्नल हैनेवेको, अवधके नवावपर जोर डालकर, बहराइच और गोरखपुरका दीवानी और फौजी शासन दिला दिया। फलतः यह तमाम इलाका, जो नवाबके शासनमें खूब खुशहाल था, हैनेवेके अत्याचारके कारण तीन सालमें वीरान हो गया।[4]

१—सीअरुल मुताखरीन, खण्ड ३, पृष्ठ ३२।

२—टारेन्स : एम्पायर इन एशिया, पृष्ठ १२४।

३—वही, पृष्ठ १२५।

४—मिल : हिस्ट्री आव इंडिया, खंड ५, अध्याय ८।

हेंनेवेने कोई लगान नियत नहीं कर रखा था। जमीदार और प्रजासे मनमाना रुपया अपने कलेक्टरों द्वारा वसूल करा लेता था। न देनेपर कैद और कोड़ोंकी सजा दी जाती थी। फलतः अनेक व्यक्ति अपने घरद्वार और गाँव छोड़कर निकल गये। बहुतोंको इतना सताया गया कि उन्हें अपने बच्चेतक बेच देने पड़े![1]

कोलब्रुकने २८ जुलाई १७८८ को अपने पिताको लिखा था कि वारेन हेस्टिंग्सकी कूटनीति और उसके निर्लज्ज विश्वासघातका प्रभाव केवल राजाओं और बड़े लोगोंपर ही नहीं पड़ा। जमीदारोंकी जमीदारियाँ छीन लेना, बेगमोंको लूटना, रुहेलोंको निर्वंश कर देना—यह सब भूला जा सकता है किन्तु गोरखपुरमें उसने जो अत्याचार किये वे सदाके लिए ब्रिटिश जातिके नामपर कलंक रहेंगे! जमीनका लगान, जहाँतक बढ़ाया जा सकता था, बढ़ा दिया गया है। कम्पनीके अधीन जमीदारके पास अपने यहाँकी आमदनीका केवल दस प्रतिशत रहने दिया जाता है। प्रजाके प्रति जैसा बुरा बर्ताव किया जाता है उसे वह सदा याद रखेगी।'

लगान वसूलीमें जुल्म

स्पष्ट है कि कम्पनीका शासन आरम्भ होते ही किसानोंपर आपत्तियोंका पर्वत आ फटा। दिल्लीके सम्राट्से बंगाल, बिहार और उड़ीसाकी दीवानी पाते ही ईस्ट इंडिया कम्पनीने क्रमशः इन प्रान्तोंपर पूरा आधिपत्य जमाना प्रारम्भ कर दिया और उसका श्रीगणेश किया—अन्धाधुन्ध लगान बढ़ाकर। एडमंड बर्कके शब्दोंमें इसका परिणाम यह हुआ कि 'सारा देश वीरान दिखाई पड़ने लगा!' १७७० का दुर्भिक्ष उसका पहला प्रमाण था।

लार्ड कार्नवालिसने बंगाल पहुंचकर देखा कि कम्पनीकी इस

१—बोल्ट्स : कन्सीडरेशन्स ओन इंडियन एफेयर्स।

कारगुजारीके फलस्वरूप उत्तमसे उत्तम भूमि विना जोती-वोयी पड़ी है। कोई उसे पूछनेवाला नहीं। अधिकतर जमीदारोंके नाम कई-कई वर्षका लगान वाकी पड़ा है, जिसे चुकाना उनकी शक्तिसे परे है। अतः कम्पनीका खजाना भी खाली पड़ा है। व्यापारी कम्पनीके लिए यह स्थिति वडी दुःखद थी। कितने ही हिस्सेदार वावेला मचा रहे थे कि शासन-कार्य वन्दकर व्यापार ही वढ़ाया जाय, अन्यथा दिवाला निकलना निश्चित है। इसे रोकनेका एकमात्र उपाय यही हो सकता था कि नये सिरेसे भूमि-व्यवस्था करके उचित लगान निश्चित कर दिया जाय।

इस्तमरारी वन्दोवस्त

हेस्टिंग्सके उत्तराधिकारी कार्नवालिसको कम्पनीने १२ अप्रैल १७८६ को लिखा कि वंगालमें भूमि-कर-प्रणालीका वारवार वदला जाना कम्पनीको पसन्द नहीं है। भूमि-करमें निरन्तर वृद्धि और कृषकोंके साथ सहानुभूति न रखनेवाले नये लोगोंको ठेकेपर भूमि देनेकी प्रथा भी उसने वहुत वुरी वतलायी। उसने यह सम्मति भी प्रकट की कि उचित मालगुजारी नियत करने और उसके ठीक समयपर प्राप्त होनेसे कम्पनीका हित होगा, जमीदारोंके अधिकार भी रक्षित रहेंगे और किसान भी सुखसे रह सकेंगे। उसका इरादा जमीदारोंके साथ दायमी वन्दोवस्त करनेका था परन्तु उसने अपनी यह इच्छा प्रकट की कि पहले मालगुजारीका वन्दोवस्त दस वर्षके लिए ही किया जाय। अपना कार्य प्रारम्भ करनेके पूर्व लार्ड कार्नवालिसको लगान, काश्त, रीति-रिवाज इत्यादि वातोंके सम्वन्धमें कुछ अधिक ज्ञान प्राप्त करनेकी आवश्यकता प्रतीत हुई, अतः उसने शोरकी अध्यक्षतामें इस सम्वन्धमें जाँच प्रारम्भ करादी।[1]

कम्पनीका पत्र

श्री शोरने सन् १७८९ में एक लम्वा खरीता पेश किया, जिसने

१—रमेशचन्द्रदत्त : ब्रिटिश भारतका आर्थिक इतिहास, पृष्ठ ३१–३२।

वंगालके दायमी वन्दोवस्तकी जड़ जमा दी। इस खरीतेमें श्री शोरने टोडरमल और जाफरखांके वन्दोवस्तकी प्रशंसा की।

शोरकी रिपोर्ट

लिखा है कि भूमिके सुवार एवं उसकी उत्पादन शक्ति वढ़ाने और जंगली भूमिको कृषि-योग्य वनानेके लिए यह आवश्यक है कि जमीदारोंके अधिकारका कुछ मूल्य हो। अतः मालगुजारीका हलका होना आवश्यक है। सरकारी मांगको सदाके लिए नियत कर देना ही उनके अधिकारोंको रक्षित और स्थायी वना देनेका एक मार्ग हो सकता है। जमीदार लोग अपनी भूमिको सुधारनेका प्रयत्न तभी करेंगे जव उससे उन्हें पर्याप्त लाभ होगा। उन्हें भूमि सुधारनेमें इकट्ठा व्यय करना होगा। अतः ऐसी व्यवस्था हो जिसमें जमीदार लोग अपने व्ययके वदलेमें भावी लाभकी निश्चित आशा कर सकें।[1]

सरकारी मांग जमीदारोंके तत्कालीन लाभोंपर ६० प्रतिशत नियत की गयी। उस समय यह वहुत अधिक थी परन्तु शोरने आशा प्रकट की कि वे अपनी भूमिका सुवार तथा कृषिको उत्साह प्रदानकर अपनी आय वढ़ा सकेंगे।

श्री शोरने कहा कि वन्दोवस्त सम्वन्धी मेरे दो सिद्धान्त हैं। एक तो यह कि सरकारकी मालगुजारी निश्चित हो जाय और दूसरा यह कि प्रजाकी रक्षा होती रहे। ये दोनों कार्य मालगुजारी सदाके लिए स्थिर कर देनेसे हो सकते हैं।[2]

दसवर्षीय वन्दोवस्त सन् १७८१ में प्रारम्भ किया गया और सन् १७९३ में पूरा होगया। सन् १७९१ में वंगाल, विहार और उड़ीसासे २ करोड़ ६८ लाख रुपये मालगुजारी वसूल हुई। वह मीरकासिमकी (सन् १७६२–६३ में वसूल हुई) मालगुजारीसे चौगुनी थी, मीरजाफरके

१— रमेशचन्द्रदत्त : ब्रिटिश भारतका आर्थिक इतिहास, पृष्ठ ३४–३६।
२—वही, पृष्ठ ३७।

शासनके अन्तिम वर्ष (सन् १७६४–६५) में महाराजा नन्दकुमार द्वारा वसूल की गयी मालगुजारीसे तिगुनी थी और कम्पनीके शासनके प्रथम वर्ष (सन् १७६५–६६) में प्राप्त हुई मालगुजारीसे दुगुनी थी। इतनी भारी मालगुजारीपर जमींदार लोग केवल इसलिए राजी हो सके थे कि कम्पनीकी अनुमति मिलनेकी शर्तपर, उसे सदाके लिए नियत कर देने अर्थात् दायमी कर देनेका सरकारने वचन दिया था।[1]

कम्पनीके डायरेक्टरोंने श्री शोरकी योजना स्वीकार कर ली। अतः १७९३ से बंगालमें स्थायी बन्दोबस्त होगया।

व्यवस्थाके दोष

स्थायी बन्दोबस्तसे कुछ तो लाभ हुआ, पर उसके अपने दोष भी हैं। जमींदारोंसे जैसी आशा की गयी थी कि वे समाजका नेतृत्व करेंगे, सार्वजनिक शिक्षा, स्वास्थ्य आदिकी उन्नति करेंगे और किसानोंकी उन्नतिमें अपनी उन्नति समझेंगे, वैसा बहुत कम हो सका। कार्नवालिसने यह नियम भी बना दिया कि जिन जमींदारोंके जिम्मे लगान बाकी है, उनकी जमींदारियाँ तत्काल नीलाम करदी जायँ और बड़ी-बड़ी जमींदारियोंको खंड-खंडकर पृथक्-पृथक् नीलाम किया जाय।

इसका परिणाम यह हुआ कि कार्नवालिसके बन्दोबस्तके दस वर्षके भीतर बंगालकी तमाम जमींदारियोंकी शक्लें और उनके मालिक बदल गये। इस बहाने कार्नवालिसने बंगालके हजारों पुराने घराने और तमाम बड़ी जमींदारियाँ समाप्त कर दीं और उनके स्थानपर नये छोटे-छोटे निर्बल और खुशामदी जमींदार पैदा कर दिये।[2]

स्थायी बन्दोबस्तमें, दोषोंके रहते हुए भी, किसानोंका हित था।

१—दत्त : वही, पृष्ठ ३८–३९।

२—जे० मेकलीन : मेमोरेंडम ओन दि रेवेन्यू एडमिनिस्ट्रेशन आव दि लोअर प्राविन्सेज आव बंगाल, पृष्ठ ६।

१९वीं शताब्दीके प्रारम्भमें कुछ अंग्रेज शासकोंने इस बातकी चेष्टा की कि सारे ब्रिटिश भारतमें बंगालके समान ही स्थायी बन्दोबस्त कर दिया जाय। १८०७ में सर टामस मनरोने मद्रासकी प्रजाके साथ जो बन्दोबस्त किया था वह बंगालके स्थायी बन्दोबस्तसे मिलता-जुलता था। बम्बईमें भी पहले ऐसा ही बन्दोबस्त किया गया। १८०३ में कोरा, अवध और प्रयागके प्रदेश जब अंग्रेजी शासनमें आये तो वहाँ भी स्थायी बन्दोबस्त करनेका वादा किया गया। इसकी जाँचके लिए एक कमीशनकी नियुक्ति हुई। १३ अप्रैल १८०८ को इस कमीशनने अपनी रिपोर्ट दी, पर स्थायी बन्दोबस्तके लाभ स्वीकार करते हुए भी सरकारको सलाह दी कि स्थायी बन्दोबस्त न किया जाय। कारण, उससे सरकारी आय स्थिर तथा कम हो जायगी।

अस्थायी बन्दोबस्त

जून १८०७ में सरकारने प्रजासे पक्का वादा किया कि जमीनकी अवस्था अच्छी रही, तो कम्पनीके डाइरेक्टरोंकी अनुमतिसे, १८०७ का लगान चिरस्थायी कर दिया जायगा। पर कम्पनी पैसेका लोभ संवरण न कर सकी। कई अफसरों और तत्कालीन गवर्नर-जनरल लार्ड मिन्टोकी बात भी कम्पनीके डाइरेक्टरोंने अस्वीकार कर दी। १८१८ में मुरादाबाद, बरेली, शाहजहाँपुर और रुहेलखण्ड जिलोंके बोर्डके कमिश्नर सर एडवर्ड कोलब्रुक और श्री ट्राण्टने स्थायी बन्दोबस्तके पक्षमें एक तर्कपूर्ण खरीता भेजा पर वह भी व्यर्थ रहा। ४० वर्ष तक सरकारी नौकरी करनेके उपरान्त १८२० में कोलब्रुक जब अवकाश ग्रहण करने लगे तो उन्होंने पुनः एक बार इसपर जोर दिया। कहा कि १८०७ से १८१८ तक १२ वर्षोंमें निरन्तर लगान बढ़ता गया है, अब तो स्थायी बन्दोबस्त हो ही जाना चाहिये। पर आपका प्रयत्न भी व्यर्थ हुआ! लार्ड हेस्टिंग्सने भी कम्पनीके डाइरेक्टरोंको इसके लिए लिखा, पर उनकी चेष्टापर भी पानी फेर दिया गया। १ अगस्त १८२१

कम्पनीका वचन-भंग

को कम्पनीके डाइरेक्टरोंने लार्ड हेस्टिंग्सको स्पष्ट लिख दिया कि भविष्यमें भारतके किसी भी प्रदेशमें स्थायी बन्दोबस्त नहीं किया जायगा। इस प्रकार कम्पनीने अपने वादोंपर पानी फेर दिया।

असहाय किसान

कम्पनीकालमें भारतीय किसानको प्रत्येक सम्भव उपायसे चूसना ही सरकारका लक्ष्य रहा। उसकी उन्नति करना, उसके कष्ट दूर करना तो सरकारकी कल्पनाके परेकी वस्तु थी। पाला पड़े, सूखा पड़े, टिड्डी दल आये, ओले गिरें, फसल चौंपट हो जाय, सरकारको लेशमात्र चिन्ता नहीं। उसे तो पूरी-पूरी मालगुजारी वसूल करनेसे मतलब! यदुनाथ सरकारने लिखा है कि मुगल भारतमें किसी किसानको लगान अदा न करनेके कसूरमें जमीनसे बेदखल न किया जाता था। कोई किसान भूखा न रहता था। बटाईकी प्रथाके अनुसार चूँकि लगान उपजके रूपमें लिया जाता था, किसानोंको बड़ा लाभ रहता था, क्योंकि लगानकी अदायगी प्रति वर्षकी वास्तविक उपजपर निर्भर होती थी। इसके विरुद्ध आजका लगान रुपयोंके रूपमें नियत होता है, जिसका उस वर्षकी उपजके साथ कोई संबंध नहीं रहता![1]

इस प्रकार कम्पनीकालमें भारतीय किसान सर्वथा असहाय होगया। उसके पेटमें दाना, तनपर कपड़ा और छप्परपर फूस भी न रहा। रुपया-पैसा, धन-दौलत, भोजन-वस्त्र, पशु-चौपाये, घी-दूध सब कुछ उसके लिए स्वप्न होगया। वह या तो अस्थिचर्मविशिष्ट होकर साँस लेता रहा या दुर्भिक्ष और महामारीका शिकार होकर हजारों और लाखोंकी संख्यामें स्वर्ग-लोकका रास्ता नापता रहा! किसे पर्वाह थी उसकी सुधि लेने की?

१—यदुनाथ सरकार : मुगल एडमिनिस्ट्रेशन।

कम्पनीकालमें कृषिका जैसा सर्वनाश हुआ वैसा ही उद्योगका भी नाश हुआ। विश्वके इतिहासमें किसी देशके उद्योग-धन्धोंको चौपट करनेके लिए इतना अन्याय और अत्याचार न हुआ होगा। वेलेजली, हेस्टिंग्स और डलहौजी, इन गवर्नर-जनरलोंका कार्यकाल भारतमें ब्रिटिश साम्राज्यकी नींव पुष्ट करनेमें विशेष महत्त्व रखता है। उनमें भी हेस्टिंग्सका स्थान सर्वोपरि है। उसीके जमानेमें भारतीय उद्योग-धन्धोंका विनाश गोरी सरकारकी साम्राज्य-नीतिका विशेष अंग बन गया।

इंग्लैंडका सौभाग्य भारतके लिए अभिशाप सिद्ध हुआ। अंग्रेज व्यापारी प्लासीके युद्धमें विजय पाकर शासक बन गये और 'युद्ध और प्रेममें सब कुछ जायज है'—इस लोकोक्तिको चरितार्थ करने लगे। बंगाल, कर्नाटक, अवध आदि प्रान्तोंका खजाना नावों और जहाजोंपर लदलदकर विलायतको प्रस्थान करने लगा! भारतकी अकूत लूट इंग्लैंडके लिए पूँजी बन गयी। प्लासीसे वाटरलूतक अर्थात् १७५७ से १८१५ तक करीब १५ अरब रुपया शुद्ध लूटका भारतसे इंग्लैंड पहुँचा।[1] इधर भारतकी लूट आरम्भ हुई, उधर ब्रिटेनमें १७६८ में पहली बार वाष्पशक्तिका आविष्कार हुआ। पूँजी और साधन दोनों मिल गये। फिर क्या था! बर्नीके अनुसार इधर भारतीय युद्धमें बाजी अंग्रेजोंके हाथ रही, उधर इंग्लैंडमें औद्योगिक-क्रान्तिका चक्र चला। इंग्लैंडकी अतुल पूँजी, भारत जैसा विशाल साम्राज्य और भारी नौ-शक्ति उसकी दिन दूनी रात चौगुनी उन्नतिका कारण बन गयी। बिक्रीके लिए इतना भारी बाजार पा जाना इंग्लैंडके लिए परम लाभदायक सिद्ध हुआ।[2]

भारतकी लूट

१—विलियम डिगबी : प्रास्परस ब्रिटिश इंडिया, पृष्ठ ३३।

२—ए० बर्नी : एन इकोनामिक हिस्ट्री आव युरोप, (१७६०–१९३९), पृष्ठ ३–४।

ब्रुक्स एडम्सने लिखा है कि स्टीम इंजिनके आविष्कारक वाटका जन्म यदि ५० वर्ष पूर्व हुआ होता तो वह और उसका आविष्कार दोनों एक साथ कब्रमें जा सोते। सम्भवतः विश्वके आरम्भसे अबतक कभी भी किसी भी पूँजीसे इतना लाभ नहीं उठाया गया जितना कि भारतवर्षकी लूटसे। कारण, लगभग ५० वर्षतक इंग्लैंडका मुकाबला करनेवाला कोई न था। १७६० और १८१५ के बीच इंग्लैंडके उद्योग-धन्धोंने आश्चर्यजनक उन्नति की।

भारतीय उद्योगोंके शवपर ब्रिटिश उद्योग पुष्पित-पल्लवित हुए। कम्पनीने आरम्भसे ही ऐसी नीति बरतनी आरम्भ की जिसमें इंग्लैंडका भला हो और भारतका अधिकसे अधिक शोषण।

नयी व्यापारिक नीति

ब्रिटिश पार्लमेंट उसके इन प्रयत्नोंमें पूर्णतः उसके साथ थी। १८१३ में कम्पनीको जो अधिकार मिले उनसे भारतके उद्योग-धन्धोंपर प्रहार करनेका विधिवत् प्रयत्न आरम्भ हुआ। इसके द्वारा प्रत्येक गोरेको भारतके साथ व्यापार करनेकी स्वतन्त्रता प्राप्त होगयी।

सत्रहवीं शताब्दीके अन्तमें इंग्लैंडमें भारतसे अत्यधिक उत्तम, नफीस और सस्ता कपड़ा सूती मलमल, छींट आदिके रूपमें इंग्लैंड

अत्याचारोंका आरम्भ

पहुंचता था और वहांकी जनता इसे बहुत पसन्द भी करती थी। इसका प्रचलन इतना अधिक था कि इंग्लैंडके ऊनी और रेशमी वस्त्र-निर्माताओंके लिए भारी संकट उत्पन्न हो गया था।[1] अठारहवीं शताब्दीके उत्तरार्द्ध-तक यही स्थिति बनी रही। इंग्लैंडके बने वस्त्र भारतकी अपेक्षा सौंदर्य, मजबूती, सस्तेपन आदि सभी दृष्टियोंसे निकृष्ट थे। यही

१—लेकी : हिस्ट्री आव इंग्लैंड इन दि एटटीन्थ सेंचुरी, खण्ड ७, पृष्ठ २५५-२५६।

कारण था कि ईस्ट इंडिया कम्पनी भारत-वस्त्रके व्यवसायसे निरन्तर मालामाल होती जा रही थी।

जबतक कम्पनी भारतमें शासकके रूपमें न थी तबतक तो गनीमत भी थी, यद्यपि उसके कर्मचारी जहाँ-तहाँ धाँधली मचा लेते थे, पर जबसे उसके हाथमें शासन आया तबसे तो उसने ऐसा अत्याचार करना आरम्भ किया जिसे देखकर कोई भी सहृदय द्रवित हुए बिना न रहेगा।

जबर्दस्तका ढंग

सन् १७९६ से १८११ तक सूरतकी अंग्रेजी कोठीमें कम्पनीका व्यापार किस ढंगसे चलता था, इसका वर्णन करते हुए १८३३ में एक पुस्तकमें रिचर्डस नामक अंग्रेजने लिखा था कि जो कपड़ा सूरतसे विलायत भेजा जाता था, वह निष्ठुर अत्याचारोंका परिणाम था। जुलाहोंको उनकी इच्छा और हित, दोनोंके विरुद्ध कम्पनीसे कामका ठेका लेने और उस ठेकेके अनुसार काम करनेके लिए विवश किया जाता था। जुलाहे इस प्रकार जबरन काम करनेकी अपेक्षा भारी जुर्माना दे देना अधिक पसन्द करते थे। कम्पनी बढ़िया मालके लिए जुलाहोंको जितना पैसा देती थी उससे कहीं अधिक पैसा डच, पुर्तगाली, फरांसीसी और अरब सौदागर उससे घटिया मालके लिए देते थे। कम्पनीका व्यापारी रेजिडेन्ट कहता था कि हमारा उद्देश्य यह है कि कम या निश्चत दामोंपर थान खरीदकर कपड़ेके व्यापारका अनन्य अधिकार कम्पनी अपने हाथमें रखे। इसके लिए इतनी जबर्दस्ती की जाती थी और इतनी अधिक सजाएं दी जाती थीं कि अनेक जुलाहोंने विवश होकर अपना व्यवसाय ही छोड़ दिया।

पर जुलाहे अपना व्यवसाय न छोड़ सकें, इसके लिए भी कानून था। आदश था कि कोई जुलाहा सेनामें भर्ती न किया जाय। एक बार यह भी आज्ञा दे दी गयी कि कोई जुलाहा अंग्रेज अफसरकी आज्ञाके बिना शहरके दर्वाजोंसे बाहर न निकले! आसपासके देशी नरेशोंपर जोर डाला जाता था कि वे अपने इलाकोंमें इस बातकी आज्ञा दे

दें कि कपड़ोंके थान केवल कम्पनीके व्यापारियों और दलालोंके हाथ ही वेचे जाँय, दूसरोंके हाथ किसी भी हालतमें नहीं। जवतक कम्पनी सूरतमें कपड़ेका व्यापार करती रही, कम्पनीके कर्मचारियोंके कामका ढंग यही रहा। अन्यत्र भी इसी प्रकारका अत्याचार होता था[1]।

१६ जुलाई १८१४ को वेलेजलीने मद्रास सरकारके नाम एक पत्र लिखा था जिससे यह वात सर्वथा स्पष्ट हो जाती है कि मद्रास प्रान्तकी अंग्रेजी कोठियोंमें भी अत्याचारोंका क्रम ठीक इसी प्रकारका था।

वंगालकी स्थिति

वंगालमें जुलाहोंको पेशगी देकर पहलेसे ही उनका माल खरीद लिया जाता था। एक वार पेशगी लेकर कोई भी व्यक्ति उसके चंगुलसे मुक्त नहीं हो सकता था। कारण, वंगाल सरकारने १७६३ में एक ऐसा कानून वना डाला था जिसके अनुसार कोई भी मनुष्य, जो कम्पनीका ऋणी हो अथवा उसके वस्त्र-व्यापारसे संवंधित हो, न तो कभी कम्पनीका काम छोड़ सकता था और न किसी अन्य व्यापारीके लिए कोई काम कर सकता था और न उसे स्वतन्त्र रूपसे ही कोई काम करनेकी छूट थी। इस कानूनने जुलाहोंको सदाके लिए कम्पनीका गुलाम वना दिया। वादा-खिलाफी करनेपर कारीगरके लिए हवालात तैयार थी! कम्पनी न तो किसी जुलाहेको उसका पूरा पैसा देती थी और न उसे स्वतन्त्र रूपसे कोई कार्य ही करने देती थी।

वंगालमें रेशमकी कोठियोंमें होनेवाले अत्याचारोंकी चर्चा करते हुए मार्च १८३१ में श्री सौण्डर्सने पार्लमेंटरी कमेटीके समक्ष अपनी गवाहीमें कहा था कि सन् १८२७ में वंगालमें सर्वत्र रेशमका दाम वढ़नेपर अंग्रेज शासकोंने कम्पनीके रेशम खरीदनेवाले गुमाश्तोंको

१—मेजर वी० डी० वसुः दि रिडन आव इंडियन ट्रेड एण्ड इंडस्ट्रीज, पृष्ठ ७८–७६।

आज्ञा दी कि वे रेशमके कारीगरोंसे विना पूछे ही, उनके हितकी चिन्ता किये विना ही, रेशमका मूल्य घटाकर निश्चित कर दें ! 'जवर्दस्त मारे और रोने न दे' की यह स्थिति कम्पनीकी कारगुजारीका अच्छा उदाहरण है।

अन्यायकी पराकाष्ठा

कम्पनीके रेजिडेन्टके नौकर एक हाथमें रुपयेकी थैली और दूसरेमें रजिस्टर लेकर रेशमके कारीगरोंके घरोंपर पहुंचते और उन्हें जवरन पेशगी लेनेपर विवश करते। कारीगर दूसरोंके लिए माल तैयार करनेका पहलेसे यदि वादा भी कर चुके रहते थे तो उनकी वात न सुनी जाती थी और अदालतमें भी रेजिडेन्टकी ही वात मानी जाती थी। मालकी कीमत निश्चित करनेका पूरा अधिकार रेजिडेन्टको रहता था।[1] वोल्ट्सने कम्पनीके गुमाश्तोंके इन अत्याचारोंका विस्तारसे वर्णन करते हुए लिखा है कि देशके गरीव कारीगरों और मजदूरोंके प्रति ऐसे अत्याचार और अन्याय किये गये हैं जिनका अनुमानतक नहीं किया जा सकता। जुर्माना करना, कैद कर देना, कोड़े मारना, जवर्दस्ती इकरारनामे लिखवाना आम वातें हो गयी हैं। असंख्य परिवारोंने अत्याचारसे ऊवकर अपने व्यवसाय और अपने गांव—दोनोंका परित्याग कर दिया है। रेशमके वुनकरों और लपेटनेवालोंको सतानेमें मानव-समाजके पवित्रतम नियमोंका पूर्णतः उल्लंघन किया गया है।[2]

वोल्ट्सने लिखा है कि यदि भारतीय जुलाहे उतना काम नहीं दे

१—हेनरी गूगरः ए परसनल नैरेटिव आव टू ईयर्स इम्प्रिजनमेंट इन वर्मा, १८२४—२६, पृष्ठ २।

२—वोल्ट्सः कन्सिडरेशन्स ओन इंडियन एफेयर्स, पृष्ठ ७२–७३, १९२–१९५।

पाते हैं जितना कम्पनीके गुमाश्ते जबरन उनपर मढ़ देते हैं, तो क्षति-

अंगूठे काटना

पूर्त्तिके लिए उनका माल नीलाम कर दिया जाता है। कच्चा रेशम लपेटनेवालोंके साथ इतना अधिक अन्याय किया गया है कि कितने ही जुलाहोंने स्वयं अपने अंगूठे काट डाले, ताकि कोई उन्हें रेशम लपेटनेके लिए विवश न कर सके। विना अंगूठेके रेशम लपेटनेका काम होता नहीं। उन्होंने सोचा, चलो, न रहेगा बांस, न बजेगी बांसुरी!

यह अवस्था तो उस समयकी है जब भारत और ब्रिटेनके बीच व्यापार करनेका एकमात्र अधिकार कम्पनीको प्राप्त था, परन्तु १८१३

विनाशक नीति

में यह नीति बदली। इंग्लैंडका औद्योगिक विकास आरम्भ हो गया था, उसे अपना माल खपानेके लिए भारत जैसा व्यापक बाजार चाहिये था। इंग्लैंडको भारतको मंडी बनाये रखनेमें ब्रिटिश पूंजीपतियों, कारखानेदारों और मजदूरोंका अहित था। अतः यह निश्चय हुआ कि अबसे उद्योग और व्यापारकी धारा पलट दी जाय और अब भारतको इंग्लैंडकी मंडी बनाया जाय। पार्लमेंटके सदस्य श्री टीरनेने पार्लमेंटकी साधारण सभामें इस नीतिका स्पष्टीकरण करते हुए कहा कि भविष्यमें हमारा साधारण नियम यह होगा कि इंग्लैंड अपने यहांका बना हुआ सारा माल जबरन भारतमें बेचे और उसके बदलेमें भारतकी बनी हुई कोई चीज न ले।[१]

१८१३ का कानून स्वीकृत होनेके पूर्व पार्लमेंटने दो विशेष समितियां नियुक्त की थीं कि वे भारतसे इंग्लैंड लौटे अंग्रेजोंकी गवाहियां लेकर इस नीतिको सफल बनानेके उपाय निकालें। इन गवाहोंने अपने बयानोंमें यह बात सर्वथा स्पष्ट कर दी कि भारतमें ब्रिटिश मालकी कोई आवश्यकता नहीं और ब्रिटिश-माल वहां खपाना

१—पार्लमेंटकी साधारण सभामें टीरनेका भाषण, १८१३।

सरल भी नहीं है। पर तत्कालीन अंग्रेज शासकोंको तो भारतमें ब्रिटिश माल खपाना ही था। अतः उन्होंने ये उपाय निकाले थे—

१—ब्रिटिश माल भारत लानेपर महसूल न लगे, लगे भी तो नाम-मात्रका। पर भारतीय मालपर इंग्लैण्डमें इतना अधिक महसूल लगाया जाय कि वह ब्रिटिश मालसे सस्ता न बिक सके।

२—भारतमें चुंगीके नियमों और दरोंमें इस ढंगसे परिवर्तन किया जाय कि रुई आदि कच्चा माल विलायत भेजनेमें सुभीता हो और भारतीय कारीगरोंकी लागत तथा भारतीय व्यापारियोंकी कठिनाइयां बढ़ जांय और भारतका बाजार भी भारतीय मालके लिए बन्द होकर ब्रिटिश मालके लिए खुल जाय।

३—भारतीय कारीगरोंपर हर तरहका दबाव डालकर उनकी कारीगरीके रहस्योंका पता लगाया जाय और ब्रिटेनके कारीगरोंको ये रहस्य बताये जांय ताकि वे इनका उपयोग कर सकें। प्रदर्शनियों द्वारा भी भारतीय कारीगरीके रहस्योंका पता लगाया जाय।

४—मालके आवागमनके लिए भारतमें रेलें चालू की जांय।

५—अंग्रेज व्यापारियों और कारीगरोंको भारतमें रहने और काम करनेकी सब प्रकारकी सुविधाएं दी जांय।

नीति बननेकी देर थी कि वह कार्यान्वित होने लगी। सन् १८३० में इस संबंधमें जांच करनेके लिए पार्लमेंटकी एक समिति नियुक्त की गयी, जिसके समक्ष लारपेण्ट, सलीवन, क्राफर्ड आदि-ने जो बयान दिये उनसे स्पष्ट है कि इतने दिनोंमें उपर्युक्त नीति कार्यान्वित होने लगी है।

ब्रिटिश माल कर-मुक्त

ब्रिटिश मालपर महसूल घटाकर बहुत कम कर दिया गया। अनेक वस्तुओं-परसे वह सर्वथा उठा ही दिया गया। चुंगीकी दरमें परिवर्तन कर दिया गया। ब्रिटेन जानेवाली रुईपरसे महसूल बिलकुल उठा दिया गया।

ग्लासगो-व्यापार-मंडलने मुक्तकंठसे यह बात स्वीकार की कि ऊनी वस्त्रों, धातुओं और जहाजी सामानपरसे भारतमें महसूल सर्वथा उठा लिया गया है और ब्रिटेनको इन वस्तुओंके व्यापारमें निश्चित रूपसे लाभ होने लगा है।

एक ओर अंग्रेजी माल महसूलसे मुक्त किया जा रहा था, दूसरी ओर भारतीय मालपर भारीसे भारी महसूल लगाया जा रहा था।

भारतीय मालपर भारी कर

अठारहवीं शताब्दीके आरम्भसे ही भारतीय माल ब्रिटेनके कारीगरों और व्यापारियोंकी आँखोंमे खटकने लगा था। १७२० में एक कानून बना दिया गया था कि विलायतमें जो लोग भारतीय 'कैलिको' (उत्तम श्रेणीका वस्त्र) बेचेंगे उनपर २५०) और जो खरीदेंगे उनपर ५०) जुर्माना होगा।[1] भारतीय वस्त्रपर भारी-भारी महसूल लगने लगे थे और जब ये भी व्यर्थ सिद्ध हुए तो कानूनन भारतीय वस्त्रोंका पहिनना वर्जित कर दिया गया। लेकोके अनुसार १७६६ में इंग्लैंडमें यदि कोई अंग्रेज महिला भारतीय वस्त्र पहनती थी तो उसे राजदंड दिया जाता था।[2] भारतके रेशमी वस्त्र, रेशमी रूमाल आदिका १८२६ तक इंग्लैंड जाना कानूनन बन्द रहा। यदि कोई व्यक्ति भारतीय वस्त्र मँगाता था तो वह विलायतके बन्दरमें उठने न देकर उसी घड़ी लौटते जहाजपर भारत वापस भेज दिया जाता था। ब्रिटेनमें बनी वस्तुओंपर, कलकत्ता आनेपर २ प्रतिशत चुङ्गी देनी पड़ती थी, जब कि भारतमें बनी वस्तुओंपर भारी चुङ्गी लगाकर उनका इंग्लैंड जाना रोका जाता था। भारतकी किसी-किसी वस्तुपर तो इंग्लैंडमें ४०० प्रतिशततक चुङ्गी

१—यूजफुल आर्टस एण्ड मेन्यूफेक्चर्स आव ग्रेट ब्रिटेन, पृष्ठ ३६३।

२—लेकीः हिस्ट्री आव इंग्लैंड इन दि एटटीन्थ सेन्चुरी, खंड ७, पृष्ठ २५५-२६६, ३२०।

लगा दी गयी थी। भारतकी वस्तुग्रोंको इंग्लैंड जानेके लिए कितनी चुङ्गी देनी पड़ती थी, यह नीचेकी तालिकासे स्पष्ट हो जायगा[1]—

वस्तु	सन् १८१२	सन् १८२४	सन् १८३२
मलमल	२७½ प्रतिशत	३७⅓ प्रतिशत	१० प्रतिशत
ऊनी शाल-दुशाले	७१⅔ ,,	६७½ ,,	१० ,,
अन्य सूती वस्त्र	२७½ ,,	५० ,,	२० ,,
कैलिको	७१ ,,	६७⅓ ,,	३० ,,
कलईदार वर्तन आदि	७१ ,,	६२½ ,,	३० ,,
चटाइयाँ	६८½ ,,	५० ,,	२० ,,
शक्कर	१०० ,, से अधिक	२०० ,, से अधिक	१०० ,, से अधिक

१८३२ में रिचड नामक अंग्रेजने पार्लमेंटकी कमेटीके सामने अपने बयानमें कहा था कि किसी-किसी भारतीय वस्तुपर ३००० प्रतिशततक महसूल लिया जाता था अर्थात् १) के मालपर ३०) महसूल लगता था !

भारतीय हितोंकी बलि

विलसनने लिखा है कि 'हमारे वस्त्र-व्यवसायका इतिहास इस बातका दुःखद उदाहरण है कि भारत जिस देशके अधीन हो गया था उसने भारतके साथ घोर अन्याय किया। भारतके मालपर भारी निषेधक कर न लगाये गये होते तो पेजली, मैनचेस्टरके पुतलीघर खुलते ही बन्द होगये होते और फिर भापकी शक्तिसे न चलाये जा सकते। इन पुतलीघरोंका निर्माण भारतीय कारीगरोंके बलिदानपर किया गया। भारत स्वतन्त्र होता तो वह अवश्य इसका बदला लेकर अपनी कारीगरीकी रक्षा करता, पर उसे आत्मरक्षाकी अनुमति नहीं थी ! इंग्लैंडका माल बिना महसूल दिये जबरन उसके मत्थे मढ़ दिया गया। विदेशी कारीगरोंने एक ऐसे प्रतिस्पर्द्धीको, जिसका वे बराबरीकी शर्तोपर मुकाबला न कर सकते थे, दबाकर रखने और अन्तमें उसका गला घोंट देनेके लिए

१—रमेशचन्द्रदत्त: ब्रिटिश भारतका आर्थिक इतिहास, पृष्ठ १२६ ।

राजनीतिक अन्यायके शस्त्रका उपयोग किया।'[1] महसूल आदिके मामलोंमें अन्य देशोंके हितोंपर ही नहीं, अपितु भारतके हितोंपर भी ब्रिटिश हितोंको विशेषता दी जाती थी।[2]

चुंगी और रवन्ना

नयी चुङ्गियाँ स्थापित करके, वस्तुओंपर भारी-भारी चुङ्गी लगाकर और रवन्नाकी पद्धति आरम्भ करके कम्पनीने भारतीय उद्योग-धन्धोंके विकासमें भारी बाधा उपस्थित कर दी। ब्रिटिश माल इन सब असुविधाओंसे मुक्त था। फ्रेड्रिक शोरने भारतीय उद्योगोंके ह्रासकी चर्चा करते हुए लिखा था कि 'हम इस बातकी भारी शिकायत सुनते हैं कि भारत दिनदिन अधिकाधिक गरीब होता जाता है। देशका आन्तरिक-व्यापार नष्ट होता जाता है, दस्तकारियाँ उन्नति करनेके बजाय गिरती जा रही हैं। इसमें आश्चर्यकी बात ही क्या है? हमारी चुङ्गी-प्रणालीके कारण समस्त व्यापारियोंको जिन असह्य कष्टोंका सामना करना पड़ता है, उनसे और किस परिणामकी आशा की जा सकती है? यदि यही अवस्था जारी रही तो थोड़े ही दिनोंमें भारत केवल खाने भरको अन्न, भोजन पकानेके लिए थोड़े भद्दे बर्तन और थोड़ेसे मोटे कपड़ोंके अतिरिक्त कुछ भी बनानेमें समर्थ न हो सकेगा। यदि हम इस बोझको भारतकी छातीपरसे हटालें तो तख्ता उलटनेमें जरा भी देर न लगे'।[3]

रहस्य-भेद

भारतीय उद्योग-धन्धोंका नाश करनेके लिए अंग्रेजोंने भारतीय कारीगरोंका रहस्य जाननेकी भरपूर चेष्टा की। उसके लिए पशुबल, अन्याय, अत्याचार और दमन सबका उपयोग किया गया। १८५१ की प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शनीमें भारतीय कला, कारीगरी और उद्योगोंका जो प्रदर्शन किया गया था

१—मिल और विलसन : हिस्ट्री आव ब्रिटिश इंडिया, खंड ७, पृष्ठ ३८५।
२—एन० जे० शाहः हिस्ट्री आव इंडियन टैरिफ्स अध्याय २, ३, पृष्ठ २४-६५।
३— फ्रेडरिक शोरःनोट्स ओन इंडियन एफेयर्स।

वह ब्रिटिश उत्पादकोंके लिए प्रोत्साहन तो था ही, अप्रत्यक्ष रूपसे उसमें भारतीय कलाके रहस्योंका उद्घाटन भी था। जिन कारीगरोंके पेटपर छुरी फेरनेके लिए यह वृहत् आयोजन किया गया था उन्हीं कारीगरोंके गाढ़े पसीनेकी कमाईपर इंग्लैंडमें अजायबघर बनाया गया, जिसमें अंग्रेज कारीगरोंकी जानकारीके लिए भारतीय कारीगरीके नमूने एकत्र किये गये।[1]

भारतके बने लगभग ७०० डिजाइनोंके नमूने मोटी-मोटी १८ जिल्दोंमें जमा किये गये। इस संग्रहकी २० प्रतियाँ प्रस्तुत करायी गयीं जिनमें १३ हालैंडमें रखी गयीं और ७ भारत आनेवाले व्यापारियोंके लिए भारतके ७ प्रमुख केन्द्रोंमें। मेजर कीथने लिखा है कि 'प्रत्येक कारीगर अपने रहस्योंको सावधानीसे छिपाकर रखता है, पर भारतीय कारीगरोंको इसके लिए विवश किया गया कि वे अपने थानोंको धोकर कलप और सफेद करनेके तरीके तथा अपने अन्य औद्योगिक रहस्य मानचेस्टरवालोंके सम्मुख प्रकट करदें। इंडिया हाउसने एक बहुमूल्य संग्रह प्रस्तुत किया ताकि मानचेस्टर ३० करोड़ रुपये वार्षिक भारतके गरीबोंसे वसूल कर सके। इस संग्रहकी प्रतियाँ चेम्बर आव कामर्सको मुफ्त भेंट की गयीं और भारतीय प्रजाको उनकी कीमत देनी पड़ी। सम्पत्ति-विज्ञानकी दृष्टिसे भले ही इसे उचित कहा जाय, पर यों यह सरासर लूट है!'[2]

विलायती उद्योगोंको पनपानेके लिए भारतमें रेलोंका भी विस्तार किया गया, जिसने कम्पनीकालमें तो कम, ब्रिटिशकालमें व्यापक रूप

रेलें

धारण किया। आरंभसे यही नीति रखी गयी कि भारतसे कच्चा माल सस्तेसे सस्तेमें खरीदकर तैयारमाल अधिकसे अधिक दामोंमें यहांके निवासियोंके मत्थे मढ़ा जाय। चीन

१—पी० आर० रामचन्द्र राव : डिके आव इण्डियन इंडस्ट्रीज, पृष्ठ ११८।
२—मेजर जे० बी० कीथ: लेख, पायनियर, ७ सितम्बर १८६१।

हो या मंचूरिया, कोरिया हो या साइबेरिया, मिस्र हो या भारत सभी जगह रेलोंने पराधीनताको स्थायी बनानेमें बड़े मार्केका काम किया है।

गोरोंको सुविधा

भारतीय उद्योगोंका नाश करनेके लिए गोरे व्यापारियों और कारीगरोंको भरपूर सहायता दी गयी। ब्रिटिश सरकारने भारतवासियोंके खर्चपर आसाम और कुमायूं में चायके अनेक प्रयोग किये। चाय और नीलके बगीचोंमें गोरे पूंजीपतियोंने भारतीय कुलियोंके प्रति जो अत्याचार किये हैं वे किसीसे छिपे नहीं हैं। सरकार और कानून श्वेतांगोंके हाथमें थे। भारतवासी चुपचाप सारे अत्याचार सहते थे। मजाल क्या कि कोई चूं तो कर जाय!

वस्त्र उद्योग

भारतीय वस्त्र-उद्योग पर सबसे भारी प्रहार किया गया। सर चार्ल्स ट्रेवेलियनने भारत और इंग्लैंडके सूती-वस्त्रके व्यापारका विवरण देते हुए बताया है कि सन् १८१४से १८३३ तक १ करोड़ रुपये वार्षिकका विलायतका बाजार और लगभग ८० लाख रुपयेका बंगालका बाजार बंगालके बुनकरोंके हाथसे छीना जा चुका था। भारतीय वस्त्रका निर्यात कितनी तीव्र गतिसे घट रहा था और ब्रिटिश वस्त्रका आयात कितनी तीव्र गतिसे बढ़ रहा था, इसका प्रमाण ये आंकड़े हैं[1]—

सन्	वस्त्र भारतसे इंग्लैंडको	सन्	वस्त्र इंग्लैंडसे भारतको
१८१४	३८४२ गांठें	१८१४	१६,१५,३१५)
१८२४	१८७८ ,,	१८२८	३,०१,४६,६१५)
१८२७	५४१ ,,	१८३०	सूती १३,१०,४३,२४०)
१८२८	४३३ ,,		ऊनी २,१३, ८८,७७०)

१—मेजर बसु:रिडन आव इंडियन ट्रेड एण्ड इंडस्ट्रीज, पृष्ठ ७०;७१।

ईस्ट इंडिया कम्पनीने भारतके नमक-उद्योगको जितनी बुरी तरह नष्ट किया उसकी कहानी अत्यन्त करुणोत्पादक है। भारतीयोंने ही नहीं, अंग्रेजोंतकने इस अन्यायका विरोध किया है। राम्से मेकडानेल्डने स्पष्ट शब्दोंमें यह बात स्वीकार की थी। आपने कहा था —

नमक उद्योग

'नमकका कर एक जवर्दस्ती और जुल्म है। जनता इसे समझ जाय तो इसके कारण उसमें असन्तोष हुए विना न रहे। मुनाफाखोर कम्पनी-ने भारतके गरीबोंका जिस व्यापक पैमानेपर शोषण किया है, नमक-कर उसीका एक अवशिष्ट अंग है।'

नमकके उद्योगको नष्ट करनेके लिए अत्यन्त घृणित उपाय काममें लाये गये। जिस समय नमकका सर्वाधिकार कम्पनीके हाथोंमें सुरक्षित था उस समय मुलंगियोंके शोषणके विरुद्ध अनेक अर्जियाँ दी गयीं। व्यापारी वोर्डने सपरिषद् गवर्नर जनरलको लिखकर इसका विरोध किया। २४ परगनेके एजेण्टने इस शोषणका वर्णन करते हुए लिखा कि मुलंगियों-को साढ़े सात महीनोंकी मजदूरीके रूपमें केवल ६) दिये जाते हैं जिससे वे वेचारे सदाके लिए एजेन्सीके गुलाम वन गये हैं। मुलंगियोंके लिए खड़ी की गयी अदालतें लाभ पहुंचाना तो दूर रहा, उल्टे उनके लिए भय और आतंकका कारण वन गयीं हैं।

उन दिनों नमकका उद्योग भारतमें खूब फैला था। वस्त्र-उद्योगके उपरान्त नमकका ही स्थान था। अतः नमकके इजारेको सुरक्षित रखनेके लिए सन् १७७८, १७९३, १८०१, १८१६, १८२६, १८३८ में जो कानून वनाये गये और उनमें संशोधन किये गये उनके द्वारा नमक वनानेपर वड़े-वड़े प्रतिवन्ध लगा दिये गये। भोजनके लिए नमकीन पानीतक उवालनेका निषेध कर दिया गया। समुद्रके जलको सुखानेके लिए वनायी गयी क्यारी कानूनकी दृष्टिमें नमकका कारखाना मानी जाती थी! परिणाम यह हुआ कि यह उद्योग वुरी भाँति चौपट

हो गया। परिणामतः असंख्य लोग बेकार हो गये। सन् १८४४ में नमकका महसूल ॥।) मनसे बढ़ा कर १) मन करते ही सूरतमें भयंकर विद्रोह हो गया। उड़ीसा तथा अन्य अनेक स्थानोंपर भी विद्रोह हो गये। पर वे सब फौलादी पंजेसे दबा दिये गये।

इधर यह हाल था, उधर विलायतसे आनेवाले जहाजोंमें मालकी कमीके कारण पत्थरोंके स्थानपर नमक धड़ल्लेसे भारत आने लगा। ईस्ट इंडिया कम्पनीको नमकके ब्रिटिश उत्पादकों और व्यापारियोंका शत प्रतिशत ध्यान था। होना भी चाहिये था। फिर भारतका नमक-उद्योग भला क्यों न चौपट होता ?[1]

कम्पनीकालमें आरम्भमें तो नौ-निर्माण उद्योग उन्नत रहा, किन्तु आगे चलकर इसका पूर्णतः नाश कर दिया गया। डबल्यू०एस० लिंडसेने लिखा है कि सन् १७८९ में केवल ब्रिटिश इलाकेकी भारतीय प्रजाके पास इतने जहाज थे जितने डच लोगों, फरांसीसियों, अमेरिकनों और ईस्ट इंडिया कम्पनी-वालोंके पास कुल मिलाकर थे। इसके अतिरिक्त एशियाका प्रायः सारा जहाजी व्यापार भारतमें बने भारतीय जहाजों द्वारा ही होता था, किन्तु १७९५ से पूर्व इन्हें लन्दन माल ले जाने और वहांसे माल लानेकी अनुमति नहीं मिली।[2] जब मिली भी तो ब्रिटेनके शिल्पी भारतीय पोतोंको देख इतना घबड़ाये जितना शत्रुके पोत देखकर भी वे न घबड़ाते।[3] उन्हींकी चीख-पुकारका यह परिणाम हुआ कि १७९६ में यह सुविधा छीन ली गयी और आदेश-पत्रमें एक विशेष धारा जोड़ दी गयी कि

नौ-निर्माण

१—'जबर्दस्ती और जुल्म', लेख और परिशिष्ट ई तथा ठ, 'हरिजन सेवक', १९ मई १९४६, पृष्ठ १४२—१४७।

२—हिस्ट्री आव मर्चेन्ट्स शिपिंग, खंड २, पृष्ठ ४५४, ४५५।

३—टेलरः भारतवर्षका इतिहास, पृष्ठ २१६।

'इंग्लेंडके व्यापारी, भारतके व्यापारी, अथवा कम्पनीके कर्मचारी कोई भी हों, सब केवल कम्पनीके किरायेके ही जहाजोंमें अपना माल ब्रिटेन लेजा सकते हैं! तब भारतका यह उद्योग नष्ट न होता तो क्या होता ?

चीनीका उद्योग

ईस्ट इंडिया कम्पनीके जमानेमें भारतीय चीनीका उद्योग अत्यन्त उन्नत था। हजारों मन भारतीय चीनी ब्रिटेन तथा अन्य देशोंमें जाती थी। मुक्त-व्यापारमें जब अंग्रेज व्यापारी इसे शिकस्त न दे सके तब उन्होंने दूसरा दांव चला। उन्होंने ब्रिटिश सरकारको उसपर भारी कर लगानेके लिए विवश किया। भारतीय चीनीपर अन्य देशोंकी चीनीकी अपेक्षा प्रति हंडरवेट ८ शिलिंग अतिरिक्त-कर लगाया गया। इस प्रकार चीनीका उद्योग भी चौपट हो गया।'[1]

लोहेका उद्योग

वाट लिखता है कि यह निर्विवाद है कि भारतमें प्राचीनकालसे लोहा गलानेके कारखानोंका उल्लेख मिलता है, पर हमने इंग्लैंडसे सस्ता लोहा भेजकर इस भारतीय उद्योगको चौपट कर दिया।[2] प्रायः सभी गांवोंमें लोहेकी भट्टियां थीं किन्तु अब यह उद्योग नष्ट कर दिया गया। लोहेके कारखानों-का ठेका स्थान-स्थानपर अंग्रेज कम्पनियोंको दे दिया गया। इस प्रकार लाखों लोहार भी अपनी जीविकासे हाथ धो बैठे।[3]

कागजका उद्योग

वाटने भारतके कागजके उद्योगका वर्णन करते हुए लिखा है कि १८४० से पूर्व भारतमें कुछ कागज चीनसे आता था, पर इसी समय भारतमें कागज बनानेके अनेक कारखाने खुले, जिससे देशको सारी आवश्यकताकी पूर्ति होने लगी। परन्तु सर चार्ल्स वुडने भारत-मंत्रीका पद ग्रहण करते ही यह आदेश

१—सर जर्ज वाटः दि कामर्शियल प्रोडक्ट्स आव इंडिया, १६०८, पृष्ठ ६५८। २—वही, पृष्ठ ६५८।

३—वेलेंटाइन वाल : जंगल लाइफ इन इंडिया, पृष्ठ २२४-२२५।

निकाला कि भविष्यमें भारत सरकार अपने उपयोगके लिए जो भी कागज खरीदे वह इंग्लैंडका बना होना चाहिये। इस आज्ञाने भारतके इस उद्योगको भारी क्षति पहुँचायी।[1]

भारतीय उद्योगोंको इस प्रकार नष्ट करनेका परिणाम यह हुआ कि भारतके व्यापारसे इंग्लैंडके कारीगरों और मजदूरोंको ३० करोड़ रुपया वार्षिककी आय होने लगी। १८३०–३२ की पार्लमेंटरी कमेटीके सदस्योंने यह बात मुक्तकंठसे स्वीकार की है। एक ओर प्रति वर्ष यह वृद्धि होती चली, दूसरी ओर भारतके उद्योग-धन्धे दिन-दिन अवनत होते चले। कम्पनीकालके पूर्व जो भारत सुखी, स्वस्थ, प्रसन्न और सभी प्रकारसे सम्पन्न था वही दो-दो दानेको मोहताज होगया। जब रक्षक ही भक्षक बन बैठे तो इसके अतिरिक्त और हो ही क्या सकता था?

रक्षक ही भक्षक

१—सर जार्ज वाट : दि कामर्शियल प्राडक्ट्स आव इंडिया, पृष्ठ ८६६।

सत्रहवीं शताब्दीमें भारतकी अपार सम्पत्ति देखकर युरोपकी अनेक जातियोंके मुँहमें पानी भर आया। सभीने भारतके व्यापारसे मालामाल होनेका निश्चय किया, किन्तु सितारा बुलन्द था अंग्रेजोंका!

ईस्ट इंडिया कम्पनीका भाग्य आरम्भसे ही चमक रहा था। विदेशियोंको पछाड़कर कम्पनीने भारतीय व्यापारियोंको गिरानेका

अंग्रेजोंका सौभाग्य

प्रयत्न किया और धीरे-धीरे सारा विदेशी व्यापार अपने हाथमें कर लिया। पूर्वीय और पश्चिमीय तट-पर तथा बंगाल और उत्तरी भारतके अनेक स्थानों-पर कम्पनीने अपनी कोठियाँ खड़ी कर लीं। सूती और रेशमी वस्त्र, जवाहरात, हाथीदाँतकी वस्तुएँ, रंग, नील, ओषधियाँ, लौंग, मिर्च-मसाला, अफीम, शोरा, लाख, चपड़ा आदि अनेक वस्तुएँ भारतसे विदेश जाया करती थीं। भारतीय व्यापारी इनकी बदौलत लाखों रुपये कमाते थे। जबसे कम्पनीका एकाधिपत्य आरम्भ हुआ तबसे कम्पनी इन वस्तुओंके व्यापारसे मालामाल होने लगी।

कम्पनीका जन्म १६०० ई० में हुआ। १६०१ से १६५० ई०

ईस्ट इण्डिया कम्पनी

तक भारत तथा चीन-जापानसे कम्पनीका निर्यात-व्यापार ४० लाख पौण्डका हुआ। इसमें तीन चौथाई व्यापार भारतके साथ हुआ था[1]। उत्तरोत्तर इसमें वृद्धि होती रही[2]।

वर्ष	कम्पनीका कुल स्टाक	वर्ष	कम्पनीका कुल स्टाक
१६४६	१,८०,५११ पौंड	१६८३	११,१६,००० पौंड
१६६४	५,१२,२६० ,,	१६८५	३३,१८,१०६ ,,
१६८१	१७,००,००० ,,		

१—बालकृष्ण: कामर्शियल रिलेशन्स बिट्वीन इंडिया एण्ड ब्रिटेन, (१६०१ से १७५७), पृष्ठ ६६, ७०। २—वही, पृष्ठ १७६।

वादमें मुगलोंसे युद्ध होनेके कारण इसमें कुछ व्याघात हुआ और सन् १६६१ में कम्पनीका स्टाक १५,००,००० पौंडका रह गया। ब्रिटेनके ऊनी मालका निर्यात धीरे-धीरे बढ़ने लगा[1]—

वार्षिक मूल्य	सन् १६७६–८५	१६६८–१७१०	वृद्धि
कुल माल	८५,०७३ पौंड	१५५,५५७	८३ प्रतिशत
ऊनी ,,	४६,८६४ ,,	८६,८०६	६१ ,,
ऊनीमालका अनुपात	५५: १००	५८: १००	

इसमें भी ८८ प्रतिशत ऊनी माल भारतमें खपने लगा। ईस्ट इण्डिया कम्पनीके लाभका ठिकाना न था। १६५८ से १६९१ तक उसने ८४०½ प्रतिशत अर्थात् २१ प्रतिशत वार्षिक लाभ उठाया।[2] हिस्सेदारोंको ब्रिटिश और डच कम्पनियोंने इस प्रकार मुनाफा वांटा[3]—

सन्	ब्रिटिश कम्पनी	डच कम्पनी
१६५८–८१	४४०½ प्रतिशत	४३३½ प्रतिशत
१६८१–९१	४०० ,,	२३२½ प्रतिशत
१६९२–१७००		१९० ,,
१७००–१७१०	अज्ञात	२४० ,,

लाभ कितना अधिक था इसका अनुमान इसीसे किया जा सकता है कि सूरतमें दिसम्बर १६२९ में खरीदा माल फारसके गोमब्रूनमें फरवरी १६३० में इतने प्रतिशत लाभ उठाकर वेचा गया[4]—

शकर	९० प्रतिशत	अदरक	७० प्रतिशत	नील	५० प्रतिशत
सोंठ	७५ प्रतिशत	चावल	५० प्रतिशत	सावुन	८० प्रतिशत
शकरकंद	७५ प्रतिशत	तम्बाकू	४०० प्रतिशत		

१—वही, पृष्ठ १३५। २—वही, पृष्ठ १७३। ३—वही, पृष्ठ १७५। ४—वही, पृष्ठ २६२।

हीरा, मोती ४००, ५०० प्रतिशत लाभ लेकर इंग्लैंडमें बेचनेका विवरण मिलता है। ब्रिटेनसे निर्यातके दस-वार्षिक आंकड़े ये हैं—

सन्	वृहत्तर भारत चीन, जापान छोड़कर		पूर्वीय द्वीप समूह	
१७०८-१७	६,६६,२५३	पौंडका माल	१०,१८,५३८	पौण्डका माल
१८-२७	६,८८,५३५	,,	१०,४७,३६५	,,
२८-३७	१२,६६,१४३	,,	१३,६८,३२५	,,
३८-४७	१७,३९,५६५	,,	१८,२९,०१८	,,
४८-५७	२५,३१,२४५	,,	२८,५८,२२९	,,

इससे स्पष्ट है कि चीन जापानमें ५० वर्षमें मुश्किलसे ७: ३ प्रतिशत माल आया। शेष माल भारतमें ही आया।

सोना चाँदी	वृहत्तर भारत		प्रतिशत	पूर्वी द्वीप-समूह		प्रतिशत
सन् १७०८-१७	३३,६०,०२२	पौंड	१००	३८,६५,०५४	पौंड	१००
१८-२७	४३,७१,०३४	,,	१३०	५२,१६,१५६	,,	१३४
२८-३७	३८,७१,२९१	,,	११५	५०,१५,१०२	,,	१२१
३८-४७	४५,७५,६३५	,,	१३३	५२,२८,३३३	,,	१३५
४८-५७	५६,४४,२४५	,,	१६८	७६,७०,५७८	,,	१९७
	२,१८,२२,२२७			२,७०,२५,२२६		

पचास वर्षमें वृहत्तर भारतमें १६२ प्रतिशत और एशियामें १८० प्रतिशत माल अधिक आया तथा क्रमशः ६८ प्रतिशत और ९७ प्रतिशत सोना अधिक आया। कम्पनीके कागजातोंसे पता चलता है कि १७०८ से १७५७ तक कम्पनीका निर्यात-व्यापार ६ गुनेसे अधिक बढ़ गया था, किन्तु यदि प्रथम वर्ष १७०८ और अन्तिम वर्ष १७५७ का अनुपात निकालें तो वह १४ गुना होता है।[1] इंग्लैंडसे भारत आनेवाले मालके आंकड़े इस प्रकार हैं—[2]

१—वही, पृष्ठ २१०, २११। २—वही, पृष्ठ २१६।

	बृहत्तर भारत	भारत
ब्रिटेनसे कुल निर्यात	२,९२,४६,९९८ पौंड	२,६६,८७,४५८ पौंड
माल ,,	७५,२४,७७१ ,,	६८,१८,७४९ ,,
सोना चांदी ,,	२,१७,२२,२२७ ,,	१,९८,६८,७०९ ,,

ब्रिटेन जानेवाले मालके दस-वार्षिक आंकड़े इस प्रकार हैं—[1]

१७०८–१७	५६,३६,४८८ पौंड	१०० प्रतिशत
१८–२७	९६,२९,९७६ ,,	१७० ,,
२८–३७	९७,२४,५४८ ,,	१७३ ,,
३८–४७	९३,२८,१३६ ,,	१६५ ,,
४८–५७	१,०८,४१,२०० ,,	१९३ ,,

इन आंकड़ोंको पूर्णतः विश्वस्त मान बैठना ठीक नहीं। जकातघरके आंकड़ोंपर इसलिए विश्वास नहीं किया जा सकता कि चाय जकातमें जहां १ से २ शिलिंग प्रति पौंड लिखायी जाती थी वहां १७०७–१३ में उसका विक्री मूल्य १६ शिलिंग ६ पेंस प्रति पौंड था।[2] विक्रीके आंकड़ोंमें प्राइवेट व्यापारियोंकी विक्रीका हिसाब शामिल नहीं है।[3]

इन ५० वर्षोंमें कम्पनीने अपने हिस्सेदारोंको ८.४ प्रतिशत लाभ बांटा।[4] इस विवरणसे हम कम्पनीकी स्थिति का सहज ही अनुमान कर सकते हैं।

उलटी धारा

ब्रिटेनने भारतीय वस्त्र-उद्योगको दबानेके लिए भारी महसूल लगाये। उसने उत्तम वस्त्र और रेशमकी मनाही कर दी, मसलिनपर विशेष कर लगाया, विक्रेताओं और ग्राहकोंपर जुर्माना बैठाया और अपने वस्त्र-उद्योगको भरपूर संरक्षण दिया।[5] फिर भी १७६० तक भारत आनेवाली स्वर्णधारा में कमी

१—वही, पृष्ठ १९२। २—वही, पृष्ठ १८३। ३—वही, पृष्ठ १९३।
४—वही, पृष्ठ २१५, २१६। ५—वही, पृष्ठ २५५–२७५।

न हुई।[1] १७६० के बाद यह धारा सर्वथा पलट गयी और ब्रिटेनवासी कहने लगे 'हमें अब बिना हाथ पैर हिलाये ही सोना मिल रहा है। सबसे भारी धातु होनेपर भी सोना समुद्रमें बहता हुआ हमारी ओर बढ़ता चला आता है। भारतीय खून-पसीना एककर खेत जोतते-बोते हैं पर उनकी फसल हम काटते हैं'।[2]

व्यापारके क्षेत्रमें कम्पनीका एकाधिकार था ही, शासनाधिकार मिल जानेसे उसे दोहरी सुविधा हो गयी। एक ओर उद्योगोंका नाश किया गया, दूसरी ओर व्यापारपर पूरा नियंत्रण कर लिया गया। सारी व्यापारिक नीतिका संचालन इस दृष्टिसे किया गया कि इंग्लैंडके उद्योगोंका विकास करना है। जकात और चुंगी, कर और महसूल, भाड़ा और किराया, सभी बातोंमें इसी लक्ष्यको सम्मुख रखा गया।[3] फल यह हुआ कि भारतका सारा विदेशी-व्यापार चौपट हो गया।

व्यापारका नाश

इंग्लैंड जानेवाले सूती-वस्त्रका व्यापार तो नष्ट कर ही दिया गया, अमेरिका तथा अन्य देशोंको जानेवाले विदेशी-वस्त्रकी मात्रा भी क्रमशः कम होती गयी।[4] सन् १८०१ में जहाँ १३,६३३ गांठें अमेरिका भेजी गयी थीं वहां १८२६ में उनकी संख्या २५८ ही रह गयी। डेनमार्क ने सन् १८०० में भारतसे १४५७ गांठें लीं थीं पर सन् १८२० के बाद उसने १२० से अधिक गांठे नहीं लीं। सन् १७९९ में ९७१४ गांठें पुर्तगाल गयी थीं परन्तु १८२५ के बाद वहां १ हजार भी गांठें नहीं गयीं। १८१० से १८२० के बीच ४ से ६ हजारतक

१—वही, पृष्ठ २७३-२७५।

२—दि इंग्लिश एंड दि डच एफेयर्स, १९६४, पृष्ठ ४७-४८।

३—एन० जे० शाह : हिस्ट्री आव इंडियन टैरिफ्स, अध्याय ४।

४—रमेशचन्द्रदत्त: ब्रिटिश भारतका आर्थिक इतिहास, पृष्ठ १२८, १२९।

गांठें ईरानकी खाड़ी और अरब समुद्र जाती थीं पर सन् १८२५ के बाद कभी भी दो हजार गांठोंसे अधिक वहां नहीं गयीं।

एक ओर भारतके तैयार मालका निर्यात कम हुआ और भारतकी दस्तकारी नष्ट कर दी गयी, दूसरी ओर ब्रिटेन तथा अन्य देशोंसे आनेवाले वस्त्रमें वृद्धि होती गयी। भारत कपड़ा लेकर गल्ला देने लगा। एक ओर भारतके जुलाहे भूखों मरने लगे, वे कृषि और मजदूरी करने लगे, दूसरी ओर इंग्लैंडके जुलाहे और व्यापारी मालामाल होने लगे। इंग्लैंड मुक्त-व्यापारके नामपर भारतका व्यापार नष्ट करने लगा और संरक्षण-नीतिका आश्रय लेकर अपने देशके उद्योगोंकी उन्नति करने लगा।

आन्तरिक व्यापार

ईस्ट इंडिया कंपनीको मुगल सम्राट्ने यह सुविधा दे दी थी कि कम्पनी यदि ब्रिटेन माल ले जाना चाहे तो उसपर कोई महसूल न लिया जाय। इसका यह अर्थ नहीं था कि सम्राट्ने कंपनीके कर्मचारियों, गुमाश्तों अथवा गोरोंको विना महसूल चुकाये व्यापार करनेकी पूर्णतः छूट दे दी थी। कम्पनीको देशके भीतर विना महसूल दिये व्यापार करनेकी अनुमति नहीं दी थी। नमक, तम्बाकू, छालिया, इमारती लकड़ी, सूखी मछली आदि कितनी ही वस्तुओंके विषयमें यह स्पष्ट आदेश था कि कोई भी युरोपियन बंगाल भरमें इन वस्तुओंका व्यापार नहीं कर सकता।

पर कम्पनीके गुमाश्ते बड़े ही चतुर, धूर्त और कुशल व्यापारी थे। मीरजाफरको निर्बल समझ उन्होंने उसीके शासनकालमें शाही फर्मानकी अवहेलना आरम्भ कर दी। उन्होंने नमक आदिका निषिद्ध व्यापार भी आरंभ कर दिया। मीरजाफरने विरोध किया पर सुनता कौन था? कम्पनीके कर्मचारी इन वस्तुओंपर आरंभमें उसी तरह महसूल चुकाते थे जिस तरह अन्य देशी व्यापारी चुकाते थे। पर मीरजाफरको नवाब बनानेके बाद कम्पनीके कर्मचारियोंने मनमानी

शुरू कर दी। उन्होंने कम्पनीका दस्तक लेकर विना किसी प्रकारका महसूल चुकाये सारे देशमें प्रत्येक वस्तुका व्यापार आरम्भ कर दिया।

मिलके कथनानुसार इस तरह कम्पनीके मुलाजिमोंका माल महसूलकी एक कौड़ी चुकाये विना सब जगह आने जाने लगा, जब कि अन्य

व्यापारिक अत्याचार

सब व्यापारियोंको भारी महसूल चुकाना पड़ता था। फलतः देशका सारा व्यापार द्रुत गतिसे कम्पनीके हाथमें जाने लगा और सरकारी आमदनीका एक स्रोत सूखने लगा। नवाबका कोई कर्मचारी इसपर आपत्ति करता तो उसे गिरफ्तारकर पासकी अंग्रेज कोठीमें पहुंचानेके लिए सैनिकोंका एक दस्ता भेज दिया जाता था[1]।

यह अन्धाधुन्धी कितनी बढ़ गयी थी, इसकी चर्चा करते हुए वारेन हेस्टिंग्स ने २५ अप्रैल १७६२ के अपने पत्रमें लिखा था कि 'जहाँ-जहाँ मैं गया वहाँ अंग्रेजी झंडे लहराते देख मैं चकित रह गया। मुझे विश्वास है कि इन झंडोंकी उपस्थितिसे नवाबकी आय, देशकी शान्ति या हमारी जातिकी प्रतिष्ठा—तीनोंमेंसे किसीको भी लाभ नहीं पहुंच सकता। मार्गमें हमें सैनिकोंकी अनेक शिकायतें सुननेको मिलीं। हमें आते देख लोग छोटे-छोटे नगरों और सरायोंको छोड़कर भाग जाते थे और दुकानें बन्द कर लेते थे। कारण, वे हमसे भी उसी प्रकारके व्यवहारकी आशंका करते थे!'

वेरेल्स्ट लिखता है कि उन दिनों बहुतसे काले भारतीय व्यापारी अपनी सुविधाके लिए कम्पनीके किसी युवक मुहर्रिरको धन देकर उसका नाम खरीद लेते थे और उसके नामसे दस्तक द्वारा देशके निवासियोंपर अत्याचार करते थे। इन मुहर्रिरोंको इतनी आय होने लगी कि वे १५ हजारसे २० हजार रुपया सालाना खर्च करते थे,

---

१—मिल : हिस्ट्री आव इंडिया, खंड ३, पृष्ठ २२९,२३०।

बढ़िया-वस्त्र पहनते थे और खूब शानदार भोजन उड़ाते थे। बिना महसूल दिये व्यापार किया जाता था और उसे जारी रखनेके लिए असीम अत्याचार किये जाते थे। मीरकासिमके साथ युद्ध होनेका मूल कारण यही था।[२]

८ फरवरी १७६४ को कम्पनीके डाइरेक्टरोंने अपने पत्रमें यह बात स्वीकार की कि कम्पनीके नौकरों, गुमाश्तों, एजेण्टों और दूसरों-का यह निजी व्यापार 'नाजायज', 'दस्तकका लज्जाजनक दुरुपयोग', 'हर प्रकारसे अनधिकार चेष्टा' और 'प्रजाके प्रति दोहरा अन्याय' था पर डाइरेक्टरोंका यह पत्र भी कर्मचारियोंको सन्मार्गपर आरूढ़ न करा सका।

खुली डकैती

वर्कने वारेन हेस्टिंग्सपर दोषारोपण करते हुए पार्लमेंटमें कहा था कि व्यापार जहाँ संसारके प्रत्येक देशको धनवान बनाता है, वहाँ बंगालको वह सर्वनाशकी ओर ले जा रहा है। कम्पनीके नौकरों द्वारा दस्तकके प्रयोगको 'डकैती' कहना अधिक उपयुक्त होगा। ये व्यापारी हर जगह पहुंचकर मनचाहे दामपर माल बेंचते और लोगोंको विवशकर, उनका माल अपने ही दामोंपर खरीदते थे। ऐसा जान पड़ता था कि व्यापारके बहाने एक सेना लोगोंको लूटनेके लिए आ रही है। लोग देशी अदा-लतोंसे रक्षाकी व्यर्थ आशा करते थे। अंग्रेज व्यापारियोंकी यह सेना जिधर जाती उधर ही तातारी विजेताओंसे बढ़कर लूटमार और सर्वनाश करती थी। इस प्रकार इस अभागे देशपर दोहरा अन्याय जारी था जिससे सारा देश चूरचूर हो रहा था।

इस प्रकार कम्पनीने भारतके देशी व्यापारको भी सर्वथा नष्ट कर दिया था। मीरकासिमने देशी व्यापारको कम्पनीके अत्याचारसे बचानेके

२—वेरेल्स्टः विउ आफ बंगाल, पृष्ठ ८, ४६।

लिए उसे चुंगीसे सर्वथा मुक्त कर दिया परन्तु इस न्यायका पुरस्कार यह मिला कि उसे नवाबीसे हाथ धोना पड़ा। कम्पनी १७६५ में जब बंगालकी स्वामिनी बन बैठी तो उसने चुंगी उठाकर देशी व्यापारकी सहायता करनेके स्थानपर उससे अधिकाधिक आय करनेका उपाय निकाला। जगह-जगह चौकियाँ खोल दीं। चुंगी सम्बन्धी अत्याचार खूब बढ़ा। लगातार साठ वर्षतक चुंगी बढ़ती चली गयी। १८२५ में राजकीय सेक्रेटरी श्री मैकेंजीने कड़े शब्दोंमें इसका विरोध किया। कहा—अनेक वस्तुओंको निर्दिष्ट स्थानपर पहुंचनेमें दस-दस स्थानोंपर चुंगी देनी पड़ती है, जिससे देशके व्यापारको भारी धक्का लगता है। चुंगीके कर्मचारियों-की यदि कुछ भेंट-पूजा करनी पड़ती हो तो भी आश्चर्य नहीं। भारत-के आन्तरिक-व्यापारको चुंगीसे मुक्त कर दिया जाय तो कुल हानि २२ लाख रुपया वार्षिक होगी जो नगण्य है। पर मैकेंजीकी यह अपील अरण्यरोदन ही सिद्ध हुई।

चुंगीमें वृद्धि

सन् १८२८ में लार्ड विलियम बेंटिक गवर्नर-जनरल होकर भारत आया। उसने इस विषयमें जाँच करनेके लिए सर चार्ल्स ट्रेवीलेनको नियुक्त किया, जिसने अपनी रिपोर्टमें विस्तारसे बताया कि इसके कारण सारे देशमें व्यापारियों-को उत्कोच देना पड़ता है और साधारण यात्रियोंको भारी कष्ट भोगना पड़ता है। चौकियोंसे होकर जानेवाली महिलाओंकी मर्यादा सुरक्षित नहीं रह पाती। चौकियोंपर रहनेवाले कर्मचारियोंका वेतन इतना स्वल्प है कि उत्कोच बिना काम ही नहीं चल सकता। साथ ही इस मदसे होनेवाली आय भी नगण्य-सी है।

विरोध

बेंटिकने यह रिपोर्ट छपवा दी, जिससे सर्वसाधारणका ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ। नियंत्रक बोर्डके अध्यक्ष लार्ड ऐलेनबराने १८३५ में कम्पनीका ध्यान इस ओर आकृष्ट करते हुए कहा—

इंग्लैंडमें बना सूती वस्त्र तो केवल २॥ प्रतिशत चुंगी देकर भारत पहुंच जाता है पर भारतमें बनकर वहीं काम आनेवाले वस्त्रपर, कच्चे मालपर ५ प्रतिशत, सूतपर ७॥ प्रतिशत, तैयार मालपर २॥ प्रतिशत और रंग देनेपर और २॥ प्रतिशत इस प्रकार १७॥ प्रतिशत चुंगी लग जाती है। भारतीय चमड़े और चीनीपर १५ से २५ प्रतिशत तक चुंगी लगती है और जीवनके सभी उपयोगी पदार्थ इसकी सीमामें आ जाते हैं। इसके अतिरिक्त भारतीयोंके जातीय चरित्रपर कुप्रभाव पड़ता है जो आर्थिक हानिसे भी अधिक हानिकर है।[1]

कम्पनीके डाइरेक्टरोंने यह प्रश्न भारत सरकारपर छोड़ दिया। पर इस बार कम्पनी धोखा खा गयी। लार्ड विलियम बेंटिकने उत्तरी

चुंगीसे मुक्ति

भारतको आन्तरिक-चुंगीसे मुक्त कर दिया। १८३६ में बंगाल इससे मुक्त कर दिया गया। १८४१ में सिन्ध और १८४४ में जालोन और मद्रास भी इससे मुक्त हो गये।

उन्नीसवीं शताब्दीके आरम्भमें मनरोने लिखा था कि व्यापार-की ओर भारतीयोंकी प्रवृत्ति देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि अंग्रेजों-

व्यापार गोरोंके हाथमें

को भारतका व्यापार छोड़ना पड़ेगा। भारत-वासियोंका रहन-सहन भी सादा है और वे इतने मितव्ययी हैं कि कोई युरोपियन उनका मुकाबला नहीं कर सकता[2]। पर उन्नीसवीं शताब्दीके मध्यमें भारतके व्यापारकी अवस्था पलट गयी। विलायती मालका पूरा-पूरा प्रचार हो गया, और देशका कच्चा माल विदेश जाने लगा। हंटर साहबके अनुसार सन् १८४८ में देशसे जितनी रुई बाहर जाती थी, १८५६ में उसकी दुगुनीसे भी अधिक बाहर जाने लगी। गल्ला तिगुना जाने लगा और सूती कपड़ा

१—रमेशचन्द्रदत्त : ब्रिटिश भारतका आर्थिक इतिहास, पृष्ठ १३३—१३६।
२—अर्बेयनट: सेलेक्शन्स फ्राम दि मिनिट्स आव मनरो, पृष्ठ ६४,४८८।

तथा अन्य विलायती चीजोंका आयात दुगुनेसे भी अधिक हो गया[1]। विदेशी और देशी सभी व्यापार कम्पनीके गुमाश्तों, एजेंटों, मुहर्रिरों आदिकी कृपासे अंग्रेजोंके हाथमें चले गये।

व्यापारके साधन

भारतमें अंग्रेजी राज्यके विस्तारके साथ-साथ रेलोंका प्रचार करनेकी ओर लोगोंकी दृष्टि गयी। अंग्रेज व्यापारी और ब्रिटिश सरकार सभी इस पक्षमें थे कि यातायातकी सुविधाएं बढ़ायी जांय। लार्ड डलहौजीने इसके लिए पूरा जोर लगाया।[2] उसने हानिपूर्तिका आश्वासन देकर भारतमें रेलें चलानेके लिए ब्रिटिश कम्पनियोंको राजी किया। फलतः सन् १८५३ में बम्बईके समीप जी० आई० पी० रेलवे कम्पनीने पहले-पहल रेलोंका श्रीगणेश किया। खानदेश और नागपुरकी ओर रेलोंका विस्तार किया गया। ई० आई० आर० कम्पनीने पहले कलकत्तासे रानीगंजतक रेल चलायी, फिर कलकत्तासे प्रयाग होकर दिल्लीतक। सन् १८५२ में कलकत्ताके निकट पहला तार लगा। इस प्रकार डलहौजीने भारतमें अंग्रेजी साम्राज्यको लोहेकी पटरियों और तारोंसे जकड़ दिया! १८५३ में डलहौजीने सारे भारतके लिए टिकटोंकी प्रथा चला दी। देशमें ७५० के लगभग डाकखाने खुल गये।

मुद्रा

कम्पनीकालके आरम्भमें भारतमें अनेक सिक्के प्रचलित थे। दक्षिणमें सोनेके सिक्कोंका प्रचलन था और उत्तर भारतमें चांदीके सिक्कोंका। १८३५के पूर्व भारतमें कितने ही सिक्के चलते थे। रुपयोंमें भी कई भेद थे। पुराने और नये सिक्के, फर्रुखाबादी रुपये, मद्रासी रुपये आदि। कुछ रुपये फर्रुखाबाद, बनारस और सागरकी टकसालोंमें ढलते थे, कुछ कलकत्तेकी टकसालमें। सोनेके सिक्के भी अनेक प्रकारके थे। भांति-भांतिके सिक्के होनेके कारण लेनदेन और व्यापारमें भारी अड़चन पड़ती।

१—हंटर: डलहौजी, पृष्ठ १६६। २—हंटर: डलहौजी, पृष्ठ १८४।

ईस्ट इंडिया कम्पनीकी ओरसे कलक्टर नियुक्त होते थे, जिन्हें चांदीके कमसे कम ६० और सोनेके कमसे कम ७२ सिक्के माल या लगानके रूपमें लोगोंसे लेने पड़ते थे। वंगालका यह हाल था कि एक जिलेमें जो रुपया चलता वह दूसरे जिलेमें नहीं। एक जिलेमें अलग-अलग चीज़ोंके लिए अलग-अलग सिक्के थे और घिसाईकी मात्रा न्यूनाधिक होनेके कारण सिक्कोंपर वट्टेका हिसाब भी अलग-अलग था। चांदी और सोनेका पारस्परिक सम्वन्ध सदा एक नहीं रहता था। कभी सोना सस्ता हो जाता, कभी चांदी। इन भारी अड़चनों और कठिनाइयोंको दूर करनेके लिए मुद्रा-सम्वन्धी सुधार आवश्यक था। शासन-संबंधी एकताके वाद मुद्रा-संबंधी एकता आनेको ही थी।

अनेक सिक्के

कम्पनीके डाइरेक्टरोंने सन् १८०६ में मद्रास सरकारको लिखा कि भारतवर्षका प्रधान सिक्का चांदीका होना चाहिये, जिसका वजन १८० ग्रेन (१ तोला) हो और जिसमें १६५ ग्रेन खालिस चांदी हो। उनकी राय थी कि प्रधानता चांदीके सिक्केकी रहे, पर सोनेका चलन भी वन्द न हो। सोनेका मूल्य उसके परिमाण और उसकी मांगपर अवलम्बित हो। पर प्रायः ३० सालतक मुद्रा-संबंधी एकीकरणका प्रस्ताव प्रस्ताव ही रहा। उसको विधानका रूप मिला १८३५ में, जिससे दो साल पहले वंगालके गवर्नर-जनरल सारे देशके गवर्नर-जनरल वनाये जा चुके थे और शासन-सत्ता पूर्णतः केन्द्रित हो चुकी थी। उस साल ३० मईको सरकारकी ओरसे महत्त्वपूर्ण घोषणा हुई कि १ सितम्वर १८३५ से कम्पनीकी टकसालोंमें एक ही प्रकारके सिक्कोंकी ढलाई होगी। इस रुपयेका वजन १८० ग्रेन होगा जिसमें खालिस चांदी १६५ ग्रेन होगी। कुछ खास तरहके सोनेके सिक्के भी ढाले जायेंगे, पर कोई भी आदमी कम्पनीके राज्यमें सोनेका सिक्का देने या लेनेको वाध्य न होगा। इस विधानकी वदौलत

रुपये

१६५ ग्रेन खालिस चांदीवाला रुपया मुद्रा-सिंहासनपर जा बैठा। देनलेनके लिए सब लोग इसका व्यवहार करनेको बाध्य थे। कम्पनीकी टकसालमें सोनेका जो प्रधान सिक्का ढलता था उसका वजन भी १८० ग्रेन था जिसमें खालिस सोना १६५ ग्रेन था। इसका मूल्य था १५ रुपया।[१]

सोनेका सिक्का

कुछ ही वर्ष बाद आस्ट्रेलिया और केलिफोर्नियामें नयी खानें खुलनेसे सोनेका उत्पादन बहुत बढ़ चला और चांदीकी तुलनामें वह बहुत सस्ता हो चला। फलतः लोग अपना लगान या कर रुपयोंमें न चुकाकर मोहरोंमें चुकाने लगे। बाजारमें एक मोहरके १५) से कम मिलते क्योंकि सोना सस्ता हो रहा था, पर सरकारी खजानेमें वह अब भी उसी दरसे ली जाती। इसलिए वहां मोहरोंकी भरमार होने लगी। सरकार किसीको भी १५)में मोहर लेनेको बाध्य नहीं कर सकती थी। सरकार चाहती तो चांदीकी जगह उसी समय सोनेको मूल्यका मापदंड बना देती। पर ऐसा न करके सरकारने सन् १८४१ के आदेशको ही उठा लिया। पहली जनवरी १८५३ से मुद्राके रूपमें सोनेका चलन बिलकुल बन्द हो गया[२]।

कम्पनीकी टकसालोंमें कम्पनीकालमें ढाले जानेवाले सिक्कोंका विवरण इस प्रकार है[३]—

चतुर्थ विलियम सन् १८३५	१६,३८,७८,५७८)
विक्टोरिया सन् १८४०	पहलीबार ३१,१६,७०,९२४)
,, ,,	दूसरीबार ७६,६५,६०,६३७)

१—बिड़ला, पारसनाथसिंहः रुपयेकी कहानी, पृष्ठ ८६–८७।
२—वही, पृष्ठ ८७। ३—वही, परिशिष्ट ५, पृष्ठ २६८।

ईस्ट इण्डिया कम्पनीने भारतका इतना भयंकर शोषण किया कि वह कहींका न रह गया। उसकी कृषि नष्ट हो गयी, उद्योग-धन्धे

चतुर्मुखी लूट

चौपट हो गये, व्यापार दो कौड़ीका रह गया। उसकी सम्पत्ति, उसका खजाना, उसका रुपया-पैसा, उसका सोना-चाँदी, उसके हीरा-जवाहरात जहाजोंमें लद-लदकर इंग्लैंड पहुँच गये और इस लूटके फलस्वरूप कम्पनीके भूखों मरनेवाले, मुगल सम्राट् और भारतीय नवाबोंके चरणोंमें नाक रगड़नेवाले दो कौड़ीके गुमाश्ते लखपती, करोड़पती बनकर, 'साम्राज्यनिर्माता' का पदक लगाकर इंग्लैंड लौटे, जहाँ उनका शानदार स्वागत हुआ, उनकी मूर्तियाँ खड़ी की गयीं और इतिहासकी पोथियोंमें उनका नाम स्वर्णाक्षरोंमें लिखा गया।

कम्पनीकालमें भारतका सामाजिक जीवन बुरी भाँति नष्ट कर दिया गया। भारतके स्वामी विदेशी थे। उनकी भाषा, चालढाल, रहन-सहन, आदर्श सब कुछ विदेशी था। उसमें नैतिकता, उदारता, न्याय और सदाचारके लिए कोई स्थान ही नहीं था। ड्रेपरने बताया है कि व्यापारी-रूपमें भारतपर शासन करनेवाली जाति नैतिकताकी दृष्टिसे कितनी गिरी हुई थी।[1] हर्बर्ट स्पेंसर लिखता है—'कम्पनीके डाइरेक्टरों तकने स्वीकार किया है कि भारतके आन्तरिक-व्यापारमें जो अटूट धन कमाया गया है, वह सब ऐसे घृणित अन्यायों और अत्याचारों द्वारा प्राप्त किया गया है जिनसे बढ़कर अन्याय और अत्याचार कभी किसीने सुना भी न होगा।'[2]

१—जान विलियम ड्रेपर : दि इनटेलेक्चुअल डेवलपमेंट आव युरोप, खंड २, पृष्ठ २३०–२४४।

२—हर्बर्ट स्पेन्सर : सोशल स्टेटिस्टिक्स, पृष्ठ ३६७।

कूटनीति, धोखेबाजी, षड्यंत्र, वचनभंग, अत्याचार, अन्याय आदिके बलपर कम्पनीने भारतमें अपना राज्य स्थापित किया। कम्पनीको सुविधाएँ देते हुए औरंगजेबने कहा था कि ये बेचारे इतनी दूरसे आये हैं। अपनी जीविकाके लिए इतना परिश्रम करते हैं। मैं इन्हें क्यों रोकूँ ?[1]

पर, इन्हें आश्रय देना ही भारतके लिए घातक होगया।

'जिन्हें हम हार समझे थे गला अपना सजानेको,
वही अब नाग बन बैठे हमारे काट खानेको !

कम्पनीका आज्ञापत्र समय-समयपर बदलता गया। शासनाधिकार मिलनेपर कम्पनीके कर्मचारियोंने देशकी रक्षा और सुव्यवस्थाकी ओर

शासन व्यवस्था

तो ध्यान दिया नहीं, अपनी जेबें भरनेकी ओर भरपूर ध्यान दिया। कोलब्रुकने अपने पत्रमें स्पष्ट लिखा था कि इस देशमें ब्रिटिश प्रदेशोंका जिस भाँति शासन किया जा रहा है उससे प्रजाकी सफलतापर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा है।[2] जिम्मेदार पदोंपर सर्वथा भ्रष्ट और अयोग्य कर्मचारी रहते थे। सरकारी रिपोर्टों तकमें स्वीकार किया गया है कि इस कालमें प्रजा सुरक्षित नहीं थी।[3]

भारतमें अत्यन्त प्राचीनकालसे ग्राम-पंचायतें ग्रामोंकी व्यवस्था सुचारु रूपसे करती आ रही थीं। अंग्रेजोंने शासन-सूत्र हाथमें लेते ही इस

पंचायतोंका अन्त

व्यवस्थाका अन्त कर दिया। भारतवासियोंका सारा सामाजिक, औद्योगिक और राजनीतिक जीवन इन्हीं ग्रामों और ग्राम-पंचायतोंके आधारपर संघटित था।[4] ये पंचायतें अपनी सीमाके भीतर पूर्ण शान्ति और व्यवस्था बनाये रखती थीं। अन्यायी शासकोंने भी कभी इनके स्वत्वोंपर हस्तक्षेप नहीं किया।[5]

१—टारेन्स : एम्पायर इन एशिया, पृष्ठ ४, ५।
२—कोलब्रुकका पत्र पिताके नाम, २८ जुलाई १७८८।
३—१८१२ की पाँचवीं सरकारी रिपोर्ट।
४—टारेन्स : एम्पायर इन एशिया, पृष्ठ १००।
५—मेलकम : हिस्ट्री आव ब्रिटिश इंडिया, खण्ड १, अध्याय १२।

मेटकाफने लिखा है कि राजवंश नष्ट हो गये, साम्राज्योंका पतन होगया, पर गाँवोंके जीवनमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ।[1] ग्राम-पंचायतोंका प्रवन्धसुव्यवस्थित था। जनताके प्रतिनिधि ही दीवानी और फौजदारीके झगड़ोंका फैसला करते थे। कोई व्यक्ति अपना घर या खेत छोड़कर चला जाता था तो वह जब चाहे तब आकर उसे पुनः पा सकता था।[2] ऐसे उत्तम संघटनको नष्ट करनेका सोलह आना श्रेय ईस्ट इंडिया कम्पनी और ब्रिटिश सरकारको है। मीरजाफर और मीरकासिमके शासनकालमें कम्पनीके स्वेच्छाचारी गुमाश्तोंने वह अन्याय, अत्याचार, लूटमार और अन्धाधुन्धी मचायी कि सारा ग्राम-संघटन नष्ट हो उठा। रही-सही कसर सन् १७७३ में 'रेगुलेशन एक्ट' द्वारा ब्रिटिश सरकारने पूरी कर दी। इस कानूनके अनुसार कलकत्तेमें पहली अंग्रेजी हाईकोर्ट स्थापित हुई।

अदालतें और वकील

अंग्रेजी अदालतें अपने संस्थापकोंके गुणोंको लेकर भारतमें अवतीर्ण हुईं। उन्होंने प्राचीन ग्राम-पंचायतोंको नष्टकर मुकदमोंकी नयी कारवाइयोंको जानबूझकर लम्बा और पेचीदा बना दिया, वकीलोंको जन्म दिया और ऐसे कानून बना दिये कि वकीलोंके बिना मुकदमा लड़ना असम्भव-सा हो गया। गरीबोंके लिए न्याय प्राप्त करना असम्भव कर दिया गया। इनके द्वारा सरकारको मालगुजारी वसूल करनेमें सुभीता होगया, इंग्लैंडके हजारों निकम्मे लड़कोंकी जीविकाका साधन निकल आया और भारतमें मुकदमेबाजी, जालसाजी, दरोगहलफी, रिश्वतसितानी, फूट और बर्बादीके फैलनेके लिए मैदान साफ हो गया।[3]

१—के : लाइफ आव सर चार्ल्स मेटकाफ, खंड २, पृष्ठ १६१-१६२।
२—मेलकम : हिस्ट्री आव ब्रिटिश इंडिया, खंड २, अध्याय १।
३—मिल : हिस्ट्री आव ब्रिटिश इंडिया, खण्ड ५, पृष्ठ ३५५।

जिस राष्ट्रका पतन करना हो उसका सीधा उपाय है—वहांकी शिक्षा-व्यवस्था दूषित कर देना। कम्पनीकालके पहले भारतमें

शिक्षाकी अवनति

शिक्षा उन्नतिके शिखरपर थी। १८२६ में ग्रामवासियोंकी शिक्षाकी चर्चा करते हुए स्वयं कम्पनीने लिखा था कि शिक्षाकी दृष्टिसे संसारके किसी भी देशमें किसानोंकी अवस्था इतनी ऊंची नहीं है जितनी ब्रिटिश भारतके अनेक भागोंमें है।[1] मेक्समूलरने बंगालमें उस समय ८० हजार देशी पाठशालाओंका उल्लेख किया है।[2] उस समय ग्राम-ग्राममें पंचायतोंके तत्वावधानमें पाठशालाएं चलती थीं। स्थान-स्थानपर आचार्योंके आश्रमोंमें ब्रह्मचारियोंको संस्कृत पढ़ायी जाती थी। मुख्य नगरोंमें टोल या विद्यापीठ थे। उर्दू फारसी सीखनेको मकतब और मदरसे थे। इन सबको राज्यकी ओरसे आर्थिक सहायता मिलती थी। प्रत्येक प्रान्तमें शिक्षा उन्नत अवस्थामें थी, पर ब्रिटिश शासन आरम्भ होते ही शिक्षाकी अवनति प्रारम्भ हो गयी। ग्राम-पंचायतें नष्ट कर दी गयीं, भारतीय उद्योगोंका नाश होनेसे दरिद्रता बढ़ी और छोटे-छोटे बालकोंको विवश हो मजदूरीमें लगना पड़ा। सरकारी सहायता बन्द हो गयी। १७५७ से १८५७ तक निरन्तर इस प्रश्नपर विवाद होता रहा कि भारतीयोंको शिक्षा देना हितकर होगा अथवा नहीं। कम्पनीके एक डाइरेक्टरने पार्लमेण्टमें कहा कि हम अपनी मूर्खताके कारण अमेरिकासे हाथ धो बैठे हैं। हमने वहां स्कूल कालेज खुल जाने दिये। अब भारतमें इस भूलकी पुनरावृत्ति करना ठीक नहीं। सन् १८१३ तक इंग्लैंडवाले यही सोचते रहे कि भारतीयोंको शिक्षित बनानेमें ब्रिटेनकी हानि है।

१८१३ के बाद इस शर्तके साथ शिक्षापर एक लाख रुपया वार्षिक

१—रिपोर्ट आव दि सेलेक्ट कमेटी ओन दि ईस्ट इंडिया कम्पनी, खंड १, पृष्ठ ४०६।

२—केर हार्डी : इंडिया, पृष्ठ ५।

व्यय करनेकी मंजूरी दी गयी कि कोई सार्वजनिक कालेज न खोला जाय[1]। १८५३ में सर चार्ल्स ट्रेवेलियनने पार्लमेण्टरी कमेटीको एक लम्वे पत्रमें लिखा था कि भारतवासियोंको अरवी और संस्कृत पढ़ने देना हमारे लिए घातक है। कारण, उससे मुसलमानोंको सदैव यह वात स्मरण आती रहेगी कि विधर्मी ईसाइयोंने अनेक सुन्दर प्रदेश उनसे छीन लिये हैं और हिन्दुओंको सदा यह खटका करेगा कि अंग्रेज लोग ऐसे अपवित्र राक्षस हैं जिनके साथ मेल-जोल रखना लज्जाजनक और पाप है। जवतक भारतवासियोंको अपनी विगत स्वाधीनताके विषयमें सोचनेका अवसर मिलता रहेगा तवतक वे यही सोचेंगे कि अंग्रेजोंको देशसे निकाल वाहर किया जाय। अंग्रेजीके प्रचारमें यह खतरा लेशमात्र भी नहीं है। अंग्रेजी शिक्षासे देशमें राज्यक्रान्ति असम्भव हो जायगी। शिक्षित भारतवासी स्वभावतः हमसे चिपटे रहेंगे और हमारे रीति-रिवाज, रहन-सहन आदिको अपनाकर अंग्रेजी सांचेमें ढल जायेंगे। वंगालके शिक्षित भारतवासी हमारा गला काटनेकी कामना करनेके स्थानपर हमारे साथ जूरी वनकर अदालतमें वैठने या वेंच मजिस्ट्रेट वननेकी इच्छा करते हैं। पाश्चात्य शिक्षा-प्राप्त युवक स्वाधीनताके लिए प्रयत्न करना वन्द कर देते हैं।[2] आपने स्पष्ट कर दिया कि भारतमें अंग्रेजी साम्राज्य वनाये रखनेके लिए अंग्रेजी शिक्षा आवश्यक है।

अंग्रेजी शिक्षाका लक्ष्य

मैकालेके अनुसार उस समय शासन-कार्य चलानेके लिए उन्हें कुछ ऐसे क्लर्कोंकी आवश्यकता थी जो रंगरूपमें काले हों, पर वातचीत,

---

१—एफेयर्स आव दि ईस्ट इंडिया कम्पनी, १८३२, खंड १, पृष्ठ ४४६-४४७।

२—ट्रैवेलियनका १८५३ में पार्लमेंटरी कमेटीके समक्ष उपस्थित "भारतकी विभिन्न शिक्षाप्रणालियोंका राजनीतिक प्रभाव" शीर्षक पत्र।

रहन-सहन और फैशन आदिमें गोरे। १८५४ के शिक्षा सम्बन्धी खरीतेमें यही बात कही गयी है। इस आदर्शको अपने समक्ष रखकर ब्रिटिश सरकारने भारतमें शिक्षाका प्रचार किया। असत्य, अतिशयोक्ति एवं साम्प्रदायिकता-पूर्ण पाठ्य पुस्तकों द्वारा उन्होंने भारतको और अधःपतनकी ओर ढकेला।

क्लर्क ढालनेकी मशीनें

इंडिया रिफार्म सोसाइटीने २० वर्षके अंग्रेजी शासनकी आलोचना करते हुए लिखा था कि सुशासनकी ये कसौटियां हैं—शान्ति, उत्तम आर्थिक स्थिति, देशकी भौतिक उन्नति, साधारण प्रजाकी समृद्धि, कानून और न्याय, पुलिस, शिक्षा, सरकारी नौकरियां, सार्वजनिक संतोष और देशका संरक्षण। सोसाइटी-ने एक-एक कसौटीपर ब्रिटिश शासनको कसकर बताया है कि वह सर्वथा अयोग्य साबित हुआ है।[1]

कुशासन

लडलो लिखता है कि जिस शासनके लिए कम्पनीको अभिमान था उसमें अधिकतर भारतीय जनताके जानमालकी रक्षा नहीं हुई। न्याय-व्यवस्था ऐसी बनायी गयी जिसमें बहुतसा समय और धन नष्ट होने लगा। मालगुजारीकी व्यवस्था द्वारा रुपया ऐंठने और अत्याचार करनेकी सम्भावना खूब बढ़ गयी। प्रजाका आचरण गिर गया और शारीरिक अवस्था बिगड़ उठी। भारतमें शराब पीनेका एक सर्वथा नया व्यसन चल पड़ा[2]। लूटपाटकी ऐसी स्थितिमें यह सम्भव ही कब था कि इस काल-में ललितकलाओं, वाङ्मय तथा अन्य वस्तुओंकी उन्नति हो सकती ?

सामाजिक जीवन स्वाहा

इस प्रकार कम्पनीके शासनकालमें भारतका सामाजिक जीवन सर्वथा चौपट हो गया।

१–दि गवर्नमेंट आव इंडिया सिन्स १८३४, इंडिया रिफार्म सोसाइटी आव इंगलैंड, १८५३। २–लडलो: ब्रिटिश इंडिया, खंड २, पृष्ठ ३६६-३७०।

ब्रिटिश काल

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

सन् सत्तावनके सैनिक-विद्रोहने भारतकी काया पलट दी। स्वाधीनताकी यह चिनगारी भारतीयोंके पराधीनता-पाशको भस्म न कर सकी। पर ब्रिटिश सरकारने भारतके शासनकी बागडोर पूरे तौरसे अपने हाथमें ले ली। भारत सोलह आने ब्रिटिश छत्रछायामें आगया।

दमनके भयंकर अस्त्रसे विद्रोह कुचल दिया गया अवश्य, पर भारतीयोंकी स्वातंत्र्य-भावना कुचली नहीं जा सकी। पश्चिमोत्तर

कांग्रेसका जन्म

सीमा प्रान्तमें मुसलमानोंके विद्रोह, १८७२ में सिखोंके कूका विद्रोह और बम्बई प्रान्तमें किसानोंके संघटित विद्रोहसे स्पष्ट है कि ऊपरसे शान्ति दीखनेपर भी विद्रोहकी अग्नि भीतर ही भीतर सुलग रही थी। इसी समय इटावाके कलक्टर श्री ओ० ह्यूमको कहींसे ऐसी प्रामाणिक सामग्री मिली जिससे उन्हें विश्वास होगया कि १८५७ की भाँति पुनः एक बार सारे देशमें विद्रोह भड़कनेवाला है। आपका माथा ठनका और इसीको रोकनेके उद्देश्यसे आपने २८ दिसम्बर १८८५ को 'कांग्रेस' नामक संस्थाको जन्म दिया।

ह्यूम क्या जानते थे कि जिस संस्थाको वे जन्म दे रहे हैं वही थोड़े दिनोंमें ऐसा उग्र रूप धारण कर लेगी जिससे सारी नौकरशाही

विरोधका आरम्भ

थर्रा उठेगी, पर उस समय तो उनका उद्देश्य सफल हुआ ही। कांग्रेस आरम्भमें बहुत दिनोंतक सरकार और भारतीय जनताके बीच पारस्परिक सहयोगके आधारपर पल्लवित होती रही। गवर्नर और वाइसराय उसे सींचते रहे, परन्तु यह स्थिति कब तक चलती? राजनीतिक केन्द्रबिन्दुसे चलनेवाली सार्वजनिक संस्थाओंका नौकरशाहीसे मेल बैठ ही कैसे सकता है? फलतः कांग्रेसके

चतुर्थ अधिवेशनसे ही कांग्रेस और सरकारके बीच विरोध दीखने लगा। तत्कालीन कांग्रेस नेता आवेदन और निवेदनके मार्ग द्वारा ही अपना कार्य सिद्ध कर लेना चाहते थे, परन्तु शीघ्र ही उन्हें अपनी भूल ज्ञात हो गयी। शासकोंकी उपेक्षा और काले गोरेके वर्ण-भेदने इन नेताओंके सुनहले स्वप्न भंग कर दिये। भारतीय जनमत स्वाधीनताके लिए आकुल हो उठा।

गोरोंका प्रभुत्व

गोरोंका राज था। उन्हींको उच्च पद दिये जाते, उन्हींको अधिकार दिये जाते, उन्हींको मोटा वेतन दिया जाता। वे भारतमें नौकरी करते समय तो अकूत धन लेते ही, स्वदेश जानेपर भी लम्बी रकम पेंशन, भत्ते और होम-चार्जके नामपर लेते। यह देख भारतीय जनताका रक्त खौल उठा। अत्यन्त नम्र और उदार विचारवाले कांग्रेस नेताओंको भी भारी ठेस लगी। पहले तो कांग्रेस सरकारी नौकरियोंमें भारतीयोंको अधिक स्थान दिलानेतक ही अपना कार्यक्षेत्र सीमित रखती थी, बादमें उसने ब्रिटेन द्वारा भारतका जो शोषण होता था उसका पर्दाफाश करना आरम्भ किया। फलतः ब्रिटिश सरकार कांग्रेसकी शत्रु बन बैठी।

प्रलोभनकी नीति

यद्यपि कांग्रेस अपने अधिवेशनोंमें बार-बार राजभक्तिकी घोषणा करती थी तथापि सरकारको उसका रवैया पसन्द न था। वह समझती थी कि कांग्रेस हमारी आर्थिक लूटका द्वार ही बन्द कर देना चाहती है। कांग्रेस नेताओंका मुंह बन्द करनेके लिए उसने दूसरी चाल चली। कांग्रेसके प्रभावशाली नेताओंको उसने ऊँचे सरकारी पद देने आरम्भ कर दिये। डाक्टर पट्टाभिके शब्दोंमें 'कुछ दिनोंतक हाईकोर्टकी जजी पानेका सरल उपाय यह था कि कांग्रेसके कार्यमें दिलचस्पी ली जाय!' पर यह चाल अधिक दिनोंतक न चली। तब कांग्रेस नेताओंको झुकानेके लिए सरकारने दमनका सहारा लिया और उसके भी असफल होनेपर अपने सबसे प्रभावकर अस्त्र 'फूट डालो और राज्य करो'का सहारा लिया।

सरकारी नीतिसे भारतीय जनता बुरी भाँति क्षुब्ध हो रही थी। बंगाल प्रान्तमें राजनीतिक चेतना सबसे अधिक थी। ब्रिटिश सरकारने

बंगभंग

बंगालके दो टुकड़े करके मानों उसे रण-निमंत्रण दिया। इससे बंगालके मर्मस्थलपर भारी चोट पहुँची। बंगालके साहित्य, विज्ञान, कला-कौशल सभी क्षेत्रोंमें उसकी चिनगारियाँ फूट पड़ीं। सारे देशपर उसका विचित्र प्रभाव पड़ा। पर भारत इस भावावेशकी तीक्ष्ण-धाराका अधिक उपयोग न कर सका। तत्कालीन नेता तटस्थ-से बने रहे और वह तूफान यों ही निकल गया।

कांग्रेसकी बागडोर उस समय दब्बू माडरेटोंके हाथमें थी जो 'हुजूर माई बाप' कहकर ही काम निकालना चाहते थे। जागृत युवक

आजादीके दीवाने

भला ऐसी नीति कैसे स्वीकार करते? उनके हृदयमें तो ब्रिटिश नौकरशाहीने स्वाधीनताकी इतनी उत्कट इच्छा उत्पन्न कर दी थी कि वे उसके लिए अधीर हो रहे थे। सरकार इन आजादीके दीवानोंसे बुरी तरह घबड़ा उठी और इन्हें कुचलनेके लिए उसने दमन और पाशविकतामें कोई बात उठा न रखी। देशभक्ति, अतुलनीय आत्म-बलिदान और अद्भुत साहससे पूर्ण इन वीरोंने फाँसीके तख्तोंपर झूलकर, अंदमान और काले पानीकी असह्य वेदनाका हँसते-हँसते स्वागतकर भारतीय राष्ट्रीयताकी ठोस नींवका काम किया। उनके शौर्य और बलिदानकी कहानियाँ युग-युगतक अमर रहेंगी।

एक ओर अकर्मण्य माडरेट नेता थे, दूसरी ओर आजादीके उत्कट दीवाने। भारतीय राजनीति दोनोंसे प्रभावित हो रही थी। इन दोनोंके

गरम दल

बीचका एक नया दल उठ खड़ा हुआ जिसे माडरेटोंने 'गरम दल' कहकर पुकारना शुरू किया। इस दलने क्रान्तिकारियोंसे सहानुभूति तो रखी, पर उनका मार्ग नहीं अपनाया। लोकमान्य बालगंगाधर तिलक, लाला लाजपत राय, शिशिरकुमार

घोष, अरविन्द घोष, जैसे कर्मठ तपस्वी 'स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है और हम उसे लेकर रहेंगे'—आदर्शको लेकर कांग्रेसके मंचपर अवतीर्ण हुए। १९०७ में कांग्रेसका सूरतमें जो अधिवेशन हुआ उसमें गरम और नरम दलकी जमकर टक्कर हुई। १९०७ से १९१७ तक गरम दल शनैः शनैः विकसित होता रहा। उसके बाद उसे दृढ़ होनेका अधिक अवसर मिला और दिन-दिन वह उग्र होता गया।

१९१८ में प्रथम विश्व-युद्धकी समाप्तिपर भारतको ब्रिटेनसे बड़ी आशाएं थीं। महायुद्धमें उसने धन-जनकी जो अतुल आहुति थी उसका

रोटी नहीं पत्थर

पुरस्कार पानेको वह लालालित था। किन्तु हुआ क्या? भारतको उसकी सेवाओंके उपलक्ष्यमें मिला 'रौलट एक्ट' और 'जलियानवाला बागका हत्याकाण्ड'। मांगी रोटी मिला पत्थर! ब्रिटिश नौकरशाही अपने नग्नरूपमें सामने आ गयी। ब्रिटेनपरसे भारतका विश्वास सदाके लिए उठ गया।

इसी समय भारतके राजनीतिक मंचपर संसारकी सर्वश्रेष्ठ विभूति

महात्मा गांधी

महात्मा गांधीका पदार्पण हुआ। पंजाबकी हृदय-विदारक घटनाओंने भारतको यह समझनेके लिए विवश कर दिया कि आवेदन और निवेदन, विनय और प्रार्थनासे ब्रिटिश साम्राज्यशाही रत्तीभर विचलित होनेवाली नहीं है।

सन् १९२० के बादके भारतीय इतिहासपर महात्मा गांधीके व्यक्तित्वकी स्पष्ट छाया है। उनके अहिंसा और सत्यके अस्त्र द्वारा भारतने जो प्रगति की वह विश्व-विदित है। ३१ दिसम्बर १९२९ की रातको ठीक बारह बजे पंडित जवाहरलाल नेहरूकी अध्यक्षतामें कांग्रेसने घोषणा कर दी कि कांग्रेस विधानकी पहली धारामें 'स्वराज्य' का अर्थ है—'पूर्ण स्वाधीनता'। इस घोषणाने भारतकी राजनीतिमें क्रान्तिकारी परिवर्तन कर दिया।

१९२०के असहयोग आन्दोलनके उपरान्त भारतमें १९३०से देशव्यापी

आन्दोलनोंकी जो धूम मची उससे ब्रिटिश शासन बुरी तरह हिल उठा

सत्याग्रह आंदोलन सन् ३० का आन्दोलन चार वर्षतक चलता रहा। १९३५ में ब्रिटिश पार्लमेंटमें भारतका नया शासन-विधान स्वीकृत हुआ जिसके अन्तर्गत प्रान्तोंको किसी सीमातक स्वायत्त-शासन प्रदान किया गया। कांग्रेसने इसे स्वीकारकर आठ प्रान्तों-में अपने मंत्रिमण्डल बना लिये। यों तो ब्रिटिश सरकार पहले भी समय-समयपर मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड जैसे कुछ शासन-सुधार करती रही, किन्तु वे नाममात्रके सुधार थे।

द्वितीय महासमर छिड़ते ही भारतकी स्वीकृतिके बिना ही ब्रिटेन-ने भारतको भी मित्र-राष्ट्रोंकी श्रेणीमें सम्मिलित कर लिया। कांग्रेस-ने ब्रिटिश यंत्रका पुर्जा बननेसे स्पष्ट इनकार कर दिया और सभी कांग्रेसी मंत्रिमंडलोंने पदत्याग कर दिया।

१९४० में महात्माजीके आदेशसे व्यक्तिगत सत्याग्रह आन्दोलन छिड़ा। आचार्य विनोवा भावेने युद्धका विरोध करते हुए इस सत्या-ग्रहका श्रीगणेश किया। १९४१ में समझौतेकी वार्ता चली। सत्याग्रही छूटे। ४२ में सर स्टेफर्ड क्रिप्स ब्रिटिश सरकारके प्रस्ताव लेकर भारत पधारे, पर ब्रिटेनकी नीयत साफ न होनेसे वे असफल होकर लौट गये।

क्रिप्स-योजनाकी विफलतासे सारे देशकी आशाओंपर तुषारपात हो गया। भारतने अच्छी तरह समझ लिया कि युद्ध किये विना स्वा-धीनता मिलनेवाली नहीं। कहनेके लिए १९४१ में ही वाइसरायने शासन परिषद्में गोरोंके साथ कालोंको भी स्थान दे दिया था, पर वे जनताके चुने हुए प्रतिनिधि न थे।

कांग्रेसने देखा कि देशके सम्मुख अब एक ही मार्ग है और वह है—स्वाधीनताके लिए प्राणोंकी बाजी लगा देना। १४ जुलाई १९४२ को वर्धामें कांग्रेस कार्य समितिने 'भारत छोड़ो' प्रस्तावका मसविदा बनाया और ८ अगस्तको बम्बई कांग्रेसमें वह स्वीकृत हुआ। प्रस्तावमें कहा

गया था कि 'ब्रिटिश शासनका भारतमें बना रहना भारतको पतनोन्मुख करनेवाला है। वह उसे आत्मरक्षा करनेमें असमर्थ बनाता है तथा विश्वकी स्वतंत्रताके महान कार्यमें योग देनेसे वंचित रखता है। कांग्रेस महासमिति जोरदार शब्दोंमें भारतसे ब्रिटिश शासन हटनेकी मांग पुनः दोहराती है।'

'भारत छोड़ो' प्रस्ताव

यह सम्भव ही कैसे था कि ब्रिटिश सरकार कांग्रेसके ऐसे प्रस्ताव-को चुपचाप स्वीकृत हो जाने देती, जिसमें स्पष्ट मांग की गयी थी—'अंग्रेजो, भारत छोड़ो'। प्रस्ताव स्वीकृत होनेकी देर थी कि ब्रिटिश साम्राज्य-शाहीने कांग्रेसपर संघटित आक्रमण बोल दिया और नेताओंको दूर जेलके सीखचोंमें बन्दकर सारे देशमें दमनका ऐसा नंगा नृत्य आरम्भ कर दिया जिसका विवरण पत्थरका भी हृदय दहला देनेके लिए पर्याप्त है। एमरी साहबने रेडियोपर घोषणा की कि कांग्रेसने विध्वंसात्मक कार्यक्रम बनाया था जिससे वह ब्रिटिश शासन-यंत्रको पंगु कर देना-चाहती थी। जनताने चकित होकर वह कार्यक्रम सुना। नेता जेलमें थे। जो बाहर रह गये थे उनमेंसे अनेक एमरी साहबके इशारोंपर खेल गये। फलतः सारे देशमें ऐसी क्रान्ति मची जो १८५७ के बाद अपने ढंगकी दूसरी थी।

अगस्त-क्रान्तिमें ब्रिटिश नौकरशाहीने अपना अस्तित्व बनाये रखनेके लिए क्या नहीं किया? पाशविकताका ऐसा नंगा नाच भारतने कभी न देखा था। निहत्थोंपर लाठियां और गोलियां चलायी गयीं। हवाई जहाजोंसे बमतक फेंकनेमें कसर नहीं की गयी। मशीनगनें चलायी गयीं। लोगोंको सरे-आम कोड़े लगवाये गये। उन्हें आगमें भूना गया। सीनोंमें संगीनें भोंकी गयीं। महिलाओंका घृणित अपमान किया गया। हिंसा, पशुता, बलात्कार, गृह-दाह—लूटपाट, तात्पर्य यह कि कुछ भी कसर न रखी गयी और ऐसा करके नौकरशाहीने मान लिया कि हमने अगस्त आन्दोलन कुचल दिया!

अगस्त क्रान्ति

नेता जेलोंमें सड़ते रहे, देशमें दमन चक्र-चलता रहा। बंगालकी खाद्य-स्थिति उत्तरोत्तर बिगड़ती गयी और अधिकारी कानमें तेल डाले पड़े रहे। फलतः बंगालमें ऐसा भीषण दुर्भिक्ष पड़ा कि बंकिमचन्द्रके 'आनन्दमठ' में वर्णित दुर्भिक्षका चित्र नेत्रोंके सम्मुख साकार हो उठा। एक ओर धनिक सोने-चाँदीके महल खड़े कर रहे थे, दूसरी ओर बगलमें, सड़ककी पटरीपर लोग एक-एक दानेके लिए बुरी तरह छटपटा रहे थे। जूठनके दानोंके लिए कुत्तों और नरकंकालोंमें खुली सड़कपर युद्ध होता था! लाखों व्यक्ति-क्षुधा-राक्षसीके पेटमें समा गये। केन्द्रीय सरकारकी नालायकी, रेलवे विभाग और खाद्य-विभागके असहयोग आदिके कारण बंगालके लाखों गरीब कुत्तोंसे भी बदतर मौत मरे। सड़कें लाशोंसे पट गयीं। ब्रिटिश शासनकी 'सुव्यवस्था'का यह उदाहरण युगोंतक हमें उसका स्मरण दिलाता रहेगा।

बंगालका दुर्भिक्ष

१९४५ में कांग्रेस नेताओंके जेलसे छूटते ही देशकी स्थितिमें आकाश-पातालका अन्तर होगया। उसके बाद कांग्रेससे जो समझौता-वार्ता चली उसका परिणाम किसे ज्ञात नहीं? पंडित जवाहरलाल नेहरूकी अध्यक्षतामें २ सितम्बर १९४६ को भारतकी प्रथम राष्ट्रीय सरकारने पद ग्रहण किया। ९ दिसम्बर १९४६ को स्वतंत्र भारतका विधान निर्माण करनेके लिए विधिवत् चुनी हुई विधान परिषद्का श्रीगणेश हुआ। शहीदोंके पुण्य प्रतापसे शताब्दियोंकी पराधीनताकी श्रंखला विदीर्णकर १५ अगस्त १९४७ की पुण्यतिथिको भारत स्वतंत्र हो गया!

स्वतंत्र भारत

●

भूमि सम्बन्धी समस्याएं

ईस्ट इण्डिया कम्पनीने भारतमें भूमिकी कई प्रकारकी व्यवस्थाएं कीं। कम्पनीने देखा कि स्थायी वन्दोवस्तसे पैसेकी आय स्थायी हो जाती है तव उसने उसे वढ़ानेके लिए अस्थायी व्यवस्थाकी शरण ली। और भी कितनी ही भूमि-व्यवस्थाएं चालू कीं। मौटे तौरपर हम उन्हें इस प्रकार विभाजित कर सकते हैं—

भूमि व्यवस्थाएँ

१—स्थायी वन्दोवस्त १६ प्रतिशत

२—अस्थायी वन्दोवस्त

(१) ताल्लुकदारी, जमींदारी या ग्राम्य वन्दोवस्त २६ प्रतिशत

(२) रैयतवारी ५२ प्रतिशत

स्थायी वन्दोवस्त वंगाल, विहार, आसाम और संयुक्त प्रान्तमें, जमींदारी या ग्राम्य वन्दोवस्त संयुक्त प्रान्त, पंजाव और मध्य प्रान्तमें और रैयतवारी वन्दोवस्त वम्वई, सिंध, मद्रास, आसाम और विहारके कुछ भागोंमें प्रचलित है।

स्थायी वन्दोवस्त

स्थायी वन्दोवस्तमें नये वन्दोवस्तके लिए प्रचुर धन व्यय नहीं करना पड़ता। मालगुजारी विभागके कर्मचारियोंकी स्वेच्छाचारितासे भी मुक्ति रहती है। किसान अपनी भूमिके सुधारके लिए सचेष्ट रहता है। वारवार वन्दोवस्त नहीं वदलना पड़ता और सरकारकी स्थायी तथा निश्चित आय हो जाती है। किन्तु इससे आयका स्रोत स्थिर होकर रह जाता है।

अस्थायी वन्दोवस्त

अस्थायी वन्दोवस्तवाले प्रदेशोंमें समय-समयपर नया वन्दोवस्त होता रहता है। जमींदारी या ग्राम्य वन्दोवस्तवाले प्रदेशोंमें इसके लिए कुछ वर्षोंकी अवधि निश्चित कर दी जाती है। जैसे, संयुक्त प्रान्तमें ३० वर्ष, मध्य प्रान्तमें २० वर्ष, पंजावमें ४० वर्ष। रैयतवारी वन्दोवस्तवाले प्रदेशोंमें सरकार और

किसानके बीच जमीदार नामका दलाल नहीं रहता। नये वन्दोवस्तके लिए अवधि निर्धारित कर दी जाती है। वम्वई और मद्रासके लिए ३० वर्षकी अवधि निश्चित है, अन्य प्रान्तोंके लिए कुछ कम है। अस्थायी व्यवस्थामें उत्पत्तिका परिमाण घटनेपर लगान कम भी किया जा सकता है पर वस्तुतः होता यह है कि हर वार उसमें कुछ न कुछ वृद्धि ही होती है और किसान दिन-दिन पिसता चलता है।

मालगुजारी

जमींदारीवाले प्रदेशोंमें जमीनके उपयोगके लिए किसान जमींदारको जो रकम चुकाता है वह 'लगान' कहलाती है। जमीदार जो रकम सरकारको देता है वह 'मालगुजारी' कहलाती है। उत्तर भारतमें पहले ऐसा निश्चय किया गया था कि लगानसे जमींदारको जो आमदनी हो उसमेंसे १७ प्रतिशत वह स्वयं ले और ८३ प्रतिशत सरकारको दे। पर जमींदारकी परेशानी देखकर सरकारने अपना भाग क्रमशः कम कर दिया और १८५५ में मालगुजारी लगानकी आधी कर दी गयी। १८६४ में यही व्यवस्था कुछ अन्य प्रान्तोंमें भी लागू कर दी गयी। आजकल प्रायः सभी जगह ४०,५० प्रतिशतके लगभग मालगुजारी ली जाती है। पंजावमें २५ प्रतिशत है। सरकारी मालगुजारी नकद पैसेके रूपमें लेनेका नियम है। अनावृष्टि, दुर्भिक्ष आदिके कारण उसमें कुछ छूट भी दी जाती है, पर वह सर्वथा नगण्य होती है। यों भी मालगुजारी उपजकी दृष्टिसे अधिक ही ली जाती है।

ब्रिटिश छत्रछायामें आते ही सरकारी मालगुजारीमें क्रमशः कैसी वृद्धि की गयी, इसका पता इन आंकड़ोंसे चल जायगा—

सन्	मालगुजारी	सन्	मालगुजारी
१८५६—५७	३०,०० लाख रु०	१८९०—९१	३,६०,०० लाख रु०
१८७०—७१	३६,१५ ,,	१९०१—०२	४,१५,४५ ,,
१८७७—७८	२,९९,०० ,,	१९२०—२१	४,७१,४५ ,,

प्राचीन युगमें जमींदार नामक कोई वर्ग नहीं था। मुसलमानी कालमें सरकारी मालगुजारी वसूलकर खजानेमें जमा करनेवाला वैतनिक कर्मचारी जमीदार कहलाता था। मुगल साम्राज्यका ह्रास होनेपर नवावोंकी दुर्वलतासे लाभ उठाकर मालगुजारीके ये ठेकेदार ठेकेकी जमीनके स्वामी बन बैठे। अंग्रेजोंने ऐसे लोगोंको जमीदार मान लिया जो पुराने नवावोंके दवावमें रहनेवाले न हों और प्रजाको दवानेकी सामर्थ्य रखते हों। कम्पनीको बंगाल, विहार और उड़ीसाकी दीवानी जव मिली तो उसने मालगुजारीके लिए नीलाम वोलना शुरू किया। जो मालगुजारीकी ऊंचीसे ऊंची वोली वोलता उसीको लगान-वसूलीका काम मिलता। धीरे धीरे यही वर्ग 'जमीदार' कहलाने लगा। अंग्रेजोंने जमींदारपर जमीनका प्रवन्ध छोड़ दिया। वह जमीनका पूरा मालिक बन बैठा। राजभक्तिके पुरस्कार-स्वरूप भी अनेक व्यक्ति जमीदार वन गये।

जमींदारी

हिन्दू मुसलिम कालमें भूमिपर प्रायः प्रजाका ही स्वत्व माना जाता था, किन्तु आज नहीं। किसान सरकारको जो मालगुजारी देता है वह करके रूपमें देता है। रैयतवारी प्रथामें भूमि प्रायः राजकी ही मानी जाती है। किसान उसपर खेती करता है और सरकारको मालगुजारी चुकाता है। जमीदारी और ताल्लुकदारी क्षेत्रोंमें भूमि न तो किसानकी मानी जाती हैं, न सरकारकी। वह जमीदार अथवा ताल्लुकदारकी मानी जाती है। स्थायी वन्दोवस्तवाले क्षेत्रोंमें जमीदारने किसानको उसके भूमि-सम्बन्धी अधिकारोंसे ही वंचित नहीं किया है, अपितु अपने अधिकारोंका भी दुरुपयोग किया है।

भूमिका स्वत्व

सरकार भले ही कम आयवाले किसानोंको कर-मुक्त कर दे, पर जमींदार एक चप्पा भूमि भी विना लगानके नहीं छोड़ता। वह अपनी लगानकी दर कितनी ऊंची रखता है, वेदखलीके अस्त्र द्वारा किसानों-

को कैसा चूसता है, यह किसीसे छिपा नहीं। विना परिश्रमके ही निकृष्ट भूमिके काममें आजानेपर वह निरन्तर लगान बढ़ाता चलता है। उसीके कारण किसानोंको लाखों रुपया मुकदमेवाजीमें फूंकना पड़ना है। श्री सम्पूर्णानन्दने ठीक ही लिखा है कि आजसे पहले कभी जमीनदारोंसे थोड़ा वहुत लाभ भी होता रहा होगा, आज वह विलकुल वेकार है। युक्त प्रान्तमें सरकारी कागजोंके अनुसार कृपकोंसे लगान लगभग १९ करोड़ रुपया वसूल किया जाता है, जिसमें लगभग ७ करोड़ सरकारी कोपमें मालगुजारीके रूपमें पहुंचता है। जमीदार न होता तो १२ करोड़की रकम कृषककी जेवमें रहती अर्थात् उसके लगानमें ६१ प्रतिशतकी कमी हो जाती या समूची सरकारके पास रहती, जिससे स्वास्थ्य और शिक्षा आदिका काम चलता या दोनोंमें वंट जाती।[1]

किसानका शोषण

जमीदार लगानके अतिरिक्त अन्य उपायोंसे भी किसानका शोषण करता है। किसानोंसे रकम ऐंठनेके उसने हजारों उपाय निकाल रखे हैं।[2] दशहरा, होली, दिवाली आदि तिथि-त्यौहारोंपर तो ताल्लुकदार और जमींदार नजराना लेते ही हैं, अपने यहां विवाह-शादी, जन्म-मरण आदिमें भी वे रैंयतको नाना प्रकारसे सताते हैं। उनके हाथी और घोड़े, तीतर और वटेर, ऊंट और वैल सव किसनके मत्थे पलते हैं। प्रजामें किसीके घर शादी हो, वच्चेका जन्म हो, फसल पैदा हो, कोई नयी चीज हो, सवमें उनको हिस्सा मिलना चाहिये। हथियावन, घुड़ावन, मुटरावन, नचावन, घटवाही, आदि न जाने कितनी लागवागें चालू हैं। मालिकों की रईसी, शानवान, और ठाठ इन्हींपर आश्रित है। किसानोंको अपना माल भी सस्ते दामोंपर उन्हें भेंट चढ़ाना पड़ता है! विद्रोह करके वेचारा किसान जाय कहां?

१—सम्पूर्णानन्द: समाजवाद, पृष्ठ १०६।
२—प्राणनाथ विद्यालंकार: भारतीय सम्पत्ति-शास्त्र, 'ताल्लुकेदारोंकी लूट'।

मजेकी बात यह है कि बंगाल, बिहार और युक्त प्रांतमें ऐसे ऐसे जमींदार हैं जिनकी वार्षिक आय कई देशी राज्योंसे अधिक है पर उनपर न पुलिसका दायित्व है, न सेनाका और न शिक्षाका ![1]

जमीदारी वस्तुतः अभिशाप है। शीघ्रसे शीघ्र इसकी समाप्ति होनी चाहिये। सन्तोषकी बात है कि देशसे शीघ्रातिशीघ्र जमीदारी समाप्त करनेका निश्चय कर लिया गया है।

किसानोंकी श्रेणियां

देशमें किसानोंकी भी कई श्रेणियां हैं। स्थायी बन्दोबस्तवाले प्रदेशोंमें जैसे, बंगालमें पाँच प्रकारके किसान पाये जाते हैं—पटनीदार, काश्तकार शरह मोअइयन, काश्तकार साल्तुल मिल्कियत, काश्तकार दखीलकार या मौरूसी और काश्तकार गैर-दखीलकार या गैर-मौरूसी। पटनी जोतदार या स्थायी हक रखनेवाले काश्तकारोंमें कुछ स्थायी जोतदार होते हैं, कुछ पटनी ताल्लुकदार। आगरा प्रान्तमें साल्तुल मिल्कियत काश्तकार, मौरूसी काश्तकार, गैर-मौरूसी काश्तकार और काश्तकार हीनह्यात होते हैं। अवधके किसानोंकी श्रेणियाँ भी इसी प्रकार हैं। पिछले काश्तकारी कानून के अनुसार आगरा और अवधकी लगान-प्रथा एक कर दी गयी। शिकमी या सीरके काश्तकारोंको छोड़कर प्रत्येक काश्तकार मौरूसी काश्तकार बना दिया गया। मौरूसी काश्तकारका पुत्र अपने पिताकी जमीनका अधिकारी होगा।

कमायूँमें रैयतवारी प्रथामें जमीनके हकदार हिस्सेदार कहलाते हैं। हिस्सेदारोंके ऊपर थोकदार, कनियर या सयाने होते हैं और उनके नीचे खैंकार। यहाँ बहुत थोड़ी मात्रामें गैरदखीलकार होते हैं। पंजाबमें काश्तकार-मालिकोंकी संख्या बहुत है। वहाँ

१—सम्पूर्णानन्द: वही, पृष्ठ १०६।

मौरूसी या दखीलकार और गैर-दखीलकार हैं। मध्य प्रदेशमें (वरार छोड़कर) जमीदारी या मालगुजारी प्रथा है। यहाँ कतई-मौरूसी, मौरूसी और गैर-मौरूसी काश्तकार होते हैं। मद्रास और वम्बईमें रैयतवारी काश्तकार होते हैं। मद्रासमें स्थायी लगानके काश्तकार और इनामदार भी होते हैं।

सभी प्रान्तोंमें किसानोंके हितके लिए कानून वनाये गये हैं। इस दिशामें कांग्रेसी मंत्रिमंडलोंने अच्छा कार्य किया है। बंगाल, युक्तप्रान्त तथा अन्य प्रान्तोंमें चेष्टा की जा रही है कि ऐसे कानून वन जाँय जिनसे किसान अपनी जमीनपर अधिकार रख सकें और शोषणसे मुक्त रह सकें।

छोटे छोटे खेत

किसान छोटे-छोटे और दूर-दूरपर वटे खेतोंमें, अपर्याप्त साधनोंसे खेती करते हैं। देशमें असंख्य खेतोंका क्षेत्रफल एक दो एकड़से भी कम है। किसानका एक खेत गाँवके दक्षिणी सिरेपर रहता है तो दूसरा उत्तरी सिरेपर।

१९२१ की जन-गणनाके अनुसार विभिन्न प्रान्तोंमें प्रति किसान-के पास औसत जमीन इतनी है—

बम्बई	१२.२ एकड़	मद्रास	४.९ एकड़	उड़ीसा	३.१ एकड़
पंजाब	९.२ ,,	बंगाल	३.१ ,,	आसाम	३.० ,,
युक्तप्रान्त	८.५ ,,	विहार	३.१ ,,	युक्तप्रान्त	२.५ ,,

दुर्भिक्ष जाँच कमीशन (१९४५) ने प्रान्तीय सरकारोंके मतानुसार जो आँकड़े दिये हैं, वे भी कुछ आशाजनक नहीं हैं—

वंगाल लैण्ड और रेवेन्यू कमीशनकी गणनाके अनुसार बंगालमें औसत खेतोंका क्षेत्रफल ४.४ एकड़ है।[1] १९,५९९ परिवारोंमें—

३.३ प्रतिशत परिवार गैर-मौरूसी काश्तकार हैं।
४२.७ ,, परिवारोंके पास २ एकड़से कम जमीन है।

१—दुर्भिक्ष जाँच कमीशन, १९४५, अंतिम रिपोर्ट, पृष्ठ २५४।

११·२	प्रतिशत परिवारोंके पास	२ से ३ एकड़तक जमीन है।
६·४	,, ,,	३ से ४ एकड़तक जमीन है।
८	,, ,,	४ से ५ एकड़तक जमीन है।
१७	,, ,,	५ से १० एकड़तक जमीन है।
८·४	,, ,,	१० एकड़से अधिक जमीन है।

अर्थात् दो-तिहाई किसानोंके पास ४ एकड़से भी कम जमीन है। वंगालके जलपाइगुड़ी जिलेमें ८·७४ एकड़ जमीनका औसत है। वाँकुड़ा, वीरभूमि, वर्दमान, जैसोर, मालदा, और नदियामें ६ एकड़से कुछ अधिक जमीनका औसत है। वाकरगंज, फरीदपुरमें ४ एकड़से भी कम और ढाका, हावड़ा, नोआखाली, त्रिपुरामें तो ३ एकड़का ही औसत रह जाता है।

वम्बईमें लैंड रेवेन्यू एडमिनिस्ट्रेशनकी १९२१–२२ की रिपोर्टके अनुसार ४८ प्रतिशत किसानोंके पास १५ एकड़ या अधिक जमीन थी। १९३६–३७ की रिपोर्ट इस प्रकार है—[1]

	संख्या	प्रतिशत	क्षेत्रफल एकड़में	प्रतिशत
५ एकड़तकके खेत	११,३० हजार	४९	२५,४० हजार	९·५
५ से १५ एकड़के खेत	६,७० ,,	२९	६१ लाख	२२·८
१५ से २५ ,,	२,५० ,,	११	४७,४० हजार	१७·७
२५ से १०० ,,	२,२० ,,	१०	६२,३० हजार	२४·४
१०० एकड़ से ऊपर	२० ,,	१	४१,७० हजार	१५·६

इसके अनुसार औसत ११·७ एकड़ पड़ता है। सूरतके अतगांवमें जाँच करनेपर पता चला है कि वहाँ २५ प्रतिशतसे अधिक किसानोंके पास १ एकड़से भी कम जमीन है।

मद्रासकी लैंड रेवेन्यू एडिनिस्ट्रेशनकी १९३६–३७ की रिपोर्टके

१—इंडियन रूरल प्राबलम, पृष्ठ ४५।

अनुसार ४.५ एकड़ प्रति किसानका औसत पड़ता है। रैयतवारीकी ७६ प्रतिशत जमीनोंमें प्रति किसान केवल २.४ एकड़का औसत पड़ता है। पंजाबके कृषि सम्बन्धी शाही कमीशनकी रिपोर्टके अनुसार—

१७.६ प्रतिशत जमीनोंका क्षेत्रफल १ एकड़से कम है।
२५.५ „ „ „ १ एकड़से ३ एकड़तक है।
१४.९ „ „ „ ३ एकड़से ५ एकड़तक है और केवल
१८ „ „ „ ५ एकड़से १० एकड़तक है।

१९३९ में पंजाबके आर्थिक जाँच आँकड़ोंके आधारपर दुर्भिक्ष जाँच कमीशन (१९४५) ने पंजाबमें १० एकड़के लगभगके खेत होनेका औसत निकाला है।[1] १९३६ में गुडगाँव जिलेके भड़ास गाँवकी जाँचसे पता चला कि वहाँ ३४ प्रतिशत किसानोंके पास २.५ एकड़ या इससे भी कम जमीन है।[2]

युक्त प्रान्तमें प्रान्तीय बैंकिंग जाँच समितिके अनुसार पश्चिमसे पूर्व और दक्षिणसे उत्तर जमीन कम होती चली गयी है—

दक्षिण	उत्तर-मध्य	दक्षिण-मध्य	पश्चिम	पूर्व
१०.५से१२	६.० से ७.०	५.०४से५.५	८से१०.५	३.५से४.५ एकड़

श्री श्यामबिहारी मिश्रकी १९२४ की रिपोर्टके अनुसार विविध जिलोंका औसत इस प्रकार है—

बुलन्द शहर	१८.१८ एकड़	जालौन	८.७५ एकड़
अलीगढ़	१६.३ „	फतेहपुर	७.० „
मथुरा	११.१२ „	गोरखपुर	४.३ „
मेरठ	१०.२ „	बस्ती	३.१ „

लखनऊके रुवो गाँवमें ४० प्रतिशत किसानोंके पास १ एकड़से

१—दुर्भिक्ष जाँच कमीशन, अंतिम रिपोर्ट, १९४५, पृष्ठ २५७।
२—बलजीत सिंह : बिदर एग्रीकल्चर इन इंडिया, पृष्ठ ६६।

कम और ९० प्रतिशतके पास ५ एकड़से कम जमीन है। मैनपुरी जिलेके सुराणा गाँवमें १८ प्रतिशत किसानोंके पास १ एकड़से कम जमीन है और ५८ प्रतिशतके पास ५ एकड़से कम।[1] प्रोफेसर जेवन्सनने युक्त प्रान्तके एक गाँवकी जाँचमें देखा कि उस गाँवके १७३ खेतोंमें ८९ खेत ऐसे थे जिनका क्षेत्रफल दो एकड़से भी कम था।[2]

इतनी थोड़ी भूमिमें हमारे किसान खेती करते हैं। यह सीमित भूमि भी जन-संख्याकी वृद्धि, हिन्दू मुसलमानोंके दायके कानून, संयुक्त कुटुम्ब-प्रणालीके नाश तथा अन्य कितने ही कारणोंसे और भी छोटे टुकड़ोंमें विभक्त होती जा रही है।

बँटवारा

डाक्टर हेराल्ड मेनकी जाँचके अनुसार वम्बईके पिपला सूदगर गाँवमें १८७१ में जहाँ ४० एकड़के खेत थे, वहाँ १९२५ में वे ७ एकड़के ही रह गये। मद्रासमें डाक्टर गिल्बर्ट स्लेटरके अनुसार १९२६ में एक गाँवमें १ से ५ एकड़ तककी २२० जमीनें १९३६ में ६०० तक जा पहुँचीं। युक्त प्रान्तके मैनपुरी जिलेमें १८७० में ११.७ एकड़की जमीनें १९४० में ७ एकड़ ही रह गयीं। वम्बईके वोरसद तालुकामें १९०१ में ७ एकड़की जमीन १९२१ में ३.८ एकड़पर आगयी। पंजाबके हिसार जिलेमें १८९८-९९ में १५.८ एकड़का औसत १९३४-३५ में १०.२ एकड़पर आ रहा।[3]

दुर्भिक्ष जाँच कमीशन (१९४५) ने निष्कर्ष निकाला है कि सभी प्रकारकी भूमि-पद्धतियोंमें किसानोंके पास बहुत थोड़ी-थोड़ी जमीन है। जमीनके बड़े टुकड़े बहुत कम हैं और किसानोंकी साधारण प्रवृत्ति जमीनको और कम करते चलनेकी ही ओर है।[4]

१—बलजीत सिंह : दिदर एग्रीकल्चर इन इंडिया, पृष्ठ ६६।
२—दयाशंकर दुबे : भारतमें कृषि-सुधार, पृष्ठ ५३।
३—बलजीत सिंह : वही, पृष्ठ ६७-६८।
४—दुर्भिक्ष जाँच कमीशन, १९४५, अंतिम रिपोर्ट, पृष्ठ २५८।

कभी-कभी खराव और अच्छी जमीनके समान वितरणके लिए भी वंटवारा कर लिया जाता है। दक्षिणमें एक एकड़का खेत प्रायः ८, ६ टुकड़ोंमें बाँट लिया जाता है और एकाध तो ऐसा भी उदाहरण मिला है जहाँ १ एकड़का सोलहवां भाग ५ भाइयोंमें बाँट लिया गया था। सभी भाई क्रमसे उसमेंसे एक भागपर खेती करते थे![1]

श्रीमती वेरा आन्स्टीने वंटवारेकी चर्चा करते हुए लिखा है कि धनके समान और उचित्त वितरणकी दृष्टिसे वंटवारा वुरी चीज नहीं, किन्तु वह उस समय अभिशाप सिद्ध होने लगता है जब जन-संख्या इतनी वढ़ जाती है कि लोगोंको उससे पेट भरनेको पर्याप्त आय नहीं हो पाती।[2]

इतनी छोटी जमीनमें भारतका गरीब किसान क्या खोदे खाये?

खेतीमें घाटा

उसे खेतीमें स्पष्ट हानि है, जिसका प्रमाण उसकी साकार दरिद्रता है। अर्थशास्त्रियोंके निष्कर्ष भी हमें इसी निर्णयपर पहुँचाते हैं। युक्त प्रान्तमें प्रति एकड़ कृषिका लाभ हानिका विवरण इस प्रकार है—[3]

क्षेत्रफल	किसान	प्रतिशत	व्यय	आय	शुद्ध आय
३ एकड़से कम	१४	११.५	४०~)	४०)	—~)
३ से ५ एकड़	२०	१६.४	३५॥।≡)	३६॥।)	+॥।~)
५ से १० एकड़	४७	३८.५	३३।~)	३५॥।)	+२।≡)
१० से २० एकड़	३२	२६.५	३२)	३७=)	+५=)
२० एकड़से ऊपर	९	७.१	३२।~)	४०।~)	+८)
सभी वर्ग	१२२	१००.०	३४≡)	३७=)	+२॥।≡)

१—कीटिंग : रूरल इकोनामिक्स आव दि बोम्बे डेकेन, पृष्ठ ७०।

२—वेरा आन्स्टी : इकोनामिक डेवलपमेंट आव इंडिया, १९२९, पृष्ठ १००।

३—वलजीत सिंह : विदर एग्रीकल्चर इन इंडिया, पृष्ठ ७४।

वाई तालुकामें श्री डी० आर० गाडगिल और श्री वी० आर० गाडगिलने ३९ गाँवोंकी जो जाँचकी थी उससे भी स्पष्ट है कि खेतीके व्यवसायमें स्पष्ट हानि है।[1] किसानोंकी ऋणग्रस्तताका बड़ा कारण यही है।

परती जमीन

भारतमें केवल २१ करोड़ ४० लाख एकड़ भूमिमें खेती होती है किन्तु बहुत-सी भूमि ऐसी है जिसका खेतीके लिए उपयोग किया जा सकता है। डाक्टर मेकगेलन गोरीके कथनानुसार ब्रिटिश भारतमें १४ करोड़ एकड़ और देशी रियासतोंमें ३ करोड़ भूमि ऐसी है जिसे काममें लानेसे खेतीकी भूमिमें ५० प्रतिशत वृद्धि हो सकती है। परती भूमि बहुत है—

प्रान्त	परती भूमि	प्रान्त	परती भूमि
अजमेर मेरवाड़ा	२,५० हजार एकड़	दिल्ली	६० हजार एकड़
आसाम	१,७६,८० ,, ,,	मद्रास	१,१३,१० ,, ,,
बंगाल	६०,३० ,, ,,	सीमा प्रान्त	२८,१० ,, ,,
बहार	६४,३० ,, ,,	उड़ीसा	३२,७० ,, ,,
बम्बई	६,३० ,, ,,	पंजाब	१,२६,६० ,, ,,
मध्यप्रान्त, बरार	१४०,८ ,, ,,	सिंध	१,११,५० ,, ,,
कुर्ग	१० ,, ,,	युक्त प्रान्त	६८,५० ,, ,,
			१७८,५०,००० एकड़

किसान यदि इस भूमिका खेतीके लिए उपयोग कर सके तो निश्चयही उसकी आयमें कुछ वृद्धि हो सकती है। पर किसानके वशकी बात नहीं है कि वह बिना सरकारी सहायताके इस भूमिको कृषिके योग्य बना सके। किसानोंके ऋण और छोटे-छोटे खेतोंकी विषम समस्या सुलझानेका एकमात्र उत्तम उपाय चकबन्दी है।

❀

1 — गाडगिल द्वय : सर्वे आव फार्म बिजिनेस इन वाई तालुका, पृष्ठ ८६।

कृषिके साधन

भारतीय किसानके खेतीके साधन ही कितने हैं ! हल और फाल, खुरपी और कुदाली, चरस और रहट, बैल या भैंसा, पाटा या पटेला, चोंगा या नाई और बहुत हुआ तो एक बैलगाड़ी। फावड़ा, गँड़ासा, हँसिया, टोकरी या पैला और समझ लीजिये। साधारणत: ४०) से लेकर ६५) तकमें किसानके सभी औजार आजाते हैं। उसके ये औजार बहुत हलके, सीधेसादे, सस्ते होते हैं तथा इनको मरम्मतमें भी विशेष अड़चन नहीं होती।[1]

हल

देशके सभी भागोंमें हल एकसे नहीं होते। कहींपर भारी हल होते हैं, कहीं हलके। साधारणत: सबकी बनावट एकसी होती है। देशी हलोंमें गहरी जुताईकी सुविधा नहीं रहती। वे ऊपरी सतहकी ८, ९ इंच जमीन पलटकर रह जाते हैं। युक्तप्रान्तमें प्रचलित मेस्टन हलने इस दिशामें अच्छी प्रगति की है। वह डेढ़ गुनी गहरी जुताई करनेमें समर्थ है। मूल्य भी उसका बहुत अधिक नहीं। पंजाबमें भी मेस्टन हलका अधिक प्रचार है। वहाँ राजा हल भी चलता है जो अधिक वजनी और अधिक मजबूत है तथा गहरी जुताई करनेमें सहायक होता है। आजकल तो ट्रेक्टरकी बड़ी सिफारिश की जा रही है। पर वह भारत जैसे छोटे-छोटे खेतोंवाले देशके लिए उपयोगी सिद्ध नहीं हो सकता। सारे भारतमें अभी केवल ३२० लाख सुधरे हल चलते हैं। कृषि विभागके सुधरे हुए हलोंकी संख्या केवल सात-आठ हजार है।

पंजाबमें लायलपुर हो और बार हेरोसे निराई, गोड़ाईमें सहायता

ली जाती है। लायलपुर हो वर्षाके दिनोंमें विशेषतः ज्वार बाजरेके

हो और हेरो

खेतोंमें और बार हेरो गेहूँ, कपास और जौके खेतोंमें उपयोगी सिद्ध हुआ है। जहाँ दिनभरमें ८ स्त्रियाँ मुश्किलसे १ बीघा खेत निरा पाती हैं, वहाँ लायलपुर होके द्वारा एक आदमी १ जोड़ी बैलसे ४,५ बीघे निरा डालता है। कटाईके लिए खेतोंमें हँसिया ही किसानोंका प्रधान औजार है। माना उसमें अधिक शक्तिका व्यय होता है, पर खर्चीली कटाईकी मशीन खरीदना भारतीय किसानके बूतेके बाहर है। पंजाबमें सहकारी संस्थाओंको ऐसी मशीनोंका प्रचार करनेमें सफलता मिली है।

प्रान्तीय सरकारें गेहाईके लिए यंत्र रखती हैं। इससे बैलोंके परिश्रमकी बचत होती है पर मूल्य अधिक होनेसे किसान इनका अधिक लाभ नहीं उठा पाते। चारा काटनेकी, गन्ना पेरने की तथा ऐसी ही कुछ और सस्ती मशीनोंका व्यवहार धीरे-धीरे किसानोंमें बढ़ रहा है।

बैल किसानका बड़ा सहारा है। देशका दुर्भाग्य है कि हमारे यहाँ किसानोंके पास जो बैल हैं, वे दुर्बल तथा भार-वहन

पशुधन

करनेमें असमर्थ है। जिनके पास बैल नहीं हैं वे भैंसोंसे हल जोतनेका काम चलाते हैं। अनेक किसानोंके पास तो भैंसोंकी भी जोड़ी नहीं रहती! बैलों, भैंसों तथा अन्य पशुओंके सरकारी आंकड़े इस प्रकार हैं—

सन्	कुल पशु	सन्	कुल पशु
१९२५	१,४४,७०५ हजार	१९३५	१,५३,७४५ हजार
१९३०	१,४८,३६१ ,,	१९४०	१,४७,४२४ ,,

इनमें बैलों और भैंसोंकी संख्या क्रमशः लगभग ६ करोड़ और ६२ लाख है। एक जोड़ी बैल या भैंसेसे लगभग १२ एकड़ जमीनपर खेती होती है। हमारे यहाँ पशु कम नहीं, किन्तु चारेकी समुचित व्यवस्था न होने और उनकी नस्लकी उत्तमताकी ओर विशेष

ध्यान न देनेसे उनका दिन-दिन ह्रास होता चलता है। यदि प्रयत्न किया जाय तो हमारे यहाँ भी अच्छे बैल तैयार होनेमें कोई अड़चन नहीं है। इस गये गुजरे जमानेमें भी संयुक्त प्रान्तके कोसी और पवार जातिके बैल, पंजाबके हरियाना और शहीवाल, सिंधके थरपरकर और सिंध नामके बैल, मध्य भारतके मालवी, मध्य प्रदेशके गावलाव, गुजरातके ककरेज, काठियावाड़के गिर, मद्रासके अंगोल और कंगयाल अपनी उत्तमताके लिए प्रसिद्ध हैं।

संख्याकी दृष्टिसे भारतमें पशु बहुत हैं, पर उपयोगिताकी दृष्टिसे उनका मूल्य बहुत कम है। हमारे यहाँ विश्वके २८.५ प्रतिशत पशु हैं किन्तु दूधकी दृष्टिसे संसारका केवल १२ प्रतिशत दूध हमारे यहाँ होता है। हम २० करोड़ पशुओंसे जितना दूध निकालते हैं, जर्मनी केवल २ करोड़ पशुओंसे ही उतना दूध निकाल लेता है। कारण, एक तो हमारे यहाँ ठाँठ पशुओंकी संख्या ३॥ करोड़ है। दूसरे, जो दुधार पशु हैं भी, वे पर्याप्त चारा न मिलनेसे बहुत कम दूध देते हैं। बहुतसे पशु तो हमारे यहाँ केवल धार्मिक दृष्टिसे पाले जाते हैं। पशुओंके सुधारके लिए चारेकी समुचित व्यवस्था, उनके रोगोंकी चिकित्सा और नस्ल सुधारनेकी चेष्टा जबतक नहीं होगी तबतक न तो किसानकी दुर्दशाका अन्त सम्भव है, न कृषि तथा दूधकी उपजमें ही कोई वृद्धि होनेकी सम्भावना है। संतोषकी बात है कि हमारी राष्ट्रीय सरकारका ध्यान इस ओर गया है।[1]

चारेकी समस्या

पशुओंकी संख्या हमारे यहाँ इतनी अधिक है कि उनके भोजनकी पर्याप्त व्यवस्था नहीं हो पाती। जन-संख्याकी वृद्धिके साथ चरागाह कम होते चलते हैं। १९२४–२५ की कृषि-जाँच समितिके अनुसार भारतमें १०० एकड़ खेतीकी जमीनके पीछे २१ बैल, १७ गाय, १६ अन्य पशु, ३ भैंसे, ६ भैंस,

१—छठी अखिल भारतीय पशु प्रदर्शनीमें खाद्य-मंत्री डाक्टर राजेन्द्र प्रसादका उद्घाटन भाषण।

५ पड़वे इस तरह कुल ६८ पशुओंका पोषण होता है; जबकि हालैंडमें इतनी ही भूमिके पीछे १८ और मिस्रमें २५ पशुओंका पालन होता है! १६३९ में कृषि विभागके पशुपालन विभागने गोचर भूमि बढ़ानेकी आवश्यकतापर बड़ा जोर दिया था।

सन् १६०१ में चारेकी फसल २६ लाख एकड़ भूमिमें होती थी। १६३५ में वह बढ़कर १०२ लाख एकड़ भूमिमें होने लगी और १६४१ में १०५ लाख एकड़में, किन्तु कुल खेतीकी भूमिका यह केवल ५ प्रतिशत है। इन आँकड़ोंसे यह न समझ लेना चाहिये कि चारे-की फसल ४० सालमें बहुत बढ़ गयी। पशुओंकी संख्या देखते हुए चारा सर्वथा अपर्याप्त है। चारा बढ़ानेकी भरपूर चेष्टा की जानी चाहिये।'[२]

किसानको जब स्वयं पेटभर खानेको नहीं मिलता तब वह अपने पशुओंको कहाँसे अच्छा चारा दाना दे? गोचरभूमि बढ़ाने तथा किसानको अच्छा चारा जमा करने, साइलो (चारा जमा करनेकी खत्तियां) बनाने, ठीक समयपर घास काटकर उसका संग्रह करनेकी शिक्षा देनेकी पूरी आवश्यकता है। उसे आस्ट्रेलियन चरी, चीनी लुसरीन, फरांसीसी और स्काटलैंडकी जई, और मिस्रकी बरसीम घास उगानेके लिए प्रोत्साहित करना चाहिये। कृषि-विभाग इधर कुछ दिनोंसे बरसीन, नेपियर, गुनी घास, सुडान घास आदिकी पैदावार बढ़ानेकी ओर ध्यान दे रहा है, पर अभीतक उसका प्रयत्न नगण्य है।

खेतीमें खादका महत्त्व किसीसे छिपा नहीं है। बिना खादके खेती कैसी? पर भारतमें प्रायः बिना खादके ही खेती होती है। गोबर जैसी

खाद

बहुमूल्य खादका हमारे यहाँ जैसा दुरुपयोग होता है विश्वके और किसी भागमें वैसा नहीं होता। गोबरकी ४८०० लाख टन खादमेंसे अधिकांश जल जाती या नष्ट हो जाती है। लगभग आठ महीनेका गोबर उपले बनाकर जला

२—दुर्भिक्ष जांच कमीशन, १६४५, अंतिम रिपोर्ट, पृष्ठ १८२।

दिया जाता है। वर्षाकालका गोबर गाँवके भीतर या बाहर अरक्षित अवस्थामें फेंक दिया जाता है। वह खेतमें पहुँचता है, पर तब जब खेतोंके लिए आवश्यक कितने ही तत्त्व नष्ट हो चुकते हैं। अतः उससे पूरा लाभ हो ही नहीं पाता। किसानोंको यदि इस खादकी उपयोगिता भली भाँति समझा दी जाय, ईंधनके लिए लकड़ी आदिकी व्यवस्था कर दी जाय, वे उचित रीतिसे इस खादको तैयारकर वर्षासे पूर्व खेतोंमें पहुँचाकर भली भाँति मिट्टीमें उसे मिला लें तो खेतीकी उपजमें करोड़ों मनकी सहज ही वृद्धि हो जाय।

मनुष्यकी विष्ठा गोबरसे भी अधिक गुणकारी खाद है। इस खादका यदि उचित उपयोग किया जाय, वह जमीनपर खुले रूपमें न पड़ी रहे और उचित रीतिसे खेतोंमें फैला दी जाय तो उससे उपजमें पर्याप्त वृद्धि हो सकती है। ये आंकड़े उसका प्रमाण हैं—

	धान	कपास	ज्वार
बिना खाद	६१३ पौण्ड[1]	३०० पौण्ड	४२० पौण्ड
गोबरकी खाद	११५२ ,,	४०० ,,	४८५ ,,
विष्ठाकी खाद	१२८३ ,,	४४८ ,,	५४० ,,

विष्ठाकी खादका प्रयोग करनेमें किसानको आपत्ति है। उसकी उपयोगिता देखते हुए उसे इसके लिए समझाना आवश्यक है। पशुओंके मूत्रसे भी खाद तैयार की जा सकती है। गोबर, कूड़े-कचरेके अतिरिक्त खली, हड्डियोंका चूरा, मछली आदिकी खाद भी बड़ी लाभदायक सिद्ध हुई है। खेदकी बात है कि लगभग २० प्रतिशत खली तिलहनके साथ विदेश भेज दी जाती है। लगभग १ करोड़ रुपयेकी हड्डियाँ भी विदेश चली जाती हैं। तब भारतमें इतनी कम उपज हो तो आश्चर्य क्या ?

१—पौण्ड वजनमें लगभग आधासेर होता है।

वैज्ञानिक लोग स्वाभाविक खादके अभावमें कृत्रिम खादका उपयोग करनेकी सलाह देते हैं। ऐसी खादमें 'सलफेट आव अमोनियाँ' प्रमुख है। युद्धके पहले एक लाख टन यह खाद विदेशसे आती थी। देशमें भी यह २० हजार टन तैयार की जाती थी। विशेषज्ञोंका कहना है कि सिंचाईवाले प्रदेशोंमें गन्ना, आलू, नाग, चावल, गेहूँ आदिकी अधिक उपजके लिए ३० लाख टन ऐसी खादकी आवश्यकता है।

बीज

विदेशोंमें बीजकी उत्तमतापर बड़ा ध्यान दिया जाता है। खड़ी फसलमेंसे अच्छे दानेदार पौधे अलग छाँटकर रख लिये जाते हैं। पर भारतीय किसान तो खातेपीते जो बच जाता है वही अन्न खेतमें बो देता है अथवा साहूकारके यहाँसे ऐन वक्तपर सड़ा, गला, घुना और खराब बीज लाकर बो देता है। साहूकार भला क्यों पर्वाह करे कि किसानको अच्छा बीज मिले ?

खराब बीजके कारण फसल खराब होती है। खेतोंमें अच्छा बीज पड़े तो फसलमें ५ से १० प्रतिशत वृद्धि तो निश्चित-सी है।[1] क्लार्कके मतानुसार तो उससे फसलमें ३० प्रतिशततक वृद्धि हो सकती है।[2] अभीतक केवल दो करोड़ एकड़ भूमिमें सुधरे और अच्छे सरकारी बीजका प्रयोग होता है।

उत्तम खाद और उत्तम तरीकोंसे खेती करने, उत्तम बीजका प्रयोग करने तथा खेतोंमें बाँध बाँधनेसे उपजमें प्रतिशत कितनी वृद्धि हो सकती है, यह समझनेके लिए कीटिंग साहबके इन आँकड़ोंसे सहायता मिल सकती है[3]---

---

१—दुर्भिक्ष जाँच कमीशन, १९४५, अन्तिम रिपोर्ट, पृष्ठ १५१।

२—मलजीत सिंह : बिटर एग्रीकल्चर इन इंडिया, पृष्ठ ६५।

३—कीटिंग : एग्रिकल्चरल प्रोग्रेस इन वेस्टर्न इंडिया।

उपाय	फ्रांस	जर्मनी	सूरत	जलगाँव	पूना	धारवाड़
उत्तम और अधिक खाद	७०	५०	३०	३०	३०	३०
नये तरीके	२०	२५	२०	२५	३०	३५
उत्तम बीज	२०	१५	१०	१०	१०	१०
बाँध बाँधना	—	—	—	१५	१५	२०
	११०	९०	६०	८०	८५	९५

अंग्रेजोंकी कृपासे आज किसानके पास नाम-मात्रको भी पूंजी नहीं रह गयी है। बीज लेने, पशुओंको चारा खरीदने, मजदूरको मजदूरी देने और फसल खराब होनेपर अपना पेट भरनेके लिए उसे महाजनका द्वार खटखटाना ही पड़ता है।

पूँजी

अपर्याप्त भूमि, साधारण औजार, दुर्बल पशु, अपर्याप्त खाद, खराब बीज, अनिश्चित वृष्टि, सिन्चाईकी अपर्याप्त व्यवस्था तथा अपर्याप्त पूंजी द्वारा भारतीय किसानको लाभ हो तो कैसे? ग्रामोद्योग ही उसका सहारा हो सकते हैं। पशुपालन, घी-दूधका व्यवसाय, मधुमक्खी-पालन, चटाई बुनना आदि उद्योग तो वह करता ही है, उसका सबसे प्रबल आधार है—चरखा। महात्मा गांधीकी प्रेरणासे इस प्राचीन उद्योगका पुनरुद्धार हो रहा है और इसके कारण सात लाख ग्रामोंके असंख्य कुटीरोंमें रोते चेहरोंपर आशाकी हलकी मुसकराहट नाच उठी है।

ग्रामोद्योग

सिंचाईकी व्यवस्था

भारतकी ९० प्रतिशत जनता कृषिपर निर्भर करती है, पर ब्रिटिश सरकार तो सारे काम ब्रिटिश पूंजीपतियों और गोरे मजदूरोंके हितोंको ध्यान रखकर करती थी। तभी तो नहरोंकी अपेक्षा रेलोंको अधिक महत्त्व दिया गया।

सरकारी नीति

१८८० के दुर्भिक्ष कमीशनने रक्षात्मक नहरें खोलनेका सुझाव रखा था पर १९०० तक इस दिशामें बहुत थोड़ी प्रगति हुई। १९०१–३के सिंचाई कमीशनकी सिफारिशोंपर कुछ ध्यान दिया गया। उसके बाद नहरोंका काम कुछ तेजीसे हुआ। १९१९ से सिंचाईका विभाग प्रान्तीय सरकारोंके जिम्मे कर दिया गया। तबसे अनेक नयी नहरें निकलीं हैं।

अनिश्चित वृष्टि और उसके असमान वितरणके कारण सिंचाईकी समस्या अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। कृषिका भार बढ़ते जानेसे इस ओर ध्यान देना और अधिक आवश्यक हो गया है। पर अभी तक जोती जानेवाली भूमिका केवल २२ प्रतिशत भाग ही ऐसा है जहांपर सिंचाईकी व्यवस्था है।

सिंचाईका महत्त्व

सिंचाईका महत्त्व इसीसे प्रकट है कि युक्त प्रान्तमें सिंचाईवाले प्रदेशोंमें जहां गेहूं, चावल, जौ प्रति एकड़ १०५० पौण्ड (वजन) से अधिक होता है, वहां विना सिंचाईवाले क्षेत्रोंमें प्रति एकड़ मुश्किलसे सात आठ सौ पौंड होता है। कपास और चनेकी फसलमें तो दूनेसे भी अधिकका अन्तर पड़ जाता है[1]।

सिंचाईसे मरुभूमि भी सरसब्ज बनायी जा सकती है। पंजाबका उदाहरण प्रत्यक्ष है। डालिंग साहबके शब्दोंमें पंजाबकी सुन्दर नहरी बस्तियोंने पंजाबकी समृद्धिका ऐसा भारी द्वार खोल दिया है जिसकी

१—बलजीतसिंह : विदर एग्रीकल्चर इन इंडिया, पृष्ठ ५६।

कभी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। सिंचाईकी व्यवस्था होनेसे फसल तो बढ़ती ही है, दुर्भिक्ष और अन्नाभावका संकट भी जाता रहता है। जनताके लाभके साथ सरकारकी भी आयमें वृद्धि होती है। इसके कारण रेलोंको मुनाफा होता है और कितने ही उद्योग-धंधोंको पनपनेका अवसर मिलता है।

नहरोंके प्रकार

हमारे यहां उत्पादक और रक्षात्मक—दो प्रकारकी नहरें हैं। जिन नहरोंसे व्यवस्था-व्यय और पूंजीका व्याज निकालनेके उपरान्त कुछ लाभ भी हो जाय वे नहरें उत्पादक हैं और जिनसे इतनी आय न हो सके वे रक्षात्मक। ऐसी नहरें मुख्यतः दुर्भिक्ष-निवारणके लिए निकाली जाती हैं। सरकारका ध्यान रक्षात्मक नहरोंकी ओर कम, उत्पादक नहरोंकी ओर अधिक रहा है। वे कमाऊ पूत जो ठहरीं! इसीका फल है कि देश बराबर दुर्भिक्षोंका अखाड़ा बनता रहा है।

नहरोंकी प्रगति

देशकी सिंचाईकी प्रगतिका इन आंकड़ोंसे अनुमान किया जा सकता है—

१८७८–७६	१०५ लाख एकड़	१६३७-३८	३२४ लाख एकड़
१६००–०१	१९२ ,, ,,	१९३८–३६	३२६ ,, ,,
१९२१–२२	२५६ ,, ,,	१६४०–४१	५५७ ,, ,,

सन् १६४०–४१ में ब्रिटिश भारतमें प्रान्तवार इतने हज़ार एकड़ भूमि सिंचती थी—

प्रान्त	खेतीकी भूमि	सरकारी नहरें	गैर-सरकारी नहरें	कुएँ	तालाव	अन्य	कुल
अजमेर	४०३	—	—	१०३	४२	.१	१४५
आसाम	६७८९	.२	५६२	—	१	४०२	६६५
बंगाल	२४७१५	२४२	२६३	४४	८१७	४३३	१७६८

विहार	१७६२४	७३०	९१६	५५५	१४१०	१६३२	५२४३
वंवई	२८७१३	२४५	६७	६६४	११२	२०	११३८
मध्यप्रान्त	२४५४६	—	१५४७	१६५	—	७५	१७८७
कुर्ग	१५२	३	—	—	१	—	४
दिल्ली	२०५	४०	—	३४	२	—	७६
मद्रास	३१६७६	३६२८	१४३	१४४६	३३६५	३०८	९२२१
सीमाप्रांत	२३५७	४२७	४०५	७६	२	६८	९८१
उड़ीसा	६१०१	३१४	५४	६	३००	७२८	१४०५
पंजाव	२८१७१	११५६५	४७५	४६८२	४६	१३०	१६८६८
सिंध	५३७०	४०९२	१०	१६	—	३७२	४४९२
संयुक्तप्रांत	३६५४०	३७७४	३०	५६३६	१४	१८८०	११६३४
	२१३९६५	२५३६०	४४७२	१३७७५	६१४४	६०४९	५५७८६

स्पष्ट है कि अभी देशकी केवल २२ प्रतिशत भूमि ही सिंच पा रही है। अभीतक सिन्धमें ८४, पंजाबमें ६०, युक्तप्रांत, बिहार और मद्रासमें ३३, आसाममें १८, बंगाल, मध्य-प्रान्त और बरारमें ७ और बम्बईमें केवल ४ प्रतिशत भूमिकी सिंचाईकी व्यवस्था हो पायी है। तभी तो अधिकतर कृषि खाद्यान्नोंमें ही सीमित रही हैं। लाभदायक फसलोंकी ओर बहुत कम ध्यान जा पाया है[1]।

प्रान्तोंकी स्थिति

इस समय देशमें आधेसे अधिक सिंचाई नहरोंसे होती है। ये नहरें लगभग २० हजार मीलमें फैली हुई हैं और ५४ हजार मीलमें उनकी शाखा-प्रशाखाएँ फैली हैं।

सिंचाईके साधनोंकी दृष्टिसे पंजाब सबसे आगे है। यहाँ नदियाँ जितनी अधिक हैं, वर्षा उतनी ही अपर्याप्त है। झेलम और सतलजके

१—बलजीत सिंह : विदर एग्रीकल्चर इन इंडिया, पृष्ठ ५८।

मध्यवर्ती प्रदेशमें सालमें १० इंचसे भी कम पानी बरसता है। नहरें खुदनेसे पहले पंजावमें बहुत कम खेती होती थी। ३३ करोड़ रुपया लगाकर सतलज घाटीकी योजना कार्यान्वित हुई।

सिंधकी नहरोंके आसपास सुंदर उपनिवेश बस गये हैं। सिंधु नदके अतिरिक्त और सभी नदियाँ नहरोंके द्वारा ऐसी गूंथ दी गयी हैं कि उनके जलका अधिकतम उपयोग हो सके। पश्चिमी यमुना नहर रोहतक और हिसार जिलोंको और पटियाला तथा झींद रियासतोंको, सरहिन्द नहर सतलजसे पानी लेकर लुधियाना फीरोजपुर, हिसार और नाभाको पानी देती है। ऊपरी बारी द्वाब नहर रावीसे निकलकर गुरुदासपुर, अमृतसर और लाहौरको पानी देती है। निचली चिनाव नहर सबसे बड़ी नहर है। यह चिनावसे पानी लेकर लायलपुरको हराभरा बनाती है। निचली झेलम नहर उत्तर पश्चिमी पंजावको जल देती है। सतलज घाटी योजनासे पंजावका लगभग चौथाई प्रदेश सिंचता है। सतलजमें फीरोजपुर, सुलेमकी, इसलाम और पंचनद इन चार स्थानोंमें बाँध बनाये गये हैं और नदीके दोनों ओर एक दर्जन नहरें निकाली गयी हैं। पंजावकी नहरोंके कारण लाखों एकड़ बंजर भूमि हरीभरी और उपजाऊ बन गयी है। गेहूँ और कपासके अतिरिक्त चावल तथा अन्य फसलें भी खूब होने लगी हैं।

सिंध

सक्खरमें बने लायड बाँधकी विश्वके सबसे बड़े बाँधोंमें गणना है। इसका फाँट लगभग एक मील है और यह सन् १९३२ में २४ करोड़ रुपयेकी लागतसे तैयार किया गया है। इससे ६० लाख एकड़ भूमिकी सिंचाई होनेका अनुमान है। इसमेंसे सात भारी भारी नहरें निकाली गयी हैं। रोहरी नहर सहज ही इतनी विशाल है कि टेम्स नदी बाढ़ आनेपर भी उसका मुकाबला न कर सकेगी। सिंधकी जो नहरें केवल बाढ़ आनेपर पानी देती थीं वे अब साल भर पानी देने लगी हैं। यहाँकी फुलेली नहर, पिंडयारी नहर, रेगिस्तानी नहर प्रसिद्ध हैं।

संयुक्त प्रान्त

संयुक्त प्रान्तमें ऊपरी गंगा नहर, निचली गंगा नहर, पूर्वी यमुना नहर, आगरा नहर, शारदा नहर प्रख्यात हैं। इस प्रान्तमें अधिकतर सिचाई कुओंसे ही होती है। केवल एक तिहाई जमीन नहरोंसे सींची जाती है। जिस साल वर्षा कम होती है उस साल नहरोंसे सिचाईकी मात्रा बढ़ जाती है। नहरोंसे अधिक पानी लेलेनेके कारण पंजाबकी भाँति युक्त प्रान्तमें भी रेहकी समस्या दिनदिन विकट होती जाती है।

मद्रास

सिचाईकी दृष्टिसे पंजाबके बाद दूसरा स्थान मद्रासका है। यहाँ १९३४ में सिचाई और विद्युत्पादनके लिए साढ़े सात करोड़ रुपया खर्च करके कावेरी-मैसूर बाँध तैयार किया गया है। इससे ३० लाख एकड़ भूमि सिचनेका अनुमान है। इसके अतिरिक्त गोदावरी, कृष्णा, कावेरी, पेन्नार, पेरियर, जिकाकोल-की नहरें भी प्रसिद्ध हैं। पेरियरका सुंदर बाँध बड़ी कठिनाईसे प्रस्तुत हुआ है।

अन्य प्रान्त

अन्य प्रान्तोंमें मामूली सिचाई होती है। बम्बईका भंडारडारा बाँध (२७० फुट) भारतमें सबसे ऊँचा बाँध है। भाटगारका लायड बाँध भी अपनी विशालताके लिए प्रसिद्ध है। देशी रियासतोंमें हैदराबादका निजामसागर सवा चार करोड़की लागतसे सन् १९३३ में बनकर तैयार हुआ है। उससे लगभग ३ लाख एकड़ भूमि सिचनेका अनुमान है।

कुएँ

भारतमें २५ लाखसे ऊपर कुओंसे सिचाईका काम लिया जाता है। देशमें लगभग १३१ लाख एकड़ भूमि कुओंसे सिचती है। कुआ खोदना सरल भी है और उसमें अधिक लागत भी नहीं लगती। किसान स्वयं ही अपने लिए कुआँ खोद लेते हैं। कहीं कहीं सरकार भी इसके लिए तकावी देती है।

तालावोंसे अच्छी तरह सिंचाई हो सकती है। केवल मद्रासमें ३५

तालाव हजारसे अधिक तालावोंसे सिंचाई होती है। बंगाल और बिहारमें भी अधिक तालाव हैं। १९४३ के दुर्भिक्ष जांच कमीशनने इनके विस्तारकी सिफारिश की है।[१]

युक्त प्रान्तमें गंगाकी उपत्यकामें 'ट्यूववैल' सिचाई योजनाने अच्छी

पातालफोड़ कुएँ प्रगति की है। सन् १९३५ से ३७ के बीच १३०० पातालफोड़ कुएँ खोदे गये हैं जिनसे ७ लाख एकड़ भूमिकी सिंचाई वड़े मजेमें होती है।[२]

सरकार सिंचाईके लिए किसानोंसे आवपाशी लेती है। विभिन्न प्रान्तोंमें इसकी दर विभिन्न है। रवीकी फसलपर युक्तप्रान्तमें यदि ५)

आवपाशी आवपाशी ली जाती है तो गन्नेके लिए १०)। पंजावमें रवीपर ३।) से ५।) और गन्नेपर ७।।) से १२) प्रति एकड़के लगभग पड़ती है। उत्तरी गंगा दोआवमें फी एकड़ आवपाशीकी दर इस प्रकार है—[२]

फसल	पातालफोड़ कुओंसे	पक्के कुओंसे	नहरोंसे
रवी	४।।=)।	९।)।	५)
गन्ना	२३=)।।।	३६-)।।	१०)

सरकारको नहरोंमें लेशमात्र भी घाटा नहीं है। १९३८-३९ तक सिंचाईमें सरकारने १५२ करोड़ रुपया लगा रखा था। ११४ करोड़ रुपया उत्पादक नहरोंमें लगा था जिससे ८ करोड़ ६७ लाखकी आय हुई अर्थात् ७.६१ फीसदी। इसमें व्याज निकालनेपर ४ करोड़ १८ लाखका शुद्ध लाभ है। तव भी देशमें सिंचाईके कार्यकी ऐसी मन्थर प्रगति !

१—दुर्भिक्ष जाँच कमीशन, १९४५, अन्तिम भाग, पृष्ठ १३३।

२—बलजीत सिंह : विदर एग्रीकल्चर इन इंडिया, पृष्ठ ६२।

कृषिकी उत्पत्ति

हमारे देशमें आजकल लगभग २४ करोड़ एकड़ भूमिमें खेती होती है। जनसंख्याकी वृद्धि, खाद्य पदार्थोंकी कमी, दरिद्रता तथा खेतीके व्यवसायकी सुलभता के कारण कृषिके क्षेत्रमें कुछ न कुछ वृद्धि ही होती चलती है। निम्नलिखित आँकड़ोंसे इस बातका अनुमान किया जा सकता है कि इधर पिछले ४० वर्षसे भारतमें कितनी भूमिमें कितने हजार एकड़में कौन-सी फसल बोयी जाती रही है—

वस्तु	क्षेत्रफल	हजार		एकड़ोंमें
	१९०१–०२	१९३१–३२	१९३९–४०	१९४०–४१
अन्न				
चावल	७००७०	६८७४५	७०१०१	६८८४६
गेहूँ	१८६१०	२५२७९	२६१२८	२६४४६
जौ	६२२०	६४९५	६१०१	६३२८
ज्वार	२१८२०	२०९५७	२१६७७	२१२४९
बाजरा	११२००	१३९४२	१३३६२	१४०८५
रागी	३७५०	३८७१	३४०८	३५०७
मक्का	६२००	५८८८	५७६६	५७३०
चना	९७८०	१५६८७	११६९०	१२७०७
अन्य	२७३५०	२९७१५	२८८१७	२८२४७
	१७७०००	१९०५७९	१८७०५०	१८७१४८

गन्ना	२६००	२९९९	३६२९	४५६२
सागसब्जी, फल	८०३०	७१७२	६५७२	६७३६
कुल	१८७६३०	२००७५०	१९७४५१	१९८४४६
तिलहन				
अलसी	२२७०	२२१७	२४३८	२३२६
तिल	३७५०	२३८४	२१९८	२२१६
राई सरसों	२८८०	३५०३	३५३८	३६८५
अन्य	३०७०	६०१९	८१२०	८४७४
कुल तिलहन	११९७०	१४१२३	१६२९४	१६७०१
तन्तु				
कपास	१०३००	१४२५८	१३३४४	१४०८३
जूट	२२८०	१८४५	३११९	४२९६
अन्य	५६०	६८५	७७५	८३१
कुल तन्तु	१३१४०	१६७८८	१७२३८	१९२१०
अखाद्य पदार्थ				
नील	७९०	५३	३७	६६
अफीम	६१०	४२	७	६
कहवा	१२०	९२	९५	९७
चारा	४९०	७२०	७३८	७३९
तम्बाकू	९५०	१०५९	११८१	११२६
चारा	२९४०	९३८९	१०४६७	१०४६६
अन्य	१७१०	१५०६	१०६७	११२८
अखाद्य फसलें	३२७२०	४३७७२	४७१२९	४९५३८
बोयाहुआ क्षेत्र	२२०३५०	२४४५२२	२४४५७५	२४७९८४

मुख्य पदार्थोंकी उत्पत्तिके आँकड़े इस प्रकार हैं—

फसल	उत्पत्ति हजारोंमें	१९३०-३१	१९३४-३५	१९३९-४०
चावल	टन	२८७९९	२३२०९	२५७३४
गेहूँ	टन	९०२४	९४३४	१०७६७
कहवा	पौण्ड	३३६१४	४११७२	३४८२२
चाय	पौण्ड	३९४०८४	३९४४२९	४५२५९६
कपास	चार सौ पौण्डकी गाँठें	४००३	५८६७	४९०९
जूट	,,	७०७२	९६११	१३१७२
अलसी	टन	४१६	३८८	४६६
राई-सरसों	,,	१०२५	९५७	१११६
तिल	,,	४४६	४१३	४१५
मूंगफली	,,	२१५१	२११४	३१६५
रेंडी	,,	१४६	१२१	९७
नील	हण्डरवेट	१०	७	५
गुड़	टन	३९७५	५९३१	४६६१
रबड़	पौण्ड	११६७१	२७५५४	३१३९१

हमारे देश में ८०,८५ प्रतिशत भूमिमें अन्न पैदा किया जाता है। अखाद्य पदार्थ केवल १५,२० प्रतिशत भूमिमें बोये जाते हैं। ऐसी कोई फसल नहीं होती है जिसका उद्देश्य पशुओंके लिए चारा पैदा करना ही हो। अन्नकी फसलसे ही होनेवाले भूसे, चरी अथवा करवीसे पशु पाले जाते हैं।

आज हमारे देशमें साधारणतः ५३ प्रतिशत भूमिमें खेती होती है। नौ प्रतिशत भूमि प्रतिवर्ष जोतकर छोड़ दी जाती है। इस प्रकार केवल ४४ प्रतिशत भूमिमें खेती हो पाती है। जितनी भूमिमें खेती की जाती है उसमें आधेसे कुछ कम भूमि सिन्धु-गंगा उपत्यकामें है और शेष सारे भारतमें।

फसलोंकी दृष्टिसे दो-तिहाई भूमिमें चावल, गेहूँ, ज्वार, बाजरा, चना और रागी बोयी जाती है। तिलहन और कपासका भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। मोटे हिसाबसे २९% भूमिमें चावल, १०% में गेहूँ, १०% में ज्वार, ६% में चना, ६% में बाजरा, ७% में तिलहन और ६% में कपास बोयी जाती है। गन्ना १% भूमिमें बोया जाता है। ८०% भूमिमें खाद्य-पदार्थ उत्पन्न होते हैं और २०% में अन्य पदार्थ।

उत्पत्ति

चावल हमारे यहाँ सबसे महत्त्वपूर्ण खाद्य है। बंगालमें ८१% आसाममें ८०%, उड़ीसामें ७९%, बिहारमें ५३%, मद्रासमें ३१%, मध्य प्रान्तमें २४%, सिन्धमें २४%, युक्तप्रान्तमें २१%, बंबईमें ७% और पंजाबमें ४% भूमिमें चावलको खेती होती है। उपजकी दृष्टिसे भी बंगाल सबसे आगे है। सारे भारतकी उपजका लगभग ३३% बंगालमें, २०% मद्रासमें, ११% बिहारमें, ७% युक्तप्रान्तमें, ६% आसाममें, ६% मध्यप्रान्तमें, ५% उड़ीसामें और ४% बम्बईमें पैदा होता है।

चावल

चावलके लिए पानी अधिक चाहिये। अतः पानीकी अधिक सुविधावाले प्रदेशमें वह अधिकतासे उत्पन्न होता है। बंगालमें तो इसकी औस, अमान और बोरों, ये तीन फसलें होती हैं। यद्यपि इतनी अधिक भूमिमें चावल बोया जाता है तथापि खाद आदि न पड़नेसे इसकी उपज बहुत कम है और इसीलिए वह देशकी आवश्यकता भरको पूरा नहीं पड़ता। सालमें लगभग २४ लाख टनकी कमी पड़ती है। जापानमें जहाँ प्रति एकड़ २३५० पौण्ड चावल होता है भारतमें केवल ८३६ पौण्डका औसत पड़ता है। सन् १९३९में जापानमें ८० लाख एकड़में १२० लाख टन चावल पैदा हुआ जबकि भारतमें १९३८–३९में ७३० लाख एकड़में केवल २४० लाख टन। एक देशमें एक एकड़में डेढ़ टन और दूसरेमें टनका केवल एक तिहाई !

उपजकी दृष्टिसे चावलके बाद गेहूँका ही स्थान है। पंजाब और युक्तप्रान्तमें सिंधु-गंगाकी उपत्यकामें सबसे अधिक गेहूँ पैदा होता है। १९३९–४० में सारे भारतमें ३४० लाख एकड़ भूमिमें गेहूँ बोया गया था जिसमें २०० लाख एकड़ भूमि सिंधु-गंगा उपत्यकाकी ही थी। लगभग ६० प्रतिशत गेहूँ इसी क्षेत्रमें बोया जाता है। प्रान्तोंकी दृष्टिसे पंजाब, युक्तप्रान्त, मध्यप्रान्त और बरार, बम्बई, बिहार, तथा सिंधमें उत्तरोत्तर कम गेहूँ होता है। पंजाबके लायलपुर, मुलतान, अटक, फीरोजपुर और मांटगुमरी जिले गेहूँके लिए प्रख्यात हैं। पंजाबमें सबसे अधिक भूमिमें गेहूँ बोया जाता है और पैदा भी वहाँपर सारे देशसे अधिक होता है, फिर भी प्रति एकड़ उपजकी दृष्टिसे वह बहुत पिछड़ा हुआ है। पंजाबके जालंधर जिलेमें प्रति एकड़ अधिकतम उपज १२५० पौण्ड है जब कि युक्तप्रान्तके बुलन्द शहरमें १३०० पौण्ड है और सिंधके नवाबशाहमें १३७४ पौण्ड।

गेहूँ

विभिन्न देशोंकी प्रति एकड़ उपज इस प्रकार है—

जर्मनी	२७ बुशल	कनाडा	१६ बुशल
ब्रिटेन	२५ ,,	आस्ट्रेलिया	१४ ,,
फ्रांस	१७ ,,	अमेरिका	१४ ,,
इटली	१७ ,,	अर्जेंटाइन	१२ ,,
हंगरी	१७ ,,	भारत	१० ,,

पंजाबमें जहाँ १ करोड़ एकड़ भूमिमें गेहूँ होता है, वहाँ युक्तप्रान्तमें ८० लाख एकड़में, पर पंजाब और युक्तप्रान्तकी उपजमें अधिक अन्तर नहीं है। पंजाबमें ३० लाख टन अर्थात् सारे देशकी उपजका ३० प्रतिशत गेहूँ पैदा होता है जबकि युक्तप्रान्तमें २५ लाख टन, अर्थात् सारे देशकी उपजका एक चौथाई। इस प्रकार देशकी उपजका दो-तिहाई गेहूँ तो पंजाब और युक्तप्रान्तमें ही हो जाता है।

युक्तप्रान्तके गोरखपुर, मेरठ, वुलन्द शहर जिले गेहूँकी उपजके लिए प्रख्यात हैं।

खाद आदिकी कमी तथा दरिद्रताके कारण भारतमें प्रति एकड़ गेहूँकी उपज वहुत कम है, पश्चिमी युरोपमें भारतसे तिगुनी उपज होती है। युक्तप्रान्तके पश्चिमी जिलोंमें जहाँ अधिकतम उपज होती हैं, वहाँ छोटा नागपुरमें न्यूनतम।

उत्तर भारतमें जौ-चना गरीवोंका मुख्य भोजन है। सारे भारतकी उपजका-दो तिहाई जौ और आधा चना केवल युक्तप्रान्तमें पैदा होता है। जौ गेहूँसे अधिक पैदा होता है। युक्त प्रान्त और विहारमें यह अधिक पैदा होता है। इसका भूसा पशुओंके काम आता है। जहाँ गेहूँ नहीं होता वहाँ भी जौ-चनाकी अच्छी फसल हो जाती है।

जौ चना

ज्वार, वाजरा, रागी आदि अन्न निकृष्ट श्रेणीके अन्न माने जाते हैं। पर भारतमें सवसे अधिक पैदा होनेवाले अन्नोंमें इनकी ही गणना है। चावलके वाद इन्हींका स्थान है। दरिद्र भारतीयोंके जीवनके ये ही प्रमुख आधार हैं। वम्वई और मद्रास प्रेसिडेन्सीमें इनकी उपज सवसे अधिक होती है, वंगालमें सवसे कम। अनुपजाऊ और पथरीली भूमिमें भी इनके वीज विखेर देनेसे कुछ न कुछ उपज हो ही जाती है। पशुओंके लिए चारा भी हो जाता है। ज्वारकी चरी युक्त प्रान्त और पंजावमें चारेका काम देती है।

ज्वार वाजरा

मकई भी गरीवोंका भोजन है। इसकी ८० प्रतिशत उपज सिंधु और गंगाकी उपत्यकामें होती है। युक्तप्रान्त और पंजावमें इसकी अधिक उपज होती है। पहली वर्षाके साथ यह वोयी जाती है। वर्षा समाप्त होते ही काट ली जाती है।

मकई

सारे भारतमें दालका प्रचलन है। युक्तप्रान्त, पंजाब, बम्बई, मध्यप्रान्त और बंगालमें विशेष रूपसे दालें पैदा होती हैं। सब दालोंकी कुल वार्षिक उपज लगभग ७५ लाख टन है। मूंग उड़द आदि दालें मकईके साथ बोयी जाती हैं। ये भी जल्द ही काट ली जाती हैं। अरहर अवश्य देरमें पकती है और गेहूँके साथ काटी जाती है।

दालें

फल और शाक-सब्जीकी हमारे यहाँ बहुत कम उपज है। इनका उपयोग भी कम ही होता है। भारतीयोंकी दरिद्रताही इसका मूल कारण है। फलोंकी उत्पत्ति, बिक्री, यातायात आदिकी व्यवस्था दूषित होनेसे भारतीय उसमें कोई दिलचस्पी नहीं लेते हैं। भारतमें प्रति वर्ष लगभग ६० लाख टन शाक-सब्जी होती है। मिर्चमसालेका हमारे यहाँ अधिक प्रचलन है। काली और लाल मिर्च, अदरख, सुपाड़ी आदि दक्षिण भारतमें अधिकतासे होती है। यों इन मसालोंकी कुछ पैदावार सारे देशमें होती है।

फल और शाक

सारे विश्वमें जितनी भूमि गन्नेकी खेतीमें फँसी रहती है, उसकी आधी भारतमें है। यहाँ क्यूबासे तिगुने और जावासे सात गुने क्षेत्रमें गन्ना बोया जाता है। उत्पत्तिकी दृष्टिसे भी भारत सबसे आगे है। यहाँ पर क्यूबासे सवाई फिलीपाइनसे तिगुनी और जावा, हवाई अथवा ब्राजिलसे चौगुनी पैदावार होती है। इधर सरकारी प्रोत्साहनसे भी इसकी उपज कुछ बढ़ी है। सन् १९२९–३० में जहाँ केवल २५ लाख एकड़में गन्ना बोया गया था, वहाँ १९३६–३७ से उसका क्षेत्र बढ़कर ४० लाख एकड़ होगया और १९४०–४१ में ४५ लाख एकड़। पर विश्वके अन्य देशोंके मुकाबले भारतमें प्रति एकड़ गन्नेकी उपज बहुत कम है।

गन्ना

सिंधु, गंगा और उनकी शाखाओंसे सिंचित पंजाब, युक्तप्रान्त, और बिहार इन तीन प्रान्तोंमें कुल मिलाकर ८० प्रतिशत गन्ना होता है। ५४ प्रतिशत युक्तप्रान्तमें, १५ प्रतिशत पंजाबमें और १२ प्रतिशत बिहारमें होता है। बंगाल, मद्रास और बम्बईमें भी कुछ गन्ना होता है। गन्नेका अधिकतर उपयोग गुड़ बनानेके लिए होता है। थोड़ा-सा चीनी बनानेके काम भी आता है।

तिलहन

हमारे यहां लगभग ७ प्रतिशत भूमिमें अलसी, तिल, राई, सरसों, मूंगफली, नारियल, रेंडी, बिनौला, जीरा, अजवायन आदि तिलहनोंकी खेती होती है। इनमें मूंगफली, बिनौला, राई-सरसों प्रमुख हैं। मूंगफली और बिनौलेकी उत्पत्ति अन्य सब तिलहनोंकी कुल उपजके दूनेसे भी अधिक होती है। तिलहनके क्षेत्रमें उत्तरोत्तर वृद्धि होती चलती है। १८७८-७९ में जहां ५१ लाख एकड़ भूमिमें तिलहनकी फसल थी वहाँ १८९७-९८ में १२६ लाख और १९२६-२७ में १५० लाख एकड़ भूमिमें उसकी फसल होने लगी।

देशमें आजकल १६७ लाख एकड़में तिलहनकी खेती होती है। कुल उपज १९ लाख टनके लगभग है। आसाम, बंगाल, बिहार, युक्तप्रान्त, पंजाब और सिंधमें कुल मिलाकर जितने क्षेत्रमें तिलहनकी खेती होती है, उतने क्षेत्रमें केवल मद्रास प्रान्तमें होती है। मद्रासके बाद हैदराबाद, मध्यप्रान्त और बरार तथा बम्बईका स्थान है।

क्षेत्रकी दृष्टिसे मूंगफली सबसे महत्त्वपूर्ण है। चौथाईसे अधिक भूमिमें इसकी उपज होती है। उत्पत्ति, निर्यात और उपभोग सभी दृष्टियोंसे भारत इस विषयमें आगे है। सारे संसारमें जितनी भूमिमें मूंगफली बोयी जाती है उसकी एक तिहाई भारतमें समझनी चाहिये। निर्यातकी दृष्टिसे इसका मूल्य बढ़नेसे इसके उत्पादनपर विशेष प्रभाव पड़ा है। शताब्दीके आरम्भमें जहां केवल ३ लाख एकड़ भूमिमें मूंगफली बोयी जाती थी, वहां आज ९० लाख एकड़ भूमिमें उसकी खेती

होती है। वनस्पति 'तेल' बनाम 'घी' भी इसकी उपज बढ़ानेका एक कारण है। दक्षिण भारतमें मद्रास, बम्बई और हैदराबादमें इसकी अधिक पैदावार होती है। उसके बाद युक्तप्रान्तका स्थान है। मूंगफली तेलकी ही दृष्टिसे नहीं, खादकी भी दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण है। इससे भूमिकी उर्वरा-शक्तिमें ८०,९० प्रतिशततककी वृद्धि होनेके उदाहरण मिले हैं। मैसूरमें मूंगफलीकी फसलके बाद रागी बोनेपर ८८ प्रतिशत अधिक उपज हुई है।

दक्षिण भारतमें मूंगफलीके अतिरिक्त नारियल और रेंडीकी अधिक उत्पत्ति होती है। उत्तर भारतमें राई, सरसों और अलसी अधिक पैदा होती है। पंजाब, युक्तप्रान्त, बंगाल और बिहारमें सिंधु-गंगाकी उपत्यकामें राई-सरसों खूब होती है। तिलहनके कारण अब देशमें साबुन, तेल, वार्निश आदिके उद्योग क्रमशः पनपने लगे हैं। पर अभीतक उसका निर्यात ही अधिक होता रहा है, जिससे देशका दोहरा नुकसान रहा है। एक तो हम कच्चा माल देकर पक्का माल लेते रहते हैं; दूसरे, हमें खली जैसी बहुमूल्य खादसे वंचित होना पड़ता है।

संसारमें क्षेत्रकी दृष्टिसे कपासकी खेतीमें अमेरिकाके बाद भारतका ही स्थान है। अमेरिकाकी एक तिहाई कपास भारतमें होती है।

कपास

कपासकी फसल भारतके किसानके लिए कमाऊ फसल है। देशके निर्यातमें कपास लगभग २० प्रतिशत रहती है। सारे देशकी उपजकी २६ प्रतिशत कपास बम्बईमें, २३ प्रतिशत पंजाबमें, १४ प्रतिशत मध्यप्रान्त और बरारमें, १० प्रतिशत हैदराबादमें, ८ प्रतिशत मद्रासमें और शेष १६ प्रतिशत भारतके अन्य प्रान्तोंमें होती है। बम्बई, पंजाब, मध्यप्रान्त और बरार तथा हैदराबाद राज्यमें कपास बहुतायतसे होती है। कुल उपजकी तीन-चौथाई इसी क्षेत्रमें हो जाती है। दक्षिणी पठारके भड़ोच, खानदेश और बरारमें कपास खूब होती है। वहांकी काली मिट्टी इसके अनुकूल

पड़ती है। सिंध और पंजाबके नहरी क्षेत्रोंमें भी कपास होती है।

भारतीय कपास मिस्र और अमेरिकासे निचली श्रेणीकी होती है। साथ ही मिस्रमें जहां प्रति एकड़ ४०० पौण्ड और अमेरिकामें २२० पौंड से ऊपर होती है, वहां भारतमें मुश्किलसे ९० पौण्ड। सिंचाईका भी उपजपर बड़ा प्रभाव पड़ता है। मद्रास प्रेसिडेंसीमें जहां बिना-सिंचे प्रदेशमें प्रति एकड़ ७२ पौण्डकी उपजका औसत रहता है, वहाँ सिंचे हुए प्रदेशका औसत २५० पौण्ड है। दक्षिण पठारमें सिंचाईकी समुचित व्यवस्था नहीं है।

जूट

जूटकी खेतीमें भारतका एकाधिपत्य है। इसकी खेती गंगा और ब्रह्मपुत्रकी उपत्यकामें सीमित है। ९० प्रतिशत उपज बंगालमें केन्द्रित है। शेष आसाम, उड़ीसा, बिहारमें होती है। बंगालमें प्रति एकड़ १४० पौण्ड तकका औसत पाया गया है। लगभग ६० प्रतिशत जूट ब्रिटेन, जर्मनी, फ्रांस, इटली और अमेरिका आदि देशोंको जाती है। जूटका व्यापार अधिकतर विदेशोंसे है। अतः किसानोंको तो कम, बीचके व्यापारी और जूट-मिलोंके मालिकोंको इसका अधिक लाभ मिलता है।

नील

ईस्ट इंडिया कम्पनीने आरम्भमें नीलके व्यापारसे खूब लाभ उठाया, पर बादमें वही उसके नाशका कारण बनी। डाक्टर वाटने लिखा है कि गुजरातमें इसकी खूब पैदावार होती थी। कम्पनीके कुछ कर्मचारियोंने स्वयं नीलकी कोठियां कायम कीं और बंगालमें यह व्यापार खूब चमका। इसकी खेती भी खूब पनपी। यह उद्योग जबसे अंग्रेज व्यापारियोंके हाथमें गया तबसे नीलके किसानोंको कितना सताया गया है, यह बतानेकी आवश्यकता नहीं। ये लोग अपनी ही शर्तोंपर किसानोंको नीलकी

१—जी० वाटः पेमफ्लेट ओन इनडिगो, १८९० ।

खेतीके लिए विवश करते थे। किसान एकबार भी इन निलहे गोरोंसे पेशगी रुपया ले लेता था तो फिर बेचारेको विवश हो, घाटा उठा कर, नीलकी खेती करनी पड़ती थी[1]!

फिर भी नीलकी खेती बढ़ती पनपती रही। सन् १८९४-९५ के उपरांत इसकी खेतीका ह्रास होने लगा। जर्मनीके नकली रंगने इस व्यवसायकी कमर तोड़ दी[2]। आज इसकी खेती सर्वथा नगण्य है। मद्रास, युक्तप्रान्त, बिहार, उड़ीसा और बंगालमें आज भी थोड़ी मात्रामें इसकी खेती होती है। निम्नलिखित आंकड़ोंसे नीलकी खेतीकी स्थितिपर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है—

सन्	एकड़ भूमि	सन्	एकड़ भूमि
१८९४-९५	१७०५ हजार	१९१३-१४	१६९ हजार
१९०१-०२	७९२ ,,	१९३१-३२	५३ ,,
१९०६-०७	४४९ ,,	१९३९-४०	३७ ,,

स्पष्ट है कि विदेशी प्रतिद्वंद्विताने नीलकी खेती चौपट कर दी है।

चाय

आज भारतके कोने-कोनेमें चायका प्रचार हो चुका है। मिल-मजदूर हों या दफ्तरके बाबू, पत्रके सम्पादक हों या राजा-रईस, गवर्नर हों या वाइसराय, सभी इस 'सुस्वादु' पेयके भक्त बन गये हैं। सबके लिए 'चायकी चुस्कियाँ' साधारण बात बन गयी हैं। इसकी पत्तियोंके भीतर छिपी मादकता विज्ञापनके जादूके आगे मात खा गयी है। इसका 'श्रेय' पानीकी तरह रुपया बहानेवाले 'टी मार्केट एक्सपेंशन बोर्ड'को है। इस प्रचारकी ही बदौलत आज १० करोड़ पौण्ड चाय देशमें खपने लगी है।

१—मिनिट आव दि लेफ्टीनेंट गवर्नर आव बंगाल ओन दि रिपोर्ट आव इनडिगो कमीशन, १८६१।

२—सो० रासन : कल्टिवेशन आव इनडिगो, जर्नल आव दि रायल एशियाटिक सोसायटी आव आर्ट्स, १९००।

यों तो आसाममें चायका देशी पौधा सन् १८२० में ही मिल गया था और १८३४ से प्रयोगके तौरपर चायकी खेती आरम्भ हो गयी थी, पर वस्तुतः ब्रिटिशकालमें ही इसे पनपनेका अवसर मिला। गवर्नर जनरल लार्ड विलियम बेंटिंगने इसे खूब प्रोत्साहन दिया। आपका कहना था कि भारतमें इस योजनाकी सफलतासे व्यापारिक दृष्टिसे भारतका लाभ तो होगा ही, इंग्लैंड भी चायके लिए चीनका आश्रित न रह जायगा। ब्रिटेनके इस स्वार्थकी पूर्त्तिके लिए भारतमें चायकी खेती आरम्भ हुई। प्रयोगका सफल होना था कि इसके विस्तारकी जी-तोड़ चेष्टा हुई। ब्रिटिश पूंजीपतियोंने इस लाभदायक व्यापारके लिए अपनी थैलियोंके मुंह खोल दिये।

चायके बगीचोंमें भारतीय मजदूरोंको जिस दमन और अत्याचारका शिकार होना पड़ा है उसके प्रमाणोंकी कमी नहीं।[१] १९२८ में ब्रिटिश ट्रेड यूनियन कांग्रेसके प्रतिनिधि-मण्डलने अपनी रिपोर्टमें लिखा था कि आसामकी चायमें प्रतिवर्ष लाखों भारतीयोंका पसीना, क्षुधा और वेदना मिश्रित होती चलती है।

देशके विभिन्न भागोंसे अनेक प्रकारके सब्ज-बाग दिखाकर चायके बगीचोंमें मजदूर लाये जाते थे। बगीचोंमें पहुँचते ही उनका स्वप्न भंग होता था। यहाँ उनके गोरे मालिक पशुओंसे भी गया-बीता व्यवहार करते थे। मारपीट और कोड़ेबाजी तो मामूली बातें थीं। सभी कमीशनोंने इसकी शिकायत की है।[२]

इस प्रकार भारतीय मजदूरोंके खून और पसीनेसे भारतमें चायके बगीचोंका विस्तार हुआ। देशी, चीनी और मिश्रित इन ३ प्रकारकी

१—एगडर : नोट ओन दि टी इंडस्ट्री इन बंगाल, १८७३, पृष्ठ २१।

२—रिपोर्ट आव दि लेबर इनक्वायरी कमीशन ओन कोल एंड टी इंडस्ट्री, १८९६, मल्लियाका वक्तव्य।

चायकी खेती आरम्भ की गयी। आज भारतमें संसारके सभी देशोंसे अधिक चाय पैदा होती है। १९३७ में भारतमें लंकासे दुगुनी, डच पूर्वीय द्वीपसमूहसे तिगुनी और जापानसे चौगुनी चाय हुई थी। युद्धके कारण इसमें और अधिक वृद्धि हुई है। अब तो कलकत्ताको संसारका सबसे बड़ा चायका केन्द्र बनानेका विचार हो रहा है।

निम्न लिखित आँकड़ोंसे चायकी प्रगतिपर अच्छा प्रकाश पड़ता है—

सन्	चायके बगीचे	क्षेत्र	उत्पत्ति पौंडोंमें
१८५०	१	१८७६ एकड़	२१६०००
१८५३	१०	२४२५ ,,	३६६७००
१८५९	४८	७५९९ ,,	१२०५६८६
१८६९	२६०	२५१७४ ,,	४७१४७६९
१८७१	२९५	३१३०३ ,,	६२५११४३

बीस सालके भीतर ही चायने अद्भुत प्रगति की। उसकी खेती उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती है। सन् १८८५ में २८४००० एकड़में, १९०१ में ४९०००० एकड़में और १९३१–३२ में ७२०००० एकड़ भूमिमें चाय होने लगी।

आज देशमें लगभग १० लाख एकड़में चायकी खेती होती है। ५ हजार बगीचोंमें १० लाख मजदूर काम करते हैं। चायका तीन चौथाईसे अधिक क्षेत्र आसाम और उत्तरी बंगालमें है। दार्जिलिंग और जलपाईगुड़ी जिले इसके लिए प्रसिद्ध हैं। दक्षिण भारतके मलाबार तटपर, त्रावणकोर और कोचीन राज्योंमें तथा मलाबार, नीलगिरि और कोयमबतूर जिलोंमें २० प्रतिशत चाय होती है। पंजाब, युक्तप्रान्त और बिहारमें भी कुछ चाय होती है।

चायकी छोटी बहिन कहवा उससे भी अधिक मादक है। कहते

हैं कि १६०० ई० के लगभग बाबाबुद्दीनने मैसूरकी चन्द्रागिरि पहाड़ीपर एक दस्युको हराया और मक्का जानेकी बात कहकर गायब होगये। बादमें आपने लौटकर अपने अनुयायियोंको कहवाके ६ बीज लाकर दिये और कहा कि इससे तुम्हें खाना भी मिलेगा, पानी भी। वहाँकी पहाड़ियाँ बाबाबुद्दीन साहबके ही नामसे प्रसिद्ध हैं। १८४० में एक युरोपियनने कहवाकी खेती आरम्भ की, पर १८६० से पहले इसकी कोई उल्लेखनीय प्रगति नहीं हुई। उसके बाद तीव्र गतिसे इसकी खेती बढ़ी।[1] इसकी उपजमें लगातार उतार-चढ़ाव होता रहा है। १८७९ तक खूब वृद्धि हुई, १८७९ से १८८८ तक बीमारीके कारण कमी हुई। १८८९ से १८९६ तक ब्राजिलमें राजनीतिक आन्दोलनके कारण दाम चढ़ गया।[2] इसके उपरान्त इसकी कोई विशेष प्रगति नहीं हुई।

कहवा

कहवाकी खेती दक्षिण भारतमें ही सीमित है। मद्रास प्रेसिडेंसी, कुर्ग और मैसूर, त्रावणकोर तथा कोचीनमें ही विशेष रूपसे कहवा पैदा होती है। कहवाकी उपज मैसूरमें ५२ प्रतिशत, मद्रासमें २६ प्रतिशत और कुर्गमें २० प्रतिशत होती है। सारे संसारकी उपजको देखते हुए भारतकी उपज सर्वथा नगण्य है। ब्राजिलमें जहाँ संसारकी ६० प्रतिशत कहवा होती है, वहाँ भारतमें केवल १ प्रतिशत। यहाँ लगभग २ लाख एकड़ भूमिमें कहवाकी खेती होती है और लगभग १ लाख मजदूर इसमें लगे हुए हैं। अच्छी फसल होनेपर सालमें २४ हजार टनतक उपज हो जाती है, खराब फसल होनेपर १६ हजार टन। औसत १८००० टनका समझना चाहिये। इसमेंसे १० हजार टन देशमें ही खप जाती है, शेष ८ हजार टन फ्रांस, नार्वे, ब्रिटेन आदि देशोंको जाती है। ब्राजिलकी कहवाकी प्रतिद्वंद्विताने भारतकी

१—मैसूर गजेटियर, खंड २, १८९७, पृष्ठ ३७५।

२—कल्टिवेशन आव काफी, वार्षिक रिपोर्ट, १८९६।

कहवाकी खेती बुरी तरह नष्ट कर दी है। सरकारने इसके प्रोत्साहनके लिए 'इंडियन काफी सेस कमेटी' बना दी है। इसकी उपज दक्षिण भारतमें ही अधिक होती है और वहाँपर ९६ प्रतिशत खपत भी होती है।

तम्वाकूमें पाये जानेवाले जहर निकोटाइनकी एक बूंद भी छोटे-मोटे प्राणियोंका प्राण लेनेके लिए पर्याप्त होती है। शास्त्रोंमें इसका निषेध है। फिर भी आज घर-घर तम्वाकू, बीड़ी, सिगरेटकी धूम है। इसने सभ्यता और शिष्टाचारका वाना पहन लिया है। १८७८-७६ में जहां ३९६१६४ एकड़में इसकी खेती होती थी वहां २० सालमें वह ढाई गुनी हो गयी। १८९७-९८ में १०४८४३६ एकड़में इसकी खेती होने लगी। १९२६-२७ में इसका क्षेत्र बढ़कर १०५५४१० एकड़ होगया और १९३९-४० में ११८१००० एकड़।

तम्वाकू

कहते हैं कि भारतमें सन् १६०५ में पुर्तगीजोंने तम्वाकू लाकर उसका प्रचार किया था। अकवरने कहा कि 'हमें ऐसी वस्तुका वहिष्कार नहीं करना चाहिये, जिसे अन्य देशोंके वुद्धिमानोंने ग्रहण कर लिया है, अन्यथा हम उन्नति कैसे करेंगे ?' बस, व्यापारियोंको छूट मिली। धीरे-धीरे देशमें इसकी उपज बढ़ने लगी। ईस्ट इंडिया कम्पनीने इसकी उपज और व्यापार बढ़ानेके लिए विशेष प्रयत्न किया। अच्छी श्रेणीकी तम्वाकू पैदा करनेका भी प्रयत्न किया गया।[1] अमेरिका, मनीला, बच्वा, सुमात्रा, फारस, तुर्की आदि देशोंसे बीज लाकर यहाँ उगानेकी चेष्टा की गयी। आज देशमें

१—ईस्ट इंडिया प्राडक्ट्स, प्रथम खंड, तम्वाकूपर जे० ई० ओवनूरकी रिपोर्ट, पृष्ठ १,२१८। स्टेटमेंट आव दि मॉरल एंड मेटीरियल प्रोग्रेस आव इंडिया, १८७२-७३, पृष्ठ ४३।

इसकी उपज खूब बढ़ गयी है और अनेक देशी विदेशी कम्पनियाँ इसका व्यापार करती हैं।

तम्बाकू यों तो सारे देशमें पैदा होती है पर विशेषतः बंगाल, मद्रास, बम्बई और बिहारमें होती है। ब्रिटिश साम्राज्यकी ९० प्रतिशत तम्बाकू भारतमें होती है, जो कि संसारकी उपजका पंचमांश है। सारे देशमें प्रति वर्ष लगभग ४२३००० टन तम्बाकूकी सूखी पत्ती होती है। इसमें बंगाल और मद्रासमें २४, २४ प्रतिशत और बम्बईमें १३ प्रतिशत उपज होती है। शेष ३६ प्रतिशत देशके अन्य भागोंमें होती है। कुछ तम्बाकू विदेश जाती है, शेष देशमें ही खप जाती है।

अफीम

जबसे भारतीय अफीमका चीन आदि देशोंको जाना बन्द हो गया तबसे उसकी खेती बहुत कम हो गयी है। आजकल वह केवल युक्त प्रान्तमें सीमित क्षेत्रमें होती है। पर सरकार आज भी इसकी बदौलत आबकारीकी मदमें पर्याप्त वृद्धि कर लेती है।

दक्षिण भारतमें रबड़की खेती होती है। उसका भी अधिकतर निर्यात ही होता है।

उत्पत्तिका विनियोग

भारतीय किसानकी दरिद्रता सर्वत्र उसके कष्टका कारण बनती है। बेचारा जो पैदा करता है उसका भी उसे पूरा पैसा नहीं मिल

बाजारका विस्तार

पाता। बीचके दलाल ही भारी रकम हड़प लेते हैं। इन दलालोंके जालसे किसी भी किसानका बच निकलना सम्भव नहीं। गाँवके साहूकार, व्यापारी, महाजन, बनजारा ग्रादि फसल कटते ही किसानका सारा माल खरीद लेते हैं। उनके यहाँसे माल कच्चे अढ़तियाके पास पहुँचता है। फिर दलालके मार्फत पक्के अढ़तियाके पास। वहाँसे अथवा कच्चे अढ़तियाके यहाँसे एक ओर जहाँ माल देशके थोक विक्रेताओंके पास पहुँचता है, वहाँ दूसरी ओर वह उन बड़े व्यापारियोंके गोदामोंमें पहुँचता है जो विदेशोंसे व्यापार करते हैं।

फसल कटते ही किसान अपने स्थायी कामदारों—बढ़ई, लुहार, नाई, कहार, मेहतर आदिको मजदूरी देकर जैसे ही विदा करता है वैसे

लुटेरोंकी बाढ़

ही लुटेरोंकी एक भारी पलटन उसे आ घेरती है। गाँवके जमींदार, मालगुजार, साहूकार, व्यापारी आदि आ पहुँचते हैं। ये पहलेसे ही किसानको ऐसा फाँस रखते हैं कि इनसे पिंड छुड़ाना सम्भव ही नहीं। रुपयेके भुगतानके लिए किसान-को अपनी फसल इन्हींके मुँहमाँगे भावपर लुटा देनी पड़ती है।

किसानको परिस्थितियोंसे लाचार होकर फसल कटते ही उसे बेच देना पड़ता है। बाजारमें उस समय उसे अच्छे पैसे नहीं मिलते।

किसानकी विवशता

भाव जबतक ठिकाने आये तबतक फसलको रोक रखनेकी सामर्थ्य किसानमें होती नहीं। दूसरे, किसान माल खरीदनेवालोंका ऋणी रहता है। अतः ये लोग उसे सस्ते दाममें बेचनेके लिए विवश करते हैं। अज्ञान

और यातायातकी असुविधाके कारण भी किसान मारा जाता है।

मूल्यमें अन्तर

मंडी तथा उसके अत्यन्त निकटके गांवोंतकमें मूल्यमें भारी अन्तर देखा जाता है। लायलपुरकी मंडी और निकटस्थ गाँवोंमें गेहूँके मूल्यमें ४ आनेसे ६ आनेतकका और कपासके मूल्यमें एक रुपये मनतकका अन्तर देखा गया है। इसी प्रकार रुहेलखंडकी बड़ी मंडियोंमें गेहूँ यदि रुपयेका ८ सेर बिकता है तो गाँवोंके बाजारोंमें उसका भाव ९ सेरका होता है। काशीकी मंडीमें जो पटुआ ७) मन बिकता है वही देहातमें ५) मन बिकता है।[1]

उत्तरी भारतकी प्रमुख मंडियोंमें गेहूँके मूल्यमें इस प्रकारका अन्तर पाया जाता है—[2]

मंडी	भाव जून	भाव अगस्त
लायलपुर	२–)।।।	२)७
अमृतसर	२।)।।।	२=)।।।
हापुड़	२।=)८	२।=)२
कानपुर	३–)	२–)।।
चंदौसी	३।=)	३।≡)

व्यापारियोंका लाभ

जिस प्रकार किसानको हर हालतमें हानि उठानी पड़ती है, उसी प्रकार व्यापारीको हर हालतमें लाभ होता है। वृष्टि, अनावृष्टि, पाला, तूफान, टिड्डी दल, बाढ़ आदिके कारण फसल चौपट हो तो उसकी हानि किसानको ही भुगतनी पड़ती है। व्यापारी तो सभी स्थितियोंमें मजेमें रहता है। वह किसान और उपभोक्ता दोनोंको लूटता है।

१—राधा कमल मुखर्जी : इकोनामिक प्राब्लम्स आव माडर्न इंडिया।

२—शोवोप्रभु और हामिद : गेहूँका मूल्य, लेख, एग्रीकल्चर एंड लाइवस्टाक इन इंडिया, मई १९३५।

सन् १९२१ में बिहारके तिरहुत डिवीजनमें केवल चावलके व्यापारसे मध्यवर्ती व्यापारियोंने ३२ लाख रुपयेका लाभ उठाया था। इसी प्रान्तमें इन्हीं व्यापारियोंने ५ पैसे सेरके भावसे गेहूँ खरीदा और उसका आटा उपभोक्ताओंके हाथ १३ पैसे सेरके भावसे वेचा![1]

व्यापारी इस प्रकार भावमें दूना-तिगुना तो करते ही हैं, किसानोंको लूटनेके लिए उन्होंने और भी कितने ही उपाय निकाल लिये हैं।

पल्लेदारी

तौलनेके बटखरोंमें अन्तर, तौलनेमे चालाकी और दलालके मार्फत चालाकी खूब चलती है। साथ ही पल्लेदार, तौलदार, चांगर (भूसा निकालनेवाले), लंगरी, भिश्ती, मेहतर आदिको भी देनेके नामपर व्यापारी काफी गल्ला किसानसे ऐंठ लेता है। स्थान-स्थानपर इस पेट-पूजाकी दर भिन्न-भिन्न है—

१००) के मालपर पल्लेदारी, धर्मादा, गोशाला आदिका खर्च

लायलपुर	२।-)॥	हाथरस	४≡)
फीरोजपुर	३।)॥	आगरा	४॥)॥।
हापुड़	२॥-)	कानपुर	१)॥
गाजियाबाद	४≡)	प्रतापगढ़	२॥-)

इसके अतिरिक्त हाथरस और आगरामें दस-दस आना तथा कानपुरमें १॥-) आढ़त खर्च और पड़ता है।

किसान यदि सौ रुपयेका गेहूं वेचना चाहे तो साधारण समयमें इतना खर्च देना पड़ता है—

	गाजियाबादमें	हापुड़में
स्वयं मंडीमें जाकर वेचनेपर	४≡)	२॥-)
देहाती व्यापारीके मार्फत वेचनेपर	७॥≡)	५-)

१—बृज गोपालभटनागर : ग्रामीण अर्थशास्त्र, पृष्ठ १८५।

छोटी मंडीमें जाकर वेचनेपर	६॥।=)	८॥)
गाँवके व्यापारीके मार्फत वेचनेपर	१२।=)	११।)

खेतसे लेकर बड़ी मंडीमें मालके पहुंचनेमें मोटे तौरपर २० प्रतिशत खर्च पड़ता है। यातायातमें भी भारी खर्च पड़ता है। सड़कोंकी कमी और दुर्व्यवस्था कहनेकी बात नहीं। सड़कें खराब होनेके कारण मंडीमें माल लेजानेका खर्च बहुत बढ़ जाता है। उस स्थितिमें किसान अपने गाँव अथवा देहाती बाजारमें ही अपना माल वेच डालना अधिक पसन्द करता है।

यातायातका खर्च

व्यापारियोंकी चालें विचित्र होती हैं। मुजफ्फरपुर जिलेका तम्बाकूका व्यापारी तौलाईकी गिनतीके लिए मन पीछे तम्बाकूका एक पूड़ा ले लेता है। फिर गंगाजलीके नामसे दूसरा ले लेता है। तम्बाकू जबतक तुलती है तबतक वह एक पूड़ेपर वैठता है, उसे वैठाईके लिए ले लेता है। जिस तौलसे तम्बाकू तौली जाती है वह सरकारी तौल नहीं होती तो भी किसान कुछ वोल नहीं सकता, क्योंकि वहां चाल ही ऐसी है![1]

व्यापारीकी चालें

इस लूटसे वचनेके दो ही उपाय हैं—एक तो सहकारी-पद्धतिसे मालकी विक्री और दूसरा वाजारका सुसंघटित होना। अभीतक इस दिशामें जो कार्य किया गया है वह सर्वथा नगण्य है।

१—भटनागर : वही, पृष्ठ १८६।

कृषकोंका ऋणभार

भारतीय कृषक ऋणमें ही पैदा होता है। ऋणमें ही पलता है। ऋणमें ही सारा जीवन विताता है और जव इस संसारसे विदा होता है तो अपने वच्चोंके लिए विरासतमें भी ऋण ही छोड़ जाता है।[1]

रोमसे स्काटलैंडतक, विश्वके किसी कोनेके इतिहासको उठाकर देखिये, सर्वत्र एक ही वात मिलेगी। किसानके भाग्यमें कर्जदार होना ही वदा है। देशकी स्थिति, भूमि-पद्धतिकी विभिन्नता अथवा कृषिकी अवस्थासे उसमें कोई विशेष परिवर्तन होनेवाला नहीं![2]

भारतीय किसान वस्तुतः एक दयनीय प्राणी है। १९२८ की जाँचके अनुसार उसका ऋणभार ९ अरव रुपयेसे कम नहीं है।[3]

वम्वईकी जाँच

दक्षिणमें भयंकर दुर्भिक्ष और कर-भारसे पीड़ित होकर किसानने जव विद्रोह किया और साहूकारोंपर आक्रमणकर उन्हें लूटा, उनके घर नष्ट किये, तव कहीं वम्वई सरकारने इस ओर ध्यान देनेकी कृपा की। १७ जुलाई १८७९ को गवर्नर जनरलकी कौंसिलमें इस विषयपर जो विचार-विनिमय हुआ उसमें वताया गया कि किसानोंपर जितना ऋणभार है उसका अनुमान करना सहज नहीं है। १८७५ के कमीशनने १२ गाँवोंके एक चककी जो जाँच की उससे पता लगा कि एक तिहाई काश्तकार वुरी तरह ऋणग्रस्त हैं। इनमें दो-तिहाईके पास वहुत थोड़ी जमीन है और वे २०) सालानासे कम मालगुजारी देते हैं। उनपर उनके लगानसे १८ गुना कर्ज है। जिसमेंसे दो-तिहाई कर्ज उन्होंने भूमि वन्धक रखकर

१—शाही कृषि कमीशनकी रिपोर्ट, १९२८।

२—निकलसन : मद्रास प्रेसिडेन्सीमें भूमि और कृषि सम्बन्धी वैंक खोलनेकी सम्भावना-विषयक रिपोर्ट, १८९५।

३—सेंट्रल वैंकिंग इनक्वायरी कमेटीकी रिपोर्ट, १९३१।

प्राप्त किया है। अहमदनगरके एक चककी जांच करनेसे पता लगा कि ४३ प्रतिशत किसान बुरी तरह ऋणग्रस्त हैं और ऋणका औसत मालगुजारीके १५ गुनेसे ४५ गुनेतक है ! कलक्टरका मत है कि सारे जिलेमें ६० प्रतिशत लोगोंपर इतना अधिक ऋण है कि वे कभी उससे मुक्त होनेकी कल्पना भी नहीं कर सकते ![1]

भयंकर आँकड़े

यह ऋणभार उत्तरोत्तर किस प्रकार बढ़ता जा रहा है इसका अनुमान इन आँकड़ोंसे किया जा सकता है—[2]

सन्	ऋण करोड़ रुपयोंमें	सन्	ऋण करोड़ रुपयोंमें
१८६५	४५	१९३५	१२००
१९११	३००	१९३७	१८००
१९२५	६००	१६३६	१२००
१९२८	६००		

पी० जे० टामसका कहना है कि यह ऋण १२०० करोड़से कहीं अधिक है। वह लगभग २००० करोड़ होगा। कारण, १६२९ और १९३४ के बीच ५० प्रतिशत मूल्य गिर गया था। विभिन्न प्रान्तीय सरकारोंसे प्राप्त अधूरे आँकड़े इस प्रकार हैं—

विहार	१४८ करोड़ रु०	वंगाल	६७ करोड़ रु०
मद्रास	२०० ,,	वम्बई	५८ ,,
पंजाव	१४० ,,	युक्तप्रान्त	१२४ ,,
आसाम	२२ ,,	मध्यप्रान्त और वरार	३६ ,,

सिन्ध, सीमाप्रान्त और उड़ीसाके अन्दाजिया आँकड़े भी उपलब्ध न हो सके।[3]

१—एस०सी०राय: एग्रीकल्चरल इनडेटेडनेस इन इंडिया, १९१५, पृष्ठ १३७।
२—कन्हैयालाल मा० मुंशी: दि रिडन दैट ब्रिटेन राट, १८४६, पृष्ठ४५-४६।
३— दुर्भिक्ष जांच कमीशन रिपोर्ट, १९४५, अन्तिम भाग, पृष्ठ ४६७—४६६।

इन आँकड़ोंसे स्थितिकी भयंकरताका सहज ही अनुमान किया जा सकता है। १९३१ के बाद गल्लेकी कीमतमें कमी हो जानेके कारण इस ऋणमें भारी वृद्धि हुई है। १९३९–४० से फसलके दाममें वृद्धि हुई है। इन सब बातोंपर विचार करते हुए श्री भगवानदास केलाका यह अनुमान सही जान पड़ता है किसानोंपर इस समय लगभग १८०० करोड़ कर्ज है अर्थात् ७५) रु० प्रति व्यक्तिसे भी अधिक ![1]

हमारे देशमें ऋण अधिकतर अनुत्पादक कार्योंके लिए लिया जाता है। श्री भगतने थाना जिलेके भिवाँडी तालुकेके ७६० परिवारोंकी जाँच करके निष्कर्ष निकाला है कि वहाँके केवल ११.३ व्यक्तियोंने उत्पादक कार्योंके लिए ऋण लिया और ८८.७ व्यक्तियोंने अनुत्पादक कार्योंके लिए। ३३.७ प्रतिशत ऋण विवाहके लिए, १४.९ प्रतिशत घर-गृहस्थीके खर्चके लिए और शेष विभिन्न कार्योंके लिए लिया गया।[2]

सभी वर्ग ऋण

प्राय: सब वर्गों और जातियोंके लोग ऋणग्रस्त हैं। कुलीन वर्गके लोग भी ऋणकी विभीषिकामें पड़े छटपटा रहे हैं। युक्तप्रान्तमें बैंकिंग जाँच समितिने ऋणी और ऋणमुक्त लोगोंकी जाँचकर यह निष्कर्ष निकाला है—[3]

जाति वर्ग	ऋणमुक्त	ऋणी	ऋण प्रतिशत
कुलीन			
ब्राह्मण, राजपूत, मुसलमान	४५%	५५%	६६
किसान			
अहीर,कुर्मी,लोध	४४%	५६%	१४

१—भगवान दास केला:भारतीय अर्थशास्त्र, १९४६, पृष्ठ ३३६।

२—एम०जी० भगत:दि फार्मर-हिज वैलफेयर एण्ड वैल्थ,१९४३।

३—यू० पी० बैंकिंग इनक्वायरी कमेटी रिपोर्ट, पृष्ठ १०३।

काछी-माली			
काछी, माली, सैंरी, कोयरी, मुराव	४०%	६०%	३
हरिजन			
भर, चमार, पासी	४४%	५६%	५
गैर किसान			
कायस्थ,खत्री, कलवार	६२%	३८%	३
अन्य	५०%	५०%	९
	४६%	५४%	१००

मोटे तौर पर कहा जा सकता है कि लगभग ७५ प्रतिशत किसान ऋणग्रस्त हैं।

ऋणके कारण

दरिद्रता ही किसानोंके ऋणका मूल कारण है। अन्य कारण उसीसे सम्वन्धित हैं। खास कारण ये हैं—

१—जनसंख्याकी वृद्धि
२—भूमिके भारमें वृद्धि
३—अनिश्चित फसल
४—दोषी लगान व्यवस्था, खेतीमें हानि
५—पुश्तैनी कर्ज
६—साखकी कमी
७—भारी व्याजदर
८—शिक्षाका अभाव
९—पशुओंकी हानि
१०—मुकदमेवाजी, रिश्वत
११—अपव्यय
१२—मादक पदार्थोंका सेवन आदि

जन-वृद्धि निम्नलिखित आँकड़ोंसे स्पष्ट है कि भारतकी जनसंख्यामें कितनी तीव्र गतिसे वृद्धि होती चलती है और खानेवालोंकी पलटन कितनी तेजीसे वढ़ती चलती है—

सन्	जनसंख्या	सन्	जनसंख्या
१७००	१० करोड़	१८८१	२५॥ करोड़
१७५०	१३ करोड़	१९३१	३५॥ करोड़
१८५०	१५ करोड़	१९४१	३९ करोड़

माना माल्थस साहबके सिद्धान्तानुसार जनवृद्धि रोकनेके स्वाभाविक उपायों—बीमारियों, महामारियों और दुर्भिक्षोंकी भारतपर सदैव कृपा बनी रहती है, जिनमें आननफानन लाखों व्यक्ति साफ हो जाते हैं, परन्तु यह देखा गया है कि इनका दौर समाप्त होते ही बड़ी तेजीसे घाटेकी पूर्त्ति हो जाती है ![1]

भूमिके भारमें वृद्धि

देशमें उद्योग-धंधोंका सर्वथा अभाव-सा है। जो थे भी, उन्हें ब्रिटिश शासनने चौपट कर दिया है। फलतः भूमिका भार दिनदिन बढ़ता चलता है। कृषिपर निर्भर रहनेवालोंकी संख्यामें प्रतिशत इस प्रकार वृद्धि होती चलती है—[2]

सन्	कृषिपर निर्भरता	सन्	कृषिपर निर्भरता
१८९१	६१.१	१९३१	७३.०
१९११	६६.५	१९४१	७४.०
१९२१	७२.२		

नगरों और देहातोंकी जनसंख्याकी तुलनासे भी यही बात प्रकट होती है। १८९१ से १९४१ तक ५० सालके भीतर खानेवालोंकी संख्यामें ११ करोड़की वृद्धि हो गयी और उसमें ९० प्रतिशत जनता देहातमें ही रही। इससे भूमिका भार बढ़ना स्पष्ट है। उत्पत्तिमें विशेष वृद्धि न हो और खानेवालोंकी संख्या बढ़ जाय तो यह स्वाभाविक है कि लोग भूखों मरेंगे और विवश हो ऋण लेंगे।

कृषिका भार बढ़नेका एक कारण और है। वह यह कि अनेक जातिके लोगोंने अपना पैतृक व्यवसाय छोड़कर खेती अपना ली है। युक्तप्रान्तमें की गयी एक जाँचसे यह बात स्पष्ट है—

१—एन० बी० सोमानी : दि पापुलेशन प्राब्लम इन इंडिया, पृष्ठ १९८-१९९।
२—कन्हैया लाल मा० मुंशी : दि रिवन दैट ब्रिटेन राट, पृष्ठ ६१।

जाति	पैतृक व्यवसाय	कृषि	व्यापार	अन्य व्यवसाय
लुहार	३२%	६०%	६%	२%
खटिक	२८	४४	१४	१४
गडरिया	२६	६६	६	२
वुनिया	२०	६३	१३	४
ब्राह्मण	१५	७२	७	६
अहीर	१४	८०	२	४
लुनिया	१२	८०	४	४
गूजर	११	८५	३	१
वहेलिया	१०	७१	१४	५
चमार	५	८१	११	३
खेवट	५	८७	६	२
पासी	२	८८	३	७

इसी प्रकार और भी कितनी ही जातियाँ पैतृक व्यवसाय छोड़कर खेतीमें लग गयी हैं। किसानोंकी आर्थिक स्थितिपर इसका प्रभाव पड़ना अनिवार्य है। खेतोंका वटना और खेतीमें हानि कृषिभार वढ़नेका स्वाभाविक परिणाम है और उसके साथ ही जुड़ी हुई है—कर्जदारीकी समस्या।

अनिश्चित फसल

साधारणतः हर पांच सालमें केवल एक फसल अच्छी होती है, तीन फसलें न वहुत अच्छी होती हैं, न वहुत खराव। एक फसल सर्वथा खराव होती है। जिस साल फसल अच्छी होती है, केवल उसी साल किसान ऋणमुक्त रह पाते हैं। शेष ४ साल उन्हें ऋण लेना ही पड़ता है।

कभी अनावृष्टिसे, कभी अति-वृष्टिसे, कभी तूफान आनेसे, कभी पाला-तुषार पड़नेसे, कभी टिड्डी दलकी कृपासे फसल नष्ट हो जाती

है और ऐसा प्रायः होता रहता है। उस स्थितिमें दरिद्र किसानके पास साहूकारका दर्वाजा खटखटानेके सिवा और चारा ही क्या रह जाता है?

लगान व्यवस्था

देशमें कितने ही प्रकारकी लगान-व्यवस्थाएं चालू हैं। कहीं सरकारके साथ किसानका सीधा सम्बन्ध है। कहीं जमींदार, मालगुजार, तालुकदार आदि बीचके दलाल भी किसानको चूसनेमें हिस्सा बंटाते हैं। लगानकी दरमें भी साम्य नहीं। युक्तप्रान्तमें यदि मालगुजारीका औसत १।।।) फी एकड़ है, तो मद्रासमें २।।) और सिंधमें ३)। जिन किसानोंके पास निजके खेत नहीं हैं उन्हें कितना अधिक लगान देना पड़ता है, यह बतानेकी आवश्यकता नहीं है[1]। फसल चौपट हो जानेपर भी पूरा-पूरा लगान वसूल करनेके लिए जब किसानको सताया जाता है तो उसे विवश हो ऋण लेना पड़ता है।

कृषिमें घाटा

कृषिका व्यवसाय ही आज घाटेका व्यवसाय है। गाडगिलद्वयने वाइतालुकाके ३६ ग्रामोंकी जांच करके निष्कर्ष निकाला है कि प्रत्येक खेतपर ६९) हानि होती है।[2] ऐसी स्थितिमें बढ़े हुए लगानसे किसानोंके कष्टका बढ़ना स्वाभाविक है। कभी-कभी वस्तुओंके मूल्यमें अचानक भारी उतार-चढ़ाव आ जाता है। उसका परिणाम भी किसानको भुगतना पड़ता है।

पुश्तैनी कर्ज

असंख्य किसान आजीवन पैतृक ऋणका भार ढोते रहते हैं। धार्मिक दृष्टिसे भी पुत्र पिताका ऋण चुकाना अपना कर्तव्य मानता है, भले ही मूलका कई गुना पैसा दिया जा चुका हो। दक्षिणमें किसानोंको ऋणपाशसे मुक्त करनेके लिए बनाये गये पहले कानूनमें ऐसी व्यवस्था थी कि कुछ शर्तें पूरी करनेपर

१—एग्रीकल्चरल स्टेटिसटिक्स, खंड २, सन् १९१८-१९.

२—गाडगिल द्वयः फार्म बिजिनेस इन वाइ तालुका, १९४०, पृष्ठ ८९।

कर्जदार अपनेको दिवालिया घोषितकर ऋण चुकानेके दायित्वसे मुक्त हो सकता था ; पर किसानोंकी ईमानदारी देखिये। शायद ही किसी किसानने दिवालिया बननेकी दर्खास्त दी हो ![1]

साखकी कमी

दरिद्र किसानकी साख ही क्या ? उसकी हैसियत ही कितनी ? फलतः थोड़ा-सा भी कर्ज लेनेके लिए उसे बड़ी मुसीबतका सामना करना पड़ता है। खेत, माल या गहना बंधक रखकर, भारी सूदपर उसे कठिनाईसे कर्ज मिलता है। काबुली पठान इस मामलेमें उसे खूब लूटता है। गांवके बनिया, महाजन भी उसे चूसनेसे बाज नहीं आते।

व्याजकी दर

किसानके शोषणके इतिहासमें साहूकारका प्रमुख स्थान है। उसने किसानको उसकी भूमिसे तो वंचित किया ही, अपने व्याज और चक्र-वृद्धि व्याजसे उसने किसानको कहींका न रखा। पंचायतोंकी व्यवस्था नष्ट हो जानेसे न तो किसानोंकी साख ही रह गयी, न व्याजकी दरपर ही कोई नियंत्रण रहा। किसानसे साढ़े सैंतीस रुपया वार्षिक, अधन्नी रुपया मासिक व्याज लेना तो मामूली बात है। कोई महाजन दसके बारह वसूल करता है, तो कोई चक्रवृद्धि व्याज द्वारा दो-चार सालके भीतर ही सौके दो सौ, दो सौके चार सौ बना लेता है। मूल चुकाना तो दरकिनार, सूद चुकानेमें ही किसानका सारा जीवन समाप्त हो जाता है। फिर भी मूल ज्यों-का त्यों बना रहता है। देशके विभिन्न भागोंमें ६। प्रतिशतसे लेकर ३०० प्रतिशततक व्याज लिया जाता है।

देशमें शिक्षाका कितना अभाव है यह किसीसे छिपा नहीं है। ब्रिटेनमें जहाँ (१९३८-३९ में) शिक्षापर प्रति व्यक्ति ३२-) खर्च

१—डी० आर० गाडगिल : दि इंडस्ट्रियल एवोल्यूशन आव इंडिया, १९३८, पृष्ठ ३१।

होता है, वहाँ भारतमें प्रति व्यक्ति ।।)।।। ही पर्याप्त समझा जाता है ! देशके ६ लाख ७८ हजार गांवोंमें कुल १ लाख ८७ हजार प्रायमरी

शिक्षाका अभाव

स्कूल हैं। १९४१ में हमारे देशमें १०० मेंकेवल १२ व्यक्ति साक्षर पाये गये। ए-बी-सी-डी जाननेवालोंकी संख्या १०००में १२३ निकली। बेचारा किसान तो हस्ताक्षरके नामपर अंगूठा ही काला करता है। उसके लिए काला अक्षर भैंस बराबर है। न तो वह यही जानता है कि साहूकारने दस बताकर पचानपर उससे अंगूठा लगवा लिया है और न यही कि सरकारने उसके हितके लिए कौनसे कानून बना दिये हैं। सेठ और साहूकार, पुलिस और पटवारी, मुखिया और चौकीदार सभी उसकी अशिक्षाका भरपूर लाभ उठाते हैं। किसान पढ़ा लिखा होता, हिसाब-किताब रखता, कानून और कायदेकी बातें समझता तो यह निश्चित है कि उसका ऋणभार कहीं हलका होता।

गरीब किसानके पशु भी उसीकी तरह गरीब और दुर्बल होते हैं। भूखे, मरघिल्ले, अशक्त, अस्थिपंजर-मात्र। न उन्हें पेटभर चारा

पशुओंकी हानि

मिलता है, न दाना। ऐसे पशुओंसे न तो अच्छी खेती हो सकती है, न पर्याप्त दूध-दही। फिर भी किसान उनका मुंह देखकर जीता है। दुर्भिक्ष और महामारीमें जब उसके पशु बेमौत मरते हैं तो वह करम ठोककर रह जाता है। कैसे भी हैं, पशु उसके डूबतेका सहारा हैं। दुर्भिक्ष, फसलकी हानि और चारेकी तंगीसे उनका नाश होनेपर किसानके सम्मुख विषम समस्या उपस्थित हो जाती है। तब वह कर्ज न ले तो करे क्या? पशु बिना खेती कैसी?

किसानोंका मुकदमेबाजीमें जितना पैसा खर्च होता है उतना शायद

मुकदमेबाजी

और किसी मदमें नहीं। घर-घर गाँव-गाँवमें मुकदमेबाजी फैल गयी है। अंग्रेजी शासनकी यह अनुपम देन भारतमें सर्वत्र खूब फूली-फली है। जर, जमीन और जोरूको

लेकर किसान खूब ही तबाह होता है। वह मुकदमोंमें पानीकी तरह पैसा बहाता है और अमलोंकी जेबें गरम करता है। यह रोग कितनी बुरी तरह फैला है इसका अनुमान निम्न आँकड़ोंसे लगाया जा सकता है। भारतीय सिविल सर्विसके श्रीत्रिलोक सिंहने पंजाबमें सरकारी पदपर रहकर ३८ गाँवोंके १२ सालके कागजात देखे। उनसे आपने यह निष्कर्ष निकाला कि प्रति सौ मकानोंपर इतने मुकदमे लड़े जाते हैं—[१]

तहसील	दीवानी मुकदमे	मालके मुकदमे	फौजदारी मुकदमे	योग
होशियारपुर	५६	१८	९	८३
दासूया	६७	१०	१२	८९
गढशंकर	७०	१६	१३	९९
उना	५६	१९	८	८३
औसत	६२	१६	१०.५	८८.५

औसतन एक मुकदमेमें कमसे कम ४ परिवार फँसे रहते हैं। ७ में २ परिवारोंका मुकदमेमें फँसा रहना साधारणसी बात है। इधर ऋणसम्बन्धी कानूनोंसे इसमें कुछ कमी आ गयी है।[२] जो स्थिति पंजाबकी है वही थोड़े हेरफेरसे सारे देशकी समझनी चाहिये।

अपव्यय

किसानके अपव्ययका सभी रोना रोते हैं। माना, वह कभी-कभी शादी-भोज आदिमें अपनी हैसियतसे अधिक खर्च कर डालता है, पर इसके लिए उसे दोष देना व्यर्थ है। समाजकी रूढ़ियाँ तोड़नेका साहस किसानमें नहीं है। अपनी नाक बनाये रखनेके लिए वह बिसातसे बाहर खर्च कर देता है, भलेही उसे इसके लिए कर्ज लेना पड़े।

१—त्रिलोक सिंहः पावर्टी एंड सोशल चेंज, १९४५, पृष्ठ १७४।

२—वही, पृष्ठ १७५।

तम्बाकू तो किसानके लिए अनिवार्य-सी है। सरकारकी मादक-प्रचार नीतिने किसानको मादक-प्रेमी बना दिया है। मिल-क्षेत्रके निकट

मादक पदार्थ

अथवा देहातोंमें ताड़ी और शराब, अफीम और चरस, गांजा और भांग आदिकी दुकानोंके विस्तार द्वारा सरकारने भारतके किसान-मजदूरोंको सर्वथा चौपट कर डाला है। और यह तो सभी जानते हैं कि जब शराबीके पास पैसा नहीं रहता तो वह कर्ज लेनेसे भी नहीं चूकता। उसका रोम-रोम पुकारता है—

कर्जकी पीते थे मय, लेकिन समझते थे यह हम,
रंग लायेगी हमारी फाकेमस्ती एक दिन।

किसान इस फाकेमस्तीमें अपना घरद्वार, जर-जमीन, खेत-जायदाद सब 'पी' डालता है।

इन्हीं सब कारणोंसे भारतके किसान दिन-दिन दरिद्र होते चलते हैं। वे ऋणके पाशमें इतनी बुरी तरह जकड़ जाते हैं कि कानूनी सहायता भी अधिक लाभदायक नहीं होती।

यों पूंजीकी वृद्धिके लिए कर्ज लेना बुरा नहीं है। बड़ी-बड़ी कम्पनियाँ कर्ज लेती हैं; किन्तु अनुत्पादक कार्योंके लिए कर्ज लेना बुरा

कानूनी सहायता

है। भारतीय किसान अधिकतर अनुत्पादक कार्योंके लिए ही ऋण लेता है। सन् १८७५ में दक्षिणके विद्रोहपर जाँच कमीशन द्वारा उपस्थित की गयी रिपोर्टके बाद ही इस ओर सरकारका कुछ ध्यान गया। किसानोंको ऋणमुक्त करनेके लिए, उत्पादक कार्योंके लिए उन्हें कर्ज देने और तकावी देनेके लिए अनेक कानून बनाये गये हैं। सहकारी समितियां भी इस दिशामें कुछ काम कर रही हैं।

आसाम

आसाममें आसाम मनीलैंडर्स एक्ट १६३४ और १९४३ तथा डेट कौंसिलियेशन एक्ट १६३६ लागू है फिर भी सरकारका कहना है कि गाँवका मारवाड़ी मनमाने ढंगपर अपने कर्जदार किसानको नचाता है।

विहारमें लैंड इम्प्रूवमेंट लोन्स एक्ट, एग्रीकल्चरिस्ट लोन्स एक्ट, विहार मनीलेंडर्स एक्ट १९३८ और उसका संशोधन (१९३९) लागू है, पर विहार सरकारकी शिकायत है कि गाँवका महाजन कानूनकी अवहेलना करता है।

विहार

वंगालमें एग्रीकल्चरिस्ट लोन्स एक्ट १८८४, लैंड इम्प्रूवमेंट लोन्स एक्ट १८८३, वंगाल एग्रीकल्चरल डेटर्स एक्ट १९३५, मनीलेंडर्स एक्ट १९४० लागू हैं। ५०००से अधिक लैसन्सदार साहूकार हैं। उन्हें वरावर हिसाव रखना पड़ता है। कानूनसे वे वड़े चौकन्ने होगये हैं। किसानोंको थोड़ी-सी राहत मिली है।

वंगाल

वम्वई प्रान्त पुराना पापी है। लैंड इम्प्रूवमेंट लोन्स एक्ट, एग्रीकल्चरिस्ट लोन्स एक्ट, डैकन एग्रीकल्चरिस्ट रिलीफ एक्ट १८७९, युजूरियस लोन्स एक्ट, एग्रीकल्चरिस्ट डेटर्स रिलीफ एक्ट १९३९, होनेके वावजूद वम्वई सरकारकी शिकायत है कि साहूकार भारी सूद लेते हैं। ऋणी और साहूकार दोनोंकी शिकायत है कि इन कानूनोंने पारस्परिक अविश्वास पैदा किया है, वेईमानीको प्रोत्साहन दिया है और किसानकी साख घटायी है।

वम्वई

मध्यप्रान्त और वरारमें युजूरियस लोन्स एक्ट १९१८, मनीलेंडर्स एक्ट १९३४, प्रोटेक्शन आव डेटर्स एक्ट १९३७, रिलीफ आव इनडेटेडनेस एक्ट १९३९ लागू हैं। मालगुजार पैसा और गल्ला दोनों उधार देते हैं। सवाईका चलन अधिक है। हिसाव और रजिस्ट्रीकी व्यवस्था है। प्रान्तीय सरकारके कथनानुसार स्थिति सन्तोषजनक है।

मध्य प्रान्त

मद्रासमें लैंड इम्प्रूवमेंट लोन्स एक्ट १८८३, एग्रीकल्चरिस्ट लोन्स एक्ट १८८४, एजेन्सी ट्रेक्ट्स इन्टरेस्ट एंड लैण्ड ट्रांसफर एक्ट १९१७, मद्रास डेटर्स प्रोटेक्शन एक्ट १९३४, एग्रीकल्चरिस्ट लोन्स संशोधन एक्ट १९३५, मद्रास डेट कौंसिलियेशन

मद्रास

एक्ट १९३६, एग्रीकल्चरिस्ट रिलीफ एक्ट १९३८, मद्रास पान ब्रोकर्स एक्ट लागू है। यहाँपर किसान सरकारसे केवल एक प्रतिशत, सहकारी समितियोंसे ६ प्रतिशत, देहाती साहूकारों तथा अन्य लोगोंसे ९३ प्रतिशत कर्ज लेते हैं। प्रान्तीय सरकारका कहना है कि यहाँके देहाती साहूकार किसानोंकी ईमानदारीपर अधिक विश्वास करते हैं। हिसाब प्रायः मौखिक ही चलता है। ऋण अधिकतर गल्लेके रूपमें चुकाया जाता है।

सीमाप्रान्तमें लैंड इम्प्रूवमेंट एक्ट १८८३, एग्रीकल्चरल लोन्स एक्ट १८८४, पंजाब एलेनेशन एक्ट लागू है पर कोहाट, बन्नू और डेरा

सीमाप्रान्त

इस्माइलखांपर उसका कोई विशेष प्रभाव नहीं। इन जिलोंके किसान बुरी तरह ऋणग्रस्त हैं। इस प्रान्तका बनिया उस समय कर्जदारोंसे फसल खरीदता है जब उसका मूल्य न्यूनतम होता है। जब भाव चढ़ता है तब माल बेचकर मालामाल हो जाता है।

उड़ीसामें लैंड इम्प्रूवमेंट एक्ट, एग्रीकल्चरल लोन्स एक्ट और उड़ीसा मनीलेंडर्स एक्ट १९३९ लागू है। पर इन कानूनोंका कोई

उड़ीसा

विशेष प्रभाव नहीं है। यहाँकी प्रान्तीय सरकारको यहाँके महाजनके खिलाफ भारी सूदखोर होनेकी शिकायत है। वह ऊँची दरपर तो पैसा और गल्ला उधार देता ही है, यह भी करता है कि देता अस्सी, लिखाता सौ है!

पंजाबमें पंजाब एलेनेशन आव लैंड्स ऐक्ट १९०१, संशोधन दूसरा, तीसरा १९३८, युजूरियस लोन्स एक्ट १९१८, पंजाब

पंजाब

रेगुलेशन आव एकाउंट्स एक्ट १९३०, पंजाब रिलीफ आव इनडेटेडनेस एक्ट, पंजाब डेटर्स प्रोटेक्शन एक्ट १९३६, रजिस्ट्रेशन आव मार्गेज्ड लैंड्स एक्ट १९३८ लागू हैं। रिलीफ आव इनडेटेडनेस एक्टमें दामदुपटका सिद्धान्त किसानोंके

लिए हितकर सिद्ध हुआ है। अदालतें मूलसे दूने तककी ही डिग्री दे सकती हैं, उससे अधिककी नहीं। इसके कारण १९४३ के अन्ततक ३ करोड़ ६१ लाख ऋण १ करोड़ ३८ लाख रह गया। नहरें निकल जानेसे पंजावके वनियोंका महत्त्व १५, २० सालके भीतर वहुत घट गया।

सिंध

सिन्धमें डेकन एग्रीकल्चरिस्ट रिलीफ एक्ट, सिन्ध एग्रीकल्चरिस्ट रिलीफ एक्ट १९४० और मनीलैंडर्स एक्ट १९४४ लागू हैं। यहांका वनिया किसानोंके लिए भीषण अभिशाप सिद्ध हो रहा है।

युक्तप्रान्त

युक्तप्रान्तमें महाजनका वोलवाला है। वह किसानोंसे २५ प्रतिशतसे लेकर १०० प्रतिशततक व्याज लेनेमें संकोच नहीं करता[1]।

स्पष्ट है कि इतने कानूनोंके रहते हुए भी किसानोंकी कर्जदारी कुछ कम नहीं हुई है। इसका वहुत कुछ उत्तरदायित्व सरकारपर है।

और तो और, सरकार जो तकावी आदि सहायता देती है वह भी लाल फीतेकी वदौलत किसानोंके किसी काम नहीं आती। उसमें वर्षों-की देर लगना साधारण वात है[2]। उदाहरण लीजिये—

वम्वईके थाना जिलेके भिवांडी तालुकामें १९२७ से १९३४ तक केवल ९ आदमियोंको तकावी मिली। स्वीकृत प्रार्थियोंमें दो ऐसे हैं जिनकी दर्ख़ास्तें मंजूर करनेमें सरकारको दो वर्षका समय लगा।[3]

भला ऐसी नीतिसे त्रिकालमें भी भारतके ऋणग्रस्त किसानका भला हो सकता है?

१—दुर्भिक्ष जांच कमीशन, १९४५, अंतिम रिपोर्ट, पृष्ठ ४६१–४६७।

२—डाक्टर वोकलर : रिपोर्ट ओन एग्रीकल्चरल इम्प्रूवमेंट, पृष्ठ ८५।

३—एम० जी० भगत : दि फार्मर–हिज वैलफेयर एंड वैल्थ, १९४२।

सहकारिता आन्दोलन

जगन्नियन्ताने जब 'एकोहं वहुस्याम्' की कल्पना की तभी मानों सहयोग और सहकारिताकी नींव डाल दी। प्रकृति और पुरुप, नारी और नरकी सृष्टि ही इसके आधारपर है। सहयोगकी उपयोगिता स्वयंसिद्ध है। संयुक्त परिवार, जाति और समाज इसीका व्यापकरूप कहे जा सकते हैं।

जन्म

उन्नीसवीं शताब्दीमें पूंजीवादके विकासके फलस्वरूप समाजमें विपमता उत्पन्न हुई। कुछ उदार सज्जनोंने अनुभव किया कि निर्बल और दरिद्र व्यक्ति अपना संघटन करके ही अपनी अवस्था सुधार सकते हैं। उनका यही आन्दोलन 'सहकारिता आन्दोलन'के नामसे प्रसिद्ध है। इस आन्दोलनका श्रीगणेश जर्मनीमें हुआ। रेफीसन और शुल्ज इसके जन्मदाता हैं। दोनोंने लगभग एक साथ जर्मनीके दो भिन्न भागोंमें दो प्रकारकी सहकारी समितियाँ स्थापित कीं।

रेफीसन समितियाँ

रेफीसन सहकारी साख समितियां उन स्थानोंके लिए विशेष उपयुक्त होती हैं जहाँ जनसंख्या अधिक न हो, थोड़े आदमी रहते हों, सभी परस्पर परिचित हों, स्थायी रूपसे अपनी ही वस्तीमें निवास करते हों और जिनकी आर्थिक स्थिति अच्छी न हो। ऐसी समितियाँ गाँवोंके लिए अच्छी हैं। ये अपरिमित दायित्ववाली होती हैं। इनका ऋणभार किसी एक सदस्यसे भी वसूल किया जा सकता है।

शुल्ज समितियाँ

शुल्ज सहकारी साख समितियां परिमित दायित्ववाली होती हैं। इनके सदस्योंसे केवल उतना पैसा वसूल किया जा सकता है जितना व्यक्तिगत रूपसे उनके नाम निकलता है। सदस्योंका परस्पर परिचित होना भी आवश्यक नहीं है। नगर इसके लिए उपयुक्त स्थान होते हैं।

दोनों प्रकारकी समितियोंसे केवल दो वर्गके लोगोंको लाभ है—उत्पादक तथा उपभोक्ता। बीचके पूंजीवाले दलालोंको इनसे लाभ नहीं।

भारतमें श्रीगणेश

देशकी भयावह दरिद्रता, किसानोंकी भयंकर कर्जदारी और कारीगरोंकी दयनीय स्थिति देखकर भारतमें भी सहकारिता आन्दोलन आरम्भ किया गया। इसका श्रेय मद्रासके अधिकारी श्री फ्रेडरिक निकलसनको है। १८९५-९६की अपनी रिपोर्टमें आपने इस बातपर जोर दिया कि भारतमें जर्मनीकी रेफीसन सहकारी साख समितियोंके आधारपर सहकारी समितियां खोली जांय।

पहला कानून

यों तो सन् १९०१ में ही युक्तप्रान्तमें सहकारी साख समितियोंकी स्थापना हो गयी थी और पंजाबमें भी इसका कार्य आरम्भ हो गया था पर इन समितियोंका कार्य उल्लेखनीय न था। १९०१ में भारत सरकारने सर एडवर्ड लाकी अध्यक्षतामें इसके लिए कमेटी नियुक्त की। इस ला-कमेटीकी सिफारिशोंके अनुसार सन् १९०४ में 'सहकारी साख समिति कानून' बना। इस प्रकार २५ मार्च १९०४ को भारतमें विधिवत् इस आन्दोलनकी नींव पड़ी।

इस कानूनमें कहा गया था कि किसी गांव अथवा नगरके एकही जाति या व्यवसायके एक दूसरेसे परिचित दस अथवा अधिक व्यक्ति मिलकर कोआपरेटिव सोसायटियोंके रजिस्टारकी अनुमतिसे सहकारी साख समितिकी स्थापना कर सकते हैं। देहातोंके लिए अपरिमित दायित्वका नियम रखा गया और नगरोंके लिए परिमित दायित्वका। देहातकी सहकारी समितियोंका सारा लाभ संचित कोषमें रखनेका नियम था। पर उस कोषकी आवश्यकता पूरी हो जानेपर सदस्योंको बोनस देनेकी छूट थी। नगरोंकी सहकारी साख समितियाँ केवल एक चौथाई लाभ संचित कोषमें रखें और शेष लाभ डिविडेंडके रूपमें सदस्योंमें बांट दें। समितियोंकी आयके चार सूत्र थे—सदस्योंकी

भरतीका शुल्क, हिस्सोंकी रकम, सदस्यों द्वारा जमा कराया रुपया और बाहरसे लिया गया ऋण। सरकारने इस आन्दोलनके लिए कुछ विशेष सुविधाएँ प्रदान कीं। जैसे, आयकर, स्टाम्प और रजिस्ट्रीकी फीससे मुक्ति, हिसावकी नि:शुल्क जाँच, प्रथम तीन वर्षतक नयी सहकारी समितियोंको विना व्याजका ऋण आदि।

इस आन्दोलनने शीघ्र ही अच्छी प्रगति की। पर साथ ही अनेक नयी समस्याएँ भी उठ खड़ी हुईं। पहले कानूनकी कमियों कमजोरियोंके

कानूनमें सुधार

लिए १९१२ में नया कानून बना और सहकारिताका क्षेत्र अधिक व्यापक हुआ। परिमित दायित्वके आधार-पर केन्द्रीय संस्थाओं, संघों, केन्द्रीय और प्रान्तीय बैंकोंकी भी स्वीकृति मिल गयी। मुनाफेके वितरणका सारा नियंत्रण सरकारने अपने हाथमें ले लिया। संचित कोषमें पर्याप्त रकम एकत्र हो जानेपर मुनाफेका कुछ अंश सदस्योंको बाँटे जानेकी व्यवस्था की गयी। उसमेंसे दस प्रतिशतनक रकम धर्मादा खातेमें खर्च कर सकनेकी छूट दी गयी।

नये कानूनसे इस आन्दोलनको बल मिला। साख समितियोंके अतिरिक्त अन्य अनेक प्रकारकी सहकारी समितियोंका भी जन्म हुआ।

विकास

जैसे, कृषि विक्रय समिति, पशु बीमा समिति, दूध समिति, सूत, रेशम, खाद, क्रय समिति, उपभोक्ता समिति आदि। देहातोंमें इसका अच्छा प्रचार हुआ। जुलाहों, कसेरों, बढ़इयों, लुहारों, रंगरेजों, आदि कारीगरों और छोटे व्यवसायियोंने मालके उत्पादन, खरीद और बिक्रीके लिए सहयोग समितियां खोलीं।

सहकारिताके आर्थिक पहलूपर विचार करनेके लिए १९१४ में सरकारने सर एडवर्ड मेकलगनकी अध्यक्षतामें एक कमेटी नियुक्त की, जिसकी सिफारिशोंसे इस आन्दोलनको विशेप लाभ पहुंचा। १९१९ के शासन-सुधारोंके अनुसार सहकारिता प्रान्तीय सरकारोंका विषय बना दी गयी। प्राय: सभी प्रान्तीय सरकारें इसमें दिलचस्पी ले रही हैं।

सहकारी समितियोंके दो भेद किये जा सकते हैं। उत्पादक समितियां और उपभोक्ता समितियां। उत्पादक समितिका लक्ष्य होता है

संघटन

उत्पादकोंको अधिकतम लाभ पहुंचाना। वह कमसे कम खर्चमें माल तैयार करती हैं और ठीक समयपर उसे अच्छे दामपर बेचती है। वह एक-एक धन्धेके कारीगरोंका संघटनकर उन्हें सस्ते सूदपर रुपया उधार देती है। उन्हें किफायतसे कच्चा माल खरीदनेमें सहायता पहुंचाती हैं। कारीगरोंको ट्रेनिंग भी दिलाती है। ऐसी समितियोंसे उत्पादक महाजनकी इच्छापर निर्भर रहना छोड़ देते हैं और वे अच्छा पैसा पा जाते हैं।

उपभोक्ता समितिका उद्देश्य होता है—उत्पादकोंसे अच्छा तैयार माल किफायत दाममें खरीदना और अपने सदस्योंको यथाशक्ति सस्ते दामपर बेचना। ये समितियाँ उपभोक्ताओंको मुनाफाखोर व्यापारियोंके शोषणका साधन नहीं बनने देतीं।

इन समितियों द्वारा किसानोंको साहूकारोंके पंजेसे मुक्त करानेमें भारी सहायता मिली है। समितियाँ अपने सदस्योंकी आवश्यकताओंका ध्यान रखती हैं और उपयुक्त अवसरपर उन्हें कम सूदपर रुपया उधार देकर उनकी रक्षा करती हैं। उनकी अपव्ययकी आदतपर नियंत्रण करती हैं। उन्हें मितव्ययी बनाती हैं। ऋण अधिकतर उत्पादक कार्योंके लिए ही दिया जाता है।

आरम्भिक कृषि साख समितियोंकी व्यवस्था लोकतंत्रात्मक पद्धतिपर होती है। इनके पदाधिकारी अवैतनिक रूपमें कार्य करते हैं। साधारण समिति कार्यकारिणीका चुनाव करती है। साधारण समितिमें दससे सौतक सदस्य रह सकते हैं। सारा प्रबन्ध कार्यकारिणी समितिके हाथमें रहता है। मंत्री वैतनिक होता है। समितिका मासिक हिसाब देते रहना पड़ता है। वार्षिक लेखाजोखा साधारण समितिसे मंजूर कराना पड़ता है। ग्राम समितियोंके आर्थिक साधन तगड़े नहीं

होते। उन्हें अधिकतर बाहरसे ऋण लेना पड़ता है। केन्द्रीय और प्रान्तीय सहकारी बैंकोंसे उन्हें ऋण मिल जाता है।

सहकारी साख समितियोंकी केन्द्रीय संस्था केन्द्रीय बैंक कहलाती है। ऐसे बैंक विभिन्न प्रान्तोंमें हैं। कुछ रियासतोंमें भी ऐसे बैंक हैं।

केन्द्रीय बैंक

ये बैंक जिलेकी सहकारी समितियोंकी सहायता करते हैं। प्रायः जिलेके सदर मुकाममें ही इनका प्रधान कार्यालय होता है। इनकी पूंजी शेयरों (हिस्सों) द्वारा एकत्र होती है। इनके लिए यह बन्धन नहीं है कि इनकी सदस्यता सहकारी समितियोंमें ही केन्द्रित हो। ये सामान्य व्याजपर सर्व-साधारणकी अमानतें जमा करते हैं। ग्राम सहकारी समितियोंको ये कुछ अधिक सूदपर रुपया उधार देते हैं। अपना लाभ निर्धारित नियमोंके अनुसार अपने हिस्सेदारोंमें बांट देते हैं।

कुछ प्रान्तोंमें प्रान्तीय सहकारी बैंक होते हैं। ये केन्द्रीय बैंकोंका नियंत्रण करते हैं। उन्हें सहायता देना भी इनका काम है। ये बैंक

प्रान्तीय बैंक

अन्य बैंकोंकी भाँति बैंकिंगके अन्य काम भी करते हैं। जैसे, माल गिरवी रखना, चैक और हुंडी आदिका भुगतान करना। इनका रिजर्व बैंक तथा मिश्रित पूंजीवाले बैंकोंसे सम्बन्ध रहता है और ये स्वयं उनसे सहायता लेते रहते हैं।

केन्द्रीय और प्रान्तीय बैंक तो अल्पकालके लिए ही ऋण दे सकते हैं, अधिक समयके लिए ऋण देना उनकी सामर्थ्यके बाहरकी बात है;

भूमिबन्धक बैंक

परन्तु पुराने और भारी सूदवाले ऋणसे मुक्त होने अथवा कृषिमें स्थायी सुधार करने, चकबन्दी करने, अच्छे हल, बैल तथा यंत्र आदि खरीदनेके लिए तो दीर्घकालीन ऋणकी ही आवश्यकता है। इसके लिए भूमिबन्धक, 'मोर्गेज' बैंक ही सबसे उपयुक्त हो सकते हैं। ये बैंक कृपियोग्य भूमिको पचीस-तीस सालके लिए रेहन रखकर रुपया उधार देते हैं, कम सूद लेते हैं और

छोटी किस्तोंमें इसका भुगतान ले लेते हैं। पंजाव, बंगाल, मध्यप्रान्त, वम्वई, मद्रासमें इस प्रकारके वैंक है। मद्रासमें ऐसे वैंक सवसे अधिक हैं। १९४०-४१ में सारे देशमें भूमिवन्धक वैंकोंकी संख्या २५२ थी, जिनमें केवल मद्रासमें १२० थे। देशकी अवस्थाको देखते हुए अभी ऐसे वैंकोंकी यहां भारी कमी है।

आन्दोलनकी प्रगति

४० करोड़से अधिक जन-संख्यावाले इस देशमें सहकारिता आन्दोलनका कार्य इतने दिनसे चलते रहनेपर भी अभी शैशवावस्थामें ही है। किसानोंमें इससे मितव्ययिता, स्वावलम्वन, सहयोग तथा कुछ राजनीतिक चेतनाका विकास हुआ है सही, पर वह सागरमें एक वूंदके समान ही है। यह वात इन आंकड़ोंसे स्पष्ट है -

१९४०-४१ के आँकड़े

सहकारी संस्थाएँ		१,४२,५१२
कृषि सहकारी समितियाँ	१,२३,९७६	
अन्य ,, ,,	१७,४५९	
वैंकिंग यूनियन, केद्रीय, प्रान्तीय वैंक	६११	
सुपरवाइजिंग और गारंटी यूनियन	४६६	

मद्रास	१४४०९	मध्यप्रान्त	४९३९	वड़ौदा	१३०३
वम्वई	५२९८	आसाम	१५३५	हैदरावाद	४२३१
सिंध	१३२९	सीमाप्रान्त	६४४	भोपाल	४०६
वंगाल	४०३८४	कुर्ग	३१२	ग्वालियर	३९७२
विहार	८२८७	अजमेर मेरवाड़ा	७५९	इन्दौर	८६६
उड़ीसा	२७१५	हैदरावाद केन्द्र सं० क्षेत्र	२०	काश्मीर	३८१५
संयुक्तप्रान्त	१६८५६	दिल्ली	३९६	त्रावणकोर	१४१२
पंजाव	२६०६०	मैसूर	१९५६	कोचीन	३१४

कुल चालू मूलधन	१०९ करोड़ ३४ लाख रुपया
भारतमें १ लाख निवासियोंपर	४२.१ समितियाँ
देशी रियासतोंमें ,, ,,	४१.३ ,,
भारतमें आरम्भिक सदस्य	५६,२८,९४९
देशी रियासतोंमें ,,	७,७१,४१०
कुल सदस्य	६४,००,३५९

१८ जनवरी १९४५ को भारत सरकारने सहकारिताके विस्तारकी योजना बनानेके लिए श्री आर० जी० सरैयाकी अध्यक्षतामें एक कमेटी नियुक्त की थी। उसने बताया है कि भारतमें सहकारिता आन्दोलनके विस्तारकी अत्यधिक आवश्यकता है। खेती, पशुपालन, डेयरी, मछली मारना, उपजकी बिक्री, ऋण, ग्रामोद्योग, मजदूर, ग्राहक, विक्रेता, मकान, स्वास्थ्य, यातायात, बीमा, आदि विभिन्न क्षेत्रोंमें काम करनेके लिए अधिकाधिक सहकारी समितियाँ खोलनी चाहिये। इसके लिए कमेटीने केन्द्रीय सरकारके सामने कितनी ही सिफारिशें पेश की हैं। सरकारसे १० करोड़से अधिककी सहायता और पौने दो करोड़ रुपया ऋण माँगा गया है।[1] माना योजना व्ययसाध्य है, पर उसका लाभ भी प्रत्यक्ष है।

विस्तारकी योजना

१—रिपोर्ट आव दि कोआपरेटिव प्लैनिंग कमेटी, १९४६।

कृषि और सरकार

१८६६ में उड़ीसाके दुर्भिक्ष जाँच कमीशनने सरकारको सुझाया कि कृषिकी उन्नतिके लिए एक विशेष सरकारी विभाग होना चाहिये।

कृषि विभाग

सरकारने यह सलाह एक कानसे सुनकर दूसरेसे उड़ा दी। १८८० में जब दूसरे दुर्भिक्ष जाँच कमीशनने पुनः इसपर जोर दिया और उधर लंकाशायरके मिलवालोंने भारत सरकारपर जोर डाला कि भारतीय कृषिकी उन्नति करके लम्बे रेशेवाली कपास भारतमें उगायी जाय, तब सरकारने इस ओर थोड़ा-सा ध्यान दिया। फलतः कृषि विभागका जन्म हुआ।

क्रमशः विभिन्न प्रान्तोंमें भी कृषि विभाग खुले। पर आँकड़े आदि संग्रह करनेके अतिरिक्त उनसे और कुछ करते न बन पड़ा। प्रयोगके लिए कई जगह सरकारी फार्म खुले। १८७१ में सेदापेटमें, १८८० में पूनामें, १८८१ में कानपुरमें, और १८८३ में नागपुरमें ऐसे फार्म खुले। १९०१ में केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारोंको परामर्श देनेके लिए एक कृषि इन्सपेक्टर जनरल नियुक्त किया गया। १९१२ में यह पद उड़ा दिया गया। इसका कार्य पूसा-स्थित सरकारी केन्द्रीय कृषि रिसर्च इंस्टीट्यूटके डाइरेक्टरको सौंप दिया गया। यह अधिकारी १९२९ तक भारत सरकारके कृषि-परामर्शदाताका कार्य करता रहा।

१९०३ में लार्ड कर्जनने कृषिकी उन्नतिके लिए केन्द्रीय अनुसंधान-शाला खोलनेकी जो सिफारिश की वही १९०५ में पूनाके रिसर्च इंस्टी-

लार्ड कर्जनकी चेष्टा

ट्यूटके रूपमें साकार हुई। १९०६ में भारतीय कृषि सर्विसका भी जन्म हुआ। तबसे सरकार नियमित रूपसे इस ओर कुछ ध्यान देने लगी। १९१९ के शासन-सुधारोंके अनुसार कृषि विभाग प्रान्तीय सरकारके हाथमें आगया। फिर भी अनुसंधान, कृषिके पौधोंके रोगोंकी रोकथाम आदि विषय केन्द्रीय ही बने रहे।

केन्द्रीय कृषि विभागने विभिन्न प्रकारकी जमीनोंमें उचित खादके उपयोग, उत्तम बीज, पौधोंके रोग-निदान और उनकी चिकित्सा, नये औजारोंके उपयोग, नये प्रकारसे खेती, पशुपालन आदि अनेक विषयोंमें अच्छी जानकारी प्राप्त की है ; पर जिन किसानोंके लिए यह है उनके लिए तो वह व्यर्थ-सी ही है। १६३४ में विहारके भूकम्पसे बुरी भाँति ध्वस्त होनेके उपरान्त पूसाका रिसर्च इंस्टीट्यूट दिल्ली चला गया। १६३६ से वह दिल्लीमें है। गेहूँ और गन्नेकी उन्नति करनेमें इसे पर्याप्त सफलता मिली है। इसके ६ विभाग मुख्य है—कृषि, रसायन और भूमि-विज्ञान, वनस्पति-विज्ञान, पोधोंका रोग-निदान, उत्तम गन्ना-उत्पादन और कृमि-विज्ञान। दिल्ली, गढ़मुक्तेश्वर, बंगलौर, वैलिंगटन, करनाल, आनन्द, कोयम्बतूर, और कानपुरमें चीनी, दूध, मक्खन, कपास, गन्ना आदिके लिए केन्द्रीय कृषि विभागके अन्तर्गत उत्तम अनुसंधानशालाएँ हैं।

पूसा इंस्टीट्यूट

१९२६ के शाही कृषि कमीशनकी सिफारिश मानकर 'इम्पीरियल कौंसिल आव एग्रीकल्चरल रिसर्च' नामक एक कृषि कौंसिल स्थापित की गयी। इसका मुख्य उद्देश्य है—कृषिकी उन्नति करना, अनुसंधान करना और देश-विदेशके कृषि-सम्बन्धी ज्ञानका प्रसार करना। इसके निमित्त विभिन्न सरकारी विभागों-में समन्वय करना भी इसका काम है।

कृषि कौंसिल

शाही कृषि कमीशनकी सिफारिशपर १६३५ में केन्द्रीय कृषि हाट विभागकी स्थापना हुई है। इसके मुख्य कार्य हैं—कुछ विशेष महत्वके पदार्थोंके बाजारोंकी वर्तमान स्थिति और भावी उन्नतिकी जाँचकर उनके विषयमें ब्यौरेवार रिपोर्ट देना, उनके भौतिक और रासायनिक लक्षणोंकी परीक्षाकर उचित कक्षा निर्धारित करना, देहातोंके यातायातकी व्यवस्थामें सुधार करना, शीघ्र बिगड़नेवाले पदार्थोंको ठंडे स्थानमें सुरक्षित रखनेके उपाय

हाट व्यवस्था

खोजना आदि । १६३७ में कक्षा निर्धारणका कानून बना उसके आधारपर १६४४ में ८१३ लाख रुपयेका व्यापार हुआ जिसमें ५७० लाखका घीका ही व्यापार हुआ । इसके अतिरिक्त अंडे, पशुओंकी खाल, तेल, गुड़, चावल, आटा, तम्बाकू, रुई, सेव, आम, मक्खन, फलोंकी वस्तुएँ आदि इसमें सम्मिलित हैं । इनपर 'आग' मार्ककी मुहर लगी रहती है ।

इस विभाग द्वारा रेडियोपर बाजार-भाव भी ब्राडकास्ट किया जाता है ताकि जनताको वस्तुओंके भावका बराबर पता बना रहे ।

सरकारी प्रचार

कृषि-विभाग अपने ज्ञानके प्रचारके लिए कुछ दिनसे प्रयत्नशील है । मासिक पत्र, पुस्तिकाएँ, परचे, प्रदर्शनियाँ, सरकारी फार्म, बीज-गोदाम आदि साधनोंसे वह इस दिशामें कुछ प्रयत्न कर रहा है पर उसका प्रयत्न अभीतक आरम्भिक अवस्थामें ही है । सरकारका ग्रामसुधार विभाग भी इस दिशामें कुछ काम कर रहा है पर उसमें भी प्रदर्शन ही अधिक है । पंजाबके भूतपूर्व गवर्नर श्री हेलीने यह बात स्वीकार की है कि हमने ग्रामवासियोंकी दशा सुधारनेके लिए हृदयसे प्रयत्न नहीं किया है। तभी तो किसानोंकी यह स्थिति है, सरकार चाहती तो इस दिशामें बहुत कुछ कर सकती थी। श्री ब्रेनका पंजाबके गुड़गांव जिलेका प्रयोग कम सराहनीय नहीं है ।

आखिर भाड़ेके टट्टुओंसे ग्रामसेवाकी आशा रखी ही क्यों जाय ?

१—एफ० एल० ब्रेन : विलेज अपलिफ्ट इन इंडिया, भूमिका ।

ये नब्बे साल

१८५७ से १९४७ ! ब्रिटिश शासनके ये ६० साल भारतीय कृषिके इतिहासमें अपना विशेष महत्त्व रखते हैं। ईस्ट इंडिया कम्पनीने भारतमें जो रियासत खड़ी की उसका पूरा लाभ उठानेमें ब्रिटिश सरकारने कोई कसर नहीं उठा रखी।

शासनका जुआ बदलनेका किसानोंपर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। इंग्लैंडकी औद्योगिक क्रांति, वहाँकी लकदक मशीनें जब पैर पसारने लगीं और बड़े पैमानेपर उत्पादन होने लगा तो यह परम स्वाभाविक था कि गोरे उद्योगपति भारत जैसे बढ़िया बाजारमें अपना माल खपानेकी बात सोचते। उन्होंने लड़-झगड़कर भारतमें रेलोंका विस्तार कराया। फिर क्या था ? भारतको कपास तथा अन्य कच्चा माल रेलों और जहाजोंमें लद-लदकर विलायत पहुँचने लगा।

आरम्भिक स्थिति

अमेरिकन गृहयुद्धने भारतीय कपासको अच्छा प्रोत्साहन दिया। कपासका दाम चढ़ा और निर्यात भी खूब बढ़ा[1]—

मूल्य	१८५९	१८६०	१८६१	१८६२	१८६३
प्रति पौंड आनोंमें	२.७	३.७	४.२	६.४	१०.५
निर्यात गाँठोंमें	५०६६९५,	५६२७३८,	९८६२८०,	१०७१७६८,	१२२९९८४.

सन् १८५९ में कपासका जो दाम था वही सन् १८६३ में चौगुना होगया। फलतः कुछ असावधान और शाहखर्च किसानोंको छोड़ प्रायः

१—जी०वाट : डिक्शनरी आव इकोनामिक प्राडक्ट्स आव इंडिया; कपासपर लेख।

सभी किसान ऋणमुक्त हो गये ।[1] कपासकी उत्पत्ति कितनी तीव्र गतिसे बढ़ी, इसका प्रमाण मध्यप्रान्तके ये आँकड़े हैं—

साल	एकड़	साल	एकड़
१८६१—६२	३७५,६२३	१८६५—६६	५८७,३९८
१८६२—६३	४२७,१११	१८६६—६७	५६८,८०१
१८६३—६४	४८८,४३६	१८६७—६८	७३५,६३३
१८६४—६५	६९१,१९८	१८६८—६९	७५०,८७५

यह वृद्धि बंगालके अतिरिक्त प्रायः सभी प्रान्तोंमें हुई । मद्रासके केवल बेल्लारी जिलेमें ३ सालके भीतर किसानोंने कपासकी बिक्रीसे १५ लाख पौंड कमाये ।[2]

भारतीय किसानके वैभवका यह काल चपलाकी भाँति क्षण भरमें विलीन होगया । अमेरिकन गृहयुद्ध समाप्त हुआ नहीं कि कपासका दाम बुरी तरह गिरा । किसान फिर कंगालका कंगाल ![3] पैसेका नशा हिरन होगया । फिर वह पहलेकी भाँति कर्जदार बननेको विवश होगया । अवस्था इतनी भयंकर हो उठी कि उसने साहूकारपर संघटित हमला बोल दिया । दक्षिणमें भीषण विद्रोह होगया ।[4] उसकी दरिद्रता चरम सीमापर जा पहुँची ।[5] सन् १८६० से १८८० तकके ये २० वर्ष किसानके लिए मारात्मक ही सिद्ध हुए ।

दक्षिणका विद्रोह

अगले १५ वर्षोंमें यद्यपि कोई भयंकर दुर्भिक्ष नहीं पड़ा तथापि जहाँ-तहाँ कुछ खाद्य-संकट रहा । जैसे, १८८४–८५ में बंगालमें,

१—मध्यप्रान्तके रुई कमिश्नरकी वार्षिक रिपोर्ट, १८६७–६८, पृष्ठ १३२ ।

२—राघवायंगर : मेमोरेण्डम ओन दि प्रोग्रेस आव दि मद्रास प्रेसिडेन्सी डिउरिंग दि लास्ट फोरटी ईयर्स, १८९३, पृष्ठ ३९ ।

३—ईस्ट इंडिया फिनान्स कमेटी, १८७२, नौरोजी फरदुमजीकी गवाही ।

४—दक्षिणके विद्रोहकी रिपोर्ट, १८७६ ।

५—गाडगिल : दि इंडस्ट्रियल एवोल्यूशन आव इंडिया, पृष्ठ ३१ ।

१८८६ में छत्तीसगढ़में, १८८६ में उड़ीसामें, और १८८६–६० में मद्रास आदिमें।

परन्तु १८९९–१९०० में बड़ा भयंकर दुर्भिक्ष पड़ा। बम्बई प्रेसिडेन्सी, मध्यप्रान्त और बरार, मध्य भारत और हैदराबादका अधिकांश उससे प्रभावित हुआ।

इस दुर्भिक्षोंका परिणाम यह हुआ कि किसानने गल्ला पैदा करनेकी ओर अधिक ध्यान देना प्रारम्भ किया। १६०० से १९१४ तक ८८ प्रतिशत भूमिमें गल्ला होता रहा। चारेका क्षेत्र कुछ बढ़ा। अफीम और नीलकी खेती समाप्त-सी होगयी। विदेशी रंगकी प्रतिद्वंद्वितामें नीलका रंग फीका पड़ गया!

१९१४ के बाद विश्वने दो महायुद्ध देखे। एकसे एक भयंकर और बीभत्स! भारतका लाखों मन गल्ला युरोपके रणक्षेत्रमें ढकेल दिया गया। फलतः बंगालमें ऐसा भीषण दुर्भिक्ष पड़ा कि किसान अपना घरबार, मालमता, बर्तनभाँड़ा आदि सब बेचकर, मासूम बच्चोंको कौड़ियोंके मोल लुटाकर जूठनके दो दाने खोजनेके लिए कलकत्ता जैसी महानगरीकी ओर दौड़ा। पर हायरे दुर्भाग्य, उसके लिए भी उसे कुत्तोंसे मल्लयुद्ध करना पड़ा! लाखों व्यक्ति तड़प-तड़पकर स्वर्ग सिधारे।

इस बीच राजनीतिक जागृतिके फलस्वरूप देशमें कुछ शासन-सुधार हुए। बहुत दिन बाद जनताके प्रतिनिधियोंकी सरकार बनी।

नया प्रकाश

किसानको कुछ राहत मिली। कांग्रेसी मंत्रिमंडलोंने किसानके हितोंकी ओर ध्यान दिया। उसके लिए कुछ कानून बनाये।

स्वतंत्र भारतमें किसानका भविष्य उज्ज्वल है। पर वह यह कभी न भूलेगा कि ब्रिटिश शासनने उसका रक्त और मांस सब कुछ निकाल लिया है!

अभागा भारतीय किसान!

ग्रामोद्योग

भारतके आर्थिक शोषणके इतिहासपर दृष्टिपात करते ही यह बात स्पष्ट हो जाती है कि इंग्लैंडने भारतीय उद्योगोंको पूर्णतः नष्ट करके एक-एक वस्तुके लिए हमें परमुखापेक्षी बना दिया। प्रलोभन और चटकमटकके फेरमें पड़कर हम कर्तव्य-पराङ्मुख बन गये हैं। अशिक्षित ही नहीं, शिक्षित भारतीयतक बुरी भाँति विदेशी रंगमें रंग गये हैं। हमारे भोजन-वस्त्र, खानपान, रहन-सहन, बोलचाल आदि सब बातोंपर विदेशी छाप लग गयी है।

डाक्टर पट्टाभिने लिखा है कि शिक्षित भारतीयको सवेरेसे शाम-तक विलायती चीजोंको इस्तेमाल करते हुए हम नित्य देख सकते

विलायतीकी भरमार

हैं। कंघे, ब्रुश, साबुन, वैसलिन, बटन, चेहरेपर लगानेकी नफासतकी सभी चीजें, मोजे, क्लिप, पेटी, कालर, टाई, बूट, हैट, प्यालियाँ, चम्मच, काँटे, चाकू, कैंची आदि सब विलायती होंगी। खानेपीनेकी चीजें भी वही होंगी। उदाहरणार्थ—फ्रांसका कहवा, आस्ट्रेलियाका दूध, जावाकी चीनी, इंग्लैंडकी चटनी। खाना बनानेका स्टोवतक विलायती होगा। भोजनकी सामग्री और उसके तैयार करनेके सब सामान, पानी छोड़कर, विलायती ही होंगे। डीज लालटेन, पेट्रोमेक्स बत्ती, कलईके बर्तन, धातु चमकानेकी ब्रासो पालिश, आमोद-प्रमोदकी चीजें—हाकी स्टिक, टैनिस रैकेट, क्रिकेट बैडमिण्टनके जाल, पिंगपांग गेंदें, ताश, कागज, कलम, दावात, निब, चश्मा, फीता, मेज, कुर्सी, शीशेके फ्रेम, पर्दे, छड़ी, छाता, चित्र, हारमोनियम, ग्रामो-फोन, रेकार्ड, सारंगी, पियानो, कपड़े लत्ते, दवाएँ, बच्चोंके खानेकी चीजें, उस्तरे, ब्लेड, मक्खन आदि सभी विदेशी होंगे। इतना ही नहीं,

हमारे गरीब मजदूरी पेशावालोंके घरोंमें भी विलायती चीजोंकी भरमार मिलेगी। आरी, वसूली, हथौड़ा, निहाई, सुई, तागे, सीनेकी मशीन, चाकू, कैंची आदि सब चीजें विलायती होंगी।[1]

और इसका परिणाम ?

वह भी डाक्टर पट्टाभिसे ही सुनिये—

गाँवके नाईने जर्मनीका उस्तरा इस्तेमालकर और गाँवके बढ़ईने विदेशसे आयी कीलोंका प्रयोगकर गाँवके लुहारकी रोजी मारी है। लुहारने विदेशी वस्त्र पहनकर जुलाहेकी रोजी बर्बाद कर दी है। जुलाहेने जापानका बना जूता पहनकर मोचीकी और मोचीने कलई की हुई तश्तरियाँ और प्यालियाँ इस्तेमालकर कुम्हारका व्यवसाय नष्ट किया है। कुम्हारने अपने कपड़े धुलाईकी दुकानमें देकर धोबीका धन्धा चौपट कर दिया है। इस प्रकार प्रत्येक अपने पड़ोसीकी रोजी मारता है और गाँव अपने जवारके दूसरे गाँवको बर्बाद करता है![2]

आज छोटी-बड़ी सभी चीजोंके लिए हम पराया मुंह ताकते हैं। शिक्षित और अशिक्षित सभी यह बात भूल गये हैं कि इस प्रकार हम अपने ही देशके उद्योग-धन्धे चौपट कर रहे हैं। बिना समझे बूझे हम विदेशी वस्तुओंके खरीदनेमें अपना पैसा बर्बाद कर रहे हैं और उसीमें अपनी शान समझ रहे हैं!

भारतका किसान ब्रिटिश अमलदारीके पूर्व खेतीके साथ कुछ उद्योगोंमें भी लगा रहता था, पर अंग्रेजोंने आते ही उसके उद्योग-धन्धोंको चौपट कर दिया। उसीका परिणाम है कि किसान आज सर्वथा असहाय है।

अनेक बाधा-विघ्नोंके रहते हुए हमारे कुछ उद्योग आज भी

१—पट्टाभि सीतारामैया : महात्मा गांधीका समाजवाद, पृष्ठ ८२—८३।
२—पट्टाभि: वही, पृष्ठ १९।

जीवित हैं। इसके कई कारण हैं। जैसे, जाति-बन्धनकी कठोरता, व्यवसाय छोड़नेपर जातिच्युत होनेका भय, घर छोड़ बाहर न जानेकी प्रवृत्ति, पर्देकी प्रथा आदि।

जीवित उद्योग

दुर्भिक्ष जांच कमीशन (१९४५) ने विभिन्न प्रान्तीय सरकारोंसे जीवित उद्योगोंके विषयमें जानकारी मांगी थी। प्राप्त जानकारी-का सारांश इस प्रकार है[1] —

आसाम

आसाममें करघेकी बुनाई और रेशमका काम मुख्य है। १९३५-३६ से सरकार करघेकी बुनाईके कार्यको सहायता प्रदान कर रही है। इस उद्योगमें कुछ प्रगति हुई है। इसके अतिरिक्त पीतल आदिके वर्तन बनाने, साबुन, ट्रंक, रबड़के स्टाम्प बनाने आदिके उद्योग भी जीवित हैं। सोने-चांदीका काम, साबुनसाजी, होजियरी आदिके उद्योग भी किसी न किसी रूपमें सांस ले रहे हैं।

बंगाल

बंगालमें सूती, रेशमी और जूटके वस्त्रकी करघेपर बुनाईका उद्योग प्रगति कर रहा है। इसके लिए ४० सरकारी स्कूल हैं और १६ प्रदर्शन-मंडलियां। ४७ गैर-सरकारी स्कूलोंको भी सरकार सहायता दे रही है। १९४१-४२ तक इन स्कूलोंसे १७ हजार लड़कोंने बुनाई सीखी, जिनमें १३ हजार बुनाईके काममें लग गये हैं। इनके अतिरिक्त मिट्टी और धातुके वर्तनोंका काम, छाता बनाना, साबुनसाजी, जूता बनाना, चमड़ा कमाना आदि भी सिखाया जाता है। नमक और कागजके उद्योगका भविष्य उज्ज्वल है।

बिहार

बिहारमें सूती, रेशमी और ऊनी वस्त्रकी कताई-बुनाईका उद्योग, कालीन और दरीका काम, रस्सीका काम, चटाई बुनना, रंगाई, छपाई, दर्जीगीरी, कसीदेका काम, लकड़ीकी दस्तकारी, कागज बनाना, लाखकी चूड़ियोंका काम, साबुन-

---

१ दुर्भिक्ष जाँच कमीशन, १९४५, अन्तिम रिपोर्ट, पृष्ठ ४६१—५०५।

साजी, लुहारगीरी, बढ़ईगीरी, कुम्हारगीरी, चमड़ेका काम, तेल घानी, घी मक्खनका काम, मुर्गी-पालन आदि उद्योग पनप रहे हैं। गुलजार-बाग, भागलपुर, गया, पूसा, बिहार शरीफ आदिमें विभिन्न उद्योगों-की शिक्षाका प्रबन्ध है। बिहारमें प्रायः सभी व्यवसायवाले कृषिसे सम्बद्ध हैं। पशुपालन, मुर्गीपालन, साबुनसाजी, टोकरी बनाना, कताई-बुनाई, आदि प्रमुख सहायक उद्योग हैं। चर्खा संघके खादी कार्यसे भी अनेक व्यक्तियोंको रोजी मिल रही है।

बिहारमें प्रायः सभी व्यवसायवाले कृषिसे सम्बद्ध हैं। पशु-पालन, मुर्गी-पालन, साबुनसाजी, टोकरी बुनना, कताई, बुनाई आदि प्रमुख सहायक उद्योग हैं। चर्खा संघके खादी-कार्यसे भी अनेक व्यक्तियोंकी रोजी चल रही है।

बम्बईमें सूती और ऊनी वस्त्रकी कताई-बुनाई, पशुपालन, मुर्गी-पालन, रँगाई-छपाई, रस्सी बटना, बढ़ईगीरी, लुहारगीरी, साबुनसाजी,

बम्बई

बेंतका काम, टोकरी बुनना, कागज बनाना, सोने-चाँदीका तार खींचना, ताँबे-पीतलके बर्तन बनाना, तेल घानी, चमड़ा कमाना, जूते बनाना, रेशमका कीड़ा पालना, मधु-मक्खी-पालन, चन्दन और हाथीदाँतका काम, सुनारी, गुड़ बनाना, बीड़ी बनाना आदि प्रमुख उद्योग हैं। बम्बई, सूरत, नासिक, बेलगाँव आदिमें ग्रामोद्योगकी वस्तुओंकी बिक्रीकी व्यवस्था है। कुछ प्रदर्शन मंडलियाँ और औद्योगिक स्कूल भी हैं। ग्रामोद्योग संघ तथा विभिन्न ग्रामोद्योगोंको सरकारी सहायता भी मिलती है।

मध्यप्रान्तमें धान कूटना, आटा पीसना, दाल दलना, गुड़ बनाना, मधुमक्खी-पालन, सूत कातना, भेंड़ पालना, रेशम तैयार करना,

मध्यप्रान्त

चटाई बुनना, रस्सी बनाना, मुर्गी-पालन, चूड़ी, बीड़ी और टोकरी बनाना, लकड़ीका काम, कोयला तैयार करना आदि प्रमुख उद्योग हैं। अखिल भारतीय ग्रामोद्योग संघ

(वर्धा) तेल घानी, कागज बनाना, मधुमक्खी-पालन आदि विभिन्न उद्योगोंकी शिक्षा देता है। उसे प्रान्तीय सरकारसे १८००) वार्षिक सहायता मिलती है। चर्खासंघके खादी-कार्यको प्रोत्साहित करनेके लिए भी प्रान्तीय सरकार सन् १९३८ से कुछ सहायता प्रदान कर रही है।

मद्रास

मद्रासमें सूतकी कताई-बुनाई, गलीचा और कम्बल बुनना, कागज बनाना, तेल घानी, साबुनसाजी, भेंड़ पालना, मुर्गी-पालन, मधुमक्खी-पालन, रस्सी बटना, चटाई बुनना, टोकरी बनाना, धान कूटना, शीशेकी चूड़ियाँ बनाना, 'माल्ट' बनाना, आदि मुख्य उद्योग हैं। प्रान्तीय सरकार ग्रामोद्योगोंको प्रोत्साहन दे रही है। सहकारी समितियाँ भी कुछ कार्य कर रही हैं।

सीमाप्रान्त

सीमाप्रान्तमें कृषिके साथ बुनाई, रस्सी बटना, चटाई बुनना, सब्जी तैयार करना, नक्काशीदार सन्दूक बनाना, वनस्पति तेल, कम्बल, रेशम तैयार करना, मधुमक्खी-पालन आदि प्रमुख उद्योग हैं। युद्धकालमें फल सुखानेका उद्योग कुछ पनपा है।

उड़ीसा

उड़ीसामें संघटित रूपसे ग्रामोद्योगोंका प्रचार नहीं है। अखिल भारतीय ग्रामोद्योग संघ और चर्खासंघने खादीके कार्यको अच्छा प्रोत्साहन दिया है। कताई बुनाईको प्रोत्साहित करनेके लिए सरकार प्रदर्शन और प्रचार करती है। बर्तन और टोकरी बनाना, रस्सी बटना, चटाई बुनना, मुर्गी-पालन, गुड़ बनाना आदि उद्योग छोटी मात्रामें प्रचलित हैं।

पंजाब

पंजाबमें पशु-पालन, डेयरी, भेंड़ों और मुर्गियोंका पालन, फल और साग सब्जीका संरक्षण, मधुमक्खी-पालन, ऊन कताई, लाख और रेशमके उद्योग मुख्य रूपसे प्रचलित हैं। प्रायः प्रत्येक किसान दुधार पशु पालता है। प्रान्तीय सरकार दूधकी मात्रा बढ़ाने और अच्छी नस्लको प्रोत्साहन देने आदिके लिए सचेष्ट है। लायलपुरके कृषि कालेजमें डेयरीके सम्बन्धमें शिक्षा दी जाती है।

साँड़ों तथा अन्य पशुओंके पालनके लिए सरकारने कहीं-कहींपर कुछ भूमि भी प्रदान की है। युद्धकालमें मुर्गियों और अंडोंके व्यापारको प्रोत्साहन मिला है। सरकारने गुरुदासपुर, जालंधर, लायलपुर, मांटगुमरी, मुलतान और रावलपिंडीमें प्रयोगके लिए ६ फार्म खोले हैं।

सिंध

सिंधमें विनौला ओटना, चावल कूटना, गेहूँ पीसना, विनौलेका तेल निकालना, गुड़ बनाना, घी तैयार करना, कृषिके औजार बनाना आदि मुख्य उद्योग हैं। प्रान्तीय सरकारने ग्रामोद्योगोंकी उपेक्षा ही की है।

युक्तप्रान्त

युक्तप्रान्तमें सूती, रेशमी और ऊनी वस्त्रकी बुनाई, दरी और कालीनका काम, होजियरी, रँगाई-छपाई, चमड़ेका काम, तेल घानी, घी तैयार करना, शीशेका काम, टोकरी बुनना, कागज बनाना, गुड़ बनाना, मुर्गी और मधुमक्खीपालन, उद्यान लगाना, फलोंको सुरक्षित रखना, रस्सी और बान बटना आदि मुख्य उद्योग हैं। १९२२–२४ में प्रान्तके उद्योगोंकी जाँच करनेपर पता चला था कि ग्रामोद्योग बुरी भाँति नष्ट होते जा रहे हैं। तबसे इस सम्बन्धमें कारीगरीकी शिक्षा देनेके लिए स्कूल खोले गये और कारीगरोंके घरपर प्रदर्शन मंडलियाँ भेजी गयीं। सहकारी पद्धतिपर प्रयोग किये गये। ऊन, करघे, चमड़े, गुड़ तथा ऐसे ही उद्योगोंको पनपानेके लिए कुछ विशेष प्रयत्न किये गये। सरकारने कारीगरोंको सहायता देना प्रारम्भ किया। कच्चा माल देनेसे लेकर तैयार मालकी बिक्रीतकमें सरकारने सहयोग देना आरम्भ किया। ये उद्योग प्रगति कर रहे हैं।

खादीका अर्थशास्त्र

ग्रामोद्योगोंमें सबसे महत्त्वपूर्ण उद्योग हाथकी कताई-बुनाईका है। प्राचीन युगमें इसका विकास हुआ, मध्यकालीन युगमें यह चरम सीमापर पहुँचा, पर वर्तमान युगमें विदेशी शासनसत्ताके स्वार्थोंपर यह बलिदान कर दिया गया। जीवनके लिए अनिवार्य पदार्थोंमें भोजनके बाद वस्त्रका ही स्थान है।

अतः राष्ट्रीय जागरणमें लोकसेवकोंका इस ओर आकृष्ट होना स्वाभाविक था। महात्मा गांधीने अफ्रिकासे लौटते ही 'कातो चरखा मिले स्वराज' की जो रट लगायी उसीने १९२५ में अखिल भारतीय चर्खा संघको जन्म दिया।

मिलके जादूसे प्रभावित कुछ अर्थशास्त्री खादीका बड़ा मखौल उड़ाते हैं। वे खादीका अर्थशास्त्र समझनेका प्रयत्न ही नहीं करते। खादीके दो पहलू हैं—एक नैतिक, दूसरा आर्थिक। खादीके धागे-धागेमें आत्मीयता और आत्मावलम्बनकी जो छाप है; अहिंसा, प्रेम और सहयोगकी जो त्रिवेणी प्रवाहित होती है; सेवा, उदारता और दयाका जो सन्देश मिलता है वह मिलके कपड़ोंमें कहां? एकमें स्वावलम्बन और संतोष है, दूसरेमें शोषण और चीत्कार। एकमें सारा परिवार मिलजुलकर हँसता, खेलता कातता, बुनता है, दूसरेमें पिता पुत्रसे पृथक् है, माँ बेटेसे। गोदीका लाल दूधके लिए चिल्लाता पड़ा है, पर माँ मिलमें मजदूरीपर जानेको विवश है। एकमें अपनी सूझबूझ और कलाके विकासका अवसर है, दूसरेमें मशीनोंमें तेल लगाना और स्वयं भी मशीनका पुर्जा बन जाना है। एकमें अपनी बनायी चीज 'अपनी' है, दूसरेमें अपनी बनायी चीज 'परायी' है!

श्री गुलजारी लाल नन्दाके हिसाबसे ५० करोड़ रु० के मिलके वस्त्रमें जहाँ मजदूरोंको केवल १० करोड़ रुपया मिलता है, वहाँ ५० करोड़की खादीमें मजदूरोंको ३५ करोड़ रुपया मिलता है।[1] मिलका वस्त्र पूँजीवादको जन्म देता है, उसे पालता-पोसता है पर खादीकी बात सर्वथा उसके विपरीत है। खादी दुखियों, अनाथों, दरिद्रों, निराश्रितों और विधवाओंका सहारा है, जब कि मिलके वस्त्रसे दिन-दिन शोषण, दमन, अत्याचार और हाहाकार बढ़ता चलता है। खादीसे

१—मैत्र और लक्ष्मण : काटेज इंडस्ट्रीज इन इंडियन इकोनोमी, पृष्ठ ६६।

जहाँ असंख्य लोगोंको रोजी मिलती है, वहाँ मिल थोड़ोंको काम देकर बहुतोंकी रोजी छीन लेती है। हिसाब लगाकर देखा गया है कि प्रत्येक मिल १००० मजदूरोंकी रोजी मारती है। जिस प्रकार धान कूटनेवाली प्रत्येक मिल प्रतिदिन १५०० परिवारों अर्थात् ६००० पेटोंकी रोटी छीन लेती है, उसी प्रकार कपास ओटनेका प्रत्येक कारखाना प्रतिदिन ९६ आदमियोंकी रोजी मारता है। चरखा कातनेवालोंको आठ घंटेकी मजदूरी।=) दी जाती है और खादी बुननेवाले जुलाहेको आठ घंटेका डेढ़ रुपया। भले ही यह कम जान पड़े पर देहाती ही जानते हैं कि इतने पैसोंका मूल्य उन लोगोंके लिए क्या होता है। शहरोंमें आराम-कुर्सीपर लेटकर काव्यशास्त्रसे विनोद करनेवाले विद्वान, कवि, लेखक अथवा पूँजीवादके आकर्षणमें पड़े अर्थशास्त्री भला क्या जानें कि—

खादीमें दीन निहत्थोंकी उत्तप्त उसास निकलती है!
जिससे मानव क्या, पत्थरकी भी छाती कड़ी पिघलती है!!

भारतीय चर्खासंघ

अपने सीमित साधनों द्वारा अखिल भारतीय चर्खा संघने देशके हजारों गाँवोंमें जो आशा और संतोषकी लहर फैला दी है, वह बतानेकी बात नहीं, देखने और अनुभव करनेकी वस्तु है। किसी भी देहाती उत्पादन-केन्द्रपर जाकर देखनेसे पता चल सकता है कि उससे कितने निराशोंको आशा, बेकारोंको रोजी और निराश्रितोंको सहारा मिलता है और उनके रोते चेहरोंपर कैसी मुसकराहट छा जाती है। महात्मा गांधीके आदेशानुसार चर्खासंघने राजनीतिसे सर्वथा पृथक् रहकर ठोस रचनात्मक कार्य किया है। पर ब्रिटिश नौकरशाहीके कोपसे वह फिर भी न बच सका। सरकारने १९४२ के अगस्त आन्दोलनमें चर्खासंघके अनेक केन्द्रोंपर अपना क्रोध उतारा और उन्हें बुरी तरह नष्ट कर डाला। चर्खासंघके कार्यकर्ता जेलोंमें ठूँस दिये गये, मनों खादी जब्त कर ली गयी। चर्खासंघने

जुलाई १९४२ से जून १९४४ तकका जो लेखाजोखा प्रकाशित किया है उसका निष्कर्ष इस प्रकार है—

चर्खासंघकी शाखाएँ	८१५२
प्रमाणित खादी संस्थाएँ	१३५४
खादी उत्पत्ति—मूल्य	१ करोड़ ३० लाख रुपया
,, ,, —माप	१ करोड़ १२ लाख वर्गगज
,, ,, —वजन	३४,८५,४६६ पौंड
खादीमें लगी कत्तिनें	२,३६,३३२
खादीमें लगे बुनकर	२१,०४१
,, ,, अन्य व्यक्ति	३५०६

चर्खासंघ द्वारा खादीके उद्योगका जो विकास हुआ है उसीके फल-स्वरूप आज हमें उत्तम, बढ़िया और मजबूत खादी देखनेको मिलती है। बिहारकी कोकटी, आंध्रकी मसलिन, मेरठ, अकबरपुर और महाराष्ट्रकी सादी खादी अपनी उत्तमताके लिए प्रख्यात है। काश्मीरका पश्मीना, अंगूठीके भीतरसे निकल जानेवाला शाहतूश और शाल अपनी बारीकी और सुन्दरताके लिए देशमें ही नहीं, विदेशोंतकमें प्रख्यात है। यह सब इसीलिए सम्भव हो सका है कि जनताने खादीको अपनाया है और आज वह हमारी राष्ट्रीय वर्दी है।

प्रामाणिक खादीके अतिरिक्त देशमें अप्रामाणिक खादी भी भारी मात्रामें प्रस्तुत होती है। कुछ ऐसा वस्त्र भी बनता है जिसका सूत तो रहता है मिलका, पर बुना वह जाता है हाथके करघेपर। प्रामाणिक तथा अप्रामाणिक खादी और करघेसे बननेवाले वस्त्र-उद्योगमें लगभग ६० लाख व्यक्ति लगे हैं।

कताई बुनाई

भारतमें लगभग २० लाख हाथके करघे हैं, जिनमें १७ लाख लगातार चालू हैं। इस उद्योगमें लगभग २४ लाख जुलाहे लगे हैं, जिनमें १४ लाखसे अधिक पूरा समय देते हैं और ७ लाख आधा समय। भारतके

सूती वस्त्र-उद्योगमें कुल जितने आदमी लगे हैं उसका ८० प्रतिशत हाथके करघेके उद्योगमें लगे हैं।[1]

व्यापक उद्योग

मिलों और कारखानोंमें जितने आदमी लगे हैं उनसे कहीं अधिक आदमी हाथके करघेके काममें लगे हैं। मिलोंमें जहां उत्पादनके मूल्य-के २५ प्रतिशतसे अधिक मजदूरी नहीं दी जाती, वहां मिलके सूतके करघेपर बुने वस्त्रमें ४० प्रतिशत मजदूरी मिल जाती है और हाथकी कती-बुनी खादीमें लगभग ७५ प्रतिशत। इस दृष्टिसे इस उद्योगका महत्त्व समझा जा सकता है। सन् १९३९ में युद्धसे पहले हाथके करघोंपर तैयार कुल सूती, ऊनी और रेशमी वस्त्र ७२ करोड़ ८० लाख रुपयेका हुआ था। इसमें ४७ करोड़का सूती वस्त्र था, १५ करोड़का रेशमी, ४ करोड़का कृत्रिम रेशमी, और ३ करोड़का ऊनी।[2]

हाथके करघेपर धोती, लुंगी, चद्दर, अंगवस्त्रम्, पगड़ी, कोट कमीजका कपड़ा, साड़ी, ब्लाउजका कपड़ा, तौलिया, गमछा, कालीन, पर्देका कपड़ा, मसहरीका कपड़ा आदि तैयार होता है। मिलके कपड़े-की प्रतिद्वंद्वितासे इस उद्योगको भारी क्षति पहुंची है। हाथके करघे-पर काम करनेवाले जुलाहोंकी आयमें गत दस बारह वर्षके भीतर निरन्तर ह्रास होता आया है। कहीं कहीं तो यह ह्रास ७०,८० प्रति-शततक पहुंच गया है।[3] करघेके कपड़ेमें मिलके कपड़ेसे कुछ विशेषता है। यही कारण है कि मिलके रहते हुए भी वह जीवित है।

ब्रिटिश शासनका सूत्रपात होते ही भारतका वस्त्र-व्यवसाय नष्ट किया जाने लगा। लंकाशायरकी मिलोंने इस उद्योगमें लगे लाखों

१—रिपोर्ट आव फैक्ट फाइंडिंग कमेटी ओन हैंडलूम इंडस्ट्री, १९४१।

२—मैत्र और लक्ष्मण: काटेज इंडस्ट्री इन इंडियन एकोनोमी, पृष्ठ ७०—७१।

३—रिपोर्ट आव फैक्ट फाइडिंग कमेटी आन हैंडलूम इंडस्ट्री, १९४१।

व्यक्तियोंको बेकार बना दिया ।[1] यहाँके वस्त्रमें कारीगरी और उपयोगिता दोनोंका सुन्दर सम्मिश्रण रहता था ।[2] ढाका, कृष्ण नगर, चंदेरी आदिकी मसलिन; लखनऊकी छींट; अहदाबादकी धोतियां, दुपट्टे; मध्यप्रान्त, नागपुर, उमरेर, पवनी आदिके रेशमी पाड़वाले वस्त्र और पालमपुर- मदुरा, मद्रास आदिके बढ़िया वस्त्रोंका उद्योग कम्पनी तथा ब्रिटिश सरकारकी अमलदारीमें बुरी तरह नष्ट हो गया। उसकी सारी ख्याति लुप्त हो गयी ।[3]

उद्योगोंका नाश

१६ वीं शताब्दीके आरम्भमें कितने ही छोटे-मोटे उद्योग उन्नत अवस्थामें थे । पर देशी अदालतोंके उठ जाने, विदेशी सरकारके जम जाने तथा लंकाशायर और मानचेस्टरकी मिलोंकी प्रतिद्वंद्विताका आरम्भ हो जानेसे उनकी कमर टूट गयी । लखनऊकी नवाबी टूटी तो बढ़िया और नुमायशी चीजें कौन खरीदता ? सन् १८५६ के बाद इसका प्रत्यक्ष प्रभाव दिखाई पड़ा । माना, नवाबी टूट जानेपर भी नवाब तो थे, उनका दिल तो बदस्तूर था । पर दिल होकर ही क्या करता ? उनकी सारी दौलत तो अंग्रेजोंने लूट ली थी । उनके पास अब रह ही क्या गया था ? अदालतोंके उठ जानेसे उद्यगोंको मिलनेवाला सरकारी प्रोत्साहन और राज्याश्रय समाप्त हो गया था । फिर भी, देशी रियासतोंमें किसी न किसी रूपमें ये उद्योग जीवित रहे । काश्मीर, राजपूताना, काठियावाड़, हैदराबाद आदि रियासतोंमें कुछ कारीगरोंको आश्रय मिला सही, पर सब बेकार

१—नलिनी मोहन पालः इंडस्ट्रियल डेवलपमेंट आव इंडिया, पृष्ठ ६-१०।

२—वाटसन : टेक्सटाइल मेन्यूफेक्चर्स एंड कास्ट्यूम्स आव दि पीपुल्स आव इंडिया, पृष्ठ ५ । टी० एन० मुखर्जी : आर्ट मैन्यूफैक्चर्स आव इंडिया, १८८८ ।

३—गाडगिल : इंडस्ट्रियल एवोल्यूशन आव इंडिया, पृष्ठ ३२-४५ ।

कारीगरोंको स्थान मिलना सम्भव ही कैसे था ? कुछ देशी नरेश भी अपने गोरे प्रभुओंकी चापलूसी करनेमें, देशीके स्थानपर विदेशी कारीगरीकी प्रशंसा करनेमें अपना अहोभाग्य मानते थे[1] !

विदेशी होड़

एक ओर अविवेकी यूरोपियन अपने ढंगपर भारतीय कारीगरोंसे सस्ती और बनावटी चीजें तैयार कराने लगे, दूसरी ओर अंग्रेजीदां लोग अंग्रेजोंकी नकलमें ही अहोभाग्य मानकर विदेशी कलाको सुन्दर और स्वदेशीको भोंडा बताकर उसका मजाक उड़ाने लगे। अतः स्वाभाविक था कि भारतीय कलाका नाश हो। विदेशी प्रतिद्वंद्विताने तो भारतीय उद्योगोंकी कमर ही तोड़ दी[2]। देशी कलाका कितनी तीव्रगतिसे नाश हो रहा था इसका एक मोटा उदाहरण यह है कि सर जार्ज वर्डवुडने १८७८ में लाहौरमें जो उद्योग देखे थे, वे १८८२ में नहीं रहे। १९०२ में दिल्लीकी प्रदर्शनीमें नयी और पुरानी कलाके प्रदर्शनसे यह बात सर्वथा स्पष्ट हो गयी।[3]

सूती वस्त्रका ही नहीं, रेशमी और ऊनी वस्त्र-उद्योगका भी यही हाल था। सर विलियम हंटरने लिखा है कि देशी अदालतोंकी समाप्ति, गोरे पूंजीपतियोंकी चालों तथा विभिन्न परिस्थितियोंने भारतीय जुलाहोंको विवश कर दिया कि वे करघा छोड़कर हल चलायें। अन्य अनेक छोटे-मोटे उद्योग भी नष्ट हो गये।[4]

१—जे० सरकार : स्टेट इंडस्ट्रीज इन दि मुगल एम्पायर, लेख माडर्न रिव्यू, नवम्बर, १९२२।

२—एच० सी० कुकसन: लेख, सिल्क इंडस्ट्रीज, १८९२।

३—किपलिंग : इंडस्ट्रीज आव दि पंजाब। जी० वाट: आर्ट एंड डेलही, १९०२।

४—रामचन्द्र राव : डिके आव इंडियन इंडस्ट्रीज, पृष्ठ ६८।

मुर्शिदाबाद, मालदा, तथा बंगालके अन्य स्थानोंके प्रसिद्ध छोपा, चन्दन, कोरा आदि रेशमी वस्त्र; काशी और अहमदाबादकी फूलदार बढ़िया रेशमी वस्तुएं; पूना, योला आदिकी बढ़िया धूपछांह बीत युगकी वस्तुएं हो गयीं। काश्मीर, अमृतसर, लुधियाना आदिमें बढ़नेवाला काश्मीरी शालोंका उद्योग सर्वथा नष्ट हो गया[1]।

वस्त्र उद्योगके अतिरिक्त धातुके बर्तनोंके उद्योग, मीनाकारी, पच्चीकारी, शस्त्रास्त्रों आदिपर बेल-बूटे काढ़ने आदिके अनेक उद्योग बुरी भांति नष्ट हो गये। काशी, नासिक, पूना, हैदराबाद, विजगापट्टम, तंजोर, स्यालकोट, कोटला, लाहौर आदि नगर इन उद्योगोंके लिए विशेष रूपसे ख्यात थे। अंग्रेजी शासनने इनकी ख्याति और कारीगरीपर पानी फेर दिया।

कृषिका भार किस प्रकार बढ़ता गया और उद्योगोंका ह्रास किस प्रकार होता गया, इसका अनुमान इन आंकड़ोंसे लगाया जा सकता है—

	१८७१	१८८१	१९०१	१९११
कृषि	५६.२ प्रतिशत	६१.० प्रतिशत	६१.३ प्रतिशत	७२.५ प्रतिशत
उद्योग	१३.१ ,,	१२.४ ,,	१२.० ,,	११.३ ,,

कम्पनीकालमें नमकके उद्योगपर प्रहार आरम्भ हो गया था। ब्रिटिश शासनमें रही-बची कसर पूरी कर दी गयी। कानूनन निषेध करके, रियासतोंको मुआविजा देकर, महसूलकी दर बढ़ाकर, विलायती नमकको प्रोत्साहन देकर—तात्पर्य यह कि सरकारने इस उद्योगको पूर्णतः चौपट कर दिया।

नमक उद्योग

किसी जमानेमें फलदी रियासतमें दो लाख मन सादा नमक बनता था। बीकानेरके चुरू नामक नगरके निकट चाकुर गांवमें प्रति वर्ष २लाख

१—डब्ल्यू० आर० लारेन्स: वैली आव काश्मीर, पृष्ठ ३७५।
डी० सी० जान्सटन: लेख, वूलन मैन्यूफेक्चर्स आव पंजाब, १८८६।

५० हजार मन नमक तैयार होता था। दुर्गापुर रियासतमें ७०,८० हजार मन नमक बनता था। जैसलमेरमें ३० हजार मन और भरतपुरमें ७ लाख मन नमक तैयार होता था। मुलतानपुर, सदराना, सैयदपुर, महमूदपुर, मुबारकपुर, बशीपुर, बालपुर, कालियाबाद, जहांपुर और सिलौना गांवोंमें खारी कुओंसे ११ लाख मन नमक बना करता था। दिल्लीसे ८ मीलपर बुरारीमें ३० वर्गमीलके घेरेमें १६ गांवोंमें २ लाख मन नमक बनता था। रोहतक जिलेमें शोरेके ९० कारखाने थे। हांसी और हिसारमें ५० और शाहपुर जिलेमें ९। पुद्दूको। राज्यको ३८ हजार और भावलपुरको ८६ हजार रुपया मुआवजा देकर नमक बनाना बन्द कराया गया। युक्तप्रान्तमें नमकके १५ हजार कारखाने चलते थे। इनके कारण १८६७ में सरकारी नमककी विक्रीमें १० लाख मनकी कमी हो गयी थी। बम्बई इलाकेमें, मलाबार और कनारामें नमकके कुल ६४३८ कारखाने थे जो बन्द कर दिये गये। बंगालमें नदीके किनारे बंगलौरतक और उड़ीसामें कटकतक सब जगह नमक बनाया जाता था। सालमें ४४ लाख मन नमक बनता था। मछलीपट्टममें १२० मन नमक बनता था। १८७९ तक खारी मिट्टीसे नमक बनानेके असंख्य कारखाने थे। उसी साल नमकका महसूल ८ आने मन से २।।) मन कर देनेसे सभी छोटे कारखाने बन्द हो गये[1]।

भारत जैसे उष्ण देशमें स्वास्थ्यकी दृष्टिसे ४० करोड़ व्यक्तियों-के लिए ६ करोड़ मन नमक चाहिये और पशुओंके लिए मोटे अंदाजसे ४ करोड़ ७३ लाख मन। अन्य उद्योग-धन्धोंके लिए ३ करोड़ मन नमक चाहिये। इस प्रकार कुल १३ करोड़ ७३ लाख मन नमक चाहिये। पर पैदा किया जाता है केवल ५ करोड़ १० लाख मन। सरकार इस

१—जबर्दस्ती और जुल्म, लेख, हरिजन सेवक, १६ मई १९४६, परि-शिष्ट ई, पृष्ठ १४६–१४७।

उद्योगको प्रोत्साहन देनेके स्थानपर नष्ट करनेमें ही अपनी अधिकतर शक्ति लगाती रही। १९३९-४० में उसने विभिन्न रियासतोंको इसके लिए ३३७२२५१।)२ मुआवजा दिया था। नमक-कर लादे जानेसे गत ५० वर्षोंके भीतर नमकका खर्च एक चौथाई कम हो गया। नमक तैयार करानेके सरकारी तरीके बहुत वेढंगे, पुराने और वेकाम हैं। लागतसे व्यवस्था और निरीक्षणका खर्च कहीं अधिक है। साँभर बनानेमें प्रति मन केवल ८.९ पाई खर्च आता है पर व्यवस्था और निरीक्षण-व्यय लेकर यही खर्च प्रति मन ३ आना २.३४ पाई हो जाता है[1]। यह उद्योग बुरी तरह नष्ट कर दिया गया।

डाक्टर राजेन्द्र प्रसादकी अध्यक्षतामें हुए कांग्रेसके ४८ वें अधिवेशनमें ग्रामोद्योगोंके पुनरुद्धारका निश्चय किया गया। बारह

ग्रामोद्योग संघ

वर्षके भीतर इस संघने अद्भुत काम किया है। देशके विभिन्न उद्योगोंके इतिहास, उनकी वर्तमान स्थिति और भविष्यके विषयमें अपार जानकारी एकत्र की है। प्रति वर्ष उसकी वार्षिक रिपोर्ट तो प्रकाशित होती ही है, उसने इस सम्बन्धमें अंग्रेजी, हिन्दी तथा अन्य प्रान्तीय भाषाओंमें पर्याप्त साहित्य भी प्रकाशित किया है। उसकी ओरसे 'ग्रामोद्योग पत्रिका' प्रकाशित होती है। कितनी ही संस्थाएँ उक्त संघसे सम्बद्ध हैं।

श्री कुमारप्पाके नेतृत्वमें यह संघ उत्तरोत्तर प्रगति कर रहा है। मगनवाड़ी तथा ग्राम देवता विद्यालयमें प्रत्येक ग्रामसेवकके लिए शिक्षणकी अकूत सामग्री है। वर्धा स्थित इस संघके संरक्षणमें निम्न लिखित उद्योग चल रहे हैं—

धानसे चावल निकालना, आटा पीसना, गुड़ बनाना, तेल घानी, मूंगफली छीलना, मधुमक्खी-पालन, मछली पालना, दुग्धशाला,

---

१—हरिजन सेवक, वही, पृष्ठ १४२, १४३।

नमक बनाना, कपास लुढाई, कम्बल बनाना, रेशम और टसरका माल तैयार करना, सनकी कताई-बुनाई, कालीन बनाना, हाथका कागज बनाना, चटाई बुनना, कंघियां बनाना, चाकू कैंची तैयार करना, साबुनसाजी, पत्थरकी कारीगरी, मृतचर्म कमाना, उसकी चीजें बनाना आदि।

सोदपुरका खादी प्रतिष्ठान, दिल्लीकी हरिजन उद्योगशाला, सेवापुरी (काशी) का गांधी आश्रम, उन्नावका सोख्ता आश्रम आदि देशमें कितने ही ऐसे स्थान हैं जहां ग्रामोद्योगोंकी विधिवत् शिक्षा दी जाती है। प्रान्तीय सरकारें भी इस ओर ध्यान देने लगी हैं। मैसूर, ग्वालियर बडोदा आदि रियासतें भी इस ओर ध्यान दे रही हैं। उनके छात्र वर्धा आकर शिक्षा ग्रहण करते हैं।

भारतीय ग्रामोद्योगोंका भविष्य उज्ज्वल है। पर ग्रामोद्योगोंका पुनरुद्धार केवल तभी सम्भव है जब जनता अपनी वस्तुको हृदयसे अपनाये और सरकार विदेशी प्रतिद्वंद्वितासे उसकी रक्षा करते हुए उसे भरपूर प्रोत्साहन दे।

ग्रामोद्योगोंके मार्गमें एक भारी खतरा और है। और वह है—हमारे देशका ही पूंजीपति। डाक्टर पट्टाभिने ठीक ही कहा है—'भविष्यका शत्रु विदेशी वस्त्र नहीं है। कारण, लंकाशायरका वस्त्र तो मर चुका। अब तो हमें गरीबोंके दूसरे शत्रु भारतके धनी मिल-मालिकसे लड़ना है।'

वड़े उद्योग

यंत्रके जन्मने वड़े उद्योगोंको जन्म दिया। चरखे और करघेके स्थानपर वड़ी-वड़ी मशीनें खड़ी हुईं। जिस काममें सप्ताह, मास और वर्ष लगते थे, वह चुटकियोंमें होने लगा। एक मशीन हजारोंका काम करने लगी। युरोपमें इस यंत्र-दानवने क्रान्ति मचा दी। यह दानव ही भारतीय उद्योगोंके मूलपर कुठारापात करनेवाला सिद्ध हुआ। ब्रिटिश मिलोंने अपने मालसे भारतका सारा वाजार पाट दिया। शासनकी वागडोर ब्रिटेनके हाथमें होनेसे भारतको और भी वुरी तरह शोषित होना पड़ा। भारतकी व्यापार-नीति ब्रिटेनके व्यापारियों और उनके पंजेमें रहनेवाली ब्रिटिश सरकारके हाथमें थी। अतः अवाध-वाणिज्य और मुक्तद्वार-वाणिज्यके नामपर भारत ब्रिटिश मालकी मंडी वनाया गया। सूती और ऊनी वस्त्र, विसातखानेका माल, लिखने-पढ़नेकी सामग्री, लोहे और फौलादका सामान, तात्पर्य यह कि सभी प्रकारका तैयार माल भारतकी मंडीमें आकर खपने लगा और यहाँसे कच्चा माल ब्रिटेन जाने लगा। कुछ दिन पूर्व जो स्थिति थी वह सर्वथा पलट गयी। भारत विवश था अपने गोरे प्रभुओंकी आज्ञाके अनुसार चलनेको। न तो उसमें विरोध करनेका वल ही था और न उसकी आवाजपर ध्यान देनेवाला ही कोई था। फलतः भारतकी वलिपर ब्रिटेनके उद्योग पलने लगे।

पर यह स्थिति अधिक समयतक न चल सकी। शोषित और पराजित भारत भी जागरूक हुआ। उसने भी वड़े उद्योगोंकी ओर दृष्टि दौड़ायी। वम्वई स्पिनिंग एंड वीविंग कम्पनीने सवसे पहले भारतवर्षमें सूती मिल खोली।

उद्योगोंका जन्म

यह मिल सन् १८५१ में वम्वईके पास खुली। १८५४ में उसका काम चालू हुआ। आरम्भमें मिलोंकी प्रगति वड़ी धीमी रही। १८६१

तक देशमें केवल एक दर्जन मिलें खुल सकीं। अमेरिकन गृहयुद्धके कारण कपासका दाम चढ़नेसे और बम्बईमें व्यापारिक मन्दीके कारण १८६० से १८७० तक इस दिशामें कोई विशेष प्रगति न हो सकी।[1] १८७२—७३ में बम्बई प्रेसिडेन्सीमें १८ और बंगालमें २ सूती मिलें खुलीं। उत्तरोत्तर इनकी संख्या बढ़ती गयी। १८७९ में मिलोंकी संख्या ५६ पर पहुँच गयी थी और उनमें ४३ हजार मजदूर काम करते थे। इनमें तीन-चौथाई मिलें बम्बई प्रेसिडेन्सीमें थीं और आधेसे अधिक केवल बम्बई द्वीपमें।[2]

इस प्रकार भारतमें क्रमशः बड़े उद्योगोंका जन्म हुआ। बम्बई और अहमदाबादमें और फिर कलकत्ता, तथा हावड़ामें बड़े उद्योगोंका विस्तार हुआ। आज भी ये उद्योग इन्हीं स्थानोंमें विशेषतः केन्द्रित हैं। १९३९ की जाँचके अनुसार ५२ प्रतिशत मजदूर केवल बम्बई और बंगाल प्रान्तमें केन्द्रित हैं।[3] बन्दरों और औद्योगिक केन्द्रोंमें बड़े उद्योगोंका केन्द्रित होना स्वाभाविक भी है। कारण, सबसे पहले पश्चिमी सभ्यताका प्रभाव इन्हीं स्थानोंपर पड़ा। बम्बई, कलकत्ता जैसे बड़े नगरोंमें ही सबसे प्रथम यह सभ्यता पुष्पित-पल्लवित हुई। यहाँपर पहले विदेशी व्यापारियोंने और फिर उनकी देखादेखी भारतीय व्यापारियोंने बड़े उद्योग चलाने आरम्भ किये। इन बड़े-बड़े बन्दरों और नगरोंमें देशके कोने-कोनेसे कच्चा माल आता था और उधर विदेशोंसे मशीनें आदि मंगानेका भी पूरा सुभीता था। व्यापारिक केन्द्र होनेसे यातायात, रेल, तार, डाक, जहाज, बैंक, आदिकी अच्छी व्यवस्था थी। अतः नये उद्योगपतियोंने इन्हीं स्थानोंको अपना अखाड़ा बनाना आरम्भ किया।

१—डी० ई० वाचा : ए फिनान्शल चैप्टर इन दि हिस्ट्री आव बाम्बे, १९१०।
२—गवाही, बाम्बे एंड लंकाशायर काटन स्पिनिंग इनक्वायरी, १८८८।
३—दि लोकेशन आव इंडस्ट्री, १९४६, पृष्ठ ७।

बम्बई और अहमदाबादमें खोली गयी सूती मिलोंकी प्रगतिकी ओर शीघ्रही सारे देशकी जनताका ध्यान आकृष्ट हुआ। इस उद्योगमें विशेष लाभ देखकर इसकी ओर जनताकी विशेष अभिरुचि हुई। इसी समय लोगोंने देखा कि ब्रिटेनकी मुक्तवाणिज्य नीति भारतके औद्योगिक विकासमें भारी बाधक सिद्ध हो रही है। अतः उसके विरुद्ध जोरदार आन्दोलन आरम्भ हुआ। फलत. ब्रिटेनको झुकना पड़ा और जहाँतक भारतका सम्बन्ध था, मुक्त-व्यापारकी नीतिका परित्याग कर दिया गया। विदेशसे आनेवाले वस्त्रपर साधारणतः आयात-कर बैठाया गया। उधर ब्रिटेनमें भारतके बने मालपर उत्पादन-कर लगानेके लिए जोरदार आन्दोलन मचाया गया। ब्रिटिश सरकारने भारतीय हितोंकी उपेक्षा करनेमें कोई कसर उठा नहीं रखी। भारत अत्यधिक विरोध करनेके उपरान्त ही इस अपवित्र करसे अभी हालमें मुक्त हो सका।

सरकारी नीति

ब्रिटिश सरकारकी भारत-विरोधिनी नीतिके फलस्वरूप देशके उद्योगधंधोंकी स्थिति परम दयनीय बनी रही। भारत सरकार ब्रिटिश-सरकारके हाथकी कठपुतली मात्र थी। उसपर धारासभाका नियंत्रण नाम-मात्रका था। सरकारी उपेक्षाके कारण भारतीय उद्योगोंको भारी क्षति उठानी पड़ी। भारत सरकार ब्रिटेनके इशारोंपर इतनी अधिक आश्रित थी कि सरकारी और अर्द्ध-सरकारी विभागोंकी आवश्यकताका सारा सामान विदेशोंसे आता था। स्वदेशी उद्योगोंकी ओर कोई आंख उठाकर न ताकता था। फलतः उद्योग चौपट हो रहे थे, कृषिका भार बढ़ रहा था और जनता दिन-दिन दरिद्र और बेकार होती चल रही थी। यह दरिद्रता दुर्भिक्षोंके रूपमें समय-समयपर फूट पड़ती थी। कम्पनीके शासनारूढ़ होनेके छठे वर्ष ही १७७० में उसके शोषणके फलस्वरूप ऐसा भयंकर दुर्भिक्ष पड़ा जिसमें बंगालके एक करोड़ आदमी भूखके शिकार हुए।

उद्योगोंकी उपेक्षा

१७७० से १६०० तकके १३० सालोंमें भारतमें बड़े-बड़े दुर्भिक्ष पड़े, जिनमें इतने आदमी मरे जितने गत तीन शताब्दियोंकी संसारकी सारी लड़ाइयोंमें भी नहीं मरे![1] १८८० और १६०१ के दुर्भिक्ष कमीशनोंने दुर्भिक्ष रोकनेके लिए भारतीय उद्योगोंकी उन्नतिपर विशेष जोर दिया। १९०५ से पूर्वतक सरकारने इस ओर लेशमात्र भी ध्यान नहीं दिया। १६०५ में स्वदेशी आन्दोलनसे जनता अवश्य कुछ प्रभावित हुई। लोकमान्य तिलक और महात्मा गांधीके प्रयत्नसे इस आन्दोलनको बड़ा बल मिला। उसी वर्ष लार्ड कर्जनने व्यापार और उद्योग विभाग खोला।

युद्ध कालमें प्रगति

उधर असेम्बलीमें सरकारको निरन्तर खटखटाया जा रहा था कि वह स्वदेशी उद्योगधंधोंको प्रोत्साहन दे। अपने हितोंकी रक्षाके लिए देशमें अनेक व्यापार संघ, व्यापार मंडल और व्यवसाय संघ खुले। सबके संयुक्त आन्दोलनके फलस्वरूप सरकारने यह बात स्वीकार कर ली कि वह विदेशी मालकी अपेक्षा मंहगा होनेपर भी स्वदेशी माल खरीदेगी। पर यह निश्चय कार्यान्वित कम ही हुआ। १९१० में तत्कालीन भारतमंत्री लार्ड मोर्लेने जो खरीता भेजा उससे भारतीय उद्योगोंके विकासमें भारी बाधा पड़ी। पर सन् १९१४ से सन् १९१८ तक जो विश्वयुद्ध हुआ उसमें भारतीय उद्योगोंको अनायास ही प्रोत्साहन मिल गया। १६१६ के औद्योगिक कमीशनने भारतीय उद्योगोंको प्रोत्साहन देनेकी जोरदार सिफारिश की। १९१७ में युद्धोद्योगकी सहायताके लिए स्थापित किये गये भारतीय म्यूनीशन्स बोर्डने भारतीय कम्पनियोंको बड़े-बड़े आर्डर दिये। युद्धकालमें जहाजरानी संकटग्रस्त होनेसे देशके लोहे, कोयले तथा अन्य वस्तुओंके उद्योगोंको सहज ही प्रोत्साहन मिल गया। सरकारने यद्यपि इस

१—राहुल सांकृत्यायन : मानव समाज, पृष्ठ २३३-२३४।

वातका पक्का आश्वासन दिया था कि वह युद्धकालके वाद भी प्रोत्साहन जारी रखेगी तथापि वह अपने वादेसे मुकर गयी। परिणाम यह हुआ कि युद्ध समाप्त होते ही अनेक उद्योग सर्वथा नष्ट हो गये।

सरकारने अपने वेमनसे किये वादोंकी पूर्त्तिके लिए जो कुछ किया वह था 'टेरिफ वोर्ड' नामक एक अत्यन्त खर्चीली और दीर्घसूत्री संस्थाकी स्थापना। १० जुलाई १९२३ को असेम्वलीमें इसके निर्माणका निर्णय हुआ और १९२४ में इसका जन्म हुआ। राष्ट्रकी जोरदार माँगों और साथ ही इस वोर्डकी सिफारिशोंके फलस्वरूप भेदमूलक-संरक्षण-नीतिको जन्म दिया गया। इस सौतेले व्यवहारके कारण अनेक नये उद्योग नष्ट हो गये और औद्योगीकरणकी भारतकी आशा-लता मुरझा गयी।[1] व्यापार विभागने अनेक उद्योगोंकी ओरसे उपस्थित की गयी प्रार्थनाओंके मार्गमें अनेक वाधाएं डालकर उन्हें आरम्भमें ही समाप्त कर दिया। टैरिफ वोर्डने लोहा और इस्पात, सूती वस्त्र, कागज, चीनी, दियासलाई आदि उद्योगोंको संरक्षण दिया, पर अन्य अनेक उद्योग प्रोत्साहनके अभावमें मर गये। एक ओर भारतमें यह स्थिति चल रही थी, दूसरी ओर इंग्लैंड अपने उद्योगोंकी उन्नतिके लिए भरपूर सचेष्ट था। उसकी साम्राज्यान्तर्गत मुक्त-वाणिज्य और शाही तरजीहकी नयी नीतिके कारण भारतीय उद्योगोंकी प्रगति और धीमी हो गयी। द्वितीय विश्वयुद्धमें सीमेंट, कागज, आलम्युनियम आदि उद्योगोंको प्रोत्साहन मिला।

टेरिफ वोर्ड

इस विवरणसे सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि आरंभसे अभीतक उद्योगोंकी प्रगतिमें निरन्तर वाधाएं आती रही हैं, फिर भी उन्होंने कुछ प्रगति तो की ही है। निम्न आंकड़ोंसे यह वात स्पष्ट हो जायगी—

उद्योगोंकी प्रगति

१—भाभा : भारतका औद्योगिक विकास, लेख, 'हिन्दुस्तान', कांग्रेस अंक, १९४६।

सन् १९३६

कुल बड़े कारखाने	सालाना और मौसमी	११६३०
प्रति दिन काम करनेवाले मजदूर		१७५११३७
बम्बई प्रान्तके कारखाने	३१२०	
मद्रास ,, ,,	१८११	
बंगाल ,, ,,	१७२५	
उक्त तीनों प्रान्तोंके मजदूर		१२५००००
संयुक्त प्रान्तके कारखाने	५४६	मजदूर १५९७३८
देशी रियासतोंके कारखाने	१७१७	मजदूर ३०००००

सन् १९४२

ब्रिटिश भारतके कुल कारखाने	१२५२७
प्रतिदिन काम करनेवाले मजदूर	२१८१५२३

इन कारखानोंमें रुई, कागज, जूट, इंजीनियरिंग, खनिज द्रव्यों, रासायनिक पदार्थों, रंगों, बिनौला निकालनेके तथा चमड़े, लकड़ी और पत्थरके कारखानोंके अतिरिक्त प्रेस जैसे कारखाने भी शामिल हैं।

भारतके बड़े उद्योगोंमें भारतीयोंके स्वामित्व, प्रबन्ध और निरीक्षणमें सबसे पुराना और बड़ा उद्योग सूती मिलोंका है। यों कहनेको

सूती मिल उद्योग

१८१८ में ही कलकत्तामें एक सूती मिल खुल गयी थी पर वस्तुतः उसका कार्य १८५४ से आरंभ हुआ। पहले इस उद्योगकी प्रगति धीमी रही। १८७७ से अच्छी प्रगति हुई। नागपुर, अहमदाबाद, सोलापुर जैसे कपास-उत्पादक क्षेत्रोंमें मिलोंका विस्तार हुआ। पहले यहाँपर सूत कातनेका कार्य तेजीसे होता रहा, पर भारतीय सूतके लिए चीनका बाजार बन्द हो जानेपर उसमें कमी हो गयी। तब कताईकी अपेक्षा बुनाईका काम अधिक चालू हुआ[1]।

---

१. गाडगिल : दि इंडस्ट्रियल एवोल्यूशन आव इंडिया, पृष्ठ ५३–६०, ७४–८७, १०२–१२५।

सूती मिलोंकी आरम्भिक प्रगतिका अनुमान इन आंकड़ोंसे लगाया जा सकता है—

सन्	मिलें	तकुए	करघे	मजदूर
१८७९	५६	१४५३०००	१३०००	४३०००
१८७९-८०	५८	१४०७८३०	१३३०७	३९५३७
१८८४-८५	८१	२०३७०५५	१६४५५	६१५९६
१८८९-९०	११४	२९३४६३७	२२०७८	९९२२४
१८९४-९५	१४४	३७११६६९	३४१६१	१३९५७८
१८९५-९६	१५०	३८५२६११	३७२७८	१४६५५२
१९००-०१	१९४	४९४२२९०	४०५४२	१५६३५५
१९०४-०५	२०६	५१९६४३२	४७३०५	१९६३६९
१९०७-०८	२२७	५७६३७१०	६६७१८	२२५३६७
१९१३-१४	२६४	६६२०५७६	९६६८८	२६०८४७

इस उद्योगको दुर्भिक्ष, प्लेग, विदेशी प्रतिद्वंद्विता, विदेशी विनिमय-की डांवाडोल स्थिति, कपासके मूल्यमें वृद्धि, रेलभाड़ेमें वृद्धि. सरकार-की दूषित नीति आदि कितने ही कारणोंसे समय-समयपर धक्का लगता रहा है[1]। प्रथम विश्वयुद्धमें अच्छा प्रोत्साहन मिला। स्वदेशी आन्दोलनके कारण इसे और बल मिला। तबसे यह निरन्तर प्रगति कर रहा है। व्यापारिक मन्दी और जापानके वस्त्रकी प्रतिद्वंद्विता समय-समयपर इसे हानि पहुंचाती रही है, पर १९२७ के बाद सरकारी संरक्षण मिल जानेसे इसे समुचित लाभ पहुंचा है। १९३३-३४के भारत-जापानके व्यापारिक समझौतेका भी जापानी वस्त्रकी होड़पर प्रभाव पड़ा है।

प्रथम विश्वयुद्ध छिड़ते ही इस उद्योगने अच्छी प्रगति की। तबसे

१—आडरकर : दि इंडियन फिस्कल पालिसी, १९४१, पृष्ठ १७७-१७८।

वह क्रम जारी है। निम्नलिखित आंकड़ोंसे इसका अनुमान किया जा सकता है—

सन्	मिलें	तकुए	करघे	मजदूर
१९१५	२७२	६८४८५४४	१०८००९	२६५३४६
१९२५	३३७	८५१०६३३	१५४२९२	३६७८७७
१९३५	३६५	९६८५१७५	१९८८६७	४१४८८४
१९४४	४०७	१०२२२१०७	२०१७६१	५०५५६२

मिलके वस्त्रका उत्पादन कितना बढ़ गया है, यह बात इन आंकड़ों-से स्पष्ट हो जाती है[1]—

वर्ष	उत्पादन गजोंमें	वर्ष	उत्पादन गजोंमें
१९४१-४२	४,४९,३६,१३,२०८	१९४३-४४	४,८७,०६,८६,९०३
१९४२-४३	४,१०,९३,३६,७९०	१९४४-४५	४,७२,६४,७२,२७१

आज इस उद्योगमें ४२ करोड़से ऊपर रुपया लगा है, लगभग ५ लाख मजदूर इससे अपनी रोजी कमाते हैं, जिनमें डेढ़ लाख मजदूरिनें भी शामिल हैं। प्रति वर्ष कपड़ेकी लगभग पचास साठ लाख गाँठें तैयार होती हैं[2]।

यह उद्योग निम्नलिखित स्थानोंमें विशेष रूपसे केन्द्रित है—

स्थान	मजदूर	स्थान	मजदूर
बम्बई	२९४,६५१	मध्य भारतीय रियासतें	३३,१९०
मद्रास	६८,५०४	बड़ौदा	२०,४६०
युक्तप्रान्त	४२,८९२	मैसूर	१६,७३०
बंगाल	३१.८४५	बम्बईकी रियासतें	१०,१९६
मध्य प्रान्त	२२,१८३	हैदराबाद	९,५७२

१—ईस्टर्न इकोनोमिस्ट, विशेषांक ३ जनवरी १९४७।

२—आडरकर: दि इंडियन फिस्कल पालिसी, १९४१, पृष्ठ १७७–१७८।

आजकल वम्बई, अहमदावाद, कानपुर, कोयम्वतूर, सोलापुर, इन्दौर, ग्वालियर, मदुरा, चौवीस पर्गना, तिनेवेली, दिल्ली, वंगलोर, मद्रास, वड़ौदा, नागपुर, मैसूर, मेहसाना, पूर्वी खानदेश, ढाका नवसारी, वर्धा, हावड़ा, हुगली, पाँडिचेरी, वेवर आदि इस उद्योगके प्रमुख केन्द्र हैं। १६२१ से १९३९ के वीच ब्रिटिश भारतमें कताई वुनाईके कारखानोंमें ५१.४ प्रतिशत और रियासतोंमें २६७.३ प्रतिशत वृद्धि हुई है। १९२१ में सारे भारतमें ३९८ कारखाने थे, जिनमें ३,५२,५०५ मजदूर काम करते थे। १९३६ में उनकी संख्या वढ़कर क्रमशः ८६८ और ५,९०,२६६ हो गयी।[1]

इतना सव होते हुए भी युद्धकालमें और उसके वाद भारतीयोंको वस्त्रके लिए असहनीय कष्ट भुगतना पड़ा है। सभी जानते हैं कि मिलमालिकोंके भीषण स्वार्थ, चोर-वाजार और मुनाफाखोरीके कारण यह दयनीय स्थिति आ गयी।

अहमदावाद मिल मजदूर संघके मन्त्री श्रीखण्डुभाई देसाईने १९४० से १९४६ तकके वस्त्र-व्यवसायकी विवेचना करते हुए लिखा है[2]—

देशकी सूती मिलोंके समूचे उद्योगमें चुकायी हुई पूँजीके रूपमें लगभग ५० करोड़ रुपये लगे हुए हैं और इसके हिस्सेदारोंने इतनी ही जोखिम अपने सिर ली है। इस चुकायी हुई पूंजीका अधिकतर भाग देशकी करीव १५० मैनेजिंग एजेटोंकी फर्मों या पेढ़ियोंके हाथमें हैं। ये डेढ़ सौ मिल-मालिक ही देशके इस जवर्दस्त उद्योगके मालिक हैं। इस उद्योगके पास मकान, जमीन और मशीनोंके रूपमें लगभग १ अरव रुपयेकी स्थायी पूंजी है। इस उद्योगमें लगभग २ लाख करघे

१—दि लोकेशन आव इंडस्ट्री इन इंडिया, पृष्ठ २०, २६।
२—हरिजनसेवक, १६ जनवरी, १६४७, पृष्ठ ४८५–४८८।

और १ करोड़ तकुए हैं। गत युद्धके पूर्व इसमें ४ अरव २० करोड़ गज कपड़ा तैयार होता था और ५ लाख मजदूर इस काममें थे। युद्ध आरम्भ होनेके वाद मजदूरोंकी संख्या वढ़कर ७ लाख हो गयी, पर इसी हिसावसे मालकी पैदावारमें वृद्धि नहीं हुई।

देशके इस पूरे उद्योगका युद्धपूर्वका कुल नफा पाँच छै करोड़ रुपया था। कपड़ा सूत आदि तैयार मालकी कीमत करीव ६० करोड़ रुपये थी। इसमें मालका वँटवारा करनेवाले वीचके व्यापारियों और आढ़तियोंके मुनाफेकी २० प्रतिशत रकम और जोड़ देनेपर कपड़ेका उपयोग करनेवाले लोगोंको यह कपड़ा और सूत ७२ करोड़ रुपयोंमें पड़ा था। जनवरी १९४१ के वादसे कपड़ेकी कीमतें वढ़ने लगीं। १९४२ के अक्तूवर, नवम्वर और दिसम्वरमें कीमतें यकायक वहुत ही ऊँची चढ़ गयीं। मई १९४३ में तो वे चरम सीमापर जा पहुँची! इस समय कपड़ेका मूल्य युद्धपूर्वसे साढ़े पाँच गुना वढ़ गया। इस वीच चोरवाजार आरम्भ हो चुके थे। अतः सर्वसाधारणको तो इन दामों भी कपड़ा नहीं मिलता था और उन्हें इससे भी ड्योढ़ा-दूना अधिक दाम देकर माल खरीदना पड़ता था। १९४३ के वीचके महीनोंसे सरकारने जनताके लाभके लिए स्वयं हस्तक्षेप करनेकी चेष्टा की; पर उसकी कारखाईसे जनताका कोई लाभ नहीं हुआ। उल्टे चोरवाजार और भी वढ़ गये और मिलमालिकोंके हाथों होनेवाले जनताके शोषण-को न केवल उचित और अधिकारपूर्ण व्यवहार ठहराया गया, वल्कि उसे वढ़ावा दिया गया और उसपर प्रामाणिक धन्धेकी मुहर लगा दी गयी। इसके लिए वस्त्र नियंत्रक वोर्ड वना। उससे अधिक अच्छी आशा कोई कर भी न सकता था। कारण, उस वोर्डमें उन्हीं मिल-मालिकोंका वोलवाला था जिनसे जनता अपनी रक्षा चाहती थी! इन आँकड़ोंसे जनतापर डाली हुई इस मोहिनीका पता चल जायगा—

युद्धकालका मुनाफा—(करोड़ोंमें)

साल	कुल नफा	एजेंटोंका कमीशन	मालकी कीमत 'एक्स मिल'	ग्राहकोंकी चुकायी हुई कीमत
युद्ध पूर्व				
१९३८	५	१	६०	७२
१९३९	५	१	६०	७२
युद्ध कालमें				
१९४०	७	१	७०	८४
१९४१	२३	३	१००	१२०
१९४२	४६	५	१५०	२५०
१९४३	१०९	१०	२७०	४८०
१९४४	८५	९	२१०	३७०
१९४५	६१	७	१८०	३२४
१९४६ अंदाज	४१	५	१७०	३०६
कुल योग	३७२	४०	११५०	१९३४

युद्धपूर्व मिलोंमें तैयार मालकी मामूली 'एक्स-मिल' कीमत केवल ६० करोड़ रुपया थी, जब कि इन सात सालोंमें वही औसतन १६४ करोड़ रुपया होगयी। जिस उद्योगमें केवल ५० करोड़की पूंजी लगी है और जिसकी स्थायी पूंजी १०० करोड़ रुपयोंसे अधिक नहीं है तथा युद्धपूर्व जिसकी उत्पत्तिकी वार्षिक कीमत केवल ६० करोड़ रुपया थी, उसे एक ही सालमें १४९ करोड़ रुपयोंका और सात सालके बीच औसतन ५३ करोड़ रु० का सालाना मुनाफा उठाने दिया गया। ये वैलेंस शीटमें बताये मुनाफे हैं, छिपे मुनाफे अलग हैं! मालिकोंने मजदूरोंको भी १५ से २५ प्रतिशत कम मजदूरी दी है।

भारतीय मिलोंमें मोटा, महीन, सादा, रंगीन सभी तरहका सूत तैयार होता है। मोटा सूत अधिक बनता है, बारीक कम। तीन चौथाईके लगभग ३० नम्बरसे कमका होता है। ४० नम्बरसे ऊपरका सूत कातनेके लिए लम्बी रेशेवाली कपास बहुत कम होनेसे उसका उत्पादन नाम-मात्रका होता है।

भारतीय सूत और वस्त्रका भारी मात्रामें निर्यात होता है। १९३८–३९ में ३,७६,५६,५९६ पौंड, १९३९–४० में ३,६९,४२,७८३ पौंड और १९४०–४१ में ७,७७,२३,१७३ पौंड सूत और डोरा ब्रिटेन, बर्मा, हांगकांग, साम आदि देशोंको भेजा गया था। दक्षिण-पूर्वी अफ्रिका, इराक, फारस, लंका आदि देशोंमें भारतीय वस्त्र भारी मात्रामें जाता है। वस्त्रका अधिकतम निर्यात बम्बईसे होता है।

जूट मिल उद्योग

पहले ईस्ट इंडिया कम्पनी जूटका व्यापार करती थी। १८३० तक जूटके वस्त्रों और बोरोंके उत्पादनपर जुलाहोंका आधिपत्य था। इसके उपरान्त डंडीमें इसका उत्पादन आरम्भ हुआ। लोगोंने अनुभव किया कि करघेका बना माल बाहर भेजनेकी अपेक्षा कच्चा जूट बाहर भेजनेमें अधिक लाभ है। वही किया गया। जूटका उत्पादन तो क्रमशः बढ़ने लगा, पर करघेका उद्योग नष्ट होने लगा। क्रीमियाके युद्धमें रूसी मालकी रसद बन्द होनेपर इसका महत्त्व और बढ़ गया।[1]

सन् १८५४ से पहले जूटके उत्पादनमें मशीनसे काम नहीं लिया जाता था। इसी वर्ष श्री आकलैंडने श्रीरामपुरके निकट एक जूट मिल खोली। आरम्भमें इस उद्योगकी प्रगति धीमी रही। १८६३–६४ तक केवल एक मिल और खुली। क्रमशः मिलोंकी संख्या बढ़ने लगी।

१— एच० सी० केर : रिपोर्ट ओन दि कल्टिवेशन आव एंड ट्रेड इन जूट इन बंगाल, १८७४।

१८६८ से १८७३ तक रिशरा मिलके अतिरिक्त अन्य पाँच जूट मिलें खूब पैसा पैदा करने लगीं।[1] उनकी समृद्धिका अनुमान इसीसे लगाया जा सकता है कि बड़ा नगर जूट फैक्टरीने १८७२ की पहली छमाहीमें १५ प्रतिशत, १८७३ में २५ और १८७४ में २० प्रतिशत मुनाफा बाँटा था।

जूटकी खेती मुख्यतः उत्तरपूर्वी बंगालमें केन्द्रित है। जूट मिलें कलकत्ताके समीप, हुगलीके आसपास ४० मीलके घेरेमें ही सीमिति हैं। यद्यपि इस उद्योगमें भारतका एकाधिपत्य है, तथापि वह आरम्भसे ही युरोपियनोंके हाथमें है। बहुत थोड़ी मिलें भारतीयोंकी हैं।

जूट मिलोंकी आरम्भिक प्रगतिका इन आँकड़ोंसे अनुमान किया जा सकता है—

सन्	मिलें	करघे	तकुए	मजदूर
१८७६–८०	२२	४६४६	७०८४०	२७४६४
१८८६–६०	२७	८२०४	१६४२४५	६२७३६
१६०१–०२	३६	१६११६	३३१३८२	११४७६५
१६१३–१४	६४	३६०५०	७४४२८९	२१६२८८

जूटके उत्पादक आरम्भसे ही संघटित रहे हैं। संकट और मन्दी आदिका वे सफलतापूर्वक सामना करते रहे हैं। मशीनोंकी उत्तमताकी ओर उनका आरम्भसे ही ध्यान रहा है। १९२१ और १९३६ की स्थितिके तुलनात्मक आँकड़ोंसे पता चल जायगा कि यह उद्योग कैसी प्रगति कर रहा है—

१—डेविड वालेस : दि रोमान्स आव जूट।

स्थान	१९२१ मिलें	१९२१ मजदूर	१९३९ मिलें	१९३९ मजदूर
बंगाल				
हावड़ा	१६	६३१२६	२४	६२५५२
चौबीस पर्गना	४९	१६६६३५	५७	१६८८३५
हुगली	१२	५१७८७	१६	४९८४२
	७७	२८१५४८	९७	२८१२२९
युक्तप्रान्त				
कानपुर	...	...	२	५९२८
गोरखपुर	...	...	१	१४००
			३	७३२८
मद्रास				
विजगापट्टम	१	१२७०	२	४९००
कृष्णा	१	८१९	...	...
गुन्तूर	१	४१८	१	३३८
	३	२५०७	३	५२३८
बिहार				
दरभंगा	...	...	१	१४३५
पूर्णिया	...	...	२	३७३७
			३	५१७२
रियासतें				
रायगढ़ राज्य	...	...	१	५८८
चन्दननगर	१	२५८६	१	२७१०
कुल भारत	८१	२८६९४१	१०८	३०२२८५

हालके वर्षोंमें जूटका उत्पादन इस प्रकार होता रहा है[1]—

सन्	उत्पादन	सन्	उत्पादन
१९३९–४०	१२,७६,९०९ टन	१९४२–४३	१२,४७,२३१ टन
१९४०–४१	११,०९,२५२ टन	१९४३–४४	१०,६७,८५७ टन
१९४१–४२	१२,७८,९६१ टन	१९४४–४५	१०,८०,००० टन

१९४६ अनुमित ११,५३,४४० टन

देशमें कच्चे जूटकी खपत उसके निर्यातसे अधिक होती है।[2]

सन्	निर्यात	देशमें खपत
१९३८-३९	६,९३,००० टन	११,१२,००० टन
१९३९-४०	५,२९,००० टन	१३,८८,००० टन
१९४०-४१	२,४१,००० टन	९,८९,००० टन
१९४१-४२	२,७६,००० टन	१२,२२,००० टन
१९४२-४३	२,३५,००० टन	१२,०२,००० टन

जूटका वस्त्र और जूटके बोरे दोनों ही भारी परिमाणमें विदेश जाते हैं—

सन्	जूटके बोरे	जूटका कपड़ा
१९४०-४१	६७,८० लाख	१,५४,६० लाख गज
१९४१-४२	४९,२० लाख	१,६६,६० ,, ,,
१९४२-४३	४०,६० लाख	९०,८० ,, ,,

जूट मिल उद्योगमें २० करोड़से ऊपर पूंजी लगी है। ६८ हजारके लगभग करघे और १४ लाख तकुए काम कर रहे हैं। 'इंडियन जूट

१—ईस्टर्न इकोनोमिस्ट, विशेषांक, ३ जनवरी, १९४७, पृष्ठ ३३।
२—इंडियन ईयर बुक, टाइम्स आव इंडिया, १९४५–४६, पृष्ठ ७३९।

मिल असोसियेशन' नामक संघ इस उद्योगके हितोंकी रक्षाके लिए प्रयत्नशील है। भारत सरकारने भी 'इंडियन सेंट्रल जूट कमेटी' नियुक्त कर दी है। जूटके विषयमें अनुसंधान और खोजका कार्य भी जारी है। 'इंडियन सेंट्रल जूट कमेटी बुलेटिन' नामक मासिक पत्र भी निकलता है, जिसमें जूटके उत्पादन, खपत, आयात-निर्यात तथा अन्य बातोंकी आवश्यक जानकारी रहती है। इस प्रकार इस उद्योगकी उन्नतिके लिए प्रयत्न जारी है। पर इसके विकासका क्षेत्र सीमित है। इसका एक कारण यह भी है कि बंगालमें इसके उत्पादन तथा जलमार्गसे यातायातकी जो सुविधाएं हैं वे भारतके अन्य भागोंमें नहीं हैं।

लोहेका उद्योग

लोहे और इस्पातकी उपयोगिता किसीसे छिपी नहीं। भारत शताब्दियोंसे इस उद्योगमें अग्रणी रहा है। बीचमें इसकी स्थिति विशेष अच्छी नहीं रही। १८२५ में जोशिया होथने इस उद्योगका विकास करना चाहा पर वह अपने प्रयत्नमें असफल रहा। १८७५ में बराकर आयरन कम्पनी खुली, पर वह भी असफल रही। १८८९ में बंगाल स्टील एंड आयरन कम्पनीने उसे अपने हाथमें लेकर काम चलाया। यह कम्पनी चल निकली।

पर इस उद्योगका वास्तविक विकास १९०७ में आरम्भ हुआ जब तातानें साकचीमें, जो आज जमशेदपुरके नामसे प्रख्यात है, ताता स्टील एंड आयरन कम्पनीको जन्म दिया। ताता कम्पनीका कार्य १९११ से चालू है। भारतके औद्योगिक विकासमें ताता कम्पनीका प्रमुख हाथ है।

ताता कम्पनी खुली ही थी कि प्रथम विश्वयुद्ध छिड़ गया। इसकी बदौलत कम्पनीको भारी-भारी आर्डर मिले। नये कारखानेको इससे बड़ी सहायता मिली। यों भी, ताताका कारखाना जिस स्थानपर है वह सभी दृष्टियोंसे उत्तम है। वह सिंहभूमिमें लोहेकी उस घाटीमें

वर्तमान है जहां विश्वका सर्वश्रेष्ठ लोहा मिलता है। अनुमान है कि इस विशाल भांडारमें ३ अरब टन लोहा भरा पड़ा है[1]। लोहेको गलाने आदिके लिए कोयला, कंकड़ तथा अन्य जिन वस्तुओंकी आवश्यकता होती है वे सभी वस्तुएं ताताको एक ही स्थानपर मिल गयीं। इसने सोनेमें सुहागेका काम किया। अतः ताता कम्पनीका भाग्य चमकना स्वाभाविक था।

ताता कम्पनी उत्तरोत्तर उन्नति करती गयी। उसने अपने विस्तारकी जो व्यापक योजना बनायी वह १९२४ तक पूरी हो गयी। उसी वर्ष इस उद्योगको विदेशी प्रतिद्वंद्वितासे बचानेके लिए टैरिफ बोर्डने संरक्षणकी सिफारिश कर दी। सन् १९२७ और १९३४ में यह संरक्षण पुनः नये सिरेसे चालू किया गया। इसके द्वारा इस उद्योगने अच्छी उन्नति की। अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति तथा इस्पातकी मूल्यवृद्धिके कारण १९३७–३८ में ताता कम्पनीका लाभ सीमापर जा पहुंचा[2]।

आज ताता कम्पनी और स्टील कारपोरेशन आव बंगालका काम इतना व्यापक हो गया है कि दोनों कम्पनियाँ एक साथ मिलकर सारे भारतकी आवश्यकता पूरी कर सकती हैं। १९३३ में टैरिफ बोर्डके पास खेती शिकायतें पहुंची थीं कि ताता कम्पनी इस्पातके मामलेमें अपना एकाधिपत्य जमाये रखना चाहती है। तबसे इस्पातकी अन्य-कम्पनियोंको भी प्रोत्साहन देनेका निश्चय किया गया।[3]

बंगाल, मैसूर आदिमें भी यह उद्योग पनप रहा है। १९३९ में इस उद्योगकी स्थिति इस प्रकार थी[4]—

१—दि लोकेशन आव इंडस्ट्री इन इंडिया, पृष्ठ ३५।

२—आडरकर : दि इंडियन फिस्कल पालिसी, पृष्ठ ९३–९५, १०७।

३—लोहे और इस्पातके उद्योगपर टैरिफ बोर्डकी रिपोर्ट, १९३४, पृष्ठ १३।

४—लार्ज इंडस्ट्रियल एस्टेब्लिशमेंट्स इन इंडिया, १९२१ और १९३९।

स्थान	कारखाने	मजदूर	स्थान	कारखाने	मजदूर
बिहार					
सिंहभूमि	२	२२,९०१	मेरठ	१	१८०
मानभूमि	१	४२१	कानपुर	२	१२५
	३	२३,३२२	झाँसी	१	३२
बंगाल			सहारनपुर	१	३२
हावड़ा	१	५६३		६	३९४
वर्दमान	३	१६,०४३	मद्रास		
चौबीस पर्गना	२	२७८	कृष्णा	१	८७
	६	१६,६१४	तंजोर	१	४१
युक्तप्रान्त				२	१२८
अलीगढ़	१	२५	शिमोगा, मैसूर	१	१९७३

कुल भारत १८ कारखाने ४३,७३१ मजदूर

अभी यह उद्योग आरम्भिक अवस्थामें है। फिर भी इटली, पोलेंड, कनाडा, स्वीडेन, आस्ट्रिया, हंगरी जैसे कृषिप्रधान देशोंसे कहीं आगे है, पर विश्वके अन्य देशोंके उत्पादनके समक्ष सर्वथा नगण्य है। १९१६ से लेकर १९२८ तकका दशवार्षिक औसत इस प्रकार है—

देश	लोहा	इस्पात	देश	लोहा	इस्पात
अमेरिका	२४०लाख टन	३५०लाख टन	ब्रिटेन	६०लाख टन	८०लाख टन
जर्मनी	११० ,,	१४० ,,	बेलजियम	४० ,,	५० ,,
रूस	६० ,,	११० ,,	भारत	१० ,,	१० ,,
फ्रांस	७० ,,	७० ,,			

भारतमें हालके कुछ वर्षोंका उत्पादन इस प्रकार है[1]—

१—ईस्टर्न इकोनोमिस्ट, विशेषांक, ३ जनवरी १९४७, पृष्ठ ३३।

साल	लोहा	इस्पात
१९३९–४०	१८३७६३६टन	८०४४६९टन
१९४०–४१	१९६१२७८ ,,	६७९८७५ ,,
१९४१–४२	२०१५२२१ ,,	९६१९०२ ,,
१९४२–४३	१८०४३५३ ,,	९०९६२७ ,,
१९४३–४४	१६८६५५१ ,,	९७८३७३ ,,
१९४४–४५	१३०३००० ,,	९२३००० ,,

स्पष्ट है कि युद्धकालमें इस उद्योगने पर्याप्त उन्नति की। जमशेदपुरके निकट कील काँटे, तार, रेलके डिब्बे, टिनप्लेट आदिके छोटे-मोटे कितने ही उद्योग धीरे-धीरे पनप रहे हैं।

१९३९ में सारे भारतमें साधारण इंजीनियरिंगके कारखाने ३४५ थे। इनकी ढलाईके कारखानोंकी संख्या ८८ थी, जिनमें क्रमशः ५०,४०२ और ६,४२८ मजदूर काम करते थे।[1] कोयला, लोहा तथा अन्य वस्तुओंके सुभीतेके कारण इंजीनियरिंगके सबसे अधिक कारखाने थे, जिनमें चौबीस पर्गनामें ६१ थे और हावड़ामें ५७। बंगालके बाद बम्बईका स्थान है। यहाँ इंजीनियरिंगके ७३ और ढलाईके १५ कारखाने हैं। मद्रासमें २५, पंजाबमें २१, युक्तप्रान्तमें २०, बिहारमें १९, सिंधमें १३, आसाममें ७ ऐसे कारखाने हैं। मैसूर, हैदराबाद, बड़ौदा, राजपूताना, मध्य भारत, मद्रास और बम्बईकी रियासतोंमें भी कुछ कारखाने हैं। १९३९ में बंगालमें २७ हजार मजदूर ऐसे कारखानोंमें काम करते थे।

भारत सरकार चाहती तो रेलवे इंजिन बनानेके उद्योगको भली भाँति प्रोत्साहन दे सकती थी। पर उसे तो ब्रिटिश सरकारके इशारोंपर नाचना पड़ता था। सन् १९३७, १९३८ और १९३९ में रेलवे

१—लार्ज इंडस्ट्रियल ऐस्टेब्लिशमेंट्स इन इंडिया, १९३९।

इंजिन आदिके लिए क्रमशः २२;३१ और २७ लाख रुपया ब्रिटेनको, ५,८, और २९ लाख रुपया जर्मनीको, तथा ४,६ और ८ लाख रुपया अन्य देशोंको भेजा गया।[1]

देशी उद्योगोंकी ऐसी व्यापक उपेक्षा विश्वमें शायद ही कहीं ढूंढ़े मिले।

आजके औद्योगिक जगतमें कोयलेका महत्त्व किसीसे छिपा नहीं है। यंत्र-युगके लिए उसकी अनिवार्य आवश्यकता है। रेलों और मशीनों, कलों और कारखानों, इंजिनों और प्रेसोंके लिए कोयला चाहिये।

कोयलेका उद्योग

कोयलेके विषयमें विश्वमें भारतका स्थान आठवाँ है। १९३५ में भारतका कुल उत्पादन २३० लाख टन था जो ब्रिटेनका सत्रहवाँ और अमेरिकाका अट्ठाइसवाँ भाग था। युद्धके कारण हालके वर्षोंमें कोयलेका उत्पादन इस प्रकार बढ़ गया है—

१९३५	२३० लाख टन	१९३८	२८३ लाख टन
१९३६	२३० ,,	१९३९	२७७ ,,
१९३७	२५० ,,	१९४०	२६० ,,

मात्रामें ही नहीं, श्रेणी-निर्धारणमें भी धाँधली खूब चलती है। रेलवे कमेटीके सामने श्री घोषने कहा कि दिखाई यह देता है कि कोयलेका वर्गीकरण करते समय ध्यान इस ओर दिया जाता है कि कोयलेकी खानका स्वामी कौन है—अंग्रेज है या भारतीय? एक ही कोयला जब अंग्रेजोंके हाथमें होता है तब उसे 'पहला' नम्बर दिया जाता है और जब भारतीयके हाथमें होता है तब 'दूसरा' नम्बर। अटावरकी कोयलेकी खान जबतक भारतीयोंके हाथमें रही तबतक किसीने उसके कोयलेको पूछा नहीं. पर जब वही थलियर्स लिमिटेडके

१—आडरकर : दि इंडियन फिस्कल पालिसी, १९४१, पृष्ठ १२९।

हाथमें पहुँच गयी तब उसीका कोयला इंजिनियरके मतसे 'अव्वल' नम्बरका हो गया ![1]

भारतका ६७ प्रतिशत कोयला गोंडवाना प्रदेशसे आता है। इसमें दामोदर घाटीके झरिया, रानी गंज, बोकरी, गिरिडीह और कर्णपुराके कोयलेके क्षेत्र, महानदी सोन और गोदावरीकी घाटियोंके क्षेत्र भी शामिल हैं। आसामके माकुम और पंजाबमें झेलमके क्षेत्रोंमें भी थोडा कोयला होता है। कुल कोयलेका आधा भाग झरियासे और एक तिहाई रानीगंजसे आता है। पंजाब, मध्यप्रान्त, मध्यभारत, आसाम, हैदराबाद, रींवा और बिलोचिस्तानमें कोयलेकी छोटी-छोटी खानें हैं।

कोयलेका उद्योग उन्नतिपर है। १८८० में जहाँ केवल १० लाख टन कोयलेका उत्पादन होता था, १८९० में २१ लाख, १९०० में ६१ लाख, १९१० में १२० लाख, १९२० में १८० लाख टन होने लगा। १९४० में वह २९० लाख टनतक पहुँच गया। यह भारतकी औद्योगिक प्रगतिका स्पष्ट प्रमाण है। उद्योगोंके विकासके साथ कोयलेके उद्योगका विकास अवश्यम्भावी है।

भारतसे कोयला विदेशोंको भी जाता है। उसकी मात्राका अनुमान इन आँकड़ोंसे किया जा सकता है—

सन्	निर्यात	सन्	निर्यात
१९२६	६,१७,५७३ टन	१९३३	४,२६,१७६ टन
१९२८	६,२९,३४० ,,	१९३५	२,१७,५८४ ,,
१९३०	४,६१,१८८ ,,	१९३७	८,५६,०९५ ,,
१९३२	७,१९,४८३ ,,	१९३९	१९,७१,०९७ ,,

कोयलेसे लगभग १० लाख टन साफ्ट कोक भी तैयार किया जाता है।

१—पट्टाभि सीतारामैया : भारतका आर्थिक शोषण, पृष्ठ ६२,५३।

अत्यन्त उत्तम फसल, उत्तम खपत, अधिकतम प्राकृतिक सुविधाएँ, तिसपर मिल गया सरकारी संरक्षण।[1] फिर क्या था! चीनी मिल

चीनी मिल उद्योग

उद्योग दिन-दूनी रात-चौगुनी उन्नति करने लगा। एक दशकके भीतर ही इस उद्योगने इतनी अधिक उन्नति की कि टैरिफ बोर्डकी भी आशाओंको मात कर दिया।[2] सरकारी भारी कर तथा अन्य अनेक बाधाओंके रहते हुए भी इस उद्योगने आशातीत सफलता प्राप्त की है। हवाई, क्यूबा, जावा, मारीशस तथा अन्य देशोंमें इस उद्योगको पनपनेमें अनेक वर्ष लगे हैं और आज भी उन्हें संरक्षणकी आवश्यकता पड़ती है पर भारतीय चीनी मिल उद्योगने सबको मात कर दिया है और वह अब दृढ़ भित्तिपर पहुँच गया है।[3]

इस उद्योगका जन्म हुए अभी थोड़े ही दिन हुए हैं फिर भी उत्पादन और खपतकी दृष्टिसे विश्वमें यह सबसे आगे बढ़ गया है। सन् १९३१ में इसे १५ वर्षके लिए जो संरक्षण मिला उसके कारण इसने इतनी अधिक उन्नति की कि आज बड़े उद्योगोंमें सूती मिल उद्योगके बाद इसीका स्थान है। इसमें लगभग ३५ करोड़ रुपया लगा है और १ लाख २० हजार मजदूरोंके अतिरिक्त ३००० ग्रेजुएट तथा इस विषयके कुशल व्यक्ति इसमें लगे हैं। २ करोड़ किसान भी इससे सम्बद्ध हैं।

युक्तप्रान्त और बिहारमें जहाँ प्रति एकड़ लगभग २५०० और २८०० पौंड गुड़की पैदावार होती है, वहाँ बम्बई और मद्रासमें यह पैदावार ५७०० और ६७०० पौंडतक होती है, किन्तु बम्बई और मद्रासमें गन्नेके लिए समुचित व्यवस्था न होने, उसमें अधिक खर्च पड़ने और वहाँके निवासियोंका गल्लेके अतिरिक्त मूंगफली, कपास,

---

१—एस० गणपति राव : इंडियन शुगर टैरिफ, पृष्ठ ७३।

२—आडरकर : दि इंडियन फिस्कल पालिसी, पृष्ठ १९४।

३—वही, पृष्ठ २५७–२५८।

केला, मिर्च, तम्वाकू आदि मूल्यवान फसलोंकी ओर अधिक झुकाव होनेसे चीनीके उत्पादनमें युक्तप्रान्त और विहार ही अग्रणी हैं ![1]

सन् १९२१ में सारे भारतमें चीनीके कुछ ६९ कारखाने थे जिनमें १३,३७६ मजदूर काम करते थे। १९३९ में उनकी संख्या वढ़कर क्रमशः १६६ और ८१,८२५ हो गयी। १९२१ में युक्तप्रान्त, विहार और मद्रासमें क्रमशः १६; ३५; ११ कारखाने थे, सन् १९३९ में युक्तप्रान्तके कारखानोंकी संख्या वढ़कर ७७ होगयी, विहारमें केवल १ कारखाना वढ़ा, मद्रासमें ३ वंगालमें ३ के स्थानपर ११ कारखाने होगये।[2]

युक्तप्रान्तमें चीनी मिल उद्योगमें गोरखपुर सवसे आगे है। १९३९ में केवल गोरखपुरमें १४००० मजदूर काम करते थे। युक्तप्रान्त और विहार इन दोनों प्रान्तोंमें कुल मिलाकर ८० प्रतिशत चीनी उत्पन्न होती है। हालके वर्षोंके कुछ आंकड़े इस प्रकार हैं—

सन्	भारतका कुल उत्पादन	युक्तप्रान्त और विहार
१९३९–४०	१२,४२,००० टन	७९ प्रतिशत
१९४०–४१	९,८२,००० ,,	६९ ,,
१९४२–४३	१०,७३,००० ,,	८१ ,,
१९४३–४४	१२,२१,००० ,,	७५ ,,

भारतमें जितना गन्ना होता है उसमेंसे लगभग ८० प्रतिशतका गुड़ वनता है, २० प्रतिशतकी चीनी। १९४२–४३ में ५६ लाख टन गुड़ वना था, १० लाख टन चीनी। अभी देशमें चीनीकी खपत का औसत ६,७ पौंड है। उसमें वृद्धिकी गुंजायश है।

भारतमें चीनीके उत्पादनमें वृद्धि होनेसे विदेशोंसे आनेवाली चीनीकी मात्रामें पर्याप्त कमी होगयी। १९३०–३१ तक जहाँ विदेशसे

१—चीनी उद्योगपर टैरिफ वोर्डकी रिपोर्ट, १९३८, पृष्ठ २६–२७।
लोकनाथन् : इंडस्ट्रियल आर्गेनाइजेशन इन इंडिया, पृष्ठ ७१।

२—लार्ज इंडस्ट्रियल एस्टेव्लिशमेंट्स इन इंडिया, १९२१ और १९३९।

१० लाख टन चीनी आती थी, वहाँ १६३६–३७ में वह केवल ११,६६० टन रह गयी। आपसी प्रतिद्वंद्वितापर नियंत्रण करनेके लिए सन् १९३७ में ९० से अधिक चीनी मिलोंने अपना शुगर सिंडिकेट बनाया। बादमें इस उद्योगकी ओरसे अधिक उत्पादन और प्रतिद्वन्द्विता रोकनेके लिए सरकारसे अनुरोध किया गया। फलतः युक्तप्रान्त तथा बिहारकी सरकारोंने शुगर फैक्टरी नियंत्रण कानून बना दिये। संयुक्त नियंत्रण बोर्ड, शुगर कमीशन आदि द्वारा भी इसपर नियंत्रण करनेका प्रयत्न किया गया है। सन् १६३७ में भारत सरकारने पाँच सालके लिए चीनीके निर्यातपर रोक लगा दी। ४२ में इसके निर्यातकी छूट मिल गयी। १६४२ में चीनीका मूल्य सरकारने नियंत्रित कर दिया। खाद्य-पदार्थोंके अतिरिक्त सरकारने चीनीपर भी नियंत्रण कर दिया।

देशमें यह उद्योग खूब पनप रहा है। चीनीका उत्पादन अधिक होनेपर कभी-कभी किसानोंको बुरी तरह पिसना पड़ता है। मिलोंमें उनका गन्ना तौलने, दाग देने, अनेक प्रकारके अनुचित और गैर-सरकारी कर वसूल करनेमें तो मिलके कर्मचारी धाँधली मचाते ही हैं। इससे किसानोंको भारी क्षति उठानी पड़ती है। इसके अतिरिक्त गन्नेकी बिक्री न होनेपर अथवा उसका दाम अधिक गिर जानेपर उनकी दुर्दशाका ठिकाना नहीं रहता। उन्हें कभी-कभी खड़ी फसल जला देनी पड़ती है।

दियासलाईका उद्योग

१६२१ में दियासलाई बनानेवाले केवल दो कारखाने थे। एक अहमदाबादमें था और दूसरा मध्यप्रान्तके कोटामें। इनमें कुल ४०० मजदूर काम करते थे। १६३६ में कारखानोंकी संख्या बढ़कर ११३ हो गयी और मजदूरोंकी १६०००।[1] इस चालीस गुनी वृद्धिका कारण यह था कि १९२२ में विदेशसे आनेवाली दियासलाईपर इतना भारी कर

१ — लार्ज इंडस्ट्रियल एस्टेब्लिशमेंट्स इन इण्डिया, १९३९।

लगा कि उसके कारण देशमें वननेवाली दियासलाईको आशातीत प्रोत्साहन मिल गया। इसी कारण आयातमें भी भारी कमी हो गयी—

सन्	लाख ग्रूस	सन्	लाख ग्रूस	सन्	लाख ग्रूस
१९१५–१६	१८३	१९२३–२४	११२	१९२६–२७	६१
१९२१–२२	१३७	१९२४–२५	७२	१९२७–२८	३५
१९२२–२३	११३	१९२५–२६	७९	१९२८–२९	१५

प्रथम महायुद्धके पूर्व जहाँ ८८ लाख रुपयेके १४५ लाख ग्रूस आते थे, वहाँ १९३८–३९ में २३ लाख रुपयेके केवल १२ लाख ग्रूस आने लगे। पर यह उन्नति केवल एक कम्पनीकी थी जो वस्तुतः विदेशी थी, पर उसने भारतमें भी अपनी अनेक शाखाएँ खोल रखी थीं। इस कम्पनीका नाम था स्वेडिश मेच कम्पनी।[1] सन् १९१२–१५ के पहले भारतमें जापान, स्वीडेन तथा अन्य देशोंसे दियासलाइयाँ आती थीं, पर स्वेडिश मेच कम्पनीने सबको पछाड़ दिया।[2] जापान तथा अन्य देशोंको पछाड़नेके बाद स्वेडिश मैच कम्पनीने भारतकी अन्य कम्पनियोंको पछाड़नेका प्रयत्न किया। दूषित ढंगके विज्ञापन, प्रचार और प्रलोभन द्वारा उसने अपना उद्देश्य सिद्ध किया। जो एजेंट केवल उसी कम्पनीका माल वेंचते उन्हें अतिरिक्त कमीशन दिया जाता। ५०० ग्रूस खरीदनेवालेको १३ चद्दरें इनाम दी जाती! उसी प्रकार लोगोंको कम अधिक इनाम दिया जाता था।[3] टैरिफ बोर्डने इस कम्पनीकी चालोंको स्वीकार तो किया, पर उनसे शुद्ध भारतीय उद्योगको बचानेके लिए उसने कोई विशेष प्रयत्न नहीं किया।[4]

१—आडरकर : दि इण्डियन फिस्कल पालिसी, पृष्ठ २८९।

२—वही, पृष्ठ २८१–२८२।

३—एक्स : दि ट्रेजेडी आव दि इंडियन मैच इंडस्ट्री, लेख, मार्डन रिव्यू, अगस्त १९३८, पृष्ठ २६६।

४—आडरकरः दि इंडियन फिस्कल पालिसी, पृष्ठ २९५।

टेरिफ वोर्डके कथनानुसार १ ग्रूस दियासलाईके उत्पादनमें ५ आना मजदूरी, ३ आना लकड़ी, १ आना रासायनिक पदार्थ, और ५ आना अन्य पदार्थोंमें लगता है।[1] भारतमें मजदूरी सस्ती होनेसे स्वेडिश कम्पनीको पनपनेका अच्छा अवसर मिला। यहाँ इसके लिए उपयुक्त लकड़ी कम मिलती है। स्वेडिश कम्पनी तो स्वीडेन या फिनलैंडसे आस्पेन लकड़ी मंगवाती है पर भारतीय कम्पनियाँ अधिकतर देशी लकड़ीसे काम चलाती हैं। कलकत्तामें सुन्दरवन और अन्दमानसे वेनवा, पपाता, यूप, दिपू, वकोटाकी लकड़ी इसके लिए मँगायी जाती है। भारतमें दियासलाईका सबसे अधिक उत्पादन कलकत्ताके आस-पास होता है। उसके वाद क्रमशः मद्रास, वम्बई, हैदरावाद आदिका स्थान है। युक्तप्रान्त, आसाम, वड़ौदा पंजाव, ट्रावनकोर, राजपूताना, मध्यप्रान्त आदिमें भी थोड़ा-थोड़ा उत्पादन होता है। १९३५-३६ में भारतमें २४० लाख ग्रूस दियासलाई तैयार हुई थी।

मशीनके कागजका आरम्भ भारतमें सन् १८७० से हुआ है। सबसे पहले हुगली तटपर वाली मिल खुली। इसके असफल होनेपर

कागजका उद्योग

टीटागढ़ मिलने इसकी मशीन खरीद ली। इस मिलका काम १८८२ से चालू हुआ। इसने १९०३ में कनकिनाराकी इम्पीरियल पेपर मिल ले ली। प्रथम विश्वयुद्धमें इस उद्योगको कुछ प्रोत्साहन मिला।

इंडियन पेपर पल्प कम्पनीने १९१८ में नैहाटी मिल खोली। अधिकतर मिलें वंगालमें ही खुलीं। आज भी वह इस दिशामें सबसे आगे है। युक्तप्रान्त, विहार, वम्बई, मैसूर, उड़ीसामें भी कागजकी मिलें हैं। १९२१ में सारे भारतमें कागजकी ८ मिलें थीं और उनमें ५९५२ मजदूर काम करते थे। १९३९ में उनकी संख्या वढ़कर क्रमशः १६

१—इंडियन टैरिफ बोर्डकी रिपोर्ट, १९२८।

और १२४१० होगयी ।[1] उत्पादनमें भी इसी प्रकार वृद्धि हो रही है। १९३५–३६ में भारतीय कागजका उत्पादन ६,६१,०२० हंडरवेट था जो १९३९–४० में १३,६७,१०० हंडरवेट होगया ।[2] यहांपर सवाई घास और वाँससे कागज वनता है। वाँसकी लुवदीसे कागज वनानेके लिए अच्छा क्षेत्र है। १६२५ से इसे सरकारी संरक्षण प्राप्त हैं। युद्धकालमें कागजके उद्योगको अच्छा प्रोत्साहन मिला है।

१८६० में सवसे पहले कानपुरमें सैनिक आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिए एक सरकारी हार्नेस एंड सैडलरी फेक्टरी खुली। यहाँ युरोपियन

चमड़ेका उद्योग

ढंगपर चमड़ेकी कमाईका कार्य आरम्भ हुआ। कच्चा माल मिलनेकी दृष्टिसे कानपुर आज भी इस उद्योगमें अग्रणी है।

मद्रासमें ७१ लाख, मैसूरमें ७ लाख, हैदरावादमें ६ लाख, वम्वईमें ३ लाख इस प्रकार सारे भारतमें ८७ लाख खालें कसी जाती हैं और लगभग ३० लाख खालें कमायी जाती हैं। युक्तप्रान्त और मुख्यतः कानपुर और आगरामें ११ लाख खालें, मद्रासमें ९ लाख, वंगालमें ७ लाख, वंवई और पंजाबमें एक-एक लाख लाखें कमायी जाती हैं।[3]

दोनों विश्वयुद्धोंमें सरकारी प्रोत्साहन मिलनेसे यह उद्योग अच्छा पनपा है। चमड़ा कमानेके अतिरिक्त यहाँ उसके वूट, जूते, सूटकेस, थैले, जीन आदि अनेक चीजें वनती हैं। वाटा नगरमें वाटा शू फैक्टरी और कानपुरमें हार्नेस एंड सेडलरी फैक्टरी तथा आर्मी वूट्स एंड एक्विपमेंट फेक्टरी देशकी प्रमुख फैक्टरियाँ हैं। १६३६ में वाटा और

---

१ – लार्ज इंडस्ट्रियल एस्टेब्लिशमेंट्स इन इंडिया, १९२१ और १६३६।

२—आडरकर: दि इंडियन फिस्कल पालिसी, पृष्ठ २५९–२७५।

३—रिपोर्ट ओन दि मार्केटिंग आव हाइड्स इन इंडिया एंड वर्मा, पृष्ठ ६६।

आर्मी बूट फैक्टरीमें क्रमश: ३६३२ और २५६७ मजदूर काम करते थे। इस उद्योगके ८९ प्रतिशत मजदूर केवल इन दो कारखानोंमें ही हैं। हार्नेस एंड सैडलरी फैक्टरीमें ३२२८ मजदूर काम करते हैं।[1]

उद्योगोंके विस्तारके लिए सलफ्यूरिक, हाइड्रोक्लोरिक एसिड जैसे रासायनिक पदार्थोंके उद्योगकी उन्नतिकी आवश्यकता किसीसे छिपी नहीं है। पर भारतमें यह उद्योग अभी शैशवावस्थामें ही है। १९३१ से १९३३ तक इसे संरक्षण मिल जानेसे कुछ प्रगति हुई। परन्तु सरकारने इसके विषयमें टैरिफ बोर्डकी सिफारिशोंको कोई महत्त्व नहीं दिया।[2] युद्धकालमें अवश्य ही इसे कुछ प्रोत्साहन मिल गया। सोडा ऐश और सलफ्यूरिक एसिडका उत्पादन होने लगा। बंगालके चौबीस परगना और बड़ौदाके ओखामंडल इस उद्योगके प्रमुख केन्द्र हैं। यहाँ क्रमश: ४० और २४ प्रतिशत व्यक्ति काम करते हैं। १९२१ में देशमें इसके १४ कारखाने थे जिनमें २३९२ व्यक्ति काम करते थे। १९३६ में इनकी संख्या बढ़कर क्रमश: ३८ और ७०६८ हो गयी। बंगाल, युक्तप्रान्त, बम्बई, दिल्ली, मद्रास, पंजाब, बड़ौदा, मैसूर, काश्मीर आदिमें यह उद्योग पनप रहा है। पर सरकारकी इम्पीरियल केमिकलसपर आरम्भसे ही कृपा रही है। जिस कम्पनीको भूतपूर्व वाइसराय लार्ड लिनलिथगो जैसे व्यक्तियोंका सक्रिय सहयोग प्राप्त हो, ऐसे लोग जिस कम्पनीके डाइरेक्टर हों, उसपर सरकारकी कृपादृष्टि हो तो आश्चर्य ही क्या!

रासायनिक पदार्थोंका उद्योग

रासायनिक पदार्थोंका उद्योग उपेक्षित रहनेके कारण ही भारतको लगभग ८ करोड़के रासायनिक पदार्थ विदेशोंसे मँगाने पड़ते हैं।

१—लार्ज इंडस्ट्रियल एस्टेब्लिशमैंट्स आव इंडिया, १९३९।

२—आडरकर : दि इंडियन फिस्कल पालसी, पृष्ठ ३५५।

शीशेका उद्योग

सन् १९२१ में शीशेके कारखानोंकी संख्या ८४ थी और इसमें ४३६१ कारीगर लगे थे। सन् १९३९ में कारखानोंकी संख्या घटकर ७९ रह गयी पर कारीगरोंकी संख्या बढ़कर १०१५१ हो गयी।[१] युक्तप्रान्तमें आगरा और फीरोजाबाद तथा बंगालमें चौबीस परगना जिला इसमें अग्रणी है। युक्तप्रान्तमें बालू और मजदूरी सस्ती पड़ती है, कोयला मँहगा। बंगालमें कोयला सस्ता पड़ता है, बालू मँहगी। फीरोजाबादका चूड़ीका उद्योग उन्नतिपर है। भारतमें प्रति वर्ष लगभग १ करोड़ २० लाख रुपयेकी शीशेकी वस्तुएँ तैयार होती हैं। इसमेंसे केवल युक्तप्रान्तमें १ करोड़का माल तैयार होता है।

सीमेंटका उद्योग

हालके उद्योगोंमें सीमेंटका उद्योग विशेष उन्नतिपर है। विश्वयुद्धने इसे अच्छा प्रोत्साहन दिया। १९२१ में भारतमें सीमेंटके ८ कारखाने थे जिनमें ५०९० व्यक्ति काम करते थे। १९३९ में इनकी संख्या बढ़कर क्रमशः १९ और १०७५८ होगयी।[२] सन् १९१४ में पोर्टलैंड सीमेंटका उत्पादन ९४५ टन था जो १९३२–३३ में बढ़कर ५९३००० टन हो गया। सीमेंटके उत्पादनके हालके आँकड़े इस प्रकार हैं—

सन्	उत्पादन	सन्	उत्पादन
१९३९–४०	१७,३३,४०० टन	१९४२–४३	२६,८२,८१८ टन
१९४०–४१	१७,२७,४५३ टन	१९४३–४४	२१,१६,२१८ टन
१९४१–४२	२२,२२,४१८ टन	१९४५	२१,६०,००० टन

१९१४ में विदेशोंसे १५०,००० टन सीमेंट आया था। यह आयात तीव्र गतिसे घट गया। १९३९–४० में वह घटकर ११,००० टन रह गया। इसीसे इस उद्योगकी प्रगतिका अनुमान किया जा सकता

१—लार्ज इंडस्ट्रियल एस्टेब्लिशमेंट्स आव इंडिया, १९२१ और १९३९।
२—लार्ज इंडस्ट्रियल एस्टेब्लिशमेंट्स आव इंडिया, १९२१ और १९३९।

है। सीमेंटके कारखाने विहार, उड़ीसा, मध्यप्रान्त, मद्रास, पंजाव, बंगाल और सिंध प्रान्तोंमें तथा राजपूताना, मैसूर, हैदराबाद, बड़ौदा, बम्बई और मध्य भारतकी रियासतोंमें हैं, इनमें जबलपुर, विहार और बूंदीके कारखाने सबसे बड़े हैं।

तम्बाकूका उद्योग

भारतमें धूम्रपानका व्यसन कितना बढ़ गया है, यह बतानेकी आवश्यकता नहीं। सिगरेट और सिगार, चुरुट और बीड़ी, जर्दा और सुर्तीमें करोड़ों रुपया फूक दिया जाता है। हुक्का और चिलम साधारण शिष्टाचार और स्वागतकी वस्तु बन गयी है। इस उद्योगमें लगभग ५० करोड़ रुपयेका हेरफेर होता है। इसका उत्पादन ३७ करोड़के लगभगका है। सिगरेटें ६ करोड़की, सिगारें १४ लाखकी, चुरुटें ६ करोड़की और बीड़ियाँ साढ़े ७ करोड़की बनती हैं। हुक्केकी तम्बाकू १० करोड़के लगभगकी तैयार की जाती है। खानेकी सुर्ती जर्दाका उत्पादन ३ करोड़का है। डेढ़-दो करोड़की तम्बाकू केवल सूंघनेके उद्देश्यसे तैयार की जाती है!

सन् १६२० से १९३५ के बीच इस उद्योगने अच्छी प्रगति की। १६३५ में सिगरेटके रजिस्टर्ड कारखानोंकी संख्या २२ थी, जिनमें प्रतिदिन ८ हजार व्यक्ति काम करते थे। धूम्रपानका स्वास्थ्यनाशक फैशन चल पड़नेके कारण यह उद्योग उन्नतिपर है। सिगरेटकी आधीसे अधिक पत्तियोंको 'इंडियन लीफ टोबैको डेवलपमेंट कम्पनी' खरीद लेती है। कुछ विदेश भेज देती है और कुछ यहाँ बेच डालती है। बंगलोर, सहारनपुर, मुंगेर और कलकत्तामें सिगरेट बनानेके चार बड़े कारखाने हैं। इनमें देशकी तीन-चौथाई सिगरेटें तैयार होती हैं। सिगारोंमें मद्रास आगे है। यों इनका प्रचलन कम है। चुरुटका उत्पादन ग्रामोद्योगके रूपमें होता है। वही हाल बीड़ियोंका है। इसके लिए मद्रास, पूना, भंडारा, जबलपुर, गोंदिया, नागपुर, कामठी आदि प्रख्यात

हैं। ४२ हजारसे अधिक व्यक्ति इस उद्योगमें लगे हैं, जिनमें ३१ हजार तो केवल भंडारामें हैं।

भारतमें प्रति वर्ष ७५,००,०० लाख बीड़ियां बनती हैं। इनमें ७ करोड़ पौंड तम्बाकू लगती है। हुक्केकी तम्बाकू ६० लाख मन तैयार की जाती है। यह मीठी और कड़वी दो प्रकारकी होती है। खमीरा भी तैयार किया जाता है। दिल्ली, लखनऊ, रामपुर, गोरखपुर तो इसके केन्द्र हैं ही, सभी छोटे बड़े नगरोंमें यह उद्योग चलता है। खानी तम्बाकू, जर्दा, किवामी या दानेदार तम्बाकू दिल्ली और युक्तप्रान्तमें विशेषरूपसे तैयार होती है। काशी, मैनपुरी, मिर्जापुर आदि इसके लिए विशेषरूपसे प्रख्यात हैं। नासकी तम्बाकू लगभग २१७ लाख पौंड तैयार की जाती है। इसका उत्पादन मुख्यतः सीमाप्रान्त, पंजाब, मद्रास, मैसूर आदिमें होता है।

रेशमका उद्योग

ईस्ट इंडिया कम्पनीने भारतके रेशमी वस्त्रके उद्योगको नष्ट करनेमें कोई कसर उठा नहीं रखा। आरम्भसे ही बंगाल, काश्मीर, मैसूर इस उद्योगके प्रमुख केन्द्र रहे हैं। १९३२ में टैरिफ बोर्डने इस उद्योगके विषयमें जांच करके लिखा था कि रियासतोंमें अवश्य ही इस उद्योगको प्रोत्साहन दिया गया है, पर बंगाल तथा अन्य प्रान्तोंकी सरकारोंने इस ओर लेशमात्र भी ध्यान नहीं दिया। इस कारण इस उद्योगकी अवस्था शोचनीय हो गयी।[1] इधर कुछ दिनोंसे इस ओर सरकारोंका ध्यान गया है। १९३६ में ब्रिटिश भारतमें ३११,३२६ और रियासतोंमें १०,०२५ करघे चलते थे। आसाम इस उद्योगमें अग्रणी हैं। केवल उसी एक प्रान्तमें २०३,००० करघे चलते हैं। कारीगरोंकी दृष्टिसे काश्मीर, श्रीनगर सबसे आगे हैं। उसके बाद बंगालका चौबीस पर्गना, सूरत, बंगलोर और अहमदाबाद है।

१—रेशमी वस्त्र उद्योगपर टैरिफ बोर्डकी रिपोर्ट, पृष्ठ ३१—३४।

सन् १६२१ में भारतमें रेशमकी मिलों और कारखानोंकी संख्या ११ थी और उनमें काम करनेवाले कारीगरोंकी १६७६। सन् १९३९ में दोनोंकी संख्या बढ़कर क्रमशः ६२ और १०,०६६ होगयी।[1]

भारतके ऊनी वस्त्रके उद्योगको ४ भागोंमें बाँट सकते हैं—ऊनी मिलें, करघेकी बुनाई, गलीचे और शालका काम, तथा ऊनी होजियरी।

ऊनी वस्त्रका उद्योग

१६३९ में भारतमें ऊनी मिलों और कारखानोंकी संख्या २४ थी, जिनमें १६ ब्रिटिश भारतमें थे, ८ रियासतोंमें; इनमें काम करनेवाले कारीगरोंकी कुल संख्या १७, २०१ थी। ब्रिटिश भारतके कारखानोंमें काम करनेवाले कारीगरोंकी संख्या थी ७४३३ और रियासतोंमें काम करनेवालोंकी ९७६८। श्रीनगर और पामपीरके चर्खा संघके ८९३० कारीगर भी इसमें शामिल हैं।

ऊनी वस्त्रके कारखाने कानपुर और अमृतसर तथा बंगाल, बम्बई, मद्रास और विहारमें हैं। मैसूर, काश्मीर, बड़ौदा और राजपूतानाकी रियासतोंमें भी यह उद्योग जीवित है। ऊनी गलीचोंका काम भी प्रगतिपर है। १९३९ में भारतमें इसके १६ कारखाने थे, जिनमें ३३८२ कारीगर काम करते थे। सलेम, वारंगल, श्रीनगर, काशी, ग्वालियर, किशनगढ़, बीकानेर आदि इसके लिए विशेष रूपसे प्रख्यात हैं।[2]

ऊनी वस्त्र बुननेके लिए १६३९ में ब्रिटिश भारतमें ६२,३९७ और रियासतोंमें ३६,८०५ करघे चलते थे। युक्तप्रान्तमें चलनेवाले करघोंकी संख्या ३०,५८५ थी, पंजाबमें चलनेवालोंकी १८५००, काश्मीरमें १६,७६६ और हैदराबादमें चलनेवाले करघोंकी संख्या १४,३६३ थी।[3] ऊनी होजियरीके बिजलीसे चलनेवाले कारखानोंकी संख्या

१—लार्ज इंडस्ट्रियल एस्टेब्लिशमेंट्स आव इंडिया, १९२१ और १९३९।

२—वही। ३—फैक्ट फाइंडिंग कमेटीकी रिपोर्ट, पृष्ठ ३०।

१९३९ में ७३ थी, विना बिजलीवाले कारखानोंकी २६४। पंजावमें ऐसे बिजलीवाले कारखाने ४२ थे, बंगालमें १०। विना बिजलीके कारखानोंमें पंजाव, बंगाल और युक्तप्रान्त अग्रणी हैं।[1]

नौ-उद्योग

भारतमें आरम्भसे ही नौ-उद्योग उन्नतिपर रहा है। बंगाल, आसाम, उड़ीसा, मद्रास, पंजाव और सिंध प्रान्तोंकी नदियाँ नौ-उद्योगके लिए परम उपयुक्त हैं। उनका इस कार्यके लिए भरपूर उपयोग भी होता रहा है। पर जबसे रेलोंका विकास आरम्भ हुआ तभीसे इस उद्योगका नाश करनेका संघटित प्रयत्न आरम्भ हुआ। भड़ौंचका बन्दरगाह अपनी समृद्धिके लिए प्रख्यात था। धीरे-धीरे उसका सारा महत्त्व नष्ट कर दिया गया। मद्रासकी वकिंघम नहरके मार्गसे खूब व्यापार होता था। वह भी सर्वथा नगण्य बना दी गयी। सिंधमें यह उद्योग कितना समृद्ध था, यह दोहरानेकी आवश्यकता नहीं। वहाँ १८५६ में स्टीमर चलने आरम्भ हुए। १८७० में सिंध रेलवेने उन्हें एक दशकके भीतर ही समाप्त कर दिया।

अभी कुछ दिन पहले कलकत्ता, काशी और आगरा जलमार्ग द्वारा मिले थे। सिंध नदीमें १००० मीलतक, अटकतक नावें चलती थीं। चिनावमें ८०० मीलतक अर्थात् वजीरिस्तानतक और उसी प्रकार सतलजमें लुधियानातक नावें चला करती थीं। अनेक नहरोंसे भी काम लिया जाता था। गत युद्धमें सरकारने इस तथ्यको तब अनुभव किया जब बर्माका मोर्चा जीतनेका उपाय यही जान पड़ा। बंगालमें नौ-उद्योगको आज भी कुछ संरक्षण प्राप्त है। आज भी कलकत्ता जानेवाले मालका एक चौथाई नावोंसे जाता है और कलकत्ता-से ३२ प्रतिशत माल इसी मार्गसे देशके अन्य भागोंमें पहुँचता है।

१—ऊनी वस्त्र उद्योग पर टैरिफ बोर्डकी रिपोर्ट, पृष्ठ ६६।

देशके भीतर इस मार्गका प्रयोग २५ हजार मीलतक किया जा सकता है। १० हजार मील नदियोंसे और १५ हजार मील नहरोंसे।[1] आन्तरिक व्यापारके लिए नौ-उद्योगके विकासके लिए पर्याप्त क्षेत्र है।

जो स्थिति आन्तरिक व्यापारकी रही, वही तटवर्त्ती और उससे भी अधिक समुद्री-व्यापारके लिए रही। भारत सरकार इस विषयमें आरम्भसे ही ब्रिटेनके इशारोंपर नाचती रही। भारतीय जहाजोंका ब्रिटेन जाना रोक दिया गया, उनपर भारी कर लगाया गया तथा और भी ऐसे उपाय किये गये जिनसे भारतका नौ-उद्योग सर्वथा नष्ट हो गया। दरोंकी प्रतिद्वन्द्विताकी मारने इस उद्योगको कहींका न रखा। एक उदाहरण देना अप्रासंगिक न होगा। ताताने जब चीन सूत लेजानेके लिए कुछ जहाजोंकी व्यवस्था की तो पैनिनसुलर एण्ड ओरियंटल स्टीम नेविगेशन कम्पनीने उसका भाड़ा १६) प्रति टनसे घटाकर एक रुपया टन कर दिया! जब यह भारतीय कम्पनी समाप्त हो गयी तो उक्त कम्पनीने वही भाड़ा बढ़ाकर १७) प्रति टन कर दिया। ६० से ७५ प्रतिशत दाम घटाकर भारतीय जहाजोंको नष्ट करनेकी चाल तो विदेशी कम्पनियोंके लिए साधारण बात रही है।[2] इसी नीतिके कारण समुद्री-व्यापार तो भारतके हाथसे सर्वथा जाता ही रहा है, तटवर्त्ती व्यापार भी मुश्किलसे २५ प्रतिशत रह गया है।

जहाजरानीपर पुनर्निर्माण-नीति-उपसमितिने जो रिपोर्ट उपस्थित की है उससे स्पष्ट है कि भारतका नौ-उद्योग भारत सरकारकी दूषित नीतिके फलस्वरूप कितनी बुरी तरह चौपट हो गया। समितिने ठीक ही सिफारिश की है कि इस विषयमें जोरदार राष्ट्रीय नीति होनी चाहिये। समितिने कहा है कि तटवर्त्ती व्यापार तो शत-प्रतिशत भारतीयोंके हाथमें होना चाहिये, बर्मा, लंका तथा समीपस्थ देशोंके व्यापारमें

१—ईस्टर्न इकोनोमिस्ट, २८ मार्च १९४७, पृष्ठ ५९०-५९१।

२—वही, ११ अप्रैल १९४७, पृष्ठ ६५०।

७५ प्रतिशत तथा दूरवर्त्ती व्यापारमें भी भारतीयोंका ५० प्रतिशत हाथ होना चाहिये।[1]

इन सब उद्योगोंके अतिरिक्त देशमें और भी कितने ही उद्योगोंने प्रगति की है। जैसे, साबुन, रवड़, साइकिल, गोंद, लाख, तारपीन, सिनकोना आदिके उद्योग। आटा पीसने, तेल निकालने, चावल कूटने आदिकी मिलें भी तेजीसे प्रगति कर रही हैं यद्यपि इनसे हजारोंकी रोजी छिन रही है और जनताका स्वास्थ्य चौपट हो रहा है। अखिल भारतीय ग्रामोद्योग संघकी माँग है कि चावल कूटनेकी सभी मिलें एकदम वन्द कर दी जानी चाहिये।[2]

छोटे वड़े उद्योगोंके विषयमें अर्थशास्त्रियों और राजनीतिज्ञोंके दो मत हैं। कुछ केवल वड़े उद्योगोंका समर्थन करते हैं, कुछ दोनोंका।

राष्ट्रीय योजना समिति

ताता-विड़ला आदिकी योजनामें देशके निर्माणके लिए केवल वड़े उद्योगोंकी वकालत की गयी है।[3] पर गांधीजीके शब्दोंमें भारत जैसे ७ लाख ग्रामों-वाले देशके लिए, उसकी आर्थिक उन्नतिके लिए ग्रामोद्योगोंका विकास ही एकमात्र उपाय है। उद्योगवादका भविष्य पश्चिमी देशोंके लिए अन्ध-कारमय है तो क्या वह भारतके लिए और अधिक अन्धकारमय न होगा ? उद्योगवाद मानव जातिके लिए भयंकर अभिशाप है। जीवनमें मशीनका भी एक स्थान है, किन्तु उसे इतना प्रोत्साहन न देना चाहिये कि वह मनुष्यको कामपरसे हटा दे और उसकी रोजी छीन ले। पर आजका यंत्र-दानव यही कर रहा है। वह गरीबोंका शोषण

१–रिपोर्ट आव दि रिकंस्ट्रक्शन पालिसी-सव-कमेटी ओन शिपिंग, १९४७।

२—मैत्र और लक्ष्मण : काटेज इंडस्ट्री इन इंडियन इकोनोमी, पृष्ठ ५७।

३—ताता, विडला आदि : भारतकी आर्थिक योजना, दो भाग।

करके अमीरोंके लिए सोने चाँदीके महल खड़े कर रहा है। इससे मुक्ति का एक ही उपाय है—विकेन्द्रीकरण।[3]

पंडित जवाहरलाल नेहरूका कहना है कि किसी भी देशके आर्थिक-निर्माणके लिए केवल ग्रामोद्योगों और छोटे पैमानेके उद्योगोंपर आश्रित नहीं रहा जा सकता। ग्रामोद्योगके समर्थक भी बड़े उद्योगोंको आवश्यक और अनिवार्य मानते हैं। कोई भी देश उस समयतक राजनीतिक और आर्थिक दृष्टिसे स्वतंत्र नहीं हो सकता जबतक वहाँ बड़े पैमानेपर उद्योगोंका विकास न किया जाय।[4]

छोटे-बड़े सभी प्रकारके उद्योगोंको प्रोत्साहन देने, भोजन, वस्त्र-तथा जीवनकी अन्य अनिवार्य आवश्यकताओंकी पूर्तिका उचित प्रबन्ध करने और देशकी विभिन्न आर्थिक समस्याओंका हल निकालनेके लिए कांग्रेसकी इच्छाके अनुसार १९३८ में पंडित जवाहर लाल नेहरूकी अध्यक्षतामें 'राष्ट्रीय आर्थिक निर्माण योजना समिति' का जन्म हुआ। देशके बड़े-बड़े उद्योगपतियों, अर्थशास्त्रियों, प्रोफेसरों, ट्रेड यूनियन कांग्रेस तथा ग्रामोद्योग संघके प्रतिनिधियोंने इसमें सहयोग दिया। मुख्य समस्याओंपर विचार करनेके लिए २९ उपसमितियां बनीं जिनमें ३५० सदस्य लिये गये। अन्तिम रिपोर्ट तैयार होनेके पहले ही नेहरूजी नौकरशाही दमनके शिकार बन गये। जेलसे छूटनेके बाद तो स्थिति ही बदल गयी। आशा है कि समितिकी स्थापना जिस उद्देश्यसे की गयी थी वह निकट भविष्यमें पूरा होगा और छोटे-बड़े सभी उद्योगोंका समुचित विकास होगा, जिससे दरिद्र, शोषित और पीड़ित भारतका कायाकल्प हो जायगा।

३—श्रीमन्नारायण अग्रवाल : गांधीवादी शासन विधान; गांधीवादी आर्थिक योजना।

४—जवाहरलाल नेहरू : डिस्कवरी आव इंडिया, पृष्ठ ४६०।

मजदूर

सन् १९२८ में ए० ए० पर्सेल और हाल्सवर्थ नामक दो ब्रिटिश मजदूर नेताओंने ट्रेड यूनियन कांग्रेसकी ओरसे भारतके मजदूरोंकी अवस्थाकी जाँच करनेके उपरान्त जो रिपोर्ट दी थी उसमें हमारे मजदूरोंकी अवस्थाका बड़ा ही दयनीय चित्रण है। आज भी उसमें कोई कमी नहीं आयी है।

इंग्लैंडकी क्रान्ति

इंग्लैंडमें सामन्त युगके अन्तमें व्यापारकी अभिवृद्धिके साथ ऊनकी जब अन्धाधुन्ध माँग बढ़ी तो सामन्तोंने किसानोंके खेतोंको छीन-कर भेड़ोंके लिए चरागाह बना डाले। फलतः असंख्य किसान निराश्रित हो उठे। इसी समय व्यापारियोंने एशिया, अफ्रिका, अमेरिका आदि देशोंके अपने नये बाजारोंमें भेजनेके लिए माल तैयार करनेके उद्देश्यसे हाथके कारखाने खोले। अनेक निराश्रित किसानोंको इन कारखानोंमें काम मिला।

पर अभी औद्योगिक क्रान्ति शेष थी। वाष्प यंत्रों और मशीनके आविष्कारने इंग्लैंडकी काया पलट दी। उन्नीसवीं शताब्दीकी यह क्रान्ति सर्वहारी वर्गके लिए आश्रयका स्थान बनी। उजड़े किसानोंको मशीनकी छत्रछायामें साँस लेनेका अवसर मिला। इस प्रकार इंग्लैंडमें मजदूर वर्गका जन्म हुआ।

भारतकी स्थिति

भारतकी स्थिति इससे सर्वथा भिन्न थी। यहाँपर ऐसी कोई औद्योगिक क्रान्ति नहीं हुई। भारतमें तो धीरे-धीरे शिल्प और उद्योग, कला और कौशलका नाश होता गया पर उससे बेकार होनेवाले लोग कृषिकी ओर बढ़ते गये।

उन्नीसवीं शताब्दीतक भारतमें मजदूर नामका कोई वर्ग न था। पर ब्रिटिश शासनने भारतमें जमते ही उद्योगोंके मूलपर कुठाराघात किया, जिसका परिणाम यह हुआ कि जनतामें बेकारी बढ़ी। लोग चाहने लगे कि उन्हें मजदूरीका कोई काम मिले।

इनमें सबसे अधिक संख्या जुलाहोंकी थी। १८०४–०५ में श्री लार्किसने अपनी रिपोर्टमें लिखा था कि जुलाहोंकी स्थिति परम दयनीय है। उन्हें कोई काम नहीं मिलता। कामकी तलाशमें वे मकान छोड़ दर-दर भटकते हैं।[1]

इस प्रकार एक ओर लंकाशायर और मानचेस्टरकी मिलोंके मजदूर काम पाते रहे, दूसरी ओर भारतके कारीगर सर्वहारा वर्गके सदस्य बनकर दर-दर भटकते रहे। भारतमें मजदूर वर्गके जन्मका पहला कारण यह था।

अब लीजिये दूसरा कारण। चाय और नीलके पनपनेका अच्छा अवसर देख अंग्रेज पूँजीपतियोंके मुंहमें पानी भर आया। कम्पनीकी सरकारसे उन्हें सुविधाएँ भी मिली भरपूर। फिर क्या था? उन्होंने यहाँ अपने देशके ढंगपर मजदूर वर्गको जन्म दिया। गोरे साहब तरह-तरहका सब्जबाग दिखाकर, चकमा देकर, प्रलोभन दिखाकर देशके कोने-कोनेसे मजदूरोंको बुलाने लगे। सीधेसादे, कामकी तलाशमें दर-दर भटकनेवाले लोग बहुत जल्द इनके जालमें फँसने लगे।

चायके बगीचे

गोरे साहबोंके ठेकेदार देशके अनेक भागोंमें फैल गये। कई-कई सालका एग्रीमेंट (ठेका) लिखाकर ये लोग ऐसे मजदूरों और कुलियोंको आसाम रवाना करने लगे। ठेकेदार इनसे कहते : 'अजी, आसाममें सोना बरसता है। तुम तो साल भरमें ही इतने धनी हो जाओगे कि तुम्हारे पड़ोसी और हितूमित्र तुमसे ईर्ष्या करने लगेंगे। न वहाँ कोई कठिन काम है, न कोई परेशानी।' ऐसी बातें सुनकर भला किसके मुँहमें पानी न भर आयेगा? फिर जिसके पास खानेके लिए दो दानोंका ठिकाना न हो उसका तो कहना ही क्या।

१—लार्किन्स : रिपोर्ट ऑन दि एक्सटर्नल कामर्स आफ ब्रिटिश इंडिया, ईस्टइंडिया अफेयर्स।

ये मजदूर 'गिरमिटिया कुली'का अपमानजनक विशेषण लगाकर आसामकी ओर रवाना हुए। मार्गमें उनकी सुधि लेनेवाला कोई न था। फलतः अनेक तो बीच रास्तेमें ही महाप्रयाण कर गये। जो लोग अधमरी अवस्थामें निश्चित स्थानपर पहुँचे भी, उनका सपना ठिकाने लगते ही चूर-चूर हो गया। वेचारे सिर पीटकर रह गये।

जीतोड़ परिश्रम करनेपर भी प्रतिदिन ही तो उन्हें गाली-गलौज और मारपीटका शिकार वनना पड़ता। वे चाहते भी, तब भी उन्हें काम छोड़कर घर जानेकी अनुमति न थी। भागनेपर कोड़ और हंटर पड़ते। जेलखानेमें चक्की पीसनी पड़ती ऊपरसे। सोचते कि हाय, कहाँ आकर फँस गये। पर अब गिरमिटकी अवधि पूरी होनेके पहले छुटकारा कहाँ? आसामके चाय बगीचोंके कुलियोंकी कहानी बड़ी हृदयद्रावक है यहां कुली लानेके लिए धोखेबाजी, जबर्दस्ती, चालाकी, धूर्तता, अपहरण—तात्पर्य यह कि निंद्यसे निंद्य उपाय काममें लाये गये।[1] गोरोंकी इन काली करतूतोंसे चायके बगीचोंका इतिहास भरा पड़ा है।[2]

भारतमें मजदूर वर्गकी उत्पत्तिका तीसरा प्रधान कारण है—सरकारी तामीरात विभाग। लार्ड डलहौजीने भारतको रेलकी पटरियों

तामीरात विभाग

और तारके खम्भोंके बीच कसनेका जो प्रयत्न आरंभ किया, सड़कों और सरकारी इमारतोंके निर्माणका जो कार्य आरम्भ किया, जो तामीरात विभाग खोला उसके लिए मजदूरोंकी माँग बढ़ी। मजदूरी भी बढ़ी। कृषकोंने जब देखा कि उन्हें कृषि और ग्रामोद्योगसे भी अधिक लाभ इस मजदूरीमें है, तब इस ओर उनका आकृष्ट होना स्वाभाविक था। लोग हजारोंकी संख्यामें मजदूर बनने लगे।

१—रमेशचन्द्र दत्त : इंडिया इन दि विक्टोरियन एज, पृष्ठ २५२।

२—एडगर : नोट ओन दि टी इंडस्ट्री इन बंगाल।

सरकारी कामसे भी बड़ा काम था भारतमें मशीनोंका प्रचार। मजदूर वर्गकी वृद्धिका सबसे बड़ा कारण यही है। कपास और जूटकी मिलोंके विस्तारने भारी मात्रामें मजदूर उत्पन्न किये। इनके अतिरिक्त कोयले आदिकी खानों और जहाजों आदिके कारखानोंने भी मजदूरोंकी संख्यावृद्धिमें योग दिया। मशीनने आज भारतमें मजदूरोंकी प्यास खूब बढ़ा दी है।

यंत्र युग

आरम्भसे ही कृषिप्रधान देश होनके कारण यहाँके किसान ग्रामोद्योगोंमें विशेष रुचि रखते रहे हैं। शहरोंमें जाकर बसना उन्हें रुचता ही नहीं। पर जब शहरोंमें कारखाने बढ़ने लगे तो वहाँ बारहों महीने मजदूरोंकी आवश्यकता पड़ने लगी। किसान अपनी खेतीको पूर्णतः छोड़नेके लिए तैयार न था। वह आज भी शहरमें कभी-कभी काम करने चला जाता है, मेहनत मजदूरी करके कुछ पैसे ले आता है, पर फसलके दिनोंमें खेती छोड़कर जाना उसके लिए असम्भव है। देहातोंमें कुछ ऐसे लोग भी निकल आये जिन्होंने शहरोंमें ही रहकर मजदूरी करना अच्छा समझा। ये लोग वहाँ जाकर जम गये। गाँवकी खेती या तो उन्होंने अन्य घरवालोंके लिए छोड़ दी, या लगान आदिपर उठा दी अथवा बेच डाली। ऐसे लोग नगरोंमें स्थायी मजदूर बन गये।

आरम्भिक स्थिति

उन्नीसवीं शताब्दीके अन्ततक कारखानोंमें काम करनेवाले मजदूरोंका कोई पुरसाँ-हाल न था। न तो उनपर कोई सरकारी नियंत्रण था, न कोई ऐसी सेवाभावी संस्था ही थी जिसे मजदूरोंकी चिन्ता होती। कारखानोंके मालिक सर्वतंत्रस्वतंत्र थे। उनकी इच्छा ही कानून थी, उनकी मर्जी ही कायदा। मजदूरोंके शोषणकी कोई सीमा न थी। उनसे बहुत कम पैसेपर बहुत अधिक काम लिया जाता था। नन्हे-नन्हे बच्चे और स्त्रियाँ भी इस शोषणसे मुक्त न थीं। छुट्टीका उस समय कोई सवाल ही नहीं था। 'सदा दिवाली सन्त घर!' मशीनमें

फँसकर कोई मर जाता तो मर जाता, किसीका हाथ-पैर कट जाता तो कट जाता। दोष उसका था। क्यों नहीं सावधानीसे काम किया! मालिक ऐसे लोगोंकी क्षतिपूर्त्तिकी कल्पना भी नहीं कर सकते थे। उन्हें तो अपनी तोंद मोटी करनी थी!

कुछ दिनतक सारे देशमें यह स्थिति चलती रही। पर धीरे-धीरे श्री सोरावजी शापुरजी वंगाली जैसे दयालु महानुभावोंका ध्यान इस ओर गया। उन्हींके सदुद्योगोंका परिणाम था कि कारखानेदारोंके प्रवल विरोधके रहते भी १८८१ में पहला कारखाना कानून वन ही तो गया। इस कानूनमें मुख्य बातें ये थीं—

पहला कानून

सात सालसे कम उम्रके वच्चे ऐसे कारखानोंमें काम नहीं कर सकते थे। लड़कोंसे एकही दिन दो कारखानोंमें काम लेना मना था। माहमें चार दिन छुट्टी और प्रतिदिन विश्रामकी छुट्टीका नियम था। उनके कामके घंटे भी निर्धारित कर दिये गये थे। मशीनोंसे वचावके लिए कुछ रोक लगानेका आदेश था। सौसे अधिक मजदूरोंवाले कारखानों-पर यह नियम लागू न होता था।

मशीनसे चलनेवाले कारखानोंके लिए यह कानून होनेके कारण चाय, कहवा, नील आदिके वगीचेवाले सहजही इससे मुक्त हो गये। समुचित निरीक्षणके अभावमें इस कानूनका कोई प्रत्यक्ष प्रभाव नहीं पड़ा। कारखानेदारोंकी धाँधली वदस्तूर चलती रही।

अनेक कारखानोंमें सूर्योदयसे सूर्यास्ततक सातोंदिन काम होता था। साप्ताहिक अवकाशके दिन सफाईके वहाने प्रति दिनकी ही तरह काम होता था। भोजन और विश्रामके लिए भी अवकाशकी समुचित व्यवस्था न थी। वच्चों और स्त्रियोंसे डटकर काम लिया जाता था। तात्पर्य यह कि कानूनकी वुरी तरह मिट्टी पलीद हो गयी।

लंकाशायर और डंडीवालोंमें अचानकही भारतके मिल मजदूरोंके प्रति सहानुभूति उमड़ पड़ी। भारतीय कारखानेदार मजदूरोंका शोषण करके खूब माल तैयार करते जा रहे थे। यह बात उन्हें कैसे सह्य होती? उन्होंने शोर मचाया कि भारतमें जो कारखाना कानून है, वह अच्छा नहीं है। उसमें संशोधन होना चाहिये। इस विरोधसे प्रभावित होकर भारत सरकारने १८९० में एक फैक्टरी कमीशन बैठाया जिसकी सिफारिशोंपर १८९१ में उक्त कानूनमें कुछ संशोधन कर दिये गये।

संशोधन

संशोधित कानून ५० या अधिक मजदूरोंवाले कारखानोंपर लागू होता था। इसके अनुसार कामके बीच आध घंटेकी छुट्टी देना आवश्यक था। यह भी जरूरी था कि सप्ताहमें एक दिनका अवकाश दिया जाय। ९ वर्षसे कम उम्रके लड़कोंसे कारखानोंमें काम लेना रोक दिया गया। मजदूरिनोंके लिए काम के अधिकतम ११ घंटे निश्चित कर दिये गये। पूरे समय काम लेनेपर डेढ घंटेकी छुट्टी अनिवार्य कर दी गयी। यह भी नियम बना दिया गया कि मजदूरिनोंसे ८ बजे शाम और ५ सुबहके बीच काम नहीं लिया जा सकता।

इस संशोधित कानूनसे मजदूरोंको कुछ राहत मिली। उनकी अवस्थामें पहलेसे थोड़ा सुधार हुआ।[1]

पर छोटे कारखाने, जहाँ सबसे अधिक शोषण और अत्याचार होता था, अब भी कानूनसे मुक्त थे। सालमें ४ मास चलनेवाले मौसमी कारखाने भी इसके शिकंजेसे बरी थे। खानोंमें काम करनेवाले मजदूरोंके लिए कोई कानून ही न था। बंगालके कारखानोंमें मुख्यतः स्त्रियाँ ही काम करतीं।

१—एम्पलायमेंट आव विमेन एंड चिल्डरन इन माइन्स, पत्रव्यवहार आदि, पार्लमेंटरी कागजपत्र, १८९३।

हवा, सफाई और प्रकाशके विषयमें कारखानोंमें अब भी वही पुरानी स्थिति चल रही थी। बंगालकी जूट मिलोंकी अवस्था कुछ अच्छी थी। ये सूर्योदयसे सूर्यास्ततक चलतीं। रविवारको अवकाश रहता। ३ दिन से लेकर १ सप्ताह तकका वेतन हाथमें रखकर मजदूरोंको प्रति सप्ताह मजदूरी दी जाती। वम्बईमें ३ सप्ताहका वेतन हाथमें रखकर मासिक मजदूरी दी जाती। इस कारण मजदूरोंकी स्थिति बड़ी दयनीय रहती। वे प्रायः ऋण में डूबे रहते।[1] अहमदाबादमें साप्ताहिक मजदूरी मिल जाती थी। बंगालके मजदूरोंकी स्थिति वम्बईके मजदूरोंसे वुरी थी। कोयले आदिकी खानोंके मजदूरोंकी स्थिति तो सबसे भयंकर थी। उनकी रक्षाके लिए तो कोई कानून ही नहीं था। मालिककी ही मर्जीपर निर्भर रहना पडता था।

मजदूरोंकी स्थिति

१८९६ में वम्बईमें जोरका प्लेग आया और उसी समय आया विद्युतका प्रकाश। एक ओर प्लेगके कारण मजदूरोंकी संख्यामें ह्रास हुआ, दूसरी ओर बिजलीके कारण रात्रिमें भी काम करनेको सुविधा होनसे मजदूरोंके कामके घंटे पहलेसे भी वढ़ गये। मजदूर घटे, काम बढ़ा। शोषण पहलेसे भी अधिक हो गया।

प्लेग और विजली

वम्बईके प्रायः सभी कारखानेदार प्रातः ५ वजेसे रातके ९ वजेतक मजदूरोंसे काम लेने लगे। औसतन १४॥ घंटे काम होने लगा।[2] कहीं-कहीं तो वीस-वीस इक्कीस-इक्कीस घंटे काम लेनेके भी उदाहरण पाये गये। समाचार-पत्रोंमें जव खूव होहल्ला मचाया गया तव कहीं सरकारका ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ। १९०७ में उसने सारी वातोंकी व्यापक जाँच करनेके लिए फैक्टरी लेवर कमीशन वैठाया।

१—देवधर और जोशी : कोआपरेशन एमंग फैक्टरी वर्कर्स, १९२०।
२—टैक्सटाइल फैक्टरीज लेबर कमेटीकी रिपोर्ट, १९०७।

इस कमीशनने १९०८ में अपनी रिपोर्ट पेश की। उसमें विस्तारसे बताया गया कि कारखानेदार १८९१ के कानूनकी किस प्रकार व्यापक रूपसे उपेक्षा कर रहे हैं। कमीशनने बताया कि युक्तप्रान्त, बंगाल, पंजाब आदि प्रान्तोंके कारखानोंमें बच्चोंसे प्रौढ़ोंके बराबर काम लिया जाता है।[1] अनेक कारखानोंमें ९ सालसे कम उम्रके बच्चोंके नाम आधे समय काम करनेवाले मजदूरोंके रजिस्टरमें दर्ज थे। कलकत्ताकी एक जूट मिलके मैनेजरने कमीशनसे साफ कहा कि हम बच्चोंको तसदीक करानेके लिए इसीलिए नहीं भेजते कि उनमेंसे बहुतसे लड़कोंको डाक्टर नापास कर देंगे!

कामके घंटे कम करनेके विषयमें कुछ प्रयोग किये गये। कानपुरकी एलगिन मिलमें १५ घंटेका दिन घटाते-घटाते १२ घंटेका कर दिया गया और यह देखा गया कि मजदूरी तो पहलेके बराबर ही रही, काम पहलेकी अपेक्षा अच्छा हुआ।[2] मद्रासकी बकिंघम मिलमें कामके घंटे साढ़े बारहसे घटाकर पौने बारह कर दिये गये। वहाँ भी उत्पादनमें कोई कमी नहीं आयी।[3]

कमीशनकी सिफारिशोंपर ध्यान देते हुए १९०९ में गवर्नर जनरलकी कौंसिलमें एक नया कारखाना बिल पेश किया गया जो १९११ में स्वीकृत होकर कानून बना। इसमें मजेकी बात यह थी कि सरकारने बहुमतकी सिफारिशोंकी उपेक्षाकर डाक्टर नायरकी न्यायोचित माँगोंके आधारपर अपना बिल बनाया था। १ जुलाई १९१२ से यह नया कारखाना कानून चालू होगया।

नया कानून

इस कानून द्वारा सूती मिलोंमें मजदूर पुरुषोंके लिए १२ घंटेका, स्त्रियोंके लिए ११ घंटेका और बच्चोंके लिए ६ घंटेका दिन निश्चित कर दिया गया। बच्चोंके निरीक्षण और तसदीकके लिए कड़े नियम

१—इंडियन फैक्टरी लेबर कमीशनकी रिपोर्ट, १९०८, पृष्ठ १७।

२—वही, वैविसकी गवाही।

३—वही, अलेक्जेंडरकी गवाही।

बना दिये गये। स्वास्थ्य, सफाई आदिके नियमोंमें कुछ सुधार किया गया। कामके बीच आध घंटा छुट्टीकी व्यवस्था रखी गयी।

१९११ के फैक्टरी कानूनमें सन् १९२२, २३, २६ और ३४ में उत्तरोत्तर संशोधन होते रहे। १९३४ के संशोधनके अनुसार मौसमी और साल-भर चलनेवाले कारखानोंमें भेद कर दिया गया। दैनिक अधिकतम घंटे निर्धारित करनेके अतिरिक्त साप्ताहिक अधिकतम घंटे भी निर्धारित कर दिये गये, जो क्रमशः १० और ५४ थे। मौसमी कारखानोंमें यह सीमा क्रमशः ११ और ६० घंटे रखी गयी। बच्चोंसे एक दिनमें काम लेनेकी अधिकतम मात्रा ५ घंटे रखी गयी। बच्चों और स्त्रियोंसे रातमें काम लेनेकी मनाही कर दी गयी। प्रान्तीय फैक्टरी इंसपेक्टरोंको यह काम सौंपा गया कि वे कानूनका कड़ाई से पालन करायें। सफ़ाई, हवा, रोशनी, धूप, छुट्टी आदिके लिए नियम बना दिये गये। मजदूरोंके हितके लिए पानी, क्वार्टर, दवादारू आदिकी भी कुछ व्यवस्था रखी गयी।

संशोधन

१९४० में किये गये संशोधनके अनुसार १९३४ के कानूनकी धाराएँ बिजलीसे चलनेवाले उन कारखानोंपर भी लागू हो गयीं जिनमें १० से १९ तक आदमी काम करते हैं। २० या अधिक आदमियोंवाले कारखाने तो पहले ही इस कानूनके अंतर्गत आ जाते थे।

कारखाना कानून बन जानेपर भी खानोंमें काम करनेवाले मजदूर उससे मुक्त थे। १९०१ में खनिकोंके लिए पहला कानून बना। १९२३ में उसमें कुछ संशोधन हुआ। उनसे जमीनके ऊपर सप्ताहमें अधिकतम ६० घंटे और नीचे ५४ घंटे काम ले सकनेका नियम बना दिया गया। १३ सालसे कम उम्रके लड़कोंसे काम लेना रोक दिया गया। पर स्त्रियोंसे खानोंमें काम लेनेपर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाया गया।

खनिक कानून

१९३५ में श्री ह्विटलेकी अध्यक्षतामें एक शाही कमीशन नियुक्त

किया गया। इस कमीशनमें श्री श्रीनिवास शास्त्री, सर इब्राहीम रहीम-तुल्ला, सर एंड्रू क्लो, दीवान चमन लाल, श्री एन० एम० जोशी, सेठ घनश्याम दास बिड़ला आदि थे। कमीशनकी अधिकांश सिफारिशें मान ली गयीं। खनिकोंके कामके घंटे और घटा दिये गये। जमीनके ऊपर सप्ताहमें अधिकतम ५४, एक दिन में १० घंटे और जमीनसे नीचे ९ घंटेतक प्रतिदिनकाम ले सकनेका नियम बना दिया गया। १५ वर्षसे कम आयुके लड़कोंसे खानके भीतर काम लेनेकी मनाही कर दी गयी।

मजदूरोंकी क्षतिपूर्त्तिके लिए सबसे पहला कानून १९२३ में बना। सन् १९२६,१९२९,१९३१ और १९३३ में उसमें संशोधन किये गये।

क्षतिपूर्त्तिका कानून

१९३३ के संशोधित कानूनके अनुसार मशीनोंसे घायल, अथवा मृत व्यक्तियोंको औसत मासिक वेतनके आधारपर क्षतिपूर्त्ति देनेकी व्यवस्था है। दस रुपया तक मासिक वेतन पानेवालेको चोटसे मर जानेपर ५००) और सदाके लिए अशक्त हो जानेपर ७००) क्षतिपूर्तिके रूपमें देनेकी व्यवस्था रखी गयी। अस्वस्थ होनेपर भी कुछ सहायता देनेकी व्यवस्था है। यह कानून केवल मिलोंपर ही नहीं, रेलों, ट्रामों, अन्य कारखानों, जहाजों, डकों, सड़कों, पुलों आदिपर काम करनेवाले मजदूरोंपर भी लागू होता है।

आरम्भमें मजदूरोंको ठीक समयपर वेतन देनेका कोई नियम न था। १९३६ में एक कानून बन गया जिसके अनुसार प्रत्येक कार-

वेतन कानून

खाने, रेलवे, तथा औद्योगिक संस्थाके लिए समयपर वेतन देना अनिवार्य कर दिया गया है। यह व्यवस्था केवल उन कर्मचारियोंपर लागू होती है जिन्हें दो सौ रुपयेसे कम मासिक वेतन मिलता है। कारखानेदारको निश्चित अवधिपर वेतन देना होता है। यह अवधि एक माससे अधिक नहीं हो सकती। जहाँ एक हजारसे कम कर्मचारी काम करते हैं वहाँ मास समाप्त होनेके एक सप्ताहके भीतर वेतन दे देना पड़ता है।

वालक-रक्षा कानून

सन् १९३८ में १५ सालसे कम उम्रके लड़कोंकी रक्षाके लिए एक कानून वना। इसके अनुसार वन्दरगाहों अथवा रेलोंसे माल और यात्रियोंको उतारने-चढ़ाने आदिके लिए १५ वर्षसे कम उम्रके लड़कोंको रखनेकी मनाही कर दी गयी, है। १९३९ में किये गये संशोधनके अनुसार वीड़ी, कालीन, सीमेंट, छपाई, दियासलाई आदिके कारखानोंमें १२ सालसे कम उम्रके लड़कोंको नौकर रखनेकी मनाही कर दी गयी है।

झगड़ा सम्बन्धी कानून

सन् १९२९ में मजदूरों और कारखानेदारोंके वीच होनेवाले आपसी झगड़ोंको तय करनेके लिए एक कानून वना। १९३४ में इसमें कुछ संशोधन कर दिया गया। झगड़े सुलझानेके लिए मामला 'जाँच अदालत' अथवा पंचायतके सिपुर्द कर दिया जाता है। इस अदालतके सदस्य और अध्यक्ष स्वतंत्र निष्पक्ष व्यक्ति होते हैं। जलकल, विजली आदि सार्वजनिक उपयोगके कारखानोंमें अचानक हड़ताल कर देना जुर्म है। उसके लिए निर्धारित अवधिके पहले सूचना देनी पड़ती है।

मजदूरहितैषी संस्थाएँ

कितने ही प्रान्तोंमें अवतक मजदूरोंके हितके लिए कानून वन चुके हैं। केन्द्रीय सरकारके मजदूर विभागके अतिरिक्त सभी प्रान्तोंमें मजदूर विभाग है। ट्रेड यूनियन कांग्रेस, हिन्दुस्तान मिल मजदूर संघ, जन सेवक समिति, भारत सेवक समिति, सोशल सर्विस लीग, महिला समिति आदि कितनी ही संस्थाएँ मजदूरोंका हितचिन्तन करती रहती हैं।

श्रमिक संघटन

प्रथम विश्वयुद्धके वादसे मजदूरोंमें कुछ चेतना उत्पन्न हुई। एक ओर जव महँगी वढ़ने लगी और दूसरी ओर कारखानेदार कम मजदूरीपर मजदूरोंको झुकानेका प्रयत्न करने लगे, तव श्रमिकोंने अपना संघटन करनेकी वात सोची। सवसे पहले सन् १९१८ में वी० पी० वाडियाके नेतृत्वमें मद्रासमें ट्रेड यूनियनकी नींव पड़ी।

आरम्भमें ट्रेड यूनियनें केवल हड़ताल-कमेटीके रूपमें थीं। क्रमशः इनमें स्थायित्व और दृढ़ता आने लगी। सन् १९२१ तक इन्होंने पर्याप्त प्रगति कर ली। मजदूरोंकी अशिक्षा, अस्थायित्व, उनकी स्थितिसे अनभिज्ञ मध्यम वर्गके हाथमें उनका नेतृत्व आदि बातें मजदूरोंके संघटनमें बाधक थीं, फिर भी इन संस्थाओंकी प्रगति रुकी नहीं। सन् १९२० में सारे देशकी ट्रेड यूनियनोंका एक संघटन बना, जिसका नाम रखा गया—'अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस।' १९२२ में रेलवे कर्मचारियोंका भी एक संघटन बना जिसका नाम 'अखिल भारतीय रेलवे कर्मचारी संघ' रखा गया।

ट्रेड यूनियन कांग्रेस

ट्रेड यूनियन कांग्रेसको जन्मसे लेकर आजतक अनेक परीक्षाओंसे होकर गुजरना पड़ा है। १९२० से यह कांग्रेस निरन्तर प्रगति करती आ रही है। १९२८-२९ में उन्नतिके शिखरपर पहुँचते ही कम्युनिस्टोंका प्राबल्य होनेके कारण इसके दो टुकड़े हो गये। श्री एन० एम० जोशी इससे पृथक् हो गये। उन्होंने भारतीय ट्रेड यूनियन फेडरेशनके नामसे एक नयी संस्था खड़ी की। अखिल भारतीय रेलवे कर्मचारी संघ भी अलग हो गया। १९३१ में कलकत्तामें ट्रेड यूनियन कांग्रेसके ग्यारहवें वार्षिक अधिवेशनमें पुनः मतभेद हो गया और वामपक्षीय लोगोंने एक नया संघटन खड़ा किया, जिसका नाम रखा—भारतीय लाल ट्रेड यूनियन कांग्रेस।

१९३१ में बम्बईमें इन संस्थाओंको एकमें मिलानेके लिए एक ऐक्य-सम्मेलन बुलाया गया। 'नेशनल फेडरेशन आव लेबर' नामक संस्थाकी स्थापना की गयी। यह नया संघ १९३३ में कलकत्तामें भारतीय ट्रेड यूनियन फेडरेशनमें मिला दिया गया। १९३५ में फेडरेशन और भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेसने आपसी मतभेद भुलाकर एक संयुक्त कमेटी बना ली। १९३८ में दोनों संस्थाओंके संयुक्त अधि-

वेशनमें आपसमें मिल जानेका निश्चय हुआ। यह निश्चय १९४० में बम्बईमें उक्त कांग्रेसके अठारहवें अधिवेशनमें स्वीकृत कर लिया गया। फिर भी श्री जमनादास मेहता और श्री मानवेन्द्रनाथ रायने ट्रेड यूनियन फेडरेशनके नामसे एक पृथक् संघ बना लिया जिसका एकमात्र उद्देश्य विदेशी सरकारको युद्धोद्योगमें सोलह आना सहयोग देना था!

युद्धकालमें कांग्रेस नेता जेलोंमें सड़ते रहे। मजदूरोंका क्षेत्र अवसरवादी कम्युनिस्टोंके हाथमें पड़ गया। देशको इनके चक्रसे बचानेके

नेशनल ट्रेड यूनियन कांग्रेस

लिए मई १९४७ के आरम्भमें दिल्लीमें देशके तपे-तपाये मजदूर कार्यकर्त्ताओंका एक सम्मेलन हुआ, जिसमें नेशनल ट्रेड यूनियन कांग्रेसके नामसे एक संस्था स्थापित करनेका निश्चय हुआ। ३ मई १९४७ को राष्ट्रपति आचार्य कृपालानीने इस संस्थाका उद्घाटन किया।

ट्रेड यूनियन कांग्रेस जैसी संस्थाओंका उद्देश्य मजदूरोंका संघटन करना है साथ ही वे मजदूरोंके कामके घंटे कम कराने, उनकी मजदूरी बढ़वाने, जुर्मानेकी प्रथा मिटवाने, उनका बीमा करवाने, सफाई, शिक्षा, दवादारू आदिके विषयमें अच्छे नियम बनवाने तथा प्रत्येक सम्भव उपाय द्वारा मजदूरोंकी सर्वांगीण उन्नतिके लिए भी प्रयत्नशील हैं।

१९२६ में ट्रेड यूनियनोंकी संयुक्त समितिने एक प्रतिनिधिमंडल भारत भेजा था। यहांके मजदूरोंकी अवस्थाकी जांच करनेके उपरान्त

सलामी

उसने जो रिपोर्ट दी थी, उसमें वर्णित बुराइयाँ आज भी किसी न किसी अंशमें बनी हैं। उसने लिखा था कि मजदूरोंको बहुत कम वेतन मिलता है, उनसे अत्यधिक काम लिया जाता है और मिलोंमें रिश्वत और भ्रष्टाचारका बोलबाला है।

सलामीकी प्रथाकी चर्चा करते हुए रिपोर्टमें लिखा था कि मिलोंमें काम करनेकी अनुमति पानेके लिए प्रत्येक मजदूरको आरम्भमें कुछ

'सलामी' देनी पड़ती है। प्रत्येक सरदार या फोरमैन प्रत्येक नये उम्मीदवारसे कुछ न कुछ झटकनेके फेरमें रहता है। साधारणतः आरम्भमें पहली सलामी दस रुपया होती है, पर ऐसे भी उदाहरण मिले हैं कि एक एक जुलाहेसे ७०) ७५) अर्थात् उसका दो-दो, तीन-तीन मासका वेतन उससे पेशगी ही वसूल कर लिया गया है। सरदार लोग यह सलामी वसूल करनेमें बड़े उस्ताद होते हैं। कोई भी मजदूर उनके चंगुलसे बचकर निकल नहीं सकता। रिपोर्टमें कहा गया है कि हमें दो मामले तो ऐसे मिले जहां सहायक सरदारोंसे उनके अधिकारियोंने क्रमशः १५००) और ५००) रिश्वत मांगी थी !

'सलामी' केवल एक बार दे देनेसे ही पिंड नहीं छूट जाता। प्रति सप्ताह, प्रति मास अनिवार्य रूपसे कुछ न कुछ भेंट चढ़ानी पड़ती है। एक सरदारने केवल इसी भ्रष्टाचारकी बदौलत २२ सालकी नौकरीमें एक लाख रुपया जमा कर लिया था ! आज भी सलामीकी प्रथा बदस्तूर है। सरदार, मिस्त्री, मुकद्दम या जावर मजदूरोंको मिलमें भरती करानेके लिए उनसे गहरी रकम ऐंठते हैं। वे वेतनकी अपेक्षा अधिक कमाई 'सलामी' द्वारा कर लेते हैं। कुछ ही दिनोंकी नौकरीके बाद जावरके मकान बनने लगते हैं, बाल-बच्चोंके लिए जेवर बनने लगते हैं। वे शीघ्र ही साहूकार बन बैठते हैं, मजदूरोंको भारी सूदपर रुपया उधार देने लगते हैं और उनके लिए क्वार्टर बनाकर ऊंचे भाड़ेपर उठाते हैं[1]।

मजदूर जिन मकानोंमें रहनेके लिए विवश होते हैं उनसे तो सूअरोंके बाड़े अथवा कबूतरोंके दरबे भी अच्छे होते हैं ! मकानोंका अभाव

मकानोंका संकट

भारतमें और मुख्यतः बड़े औद्योगिक नगरोंमें कितना बढ़ गया है उसका अनुमान इसीसे लगाया जा सकता है कि बम्बईके ६० प्रतिशत मजदूर एक कमरेवाले मकानमें रहते हैं। ऐसे ४.०१ व्यक्ति एक कमरेमें निवास करते हैं। कानपुरमें

१—बी० शिवराव : इंडस्ट्रियल वर्कर इन इंडिया, १९३९, पृष्ठ ६१।

६२.५ प्रतिशत और नागपुरमें ६० प्रतिशत व्यक्ति एक कमरेमें निवास करते हैं[1]। लन्दनमें ऐसे व्यक्तियोंकी संख्या ६ प्रतिशत है, एडिनवरामें ५ और डण्डीमें ८ प्रतिशत हैं[2]। वम्वईमें एक कमरेवाले ६५ प्रतिशत मकानोंमें २ परिवार रहते हैं। १८ प्रतिशत ऐसे कमरोंमें ३ परिवार और कहीं-कहीं पर तो एक कमरेवाले मकानोंमें रहनेवाले परिवारोंकी संख्या ५,६,७,८ और उससे भी ऊपर पहुंच जाती है[3]!

कल्पना करनेकी वात है कि जहाँ एक कमरेमें वीसपचीस आदमी एकसाथ रहते हों, वहाँकी स्थिति क्या होगी। स्त्री और पुरुष जमीन साफकर एक दूसरेसे सटकर फर्शपर सोते हैं। दिनमें वहीं खाना वनता है। रातमें वही सवका संयुक्त शयनागार वन जाता है। अधिकतर पुरुष कमरेको वालवच्चोंके लिए छोड़कर स्वयं वाहर सड़क पर लेटने चले जाते हैं। वे कहीं किसी वरामदे या ऐसे ही किसी अन्य स्थानपर रात काट डालते हैं।[4] सड़कपर रात वितानेवाले अथवा उसीके किनारे डेरा डालकर जिन्दगी विता देनेवाले मजदूरोंकी भारतमें कमी नहीं। कराचीसे कानपुर तक, वम्वईसे मद्रास और कलकत्तातक सर्वत्र भारी संख्यामें फुटपाथपर जीवन वितानेवाले मजदूर देखे जा सकते हैं। वर्षाके दिनोंमें इनकी दुर्दशा देखते ही वनती है। कभी भी आधीरातके समय भारतके किसी औद्योगिक नगरका चक्कर लगाकर खुले आकाशके नीचे जीवन काटनेवाले ऐसे असंख्य वदनसीव देखे जा सकते हैं।[5] वर्षाके दिनोंमें ये अभागे वरामदों, गोदामों, रेलवेके पुलों और सार्वजनिक भवनों आदिमें शरण लेते हैं।[6]

१—राधाकमल मुखर्जी : फुड प्लैनिंग फार ४०० मिलियन्स, पृष्ठ १७७।
२—आर० वी० गुप्त : लेवर एंड हाउसिंग इन इंडिया।
३—राधाकमल मुखर्जी : इकोनोमिक प्राव्लम्स आव माडर्न इंडिया।
४—बम्बई प्रेसिडेन्सीके नगरोंकी जनसंख्या, खंड ६, १९३२, पृष्ठ८६,१०७।
५— मद्रास प्रेसिडेन्सीकी जनसंख्या, १९३१।
६—राधाकमल मुखर्जी: इकोनोमिक प्राव्लम्स आव माडर्न इंडिया।

मकानोंके इस व्यापक कष्टके कारण लोग अपने बालबच्चोंको बहुत कम अपने साथ रखते हैं। फलतः नगरोंमें स्त्री-पुरुषके अनुपातमें

दुराचार

भारी अन्तर हो जाता है। अनुमान है कि बिहारकी कोयलेकी खानोंमें ७ आदमियोंपर २ स्त्रियाँ रहतीं हैं। इस विषम अनुपात और आदर्शहीन संयमका फल यही होता है कि दुराचारको प्रश्रय मिलता है और सदाचार उठाकर ताकपर रख दिया जाता है !

मजदूरोंकी बस्तियोंमें खुला व्यभिचार चलता है। बंगाल सरकारकी एक रिपोर्टमें कहा गया है कि मेदिनीपुरसे आनेवाली २०० मजदूरिनोंमेंसे सौने स्पष्टतः यह स्वीकार किया कि वे वेश्यावृत्ति करती हैं ![१] प्रायः सभी स्थानोंपर इसी प्रकारके दुराचारके उदाहरण देखे जा सकते हैं। बेचारी मजदूरिनोंको तो तेहरा काम करना पड़ता है—मजदूरी, रोटी और मातृत्व !

मजदूरीकी दर भी कुछ अच्छी नहीं। विभिन्न प्रान्तोंकी

मजदूरीकी दर

स्थितिका भी उसपर प्रभाव पड़ता है, पर कहीं-कहीं तो यह अन्तर बहुत बढ़ जाता है।[१] सन् १९३८ के आसपासके आंकड़े इस प्रकार हैं—[२]

मध्यप्रान्त

एक करघेपर काम करनेवाले जुलाहेको	१५) से १८) मासिक
दो करघोंपर काम करनेवाले जुलाहेको	२०) मासिक

कानपुर

दो करघोंपर काम करनेवाले जुलाहेको	२५) से ४०) मासिक
चार ,, ,,	५०) मासिकसे अधिक

१—मुखर्जी : वही, पृष्ठ ६२।
२—बी० शिवराव: दि इंडस्ट्रियल वर्कर इन इंडिया, पृष्ठ १२२।

अहमदाबाद

दो करघोंपर काम करनेवाले जुलाहेको ४५) से ५०) मासिक

कोयम्बतूर

दो करघोंपर काम करनेवाले जुलाहेको २५) से ३०) मासिक

जब सबसे अच्छा पैसा पानेवाले जुलाहोंका यह हाल है तब अन्य मजदूरोंकी मजदूरीका सहज ही अनुमान किया जा सकता है। दक्षिण भारतमें मिलोंमें सूत कातनेवाले मजदूरको १०) से १४) मिलता है। अहमदाबादमें उसीको २५) से ३०) मासिक। १६३६ में खनिकोंको रानीगंजमें सवा सात आना दैनिक मजदूरी मिलती थी, आसाममें एक रुपया दैनिक। अभ्रकके खनिकोंको ।)॥। और अकुशल मजदूरोंको ≡)॥। दैनिक मजदूरी मिलती थी। मद्रासमें अभ्रककी खानोंकी मजदूरिनीको =)।।। दैनिक मजदूरी मिलती थी. और जमीनके ऊपर काम करनेपर केवलपर =)॥ रोज। पंजाबमें कोयलेकी खानोंमें मजदूरिनोंको =)॥ रोज मिलता था और रानी गंजमें ≡)॥ रोज।[1]

कुछ वर्ष पूर्व आसामके चायके बगीचोंमें काम करनेवाले मजदूरोंको मासिक मजदूरी इस प्रकार मिला करती थी—पुरुष ७।।।-), स्त्री ५।।।=), बच्चा ४।)। सुरमा घाटीमें मजदूरी इस प्रकार थी—पुरुष ५।।≡), स्त्री ४=), बच्चा २।।।-)। कहीं कहीं चाय और कहवा आदिके बगीचोंके मजदूरोंको मकान, चिकित्सा तथा कुछ अन्य सुविधाएँ प्राप्त हैं, सर्वत्र सो भी नहीं।[2]

कुछ वर्ष पूर्व एकत्र किए गये आंकड़ोंके अनुसार बम्बई और पंजाबमें अपेक्षाकृत अच्छी मजदूरी मिलती है, मद्रासमें सबसे कम। युक्तप्रान्त, मद्रास, बिहार, मध्यप्रान्तमें १३) मासिकसे कम ही मजदूरी मिलती है। बहुत हुआ १७॥) मासिकतक पहुँच गये। बम्बई और

१—बी० शिवरावः दि इंडस्ट्रियल वर्कर इन इंडिया, पृष्ठ १२१–१२७।
२—वही, पृष्ठ १२८–१२९।

पंजावमें ३२॥) मासिकका ग्रौसत पड़ता है। स्पष्ट है कि मजदूरी वहुत कम है।

मिलों, कारखानों, खानों, आदिमें काम करनेवाले मजदूरोंके अतिरिक्त मजदूरोंका एक वड़ा वर्ग ग्रौर है—खेतिहर मजदूर वर्ग। यह वह वर्ग है कि जिसके ग्रास ग्रपने खेत नहीं। वह खेतोंमें मजदूरी करके ग्रपना पेट पालता है। १९११ से १९३१ के वीच ऐसे मजदूरोंकी संख्या प्रति १००० किसानोंपर २५४ से वढ़कर ४१७ हो गयी। इनकी ग्रवस्था तो किसानोंसे भी वदतर है। जितनी मजदूरी एक ग्रादमीको मिलती है, उतनेमें वह ग्रपना ही पेट नहीं भर सकता, फिर वाल-वच्चोंको वह कहाँसे खिलाये?

खेतिहर मजदूर

इन मजदूरोंको साधारणतः इस प्रकार दैनिक मजदूरी मिलती है—पुरुष -) से ।=), स्त्री =) से ।), वच्चा -)॥ से =)। गोरखपुरमें खेतिहर मजदूरोंकी संख्या ८ लाखसे ऊपर है। राजगढ़के तिवारीजीके यहाँ हलवाहोंको १ वीघा कच्चा खेत ग्रौर १ ग्राना दैनिक मजदूरी दी जाती है! गगहा, वाँसगाँव ग्रौर उसके पश्चिमके गाँवोंमें २ वीघा कच्चा खेत ग्रौर १॥) मासिक मजदूरी मिलती है। युक्तप्रान्तके पूर्वी जिलोंमें तो पश्चिमी जिलोंसे भी गयी-गुजरी स्थिति है।[1]

डाक्टर ज्ञानचन्द्रके मतानुसार खेतिहर मजदूरोंकी संख्या सारे भारतमें लगभग ६,७, करोड़ है। इनके पास ग्रपने खेत नहीं। सालमें ६ माहसे ग्रधिक इन्हें वेकार रहना पड़ता है। फसलके दिनोंमें जवतव इन्हें काम मिलता है। इनको इतनी कम मजदूरी मिलती है कि दयाको भी दया ग्राती है। छोटे-छोटे खेत, उनके वंटवारे ग्रौर रेहन, विक्री ग्रादिके कानून, भारी मालगुजारी ग्रौर लगान, ग्रामोद्योगोंका ह्रास, गांवोंमें सहकारिताका ग्रभाव ग्रादि कितने ही कारण मिलकर छोटे किसानोंको क्रमशः इसी सर्वहारा वर्गमें ला पटकते हैं। तव उन्हें

१ — सत्यदेव शास्त्री: खेतिहर मजदूर, लेख 'संघर्ष' साप्ताहिक, १७ मार्च १९४७।

विवश हो ऋण-जालमें फंसना पड़ता है। देशके अनेक भागोंमें ऐसे मजदूर गुलामोंकीसी स्थितिमें पहुंच गये हैं। वम्बई, मद्रास, मलावार, कोचीन, मध्यप्रान्त और छोटा नागपुरके अनेक भागोंमें वे पूर्णतः दासोंका-सा जीवन विताते हैं। विहारके केवल पुरुलिया जिलेमें ऐसे ऋणदासोंकी, जो 'कामिया' कहलाते हैं, संख्या ६० हजारसे कम नहीं है। वे मालिकोंके यहां आजीवन दास-रूपमें रहकर काम करते हैं, मुश्किलसे रूखासूखा पेटभर खाना पाते हैं और रातदिन मालिककी हाजिरी वजाया करते हैं[१]।

खर्च

मजदूरोंकी आयका अधिकांश जीवनकी अनिवार्य आवश्यकताओं-की पूर्त्तिमें जाता है। भोजन, वस्त्र और मकान-भाड़ा ही उसका सवसे मोटा अंश ले जाता है, फिर उसका साहूकार या कावुलीवाला उससे कर्ज वसूल करने आ जाता है। उसकी उपेक्षा करनेकी सामर्थ्य भला किसमें है? इन सव खर्चोंको निपटानेके वाद मजदूरके पास वचता ही क्या है?

पर मजदूरके वजटमें खर्चकी एक मोटी मद और है। वह है—'पीने'-की। अपने नीरस जीवनसे ऊवकर वह प्रायः पीता है, वच्चनके शब्दोंमें—

'हो चुका जव भार जीवन, तव लगाया होठ प्याला!'

औद्योगिक क्षेत्रोंमें मादकपदार्थोंकी खपत सम्भवतः सवसे अधिक है। सन् १६२६ में केवल झरियाके कोयला क्षेत्रमें ५५ हजार मजदूरोंने मादक पदार्थोंपर ७०,००,०००) फूंका और ६ वर्ष वाद ५० हजार मजदूरोंने, जव उन्हें १६२६ से आधी मजदूरी मिलती थी, ठर्रा अथवा देशी मदिरापर १२,००,०००) खर्च किया[२]। मजदूर थोड़ा-सा पैसा मनोरंजन और उत्सव आदिमें भी व्यय करते हैं।

१—ईस्टर्न इकोनोमिस्ट, १८ अप्रैल १६४७।

२—शिवराव: दि इंडस्ट्रियल वर्कर इन इंडिया, पृष्ठ १०२, १३१।

कानपुरके मजदूरोंके विषयमें की गयी जांचका परिणाम इस प्रकार है[1]—

मद	व्यय	मद	व्यय
दवादारू	)।।—	शिक्षा	—)।।।=
मादक पदार्थ	।)।=	धूम्रपान	।—)—
उत्सव आदि	।)।=	ऋण चुकाना	२।। =)।।।—
अन्य	२।। ≡)	कुल	६।।।≡)

मजदूरोंका बजट सदा घाटेका रहता है। दैनिक जमाखर्च यदि वे किसी प्रकार बराबर भी कर लें, तब भी उनका छुटकारा नहीं।

ऋण

शादी और गमी, जन्म और मरणका चक्कर उनको बेमौत मार डालता है। उस समय ऋणके बिना उनका काम नहीं चलता। ऐसे समय महाजन अथवा काबुलीवाला उनके लिए रुपयेकी थैली खोल देता है। उसके व्याजकी दर ७५ से १५० प्रतिशततक तो साधारण बात है, ३६० से ४०० प्रतिशततक भी कभी-कभी पहुँच जाया करती है। चक्रवृद्धि-व्याज भी चलता है। फिर उससे कौन छूट पाता है ?

मजदूरोंका अत्यधिक पैसा मादक पदार्थोंमें जाता है। अनुमानतः ६० प्रतिशत मजदूर मादक वस्तुओंका सेवन करते हैं। खेदकी बात

मादक पदार्थ

तो यह है कि यह व्यसन उनकी स्त्रियोंतकमें जा घुसा है! फलतः शारीरिक क्षयके अतिरिक्त गर्भपात जैसी घटनाएँ प्रायः होती रहती हैं। मदिरा, ताड़ी आदिके अतिरिक्त मजदूर गाँजा, भाँग, चरस, अफीम आदिका भी सेवन करते हैं। इससे भयंकर आर्थिक हानि ही नहीं होती, चारित्रिक पतन भी चरम सीमापर जा पहुँचता है। मजदूरोंकी बस्तियाँ हाहाकार, रुदन, मार-

१—मुखर्जी : फुड प्लेनिंग फार ४०० मिलियन्स, पृष्ठ १८३।

पीट, गालीगलौज और दुराचारका घृणित अड्डा बनी रहती है। सरकारने उन्हें मादक पदार्थोंके सेवनकी छूट ही नहीं दे रखी है, वह ऊँचीसे ऊँची बोलीवालेको मादक पदार्थोंका ठेका देकर इस दुर्व्यसनको और प्रोत्साहन देती है !

मजदूरोंके पास भोजनपर खर्च करनेके लिए बचता ही क्या है !

भोजन

यही कारण है कि उनका शरीर अस्थिपंजर-मात्र रह जाता है। १९२३ में बम्बई सरकारने जाँचके उपरान्त यह निष्कर्ष निकाला था कि मजदूरोंकी खुराक बम्बई जेल मैनुएलमें लिखी कैदियोंकी साधारण खुराकसे भी गयी बीती है ![1]

किसे तरस न आयेगा भारतीय मजदूरोंकी इस दयनीय स्थितिपर ? अमेरिका और यूरोपके मजदूर ठाठसे रहते हैं। उन्हें इतना पैसा मिलता

अतुलनीय स्थिति

है कि वे मजेका जीवन बिता सकें, पेट भर खा सकें, पहन सकें, पढ़-लिख सकें तथा जीवनके अन्य सुखोंका उपभोग कर सकें। उन्हें अपने विकासके लिए, शिक्षा और दवादारूके लिए, मनोरंजनके लिए सभी प्रकारकी सुविधाएँ प्राप्त हैं।

कहाँ वे और कहाँ भारतका गुलाम, दरिद्र, अशिक्षित, दुर्बल और साधनहीन मजदूर! उसकी अवस्थामें आमूल सुधार वांछनीय है। श्री पौराणिककी अध्यक्षतामें नियुक्त एक बोर्डने हालमें लिखा था कि इन मजदूरोंको समुचित वेतन तथा अन्य सुविधाएँ मिलनी चाहिये, ताकि वे संतुष्ट रहें। यह निर्विवाद है कि अन्य विनोदके अभावमें अनेक मजदूर सप्ताहान्तमें ताड़ी शराबकी दुकानोंपर चले जाते हैं ![2]

अभागा भारतीय मजदूर !

१—बी० शिवराव : दि इंडस्ट्रियल वर्कर इन इंडिया, पृष्ठ १४५।

२—गजट आव इंडिया, असाधारण अंक, १२ मई १९४७, पृष्ठ ४५३।

व्यापारके साधन

आजका युग विज्ञान और व्यापारका है। व्यापारके साधन परम विस्तृत हो गये हैं। ग्राम, नगर और बन्दरगाह, एक दूसरेके इतने निकट आ गये हैं कि दुनियाँके एक कोनेकी चीज दूसरे कोनेतक बड़ी शीघ्रतासे पहुँच जाती है। आज स्थल, जल और वायु तीनों ही मार्गोंका व्यापारके लिए उपयोग होने लगा है। पशुओंकी पीठपर माल लादकर व्यापार करना अब पिछले जमानेकी बात हो गयी है। आज तो सड़कें हैं, रेलें हैं, स्टीमर हैं, जहाज हैं और विमान हैं। इन सबकी बदौलत भारतमें ही नहीं, विश्वके व्यापारमें आश्चर्यजनक क्रान्ति हुई है। अब तो व्यापारके लिए तार और टेलीफोन, यहाँतक कि बेतारके तारका भी खुलकर प्रयोग होने लगा है।

वर्तमान युगके यातायातके साधनोंमें रेलका प्रमुख स्थान है।

रेलें

आज धूएँकी गाड़ी हमारे लिए साधारण वस्तु बन गयी है। उसपर सैर करना हमारे जीवनकी अत्यन्त सामान्य घटना है। पर १८४३ से पहले कोई जानता भी न था कि यह है क्या बला।

विज्ञानके इस अद्भुत आविष्कारने ब्रिटेनको नयी ज्योति प्रदान की। ईस्ट इंडिया कम्पनीने सोचा कि भारतमें इस साधनके विस्तार द्वारा हमें शोषणके लिए और व्यापक क्षेत्र मिल जायगा। ब्रिटिश पूँजीपति और मिल-मालिक तो यह चाहते ही थे। सबके संयुक्त उद्योगके फलस्वरूप भारतमें रेलोंका जन्म हुआ। यहाँपर सबसे पहले खुलनेवाली कम्पनी थी—ग्रेट इंडियन पैनिनसुला रेलवे।

कच्चा माल इंग्लैंड ले जाना और तैयार ब्रिटिश माल भारत लाकर यहाँका बाजार पाट देना, विजित प्रान्तोंको सम्बद्ध करना,

सैनिक शक्तिको सुघटित करना और अंग्रेजी शासनकी नींव जमाना—इस मुख्य उद्देश्यको सामने रखकर भारतमें रेलोंका जन्म हुआ।[1] भारतकी चतुर्मुखी लूटमें रेलोंका बहुत बड़ा भाग है। व्यापारके इस अनुपम साधनका भारतके शोषणके लिए जितना उपयोग हुआ है उतना सम्भवतः विश्वके किसी भी अंचलमें न हुआ होगा।

ईस्ट इंडिया कम्पनी और उसकी उत्तराधिकारिणी ब्रिटिश सरकारने भारतमें रेलोंके विस्तारके लिए अंग्रेज पूँजीपतियोंसे कहा "अजी, इस व्यवसायमें पैसा लगाओ। तुम्हें भरपूर लाभ होगा। यदि लाभ न हो तो तुम्हारे घाटेका जिम्मा हमारा। हाँ, ५ प्रतिशतसे जब तुम्हें अधिक लाभ होने लगे तो हम तुम दोनों आधा-आधा लाभ बाँट लेंगे। छमाही हिसाब कर लिया जायगा और इसके लिए २२ पेंसका रुपया माना जायगा।'

गारंटी पद्धति

भला इसपर ब्रिटिश पूँजीपतियोंको आपत्ति ही क्या हो सकती थी? 'हर्रा लगे न फिटकरी, रंग चोखा'। बस, थैलियोंका मुंह खुल गया और भारतमें रेलकी पटरियाँ बिछने लगीं।

माल मुफ्त, दिले बेरहम! ब्रिटिश रेलवे कम्पनियाँ जी खोलकर रेलोंके विस्तारपर पैसा लुटाने लगीं। उन्हें चिन्ता ही किस बातकी थी? भारत मरे या जिये, उनके ठेंगेसे! सरकारकी गारंटीके कारण उनकी तो पाँचों घीमें थीं। हानि तो केवल भारतकी थी, जिसका सिर कढ़ाईमें था![2]

धुएंकी गाड़ीका आनन्द पानेके लिए दरिद्र भारतको कितनी मोटी रकम गारंटी-पद्धतिकी भेंट चढ़ानी पड़ी है, इसका अनुमान केवल दस वर्षके इन आंकड़ोंसे लगाया जा सकता है—

भारतकी हानि

१—हण्टर : डलहौजी, पृष्ठ १६१—१६६।

२—रामनिवास पोद्दार : भारतमें रेलपथ, १६८१, पृष्ठ ९१—१०३, ११४, १५७।

वर्ष	ई० आई० आर०	जी० आई० पी०	मद्रास रेलवे
१८४९	५६०२ पौण्ड	— —	— —
१८५०	१७४७१ ,,	३०६२ पौण्ड	— —
१८५१	३७१८५ ,,	६३१२ ,,	— —
१८५२	४५२३४ ,,	१६३१० ,,	— —
१८५३	५२०७१ ,,	२२८२५ ,,	— —
१८५४	८८८८४ ,,	२५००३ ,,	९७०३ पौंड
१८५५	१९५७३० ,,	३०२५९ ,,	१८११५ ,,
१८५६	२९७३९० ,,	६०३७० ,,	४२५१० ,,
१८५७	३५४५११ ,,	११६६१२ ,,	८११३९ ,,
१८५८	४३३९६८ ,,	२७५२८९ ,,	१०९१९७ ,,
	१५२८०४६ पौंड	५५६०४९ पौंड	२६०६६४ पौंड

अनेक अंग्रेजोंने भी इस भारी अपव्ययकी निन्दा की है। सर जान लारेंसने कहा—'गारंटी-पद्धतिके कारण रेलवे कम्पनियोंने भारी अपव्यय किया है। ५ प्रतिशत व्याजकी गारंटी देकर सरकारने रेलवे कम्पनियोंको मनमाना खर्च करनेके लिए स्वतंत्र छोड़ दिया !' पैस्ताने कहा—'गारंटी पद्धतिके कारण गोरी कम्पनियोंने बहुतसा रुपया व्यर्थ बर्बाद किया है। मितव्ययिताका ध्यान रखनेकी तो कोई आवश्यकता ही नहीं समझी गयी !' विलियम एन० मैसीने कहा—'गारंटी पद्धतिके कारण ईस्ट इंडिया कम्पनीने दूनेसे अधिक खर्च किया। ठेकेदारोंको तो व्याजकी गारंटी थी, फिर उन्हें क्या ! चाहे उनका रुपया उत्पादक कार्योंमें लगाया जाय, चाहे हुगलीमें फेंक दिया जाय ! उनका उससे क्या बनता-बिगड़ता था ? उन्हें तो अपने टके खड़े करनेसे मतलब !' ईस्ट इंडियन रेलवेने प्रति मीलपर ३० हजार पौंड खर्च किया। विश्वमें शायद ही किसी देशमें इतनी अधिक फिजूल-खर्ची की गयी हो।

भारी अपव्यय

रेलोंके निर्माणपर इसी प्रकार अन्धाधुन्ध खर्च होता गया। १८८० तक जहां कुल ८९१६ मीलतक रेलकी पटरियां बिछ पायी थीं वहां

इंग्लैंडका स्वार्थ

तबतक उनपर सरकार १३॥ करोड़ पौंड खर्च कर चुकी थी। पर नहरोंपर, जिनसे कृषिपर निर्भर रहनेवाली सारी जनताको प्रत्यक्ष लाभ था, सरकारने केवल ३ करोड़ पौंड खर्च किये थे। आखिर, अपना स्वार्थ अपना ही है, पराया पराया ही। ब्रिटेनको भारतके रेल-विस्तारसे केवल कच्चे मालका ही लाभ न था, और भी अनेक लाभ थे। दादाभाई नौरोजीके कथनानुसार 'रेलवे-के निर्माणमें जो व्यय होता है उसमें ३६॥ प्रतिशत लोहेके सामानमें जाता है और उसे सप्लाई करनेवाले हैं इंग्लैंडके लोहेके व्यापारी।' इसका एकमात्र ठेका उन्हींके नाम लिखा है!

रेलभाड़ेकी दरोंपर एक सरसरी दृष्टि दौड़ानेसे ही स्पष्ट हो जाता है कि आरम्भसे ही सरकारने इंग्लैंडके स्वार्थको सर्वोपरि स्थान दिया।

मनमाना रेलभाड़ा

दरें ऐसी ही रखी गयीं जिनके कारण भारतसे कच्चा माल इंग्लैंड ले जानेमें और वहांके तैयार मालसे यहांका बाजार पाटनेमें सुभीता हो तथा भारतके उद्योगधन्धे सर्वथा नष्ट हो जांय। यही कारण है कि बन्दरगाहोंको जानेवाले मालका अथवा बंदरगाहोंसे देशके भीतर आनेवाले मालका भाड़ा बहुत कम रखा गया, पर देशके एक नगरसे दूसरे नगरको भेजे जानेवाले मालका भाड़ा अपेक्षाकृत कहीं अधिक रखा गया। बम्बईसे १ टन रुईकी ५ गाँठें यदि लिवरपूल भेजी जांय तो उनका भाड़ा मुश्किलसे १३।) लगेगा, पर यदि वे ही गांठें अदोनीसे बम्बई भेजी जांय तो किराया ढाई गुना हो जायगा और अहमदाबाद भेजनेपर पांच गुना। तिरुपुरसे लंकाशायरके लिए जितना भाड़ा लगता है, दिल्लीका किराया उससे अधिक है। एंटवर्प अथवा ब्रुसेल्ससे भारतके किसी भी बन्दरगाहके लिए जितने लोहेका भाड़ा १०) लगता है, उतने ही लोहेका जमशेदपुर-

से नागपुर तकका भाड़ा १३) है। इटलीसे भारत संगमरमर लानेपर जितना भाड़ा लगेगा उससे कहीं अधिक भाड़ा जयपुरसे मद्रास संगमरमर भेजनेपर लगेगा। जबलपुरसे बम्बई ६१६ मील है और कानपुर ३४७ मील। पर यदि जबलपुरसे मन भर गेहूं बम्बई भेजा जायगा तो छै आना लगेगा और कानपुर भेजा जायगा तो सवा छै आना। भाड़ेकी दरका सारा गोरखधन्धा इसी प्रकारके वैषम्यसे भरा पड़ा है।

सरकारकी रेलवे-नीति भारतीय कृषि और उद्योगके विकासके सर्वथा विरुद्ध रही है। बन्दरगाहों तथा देशके भीतरी केन्द्रीय स्थानोंके लिए रेलभाड़ेकी दर अन्य स्थानोंकी अपेक्षा बहुत कम है[1]। यह भेदभावकी नीति इस सीमातक चली गयी कि अंग्रेजी कम्पनीके लिए एक ही स्थानका भाड़ा कम है, देशी कम्पनीके लिए अधिक। ईस्ट इंडियन रेलवे लाइनपर स्थित रोजा स्टेशनकी रोजा शुगर फैक्टरीके लिए जानेवाले मालके भाड़ेमें इसी प्रकारकी नीति बरतनेकी चर्चा केन्द्रीय असेम्बलीमें भी हुई थी[2]।

लार्ड डलहौजीके प्रोत्साहनसे, नहरोंकी पूर्ण उपेक्षाकर भारतमें रेलोंका जाल बिछाया गया। १८५४ से १८६० तक भारत सरकारने

रेलोंका विस्तार

ईस्ट इंडियन; ग्रेट इंडियन पेनिनसुला; मद्रास; बम्बई, बड़ौदा एंड सेंट्रल इंडिया; ईस्टर्न बंगाल; इंडियन ब्रांच, बादमें अवध एंड रुहेलखंड; सिंध, पंजाब एंड दिल्ली, बादमें नार्थ वेस्टर्न; ग्रेट सदर्न रेलवे आव इंडिया, बादमें साउथ इंडियन—इन ८ रेलवे कम्पनियोंसे समझौता किया और उन्हें साढ़े चारसे पांच प्रतिशतकी गारंटी दी।

आरम्भमें रेलोंका कार्य मन्थर गतिसे हुआ। लाभकी गारंटी

१—डाक्टर एच० आर० साहिनी : इंडियन ट्रांसपोर्ट ; रामनिवास पोद्दार : भारतमें रेल पथ, पृष्ठ २७६–२७७ :

२—पट्टाभि सीतारामैया : भारतका आर्थिक शोषण, पृष्ठ ४६, ४७।

पाकर विदेशी कम्पनियोंने पैसा पानीकी तरह वहाया। यहांकी स्थितिसे सर्वथा अनभिज्ञ गोरे इंजीनियरोंने यहां आकर खूब अलल्ले-तलल्ले उड़ाये। इसीका परिणाम था कि १८६९ तक रेलवे वजटमें घाटेकी रकम १६६ लाखसे ऊपर पहुंच चुकी थी!

भारतीयोंने जव सरकारकी रेलवे-नीतिकी तीव्र टीका आरम्भ की तव सरकारका आसन कुछ हिला। उसने रेल-निर्माणका कार्य स्वयं अपने हाथमें लेनेका निश्चय किया। पर दस सालके भीतर ही असफलताका टीका मस्तकपर लगाकर उसने १८७९ में पुनः वही तरीका अपनाया। उसने फिर गारंटी-पद्धति चलायी, यद्यपि इस वारकी शर्तें पहलेसे कुछ अच्छी थीं।

इस वार गारंटीकी दर साढ़े तीन प्रतिशतसे अधिक नहीं रखी गयी। साथ ही यह भी तय कर दिया गया कि २५ साल वाद सरकार इन कम्पनियोंको खरीद सकेगी। ठेका पूरा होनेपर रेलवे कम्पनीका प्रवन्ध चाहे सरकार स्वयं करे, चाहे कम्पनीको ही सौंप दे। क्रमशः रेलोंपर सरकारी नियंत्रण आरम्भ हुआ। १९०५ में इसके लिए रेलवे वोर्ड वन गया।

इस प्रकार देशमें धीरे-धीरे रेलोंका विस्तार होने लगा। वीसवीं शताव्दीका आरम्भ होते ही रेलोंने लाभ देना आरम्भ कर दिया। इधर पंजाव और सिंध प्रान्तोंमें सिंचाईका विस्तार हुआ, देशकी स्थिति भी कुछ सुधरी, व्यापार-व्यवसायकी उन्नति हुई। फलतः १९०० से १९१४ तक रेलोंने अच्छी उन्नति और प्रगति की। युद्ध कालमें रेलोंको कुछ झटका लगा।

रेलोंकी प्रगति

आरम्भसे रेलोंकी प्रगति कैसी होती आयी है, इसका अनुमान इन आंकड़ोंसे किया जा सकता है—

सन्	मीलोंमें विस्तार	सन्	मीलोंमें विस्तार
१८६३	२५५०	१९३०	४१७२४
१८८०	८९९६	१९३२–३३	४२९६१
१८८८	१४३७९	१९३४–३५	४३०२१
१८९०	१६४०४	१९३६–३७	४१०६८
१९००	२४७०७	१९३८–३९	४११३४
१९१०	३२०९९	१९४०–४१	४१०५२
१९२०	३६७३५	१९४३–४४	४०५१२

आज तो प्रायः सभी रेलें सरकारी हो गयी हैं, पहले यह स्थिति नहीं थी। विदेशी कम्पनियाँ मनमाने ढंगपर काम करती थीं। इस सम्बन्धमें जाँच करनेके लिए सन् १९२० में सर विलियम एकवर्थकी अध्यक्षतामें एक कमेटी बैठी। इस कमेटीने इस बातकी जोरदार सिफारिश की कि रेलोंका प्रबन्ध सरकारके ही हाथमें होना चाहिये। इसने रेलवे-नीतिमें सुधार करनेकी भी सिफारिश की और रेलवे विभागको सर्वथा पृथक् करनेपर भी जोर डाला तथा रेलोंके विस्तार और यात्रियोंकी सुख-सुविधापर अधिक खर्च करनेकी सिफारिश की। सरकारने कमेटीकी अनेक सिफारिशें स्वीकार कर लीं। रेलवे-बोर्डका पुनस्संघटन किया, रेलें सरकारी नियंत्रणमें ले लीं और १९२५ से रेलवे विभाग पृथक् कर दिया।

१९३० से १९३५ तक रेलोंको मन्दी और सड़क-प्रतिद्वन्द्विताके कारण कुछ हानि उठानी पड़ी, पर बादमें देशकी अवस्था सुधरने तथा वैजवुड कमेटीकी सिफारिशोंके अनुकूल छटनी कर देनेके फलस्वरूप रेलोंकी अवस्था सुधर गयी। द्वितीय महासमरमें रेलोंने जो भारी लाभ उठाया है और यात्रियोंने जो भारी कष्ट उठाया है, वह किसीसे छिपा नहीं है। खेद है कि तीसरे दर्जेके जिन यात्रियोंकी बदौलत रेलें इतनी रकम बटोरती हैं, उन्हींको रेलयात्रामें सबसे अधिक कष्ट भुगतना पड़ता है!

पाकर विदेशी कम्पनियोंने पैसा पानीकी तरह वहाया। यहांकी स्थितिसे सर्वथा अनभिज्ञ गोरे इंजीनियरोंने यहां आकर खूब अलल्ले-तलल्ले उड़ाये। इसीका परिणाम था कि १८६६ तक रेलवे वजटमें घाटेकी रकम १६६ लाखसे ऊपर पहुंच चुकी थी !

भारतीयोंने जव सरकारकी रेलवे-नीतिकी तीव्र टीका आरम्भ की तव सरकारका आसन कुछ हिला। उसने रेल-निर्माणका कार्य स्वयं अपने हाथमें लेनेका निश्चय किया। पर दस सालके भीतर ही असफलताका टीका मस्तकपर लगाकर उसने १८७९ में पुनः वही तरीका अपनाया। उसने फिर गारंटी-पद्धति चलायी, यद्यपि इस वारकी शर्तें पहलेसे कुछ अच्छी थीं।

इस वार गारंटीकी दर साढ़े तीन प्रतिशतसे अधिक नहीं रखी गयी। साथ ही यह भी तय कर दिया गया कि २५ साल वाद सरकार इन कम्पनियोंको खरीद सकेगी। ठेका पूरा होनेपर रेलवे कम्पनीका प्रवन्ध चाहे सरकार स्वयं करे, चाहे कम्पनीको ही सौंप दे। क्रमशः रेलोंपर सरकारी नियंत्रण आरम्भ हुआ। १९०५ में इसके लिए रेलवे वोर्ड वन गया।

इस प्रकार देशमें धीरे-धीरे रेलोंका विस्तार होने लगा। वीसवीं शताव्दीका आरम्भ होते ही रेलोंने लाभ देना आरम्भ कर दिया। इधर पंजाव और सिंध प्रान्तोंमें सिंचाईका विस्तार हुआ, देशकी स्थिति भी कुछ सुधरी, व्यापार-व्यवसायकी उन्नति हुई। फलतः १६०० से १९१४ तक रेलोंने अच्छी उन्नति और प्रगति की। युद्ध कालमें रेलोंको कुछ झटका लगा।

रेलोंकी प्रगति

आरम्भसे रेलोंकी प्रगति कैसी होती आयी है, इसका अनुमान इन आंकड़ोंसे किया जा सकता है—

सन्	मीलोंमें विस्तार	सन्	मीलोंमें विस्तार
१८६३	२५५०	१९३०	४१७२४
१८८०	८९९६	१९३२–३३	४२९६१
१८८८	१४३७९	१९३४–३५	४३०२१
१८९०	१६४०४	१९३६–३७	४१०६८
१९००	२४७०७	१९३८–३९	४११३४
१९१०	३२०९९	१९४०–४१	४१०५२
१९२०	३६७३५	१९४३–४४	४०५१२

आज तो प्रायः सभी रेलें सरकारी हो गयी हैं, पहले यह स्थिति नहीं थी। विदेशी कम्पनियाँ मनमाने ढंगपर काम करती थीं। इस सम्बन्धमें जाँच करनेके लिए सन् १९२० में सर विलियम एकवर्थकी अध्यक्षतामें एक कमेटी बैठी। इस कमेटीने इस बातकी जोरदार सिफारिश की कि रेलोंका प्रबन्ध सरकारके ही हाथमें होना चाहिये। इसने रेलवे-नीतिमें सुधार करनेकी भी सिफारिश की और रेलवे विभागको सर्वथा पृथक् करनेपर भी जोर डाला तथा रेलोंके विस्तार और यात्रियोंकी सुख-सुविधापर अधिक खर्च करनेकी सिफारिश की। सरकारने कमेटीकी अनेक सिफारिशें स्वीकार कर लीं। रेलवे-बोर्डका पुनस्संघटन किया, रेलें सरकारी नियंत्रणमें ले लीं और १९२५ से रेलवे विभाग पृथक् कर दिया।

१९३० से १९३५ तक रेलोंको मन्दी और सड़क-प्रतिद्वन्द्विताके कारण कुछ हानि उठानी पड़ी, पर बादमें देशकी अवस्था सुधरते तथा वैजवुड कमेटीकी सिफारिशोंके अनुकूल छटनी कर देनेके फलस्वरूप रेलोंकी अवस्था सुधर गयी। द्वितीय महासमरमें रेलोंने जो भारी लाभ उठाया है और यात्रियोंने जो भारी कष्ट उठाया है, वह किसीसे छिपा नहीं है। खेद है कि तीसरे दर्जेके जिन यात्रियोंकी बदौलत रेलें इतनी रकम अरोरती हैं, उन्हींको रेलयात्रामें सबसे अधिक कष्ट भुगतना पड़ता है!

रेलोंसे भारतके व्यापारमें अवश्य ही कुछ वृद्धि हुई है, पर उसका अधिकांश लाभ विदेशी व्यापारियोंको ही मिला है। ब्रिटिश सरकारने सैनिक तथा ब्रिटिश व्यापारियोंके हितोंको सर्वोपरि स्थान देकर उनका विस्तार किया। इनके द्वारा भारतीय उद्योगधन्धोंका नाश तो किया ही गया, यहांके निवासियोंका स्वास्थ्य भी चौपट किया गया। रेलवे लाइनोंके बांधोंने जलके नैसर्गिक बहावको रोका है, जिसके कारण लोगोंको महीनों पानीमें ही रहना पड़ता है और उस बंधे हुए पानीके कारण मलेरियाके कीटाणु खूब फैलते हैं, जिससे लाखों मनुष्य अकाल-मृत्युका शिकार बनते हैं![1]

दुष्परिणाम

रेलोंमें लगी विदेशी पूंजीका व्याज विदेश भेजना पड़ता है। बहुतसा सालाना मुनाफा भी विदेश जाता है। रेलोंका सामान विदेशोंसे ही अधिकतर मँगाया जाता है। रेलवे विभागमें ऊँचे पदोंपर विदेशी ही अबतक नियुक्त किये जाते रहे हैं। हजारों व्यक्ति प्रतिवर्ष रेलवे दुर्घटनाओंके शिकार बनते हैं। रेलोंके कारण उद्योगोंका केन्द्रीकरण हुआ है, ग्रामोद्योगोंका ह्रास हुआ है और विदेशी माल गाँव-गाँव घर-घर पहुँच गया है।

कुछ रेलें दुर्भिक्ष-निवारणके उद्देश्यसे ही खोली गयीं, पर उनका संघटन, उनका संचालन कितना दोषपूर्ण रहा है, इसका उदाहरण बंगालका पिछला दुर्भिक्ष है, जिसमें लाखों व्यक्ति कीड़े-मकोड़ोंकी तरह मर गये। युद्धके कारण रेलोंको फुर्सत ही कहाँ थी कि वे गल्ला ले जाकर दुर्भिक्ष-पीड़ित स्थानोंके निवासियोंका कष्ट निवारण करतीं? हाँ, राज-विद्रोहका दमन करनेके लिए रेलोंने ब्रिटिश नौकरशाहीका सोलह आने साथ दिया है। देना भी चाहिये था। आखिर भारतमें विदेशियोंकी यह ९०० करोड़ पूँजी किस दिन काम आनेके लिए थी?

१—पट्टाभि सीतारामैया : भारतका आर्थिक शोषण, पृष्ठ ५१, ५२।

सड़कोंकी उपयोगिता किसीसे छिपी नहीं। व्यापारकी उन्नतिके लिए अच्छी सड़कोंकी अनिवार्य आवश्यकता है। पर भारत जैसे विस्तृत देशमें अभी केवल साढ़े तीन लाख मीलमें सड़कें हैं, जिनमें पक्की सड़कें तो चतुर्थांशसे भी कम हैं।

सड़कें

रेलों और सड़कोंके विस्तारके लिए लार्ड डलहौजीकी बड़ी ख्याति है। पर उनसे भी पहले लार्ड विलियम बैंटिगने सड़कोंके निर्माणपर जोर दिया था। इसीका परिणाम था कि पेशावरसे दिल्ली और दिल्लीसे कलकत्ता एक सूत्रमें गुंथ गया। ग्रांड ट्रंक रोड इस दिशामें पहला वृहद् प्रयत्न था।

लार्ड डलहौजीने सड़कोंके निर्माणकी ओर विशेष ध्यान दिया। अभीतक सैनिक बोर्ड ही सड़कोंके निर्माणके लिए उत्तरदायी थे। अब केन्द्रीय तामीरात विभाग खुला। १८५५ में विभिन्न प्रान्तोंमें भी तामीरात विभाग खुले। रेलोंतक कच्चा माल पहुँचानेके लिए सड़कें खुलीं। वे उस समय रेलोंकी पूरक ही सिद्ध हुईं, भले ही बादमें उनसे कुछ प्रतिद्वन्द्विता उठ खड़ी हुई हो। लार्ड मेयो और लार्ड रिपनकी नीतिसे भी सड़कोंको कुछ प्रोत्साहन मिला। ग्रांड ट्रंक रोडके अतिरिक्त तीन उल्लेखनीय सड़कें और हैं—कलकत्तासे मद्रास, मद्राससे बम्बई और बम्बईसे दिल्ली। दक्षिण भारतमें सड़कोंका अच्छा जाल बिछा है, पर राजपूताना, सिन्ध, पंजाब, उड़ीसा, बंगाल आदिमें भारी कमी है।

भारतमें अच्छी सड़कें लगभग ७६ हजार मील हैं। इनमें सीमेंट-वाली तो केवल १० हजार मील हैं। नदियोंपर पुलोंका बड़ा टोटा है। कुछ सड़कें तो साल भर काम देती हैं, पर कुछ वर्षाकालमें बेकार हो जाती हैं। उन दिनों हमारे यहाँ 'क्षुद्र नदी भरि चलीं तोराई'। कभी-कभी सड़कें ही नहीं, पुलतक उनके प्रवाहकी लपेटमें आ जाते हैं।

सड़कोंपर बैलगाड़ियों, टट्टुओं, खच्चरों, गदहों, ऊँटों, भैंसों द्वारा तो माल ढोया ही जाता है, मोटरोंसे भी यह काम लिया जाने लगा

हैं। वर्षाकाल छोड़कर देशकी तीन-चौथाई कच्ची सड़कें भी मोटरके आवागमनका काम देती हैं। पर भारतमें सड़कोंकी बड़ी कमी है। अमेरिकामें जहाँ प्रति लाख व्यक्तिपर २५०० मील सड़कोंकी व्यवस्था है, वहाँ भारतमें मुश्किलसे ८४ मील!

व्यापारकी उन्नतिके लिए सड़कोंके विस्तारकी आवश्यकता है, पर हमारे यहाँ नयी सड़कोंके विस्तारकी बात तो दूर, जो सड़कें हैं भी, उन्हींकी अर्थाभावके कारण भरपूर मरम्मत नहीं हो पाती! स्थानीय संस्थाओं, म्युनिसिपलिटियों, जिला बोर्डों आदिकी सड़कोंकी दयनीय स्थितिका ज्ञान किसे नहीं है? उन सड़कोंपर इक्का, मोटर, ताँगा आदि सवारियोंपर बैठना भी खतरेसे खाली नहीं। सही-सलामतीसे ठिकाने लग जानेको सौभाग्य समझना चाहिये।

थोड़े दिनोंसे सरकार इधर कुछ ध्यान देने लगी है। नवम्बर १९२७ में सड़कोंकी समस्यापर विचार करनेके लिए सरकारने सड़क-सुधार कमेटी नियुक्त की, जिसने सिफारिश की कि स्थानीय संस्थाओंको सड़कोंके सुधारके निमित्त प्रान्तीय सरकारोंकी ओरसे समुचित सहायता मिलनी चाहिये। उसीकी सिफारिशपर मार्च १९२९ में सरकारने पेट्रोलका दाम चार आना गैलनसे बढ़ाकर छै आना गैलन कर दिया और इस करवृद्धिसे होनेवाली अतिरिक्त आयको सड़कोंके काममें लगानेका निश्चय किया। यह आय प्रान्तों और रियासतोंको उनके पेट्रोलकी खपतके अनुपातसे बाँट दी जाती है। १९४२-४३ के अन्तमें सड़क सम्बन्धी कोषका विवरण इस प्रकार था—

आय		व्यय	
१९४१-४२के अन्ततक	१७,९९,५५,०००)	नागरिक उड्डयन	२२,३३,०००)
१९४२-४३ में	१,६०,००,०००)	रक्षित कोष	३,५८,००,०००)
	१९,५९,५५,०००)		३,८०,३३,०००)

ब्रिटिश भारतके प्रान्तोंको	१२,४४,८९,०००)
चीफ कमिश्नरोंके प्रान्तोंको	४४,१४,०००)
देशी रियासतोंको	१,९८,५७,०००)
	१८,६८,१३,०००)
शेष	९१,४२,०००)
	१९,५९,५५,०००)

रेल और सड़कोंकी प्रतिद्वन्द्विता रोकनेके लिए शिमलामें हुए रेल-सड़क-सम्मेलनमें विचार किया गया। १९३७ में वेजवुड कमेटीने भी इसपर विचार किया। फलतः १९३९ में केन्द्रीय असेम्बलीमें मोटरगाड़ी कानून स्वीकृत हुआ। इसके द्वारा मोटरों और रेलोंकी अनुचित प्रतिद्वन्द्विता रोकनेमें सहायता मिलेगी।

ब्रिटिश शासन-कालमें नौ-उद्योग बुरी भाँति नष्ट कर दिया गया। नदियों और नहरोंसे जो व्यापार होता था वह आज नाम-मात्र रह गया है। रेलोंसे इसे भारी धक्का लगा है। गंगा, सिंधु, ब्रह्मपुत्र, चिनाव, सतलज, महानदी, गोदावरी और कृष्णामें नावोंसे कुछ मालका आवागमन होता है। पूर्वी बंगालमें नावोंका विशेष प्रचलन है। जूट और धान ढोनेमें उनका उपयोग किया जाता है। वर्षा ऋतुमें नदियों और नहरोंपर नावोंसे ही माल लेजानेमें विशेष सुभीता पड़ता है। कुछ नहरें माल ढोनेके ही उद्देश्यसे बनायी गयी हैं। पर उनसे बहुत कम आय होती है। लोग रेलवे पार्सल अथवा मालगाड़ीसे ही अधिकतर माल भेजा करते हैं। १९१८ के औद्योगिक कमीशनने सिफारिश की थी कि रेलोंका भार कम करनेके लिए रेल और जलमार्गका एकीकरण आवश्यक है।

जलमार्ग

आज समुद्र-तटवर्ती व्यापारमें भारतका केवल २५ प्रतिशत भाग है। सामुद्रिक व्यापारमें तो उसका भाग २ प्रतिशतसे भी कम है।

अंग्रेजोंने भारतके इस फलते-फूलते उद्योगको बुरी भाँति चौपट कर दिया। जब-जब इसके पुनरुद्धारका प्रयत्न किया गया तब-तब असफलता ही भारतीयोंके हिस्से पड़ी। १९२३ में इंडियन मर्कंटाइल कमेटीने इस बातकी सिफारिश की थी कि तटवर्ती सारा व्यापार भारतीयोंके हाथमें रहे। पर कौन सुनता है? सन् १९२८ में श्री एस० एन० हाजीने इस विषयमें केन्द्रीय असेम्बलीमें एक बिल भी पेश किया था, पर सरकारको उसमें जातीय-विद्वेषकी गंध आयी! तब होना ही क्या था! १९३७ में सर गजनवीके सेलेक्ट कमेटीमें भेजे गये प्रस्तावकी भी कोई अच्छी गति नहीं हुई। पिछले २० वर्षके भीतर १५ करोड़ पौंडकी पूँजीसे १०६ भारतीय जहाजी कम्पनियाँ खुलीं, पर उनमेंसे मुश्किलसे १० कम्पनियाँ जीवित रह सकीं। १९३८–३९ में कुल डेढ़ लाख टनकी जहाजरानी इनके हाथ थी।[1]

सिंधिया स्टीम नैविगेशन कम्पनी कितनी कशमकशके बाद अपना अस्तित्व बनाये रख सकी है, यह बात सभी जानते हैं। श्री बालचन्द हीराचन्दने, कम्पनीके हिस्सेदारोंके सम्मुख कहा था कि विदेशी कम्पनियाँ दरोंका निश्चय इस प्रकार करती हैं कि एक भी टन माल भारतीय जहाजोंको न मिल सके। इसकी उन्हें लेशमात्र भी चिन्ता नहीं रहती कि दरोंकी इस लड़ाईमें उनका कितना नुकसान होगा। श्री हाजीकी योजनाको विफल करने तथा अपने हित सुरक्षित रखनेके लिए ब्रिटिश जहाजी व्यापारियोंने १५ लाख पौंड जमा किये थे। सन् १९२८ में जब श्री हाजीका बिल पेश होनेको था तब भारतमंत्रीने अपने परामर्शदाताओंसे राय ली थी कि सरकार इस बिलको असेम्बलीमें पेश होनेसे रोक सकती है अथवा नहीं। उन्होंने बताया कि ऐसा सम्भव नहीं है। पर १९३५ के विधानके अनुसार गवर्नर जनरलको अधिकार मिल गया कि वह इस प्रकारके बिलोंको असेम्बलीमें पेश होनेके पहले

१— कन्हैयालाल मा० मुंशी : दि रिठन दैट ब्रिटेन राट, पृष्ठ १३।

ही रोक सकता है। संसारमें ऐसा कोई भी सभ्य और सुसंस्कृत राष्ट्र नहीं है जिसके समुद्र-तटका व्यापार वहांके निवासियोंके लिए ही सुरक्षित न रखा गया हो।[1]

विश्वमें १६३९ में विभिन्न देशोंकी जहाजरानीकी स्थिति इस प्रकार थी —

लाख टनोंमें

ब्रिटेन	अमेरिका	जर्मनी	जापान	भारत
१८०	१३०	४५	५६	१.३

समुद्री व्यापारमें ब्रिटिश भारतका ३.४ प्रतिशत और तटवर्ती व्यापारमें २० प्रतिशत स्थान है।

सन् १९४१ में अवश्य ही सरकारने सिंधिया स्टीम नैविगेशन कम्पनीको नौ-निर्माणके लिए विजगापट्टममें एक कारखाना खोलनेके लिए कुछ सुविधाएँ प्रदान कीं। स्वतंत्र भारतमें इसके विकासके लिए अच्छी गुंजायश है। स्वदेशी जहाज न होनेसे भारतको आयात-निर्यातके लिए प्रति वर्ष करोड़ों रुपया विदेशी जहाजोंको देना पड़ता है। भारतकी व्यापारिक उन्नतिमें यह बहुत बड़ी बाधा है।

आकाश मार्ग

प्रथम विश्वयुद्धके बादसे जल और स्थलके अतिरिक्त आकाश मार्गका भी उपयोग होने लगा है। यात्राके अतिरिक्त विमान द्वारा चिट्ठीपत्रीके शीघ्र आवागमनमें तथा सोना, चाँदी जैसी बहुमूल्य वस्तुएँ ढोनेमें विशेष सुभीता रहता है।

दिसम्बर १९४० में श्री बालचन्द हीराचन्दने ४० लाखकी पूंजीसे बंगलोरमें इसके लिए 'हिन्दुस्तान एयर क्रैफ्ट कम्पनी' खोली। स्थान उपयुक्त होनेके कारण कम्पनी शीघ्र उन्नति करने लगी। पहले मैसूर सरकारने इस कम्पनीमें आधा हिस्सा ले रखा था, बादमें इसकी पूँजी बढ़ाकर ७५ लाख कर दी गयी और भारत सरकारने भी इसमें हिस्सा

१ — पट्टाभि सीतारामैया : भारतका आर्थिक शोषण, पृष्ठ ५५,८६।

ले लिया। युद्धकालमें भारत सरकारने इसे पूर्णतः अपने नियंत्रणमें ले लिया। अप्रैल १९४६में भारत सरकारने मैसूर सरकारको पुनः बाकायदा अपना साझीदार बना लिया और अब कम्पनीमें भारत सरकारके दो भाग हैं और मैसूर सरकारका एक भाग। इस प्रकार यह कम्पनी सरकारी नियंत्रणमें चल रही है। इस कम्पनीका पहला विमान जुलाई १९४१ में तैयार होकर उड़ा था।

डाक और तार

वर्तमान युगमें डाक, तार, टेलीफोन और रेडियो व्यापारके प्रमुख साधन सिद्ध हो रहे हैं। डाक-तार विभाग सरकारके हाथमें है। यह विभाग अपने कार्यके लिए विमान, रेल, मोटर और जहाज आदि कितने ही साधनोंका उपयोग करता है। आज हमारा ९९ प्रतिशत व्यापार डाक, तार, टेलीफोन और रेडियोपर निर्भर करता है। चिट्ठियाँ, रजिस्ट्रियाँ, बीमा, मनी-आर्डर, वी० पी० आदि व्यापारकी जान हैं। जुलाई अगस्त १९४६ में डाक-तार विभागकी हड़तालके कारण देशके व्यापारको कितना धक्का लगा था यह सभी जानते हैं। सरकारका यह विभाग सबसे ईमानदार माना जाता है। सारे देशमें २५ हजारसे ऊपर डाकखाने हैं, जिनमें सवा लाखसे अधिक आदमी काम करते हैं। ३०० के लगभग सरकारी टेलीफोन केन्द्र हैं और उसके ३० हजार सीधे सम्बन्ध हैं। कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, कराची, अहमदाबादमें विविध कम्पनियोंके भी लगभग ३० टेलीफोन केन्द्र हैं और ६६ हजारके लगभग टेलीफोन हैं। १९३९–४० में डाक-तार विभागके अन्तर्गत बेतारके तारके २२ स्टेशन थे। देशमें एक लाखसे अधिक रेडियो सेट हैं। उनपर प्रतिदिन बाजार भाव और अन्तर्राष्ट्रीय स्थितिके सम्बन्धमें जो ब्राडकास्ट होता है, उसका देशी विदेशी व्यापारपर भारी प्रभाव पड़ता है।

व्यापारके ये सब साधन व्यापारकी उन्नतिमें सहायक हो रहे हैं।

देशी व्यापार

व्यवसायपटु अंग्रेजोंने भारतके विदेशी व्यापारपर अनेक अनुचित और घृणित प्रतिबन्ध लगा दिये। उस ओरसे द्वार बन्द होते देख व्यापारियोंने देशके आन्तरिक व्यापारकी ओर विशेष ध्यान लगाया। सरकारी आंकड़ोंके अनुसार देशका आन्तरिक व्यापार १५०० करोड़के लगभगका है[1]।

मुख्य पदार्थ

देशमें जिन वस्तुओंका अधिकतर व्यापार होता है, उनमें प्रमुख ये हैं—गल्ला, तेलहन, कपास, जूट, चाय, चमड़ा, खनिज पदार्थ, कोयला, नमक, मिट्टीका तेल, ईंधन, लकड़ी और तैयार माल। वजनके हिसाबसे १९३३–३४ में आन्तरिक व्यापार ६२,८४,६४,००० मनका हुआ था, १९३९–४० में वही बढ़कर ८२,८२,१९,००० मनका हो गया। इससे स्पष्ट है कि इस व्यापारमें क्रमशः वृद्धि होती जा रही है। १९३६–३७ के आंकड़े इस प्रकार हैं—

वस्तु	वजन	वस्तु	वजन
कोयला	३९,७८,६४,००० मन	नमक	३,००,०२,००० मन
तेलहन	४,३७,७७,००० मन	कपास	२,६२,०७,००० मन
चावल	४,२६,८१,००० मन	गेहूं	२,८३,०९,००० मन
लोहा, इस्पात	३,९३,१८,००० मन	शकर	२,४६,९०,००० मन
जूट	३,८२,२५,००० मन	सूती वस्त्र	१,०५,२१,००० मन

प्रमुख केन्द्र

कलकत्ता, बम्बई, मद्रास और कराची इन चार प्रमुख बन्दरगाहोंके अतिरिक्त कानपुर, दिल्ली, आगरा, काशी, लखनऊ, मिर्जापुर, प्रयाग, अमृतसर, लाहौर, श्रीनगर, ग्वालियर, सोलापुर, अमरावती, हैदराबाद, जयपुर, बड़ोदा, बंगलोर, मद्रास, मदुरा, ढाका आदि भारतके प्रमुख व्यापारिक केन्द्र हैं।

१—इनलैंड ट्रेड आव इंडिया, फार १९२०–२१।

इन व्यापारिक केन्द्रों द्वारा देशी विदेशी वस्तुएं देशके विभिन्न भागोंमें पहुंचा करती हैं।

हमारे यहां उत्पादक और उपभोक्ताके बीच दलालोंकी इतनी भारी पलटन खड़ी है कि उसके लाभका अनुमान करना सहज नहीं है।

दलालोंकी बाढ़

रुपयेमें दस बारह आना तो ये दलाल ही खा जाते हैं। उत्पादकको जिस मालका चार आना मिलता है, वही उपभोक्ताको लगभग एक रुपयेमें पड़ता है। इन व्यापारमें दलालोंका महत्त्व बहुत बढ़ गया है। ये उत्पादक और उपभोक्ता दोनोंको ही ठगते हैं।

हमारे यहां मोल-भाव और सौदा बहुत होता है। मालका मूल्य निश्चित न रहनेसे ग्राहकोंको भारी हानि उठानी पड़ती है। युद्धकालमें

व्यापारमें दोष

आवश्यक वस्तुओंपर जब सरकारी नियन्त्रण हुआ तो चोर-बाजार और भ्रष्टाचार बढ़ गया। हमारी व्यापारिक प्रथा दूषित होने और व्यापारीकी लोभवृत्तिकी कोई सीमा न रहनेका ही यह परिणाम है।

आजकल व्यापारमें सट्टेबाजीने प्रमुख स्थान ग्रहण कर लिया है। चन्द मिनटोंके भीतर सोने चांदीकी हवेली खड़ी करनेका स्वप्न

सट्टेबाजी

देखनेवाले सट्टेबाज तेजी मन्दी होनेकी सम्भावनापर, नफा होनेकी आशासे, लाखोंका सौदा कर डालते हैं। प्रतिदिन ही तो अनेक सट्टेबाज बनते बिगड़ते रहते हैं। सट्टेमें पड़कर करोड़पति कौड़ीका तीन हो सकता है और तीन कौड़ीका आदमी देखते देखते करोड़पति हो सकता है। सट्टा अथवा जुआ व्यापार नहीं है, पर अधिकतर व्यक्ति इसे व्यापारके ही अन्तर्गत मानते हैं। व्यापारके नामपर होनेवाले इस कलंकका जितनी जल्दी अन्त हो अच्छा।

व्यापार जगतमें विज्ञापनका महत्त्व किसीसे छिपा नहीं है। पर

खेदका विषय है कि अनेक व्यापारी इसका ऐसा दुरुपयोग करते हैं कि ग्राहकका एक ही बारमें विश्वास उठ जाता है।

विज्ञापन

गन्दे झूठे, कुरुचिपूर्ण, अश्लील और अतिशयोक्तिसे भरे विज्ञापन विज्ञापनके नामपर कलंक हैं। उनसे व्यापारियोंका क्षणिक लाभ भले ही हो जाय, पर देशकी भारी क्षति होती है। देश-हितको दृष्टिमें रखते हुए विज्ञापनपर सरकारी नियन्त्रण होना चाहिये।

किसी भी देशके व्यापारको उन्नत बनानेके लिए यह आवश्यक है कि वहांका व्यापारिक संघटन उत्तम हो। इसके लिए दो बातोंकी अनिवार्य आवश्यकता है—एक तो व्यापारिक ज्ञान और जानकारीकी समुचित व्यवस्था हो और दूसरे, व्यापारिक संस्थाओंका सुदृढ़ संघटन हो। हमारे यहां अभी दोनों बातोंमें बड़ी कमी है। अमेरिका, इंग्लैंड, जापान, जर्मनी, जैसे देशोंका व्यापारिक संघटन भारतकी अपेक्षा कहीं उत्तम है।

व्यापारिक संघटन

कुछ दिनसे इस दिशामें सरकारी और गैर सरकारी प्रयत्न आरम्भ हुआ है। भारत सरकारने व्यापारिक जानकारी और आंकड़ोंके विषयमें एक विभाग खोल दिया है तथा इंग्लैण्ड, अमेरिका, आस्ट्रेलिया, आफ्रिका आदि देशोंमें अपने ट्रेड कमिश्नर नियुक्त कर रखे हैं। अफगानिस्तानमें भी भारतका एजेन्ट हैं। ये अधिकारी विदेशोंमें भारतके व्यापारिक हितोंकी रक्षाका विशेष ध्यान रखते हैं।

व्यापारिक दूत

देशके व्यापारका अधिकतर संचालन बड़ी बड़ी एजेन्सी कम्पनियोंके हाथमें है, जो प्रायः विदेशी ही हैं। सभी प्रमुख बन्दरगाहों और भारतके विभिन्न नगरोंमें इनकी शाखाएं हैं। इनसे बचाखुचा व्यापार मारवाड़ियोंके हाथमें है। मारवाड़ी लोग औद्योगिक तथा व्यापारिक क्षेत्रोंमें इधर अच्छी प्रगति

व्यापारी वर्ग

कर रहे हैं। १९४६ में ४२१ सूती मिलोंमें ८६ मिलें और १७२ चीनी मिलोंमें ५३ मिलें मारवाड़ियोंकी थीं। वैंकिगमें २१ प्रतिशत तथा वीमा व्यवसायमें २२ प्रतिशत अधिकार मारवाड़ियोंको प्राप्त है। आल-म्युनियम, लोहा, कोयला, रसायन, तथा कुछ अन्य उद्योगोंमें भी उनका कुछ प्रवेश हुआ है। उनके अतिरिक्त वम्बईके पारसी, भाटिया, वोहरा, खोजा, पंजावके खत्री, मुसलमान, युक्तप्रान्तके वैश्य, मद्रासके चेट्टी और कोमटिया व्यापारिक क्षेत्रमें अच्छी प्रगति कर रहे हैं।

देशमें जो व्यापारिक संघटन हैं, उनमें सबसे प्रभावशाली और उत्तम संघटन अंग्रेजोंके हैं। असोशियेटेड चेम्वर आव कामर्स भारत तथा कलकत्ता, वंवई, मद्रास, कराचीके चेम्बर आव कामर्स आदि व्यापार-मंडल पुराने भी हैं और सुरक्षित भी। वम्वईके व्यापार-मंडल को छोड़ अन्य व्यापार-मंडलोंमें युरोपियन सदस्योंका वाहुल्य है। इस शताब्दीके आरम्भसे भारतीय व्यापारी भी अपने संघटनके लिए विशेष रूपसे सचेष्ट हुए। अव प्रायः सभी प्रान्तोंमें उनके अपने संघटन और व्यापार-मंडल हैं। १८८७ में वंगाल नेशनल चेम्वर आव कामर्स, १९०७ में मारवाडी चेम्वर आव कामर्स और इंडियन मर्चेन्ट्स चेम्वर एंड व्यूरो वम्वई, १९०९में साउथ इंडियन चेम्वर आव कामर्स मद्रास, १९२५में इंडियन चेम्वर आव कामर्स कलकत्ता, १९२७ में महाराष्ट्र चेम्वर आव कामर्स स्थापित हो गये हैं। इन व्यापार-मंडलोंका एक अखिल भारतीय फेडरेशन (संघ) भी है। ये व्यापार-मंडल अपने व्यापारिक हितोंकी रक्षाके लिए सतत प्रयत्नशील रहते हैं, परन्तु पारस्परिक प्रतिस्पर्द्धा और वैमनस्यके कारण युरोपियनोंकी भांति ये अपने उद्देश्यमें सफल नहीं हो पाते। इनके प्रतिनिधियोंको धारा-सभाओंमें भी स्थान प्राप्त है।

व्यापार मंडल

युद्धकालमें विदेशी आयात रुकनेसे स्वदेशी व्यापारको प्रोत्साहन मिलना स्वाभाविक है, किन्तु इसका दूसरा पहलू भी है।

इस समय रेलों और मोटरों आदिका उपयोग रणसामग्री और सेना आदि ढोनेके लिए विशेष रूपसे होने लगता है। अतः माल इधर उधर भेजना बड़ा कठिन हो जाता है। इस कारण व्यापारमें भारी बाधा पड़ती है; विशेषतः पराधीन देशोंमें। यही कारण है कि भारतको युद्धकालमें भी अपना उद्योग-व्यवसाय और व्यापार-वाणिज्य बढ़ानेका अवसर न मिल सका।

युद्धकालमें व्यापार

सन् १९४१ के अन्तमें भारतपर महायुद्धकी छाया पड़ी। व्यापारियोंने संचय तथा मुनाफाखोरी आरम्भ की। सरकारने मूल्य-नियन्त्रण और राशनिगका सहारा लिया। भ्रष्टाचारको खूब खुल खेलनेका अवसर मिला। पैसोंकी चीज रुपयोंमें भी दुर्लभ हो गयी! खाद्य-संकटने दुर्भिक्षका रूप धारण किया। व्यापारियोंने सोने-चांदीके महल खड़े किये। मध्यम तथा सामान्य श्रेणीके व्यक्ति मंहगीकी चक्कीमें बुरी तरह पिसने लगे। १९४२ से सरकारने अधिकांश व्यापार अपने हाथमें ले लिया पर जनताका कष्ट न मिटा, न मिटा। व्यापारी फिर भी घाटेमें नहीं हैं।

भारतका समुद्र तट लगभग ४००० मील है परन्तु उसका कोयला, चावल, तेल, लकड़ी आदिका तटीय व्यापार ७० लाख टन तथा २० लाख यात्रियोंके आवागमन और यातायातमें ही सीमित है। तटवर्त्ती स्थानोंके बीच होनेवाला देशी व्यापार तटीय व्यापारके अन्तर्गत माना जाता है।

तटवर्त्ती व्यापार

तटीय व्यापारमें कलकत्ताका स्थान सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। लगभग ९० प्रतिशत व्यापार यहींसे होता है। उसके उपरान्त बम्बई, कराची, मद्रास, चटगांव, कोचीन, तूतीकोरन आदिका स्थान है। १९३५—३६ में केवल कलकत्ता, बम्बई और कराचीमें १०० करोड़ रुपयेका तटीय व्यापार हुआ था।

विदेशी व्यापार

सन् १८६९ में स्वेज नहर खुल जानेसे तीन मासका मार्ग तीन सप्ताहमें पूरा होने लगा। इससे भारतके विदेशी व्यापारको अच्छा प्रोत्साहन मिला। विदेशी सरकारके कृपापात्र अंग्रेज व्यापारियोंने इस सुविधाका भरपूर लाभ उठाया। इधर देशमें रेलोंके विस्तारकी योजना चल रही थी। फलतः ब्रिटिश शासनके आरम्भ कालसे ही भारतका विदेशी व्यापार चमक उठा। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि व्यापार-वृद्धिसे भारत और भारतीय व्यापारियोंको कोई लाभ हुआ। बात ऐसी न थी। लाभ पानेके तो एकमात्र अधिकारी थे गोरे व्यापारी।

सभी जानते हैं कि भारतमें विदेशी व्यापारके सम्बन्धमें आदिसे अन्ततक ब्रिटेनकी जो नीति रही है, फिर वह संरक्षण नीति हो, चाहे

दूषित नीति

मुक्त-द्वार नीति अथवा साम्राज्यान्तर्गत रियायतकी नीति हो, वह ब्रिटिश हितोंका ध्यान रखकर बनायी जाती रही है। ब्रिटेन भारतके सम्बन्धमें कोई भी नीति निर्धारित करते समय भारतका नहीं, इंग्लैंडका हित देखता था। उसे आदि, अन्त, सर्वत्र और सर्वदा अंग्रेजोंका ही लाभ अभीष्ट था।[1]

भारतमें तैयार माल जब बनता था तब इंग्लैंडमें संरक्षणकी नीति चलती थी। अतः वहाँ भारतीय मालपर मालकी कीमतसे भी कई गुना कर लगाया जाता था। कम्पनी कालका सारा इतिहास ऐसे उदाहरणोंसे भरा पड़ा है। जब ब्रिटेनके उद्योग-धंधे और कल कारखाने अपने पैरोंपर खड़े हुए तो वहाँ खूब माल तैयार होने लगा। तब इंग्लैंडकी संरक्षणकी नीति परिवर्तित हो गयी। वह मुक्त-द्वार-व्यापार-नीतिका समर्थक बन गया। चित भी मेरी, पट भी मेरी।

१—क्रास : सेल्फ गवर्नमेण्ट इन इण्डिया, पृष्ठ ६।

भारतको हर प्रकारसे हानि उठानी पड़ी। उसके उद्योग-धंधोंकी बलि-पर इंग्लैंडके उद्योग-धंधे मोटे होते गये। कुछ दिन अंग्रेजोंने अपने स्वार्थको एक नया रूप दिया—साम्राज्यान्तर्गत रियायतकी नीति चलाकर। जापान, अमेरिका तथा अन्य देशोंकी प्रतिद्वंद्वितासे बचनेके लिए यह नीति निकाली गयी।

२१ जुलाई १९३२ को ओटावा नगरमें ब्रिटिश साम्राज्यके अन्तर्गत देशोंके अनेक प्रतिनिधि एकत्र हुए। भारतके प्रतिनिधियोंको न तो जनताने चुना था, न भारत सरकारने इन्हें नामजद करते समय व्यापार-मंडलोंसे ही कोई परामर्श किया था। फिर भी २८ अगस्त १९३२ को इन लोगोंके हस्ताक्षरसे एक गुपचुप समझौता हो गया, जिसके अनुसार भारतने साम्राज्यान्तर्गत देशोंसे आनेवाली अनेक वस्तुओंपर रियायत देना स्वीकार कर लिया। ये रियायतें ऐसी थीं जिनसे भारतको नाम-मात्रका लाभ था पर ब्रिटेनको भरपूर लाभ था। भारतीय जनमतने असेम्बलीमें ही नहीं, बाहर भी इसका तीव्र विरोध किया। प्रतिनिधि मंडलके सदस्य चेट्टी महोदयको निर्वाचनमें बुरी भाँति पराजितकर जनताने दिखा दिया कि वह ओटावा समझौता नहीं चाहती।

१९३३ से ओटावा समझौता कार्यान्वित हुआ। मार्च १९३६ में केन्द्रीय असेम्बलीने उसके विरोधमें प्रस्ताव स्वीकारकर यह माँग की कि उसे तुरत समाप्त कर दिया जाय। मई १९३९ में समझौता समाप्त करनेके लिए बाकायदा, ६ मास अग्रिम सूचना दे दी गयी पर बादमें सरकारके वाणिज्य विभागने एक सूचना प्रकाशितकर सारे प्रयत्नपर पानी फेर दिया। इस सूचनामें कहा गया था कि अगला समझौता न होनेतक भारत तथा ब्रिटेनकी सरकारें ओटावा-समझौता माननेको सहमत हैं।

ब्रिटेनकी आयात-निर्यातकर सम्बन्धी नीति आरम्भसे ही दूषित

रही है। सूती वस्त्रका उदाहरण ही लीजिये। धोखेवाजी, षड्यन्त्र और विश्वासघातकी वदौलत निजामसे वरार छीनकर तथा भोंसलाकी विधवा रानीको गोद लेनेके अधिकारसे वंचितकर अंग्रेजोंने मध्यदेशपर, जहाँ कपास भारी मात्रामें उत्पन्न होती थी, अपना कब्जा जमा लिया। लार्ड डलहौजी शानसे ऐंठते हुए वोले : 'यह तो एक व्यापारिक लेनदेन है।'

आयात निर्यात कर

इस व्यापारिक लेनदेनका शत-प्रतिशत लाभ उठानेके लिए इंग्लैंडने अपनी सुविधाके अनुकूल आयात-कर और एक्साइज-कर वैठाये। १८५९ में सूती रस्सी और सूतपर ५ प्रतिशत आयात-कर वैठाया गया। लंकाशायरके विरोध करनेपर १८६१ में यह घटा दिया गया और १८८२ में उठा दिया गया। सन् १८९४ में सूती मालपर फिर ५ प्रतिशत मूल्यानुसार कर लगाया गया। भारत-मंत्रीने उसे हटा दिया। पुनः लगानेपर इससे होनेवाली हानिकी पूर्तिके लिए ५ प्रतिशत एक्साइज-कर लगाया गया। १८९६ में आयात-कर घटाकर साढ़े तीन प्रतिशत कर दिया गया, और भारतकी मिलोंमें वुने हुए सूती वस्त्रपर साढ़े तीन प्रतिशत एक्साइज-कर लगाया गया।

प्रथम विश्वयुद्धमें भारतीय मिलोंने कुछ प्रगति की। युद्ध समाप्त होते ही देशी उद्योगको भारी धक्का लगा। वहुत चिल्लानेपर १९१७ में सूती मालपर साढ़े तीनसे साढ़े सात प्रतिशत आयात-कर कर दिया गया। देशी वस्त्रोंपर साढ़े तीन प्रतिशत एक्साइज-कर वना रहा। १९२१-२२ में आयात-कर ११ प्रतिशत कर दिया गया। मंदी आरम्भ हो चुकी थी। वहुत शोर मचानेपर साढ़ेतीन प्रतिशत एक्साइज-कर हटाया गया। पर अर्थमंत्री सर वैसिल व्लैकेटने विनिमयकी दर १ शिलिंग ४ पैंससे वढ़ाकर १ शिलिंग ६ पैंस कर दी! इससे जहाँ देशी मिल-मालिकोंको ११ प्रतिशतकी सुविधा मिली, वहाँ विदेशी व्यापारियोंको १२॥ प्रतिशतकी मिल गयी। १९३०में वस्त्र-कर ११ से

२० प्रतिशत कर दिया गया, परन्तु विलायती वस्त्रोंपर १५ प्रतिशत ही रखा गया, साम्राज्यान्तर्गत रियायतके नामपर ![1]

जापान आदि देशोंकी प्रतिद्वंद्विता नष्ट करनेके लिए ब्रिटेन जिस प्रकार अन्धाधुन्ध आयात-कर बढ़ाता रहा है अथवा अतिरिक्त-कर लगाता रहा है उसका वे डट कर सामना करते रहे हैं। ब्रिटेन उन्हें दबानेमें असमर्थ रहा है ।[1]

व्यापारमें वृद्धि

अंग्रेजी अमलदारीमें भारतके विदेशी व्यापारकी वृद्धिके ये आंकड़े कितने आकर्षक हैं —

लाख रुपयोंमें

सन्	आयात	निर्यात	बाकी
१८६४-६५ से ६८-६६	३१७०	५५८६	२४१६
१८६६-७० से ७३-७४	३३०४	५६२५	२३२१
१८७९-८० से ८३-८४	५०१६	७९०८	२८९२
१८८९-९० से ९३-९४	७०७८	१०४६४	३३८६
१८९९-१९००से ०३-०४	८४६८	१२४९२	४०२४
१९०९-१० से १३-१४	१५१२५	२१७८३	६६५८
१९१९-२० से २३-२४	२६७०५	३०६३८	३९३३
१९२९-३० से ३३-३४	१६११४	१८८६०	२७४६
१९३४-३५ से ३८-३९	१४६३६	१७६४५	३००९

ये आंकड़े बताते हैं कि हमारे विदेशी व्यापारका परिमाण बहुत बढ़ गया है, पर अन्य देशोंके मुकाबले वह सर्वथा नगण्य है। जापानकी जनसंख्या भारतका पंचमांश है, पर भारतका व्यापार परिमाणमें

१—पट्टाभि सीतारामैया : भारतका आर्थिक शोषण, पृष्ठ २६–३२ ।

२—वही, पृष्ठ ३२—३४ ।

जापानसे कहीं कम है। ब्रिटेनकी जनसंख्या भारतका षष्ठांश है पर उसका विदेशी व्यापार भारतसे पाँच गुना है।

इन आंकड़ोंसे यह सोचना भूल होगी कि विदेशी व्यापारसे हमें बड़ा लाभ है। माना हमारे आयातसे निर्यात सदा बड़ा रहता है, व्यापारकी बाकी भी कम नहीं निकलती, पर वह हमें मिलती कितनी है? गोरे कर्मचारियोंकी पेंशन और ब्रिटेनको सूदकी रकम आदिमें ही उसका अधिकांश निकल जाता है। व्यापारका वास्तविक लाभ तो अंग्रेज उठाते हैं। जहाजका भाड़ा, बीमा, साहुकारी आदिकी भारी आय, जो पहले शत प्रतिशत भारतीयोंको मिला करती थी, पूर्णतः अंग्रेजोंके हाथमें चली गयी है। तभी तो अरबोंका व्यापार करते हुए भी भारत दरिद्र है, भूखा है और नंगा है!

हमारा विदेशी व्यापार मुख्यतः समुद्री मार्गसे होता है। सरकारी मालके अतिरिक्त प्रतिवर्ष लगभग ३२४ करोड़का व्यापार निजी तौरपर होता है। आयातकी अपेक्षा निर्यात ही अधिक होता है। निर्यातमें कच्चे मालका बाहुल्य रहता है। उसमें ५ वस्तुएँ मुख्य हैं—जूट, कपास, चाय, तेलहन, और चमड़ा। इधर कुछ तैयार माल भी जाने लगा है। आयातमें तीन-चौथाई माल तैयार रहता है। इसमें सूती वस्त्र, मशीनों और तेलोंका प्रमुख स्थान है। मुख्यतः इन चार देशोंसे भारतका व्यापार विशेष रूपसे होता है—ब्रिटेन, जापान, अमेरिका और जर्मनी। साधारण वर्षोंमें आयात निर्यात प्रतिशत इस प्रकार रहता है—

देश	आयात	निर्यात
ब्रिटेन	३८.७	३२.२
जापान	१७.०	१५.०
अमेरिका	६.५	९.५
जर्मनी	९.७	४.७

युद्धकालमें साम्राज्यान्तर्गत व्यापारको विशेष प्रोत्साहन मिलनेसे और वर्माके भारतसे पृथक् हो जानेसे भारतके विदेशी व्यापारपर भी प्रभाव पड़ा है। १६४०-४१ में विभिन्न देशोंके साथ भारतका आयात-निर्यात व्यापार इस प्रकार रहा—

देश	आयात	देश	निर्यात
ब्रिटेन	२३ प्रतिशत	ब्रिटेन	३४.८ प्रतिशत
वर्मा	१९.२ ,,	अमेरिका	१३.६ ,,
अमेरिका	१७.३ ,,	वर्मा	८.७ ,,
जापान	१३.८ ,,	चीन	५.३ ,,
चीन	१.९ ,,	जापान	४.९ ,,
आस्ट्रेलिया	१.६ ,,	आस्ट्रेलिया	४.९ ,,
लंका	१.४ ,,	लंका	३.६ ,,

आयातमें रुई और सूती माल, ऊनी और रेशमी माल, लोहे और फौलादका सामान, मशीनें, रेलोंका सामान, मोटर, मिट्टीका तेल, पेट्रोल, कागज, रंग, शराब, दवाएं, शीशेका सामान, साबुन, स्याही, घड़ी, छाता, फाउन्टेनपेन आदि वस्तुएं मुख्य रूपसे रहती हैं। निर्यातमें लगभग २५ प्रतिशत जूट, २२ प्रतिशत रुई और सूती माल, १५ प्रतिशत चाय, ९ प्रतिशत तेलहन और खली तथा ५ प्रतिशत कच्चा चमड़ा और खालें रहती हैं, गल्ला, ऊन, धातुएं, तम्बाकू आदि वस्तुएं भी पर्याप्त मात्रामें रहती हैं।

निर्यातमें कच्चा माल अत्यधिक रहता है। अतः वह जहाजोंका अधिक स्थान घेर लेता है। पर आयातके समय तैयार माल अधिक होनेके कारण उतनी जगह नहीं घिरती। इस प्रकार जो स्थान खाली रहता है उसे भरनेके लिए अंग्रेजी जहाज नमक, सीमेंट, कोयला जैसी वजनी वस्तुएं लाद लाते हैं। इनपर नाम-मात्रका भाड़ा लिया जाता है। अतः भारतके देशी मालसे ये जोरदार प्रतिद्वंद्विता करती हैं। इनसे भारतको अपार क्षति होती है।

भारतके विदेशी व्यापारके दस वर्षका औसत लगानेपर देखा गया है कि प्रति वर्ष उसका आयात लगभग १७१ करोड़ रहता है और निर्यात लगभग २१६ करोड़। इसमें कौन वस्तु कितनी आती जाती है इसका अनुमान आयात-निर्यातके इन आंकड़ोंसे किया जा सकता है[1]—

ब्रिटिश भारतमें आयात—लाख रुपयोंमें

वस्तु	१९३८-३९	१९३९-४०	१९४०-४१
रुई और सूती वस्त्र	२२६६	२२१०	२०८२
गल्ला, दाल, आटा	१३७६	२१८०	१४३५
मिल मशीनें	१९०५	१४६६	१११६
नक़ली रेशम	२२४	४५९	५४४
रंग	३१४	३६१	५३०
औजार	५८५	५५८	४९८
कच्चा और तैयार ऊन	२८२	२१६	४२८
कागज	३२३	३४६	३९४
लकड़ी	२८७	२७०	२८९
मसाला	२६३	२५४	२१९
दवाएं	२२०	२६१	२१८
शराब	२११	२१९	२००
कच्चा, तैयार रेशम	१९४	१८२	१७२
रबड़की बनी वस्तुएं	१४०	१४८	१५६
तम्बाकू	१०४	११७	१३४
पेंट	८९	१०२	१०२
फल साग	१३४	१२१	१०२
अन्य	६३१९	७०५८	७०६०
	१५२३६	१६५२८	१५६७९

१—रिव्यू आव दि ट्रेड इन इंडिया इन १९४०-४१, पृष्ठ १०१,१२४।

ब्रिटिश भारतका निर्यात—लाख रुपयोंमें

वस्तु	१९३८-३९	१९३९-४०	१९४०-४१
कच्चा जूट	१३४०	१९८३	७८५
जूटका बना माल	२६२६	४८७२	४५३८
रुई	२४६७	३१०४	२४४५
सूती वस्त्र	७१२	८५७	१६४९
चाय	२३२६	२६३१	२७७४
तेलहन	१५०६	११८९	१००५
चमड़ा	५२७	७६९	५६८
गल्ला, दाल, आटा	७५४	५०९	५६१
कच्ची खाल	३८४	४११	३१४
तम्वाकू	२७५	२५३	२८८
फल, साग	२२७	२३७	२४४
कच्चा, तैयार ऊन	३८५	४०३	२३७
लाल	१२७	१६१	२२५
कच्ची रवड़	७१	६४	६२
रवड़की वनी वस्तुएं	४	९	४१
खली	३०१	२०३	८४
अन्य	२२४१	२६७७	२७७६
	१६२७९	२०३९२	१८६८६

युद्धकालीन व्यापार

गत वर्षोंमें भारतके आयात-निर्यातकी स्थिति इस प्रकार रही है—

सन्	आयात लाख रु० में	निर्यात लाख रु० में
१६४०–४१	१५६७९	१९८६७
१६४१–४२	१७३०१	२५२९१
१६४२–४३	११०३४	१६५५०
१९४३–४४	८७८०	१५७४०
१९४४–४५	१६१६०	१५७५०
१६४५–४६	१७४३०	१८०८०

पूर्वी गोलार्द्धमें स्थित होनेके कारण भारतकी व्यापारिक स्थिति उत्तम है। प्राचीनकालमें एक ओरसे माल खरीदकर दूसरी ओर

व्यापारमें मध्यस्थता

वेचना भारतके लिए बड़ा लाभदायक सिद्ध होता रहा है। पर अब उन बूंदों दर्शन कहाँ ? उसका इस प्रकारका व्यापार दस बारह करोड़का है। इस व्यापारमें तैयार माल और कच्ची ऊनका विशेष स्थान रहता है।

भारतकी ५००० मील लम्वी भूमि-सीमाके उस पारके समीपस्थ राज्यों—नेपाल, तिव्वत, सिक्किम, भूटान, शान, पश्चिमी चीन, स्याम,

सीमावर्ती व्यापार

अफगानिस्तान, स्वात, वजौर, मध्य एशिया, ईरान आदिके साथ भारतका वहुत पुराना व्यापारिक सम्वन्व है। आज भी इन देशोंसे व्यापार होता है, पर वह ४०,४२ करोड़से अधिकका नहीं है।

सीमावर्ती व्यापारमें फल, शाक-सब्जी, चावल, तेलहन, घी, कच्ची ऊन, पशम, कच्चा रेशम तथा भेड़, वकरी, टट्टू, खच्चर, घोड़ा आदि पशुओंका आयात होता है। सूती वस्त्र, चीनी, रुई, चाय, चमड़ेकी वनी चीजों, नमक, वर्तनों और मसाला आदिका निर्यात।

इंग्लैंडके साथ भारतका भारी मात्रामें व्यापार होता है। इंग्लैंडके नाम व्यापारिक बाकी भी खूब निकलती है। पर भारतको ब्रिटेनसे नकदीके रूपसे बहुत कम मिलता रहा है। होम चार्ज, इंडिया आफिसके भारी खर्च, सिविल सर्विसके पेंशनयाफ्ता नौकरोंकी पेंशन, विदेशी व्यापारियोंके मुनाफे, ब्रिटिश जहाजोंके किराये, बीमा, साहूकारी और विनिमयके खर्च, भारतीय यात्रियोंके व्यय, बैरिस्टरी और डाक्टरी आदिके पुछल्ले लगानेके लिए इंग्लैंड-प्रवासी भारतीय छात्रोंके खर्च, आदि चुकाकर व्यापारिक बाकी निकले भी तो कहांसे और कितनी ? फिर भी कुछ 'बाकी' निकलती है तो उसका भुगतान सरकारी हुंडियों द्वारा होता है। इन सरकारी हुंडियोंका गोरखधन्धा और विनिमयकी दर भारतके लिए कितनी घातक रही है, यह किसीसे छिपा नहीं है।

व्यापारिक बाकी

हम देखते हैं कि ब्रिटेनने अपने हितोंकी हर तरहसे रक्षा की और भारतके व्यापारिक हितोंकी हर तरह उपेक्षा। देशी और विदेशी, तटीय और सीमावर्त्ती सब प्रकारका व्यापार इसी नीतिके अनुसार होता रहा है। तभी तो व्यापारिक क्षेत्रमें भी भारत विशेष प्रगति नहीं कर सका। स्वतंत्र भारतमें हमारे व्यापारका भविष्य उज्ज्वल है।

●

मुद्राकी प्रगति

१८३५ में १८० ग्रेनका जो रुपया मुद्रा-सिंहासनपर आसीन हुआ वह आजतक अपने पदपर विराजमान है। यह बात दूसरी है कि तब वह चांदीका था, आज गिलटका है। पर है वह १८०. ग्रेनका ही। आरम्भमें उसमें ११ भाग चाँदी रहती थी, १ भाग मिलावट। १६४० से आधी चांदी आधी मिलावट रखनेका निश्चय हुआ, कुछ दिन बाद अधिक चांदीवाले सिक्के कानूनन ग्राह्य न रहे। धीरे-धीरे घटाते-घटाते चांदी बिलकुल निकाल दी गयी।

जिस समय रुपया कानूनन ग्राह्य सिक्का बनाया गया उस समय देशमें सोनेकी मोहरें भी चलती थीं। राज्यने सोनेकी मोहरोंको अप्रा-

मोहरोंका बहिष्कार

माणिक ठहरा दिया। १८५३ में लार्ड डलहौजीकी सरकारने कानून बना दिया कि भविष्यमें सरकारी खजानोंमें मोहरें नहीं भुनायी जा सकेगीं। अतः भारतसे सोनेके सिक्केका प्रचार उठ गया।

मोहरोंका चलन बन्द कर देनेपर भी प्रत्येक व्यक्तिको अधिकार था कि वह टकसालोंमें चाँदी ले जाकर रुपया ढलवा ले। पर मोहरोंका बहिष्कार इतना सुगम न था। उस समय भारतमें रुपयेकी बड़ी टान थी। १८५७–५८ से १८६२–६३ के बीच संसार भरमें जितनी चाँदी निकली उससे अधिक चाँदी केवल भारतने ली। ऐसी स्थितिमें सोनेके सिक्केकी ओर जनताका ध्यान जाना स्वाभाविक था। बम्बई व्यापार मंडलने वाइसरायसे प्रार्थना की कि सोनेका बहिष्कार न तो समयोचित है, न युक्तिसंगत और न स्वाभाविक। अतः सरकारको चाहिये कि वह शीघ्र चाँदीकी गद्दी सोनेको देदे। पर कौन ध्यान देता है ऐसे आवेदन निवेदन पर? सोनेको मुद्रा-सिंहासन नहीं

मिला। भारत-मंत्रीने इतना मान लिया कि सावरेन या गिन्नी १०)की दरसे सरकारी खजानेमें भुनायी जा सकेगी। बादमें उसकी दर १०।) कर दी गयी। १८६६ में एक कमीशनने सोनेका सिक्का चलानेके पक्षमें राय दी। तत्कालीन अर्थसदस्य भी इसके पक्षमें थे, फिर भी प्रयत्न असफल रहा। १८७२ और १८७३ में अर्थसदस्यने पुनः एक बार जोर मारा परन्तु असफलता ही हाथ लगी। ७ मई १८७४ को सरकारने घोषणा कर दी कि सोनेको मूल्यका मान बनानेके लिए कोई कारवाई नहीं की जायगी।

इस प्रकार चाँदीके रुपयेका सिंहासन न हिला न, हिला।

मुद्रा जगतमें भूचाल

फ्रांसपर विजय प्राप्त करनेके उपरान्त जर्मनीने सोना अपनाकर चाँदीका बहिष्कार कर दिया। १८७३ और १८७९ के बीच जर्मनीकी ओरसे ११ करोड़ औंससे अधिक चाँदी बाजारमें बेची गयी। फलतः चाँदीका दाम बुरी तरह गिरते-गिरते ३७ ११/१६ पेंसतक आ गया।

१८९३ में श्री मार्टिन डंडने हर्शल कमेटीके समक्ष कहा था कि जब लन्दनकी ओरसे इस प्रकारकी हुंडी की जाती है तब लन्दनके लिए यह जरूरी नहीं है कि वह चाँदी भेजकर भुगतान करे। भारतपर इंग्लैंडका राजनीतिक प्रभुत्व न होता और इंग्लैंड इतने करोड़ रुपये प्रति वर्ष भारतसे न लेता तो चाँदीकी यह हालत न होती!

चाँदीका दाम गिरा, सोनेका दाम चढ़ा। चाँदीका उत्पादन बढ़ा, सोनेका उत्पादन घटा। चाँदीका दाम गिरनेका स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि रुपयेके विनिमय-मूल्यपर उसका तत्काल प्रभाव पड़ा। वह भी उत्तरोत्तर गिरता गया। चाँदीका दाम जब ६० पेंस था तब रुपया २४ पेंसके बराबर होता था। १८७६–७७ में वह घटकर २०.४९१ पेंस हुआ, १८८४–८५ में १९.३०८ पेंस और १८९३–९४ में १४.५४७ पेंसतक जा पहुँचा।

रुपयेका मूल्य गिरनेसे भारतके कृषक वर्गको लाभ था, उसे विदेशोंमें बिकनेवाले गल्लेके अच्छे पैसे मिलते परन्तु जिन्हें विलायत रुपया भेजना था वे इसका विरोध करने लगे। बेचारे किसान इस गोरखधन्धेको क्या समझें और उनकी ओरसे बोले भी कौन ? १८७५ में पार्लमेंटकी ओर से एक कमेटी बैठी, पर व्यर्थ। १८७८ में भारत सरकारने प्रस्ताव रखा कि भारतमें चाँदीके स्थानपर सोनेका सिक्का चलाया जाय और रुपया उसके प्रतीकका काम करे। भारत सरकारको चाँदीके रुपयेके रूपमें आय प्राप्त होती थी पर होमचार्ज चुकानेके लिए उसे गहरी रकम भेजनी पड़ती थी। ज्यों-ज्यों चाँदीका दाम गिरता जा रहा था त्यों-त्यों भारत सरकारका भार बढ़ता जा रहा था। ब्रिटेनके व्यापारियोंको कच्चा माल खूब सस्ता पड़ रहा था। भारत-मंत्री ब्रिटेनके हितोंकी अवहेलना कैसे करते ? दिसम्बर १८७९ में उन्होंने लिख दिया कि भारत सरकारकी यह माँग मंजूर नहीं की जा सकती। १८८६ में चाँदीका मूल्य और अधिक गिरनेपर भारत सरकारने पुनः प्रार्थना की, पर भारत-मंत्रीने कहा, 'इससे भारतीय किसान या करदाताकी बड़ी हानि होगी।' पर भारतीय किसानका तो बहाना था, लाभ था ब्रिटिश व्यापारीका। भारत-मंत्री उसे कैसे हानि पहुँचा सकते थे ?

१ दिसम्बर १८९२ को भारतके प्रस्तावोंपर विचार करनेके लिए लार्ड हर्शेलकी अध्यक्षतामें एक कमेटी बनी जिसने मई १८९३ में अपनी रिपोर्ट दी। उसमें कहा गया था कि भारत चाँदीका परित्याग करदे। टकसालका द्वार सर्वसाधारणके लिए बन्द कर दिया जाय तथा हुण्डीकी दर १६ पेंस कर दी जाय। २६ जूनको इसका कानून बना और तत्काल चाँदीका परित्याग कर दिया गया। १८९३के लाहौर अधिवेशनमें कांग्रेसने इसका तीव्र विरोध किया। कारण, इससे रुपयेका मूल्य कृत्रिम और ऊँचा करके

हर्शेल कमेटी

जनतापर अप्रत्यक्ष रूपसे एक नया कर लगा दिया गया और इससे उद्योग-व्यापारको भारी हानि पहुँचायी गयी। पर सरकारने ऐसी बातोंको एक कानसे सुना, दूसरेसे उड़ा दिया !

रुपया भी अब कागजी नोटकी तरह सांकेतिक मुद्रा बन गया। उसका मूल्य कृत्रिम हो गया। चाँदी अब मूल्य-मापक मुद्रा नहीं रही। अन्य देशोंमें सांकेतिक-मुद्रा कानूनन एक सीमातक ही लेन-देनके काममें लायी जा सकती है, पर भारतमें रुपयेपर इस प्रकारकी कोई बन्दिश नहीं लगायी गयी। देना-पावना चुकानेके लिए अपरिमित मात्रामें उसका उपयोग किया जा सकता था। सरकार ७.५३३४४ ग्रेन सोना लेकर रुपया देनेको तैयार थी, पर रुपयेके बदलेमें सोना देनेको नहीं।

चाँदीकी टकसाल बन्द

टकसाल बन्द होते ही भारतीय जनता भयभीत हो उठी। विदेशी राज्यका मुद्रा जैसी आवश्यक वस्तुपर एकाधिकार हो जाना और स्वतन्त्र मुद्रा-निर्माण सम्बन्धी जनताके अधिकारका अपहरण यदि भयका कारण हो तो आश्चर्य व्यर्थ है।[1] सरकारको रुपयेके विदेशी विनिमयमें तो सुभीता होगया, परन्तु देशको भारी विपत्तिका सामना करना पड़ा। कलमके एक इशारेसे देश भरकी समस्त चाँदीके मूल्यमें लगभग ३५ प्रतिशतकी कमी हो गयी ! टकसालोंमें पहले १०० तोले चाँदी देनेसे १०६) ढल सकते थे, किन्तु अब उसकी कीमत केवल ७०) रह गयी। इस व्यवस्थाने सन् १८९७-९८ के भयंकर अकालमें मरनेवालोंको और मारा और देशके शिल्प, व्यवसाय और वाणिज्यको भारी धक्का पहुँचाया।[2]

टकसाल बन्द होनेके उपरान्त विनिमय-मूल्य १६ पेंससे बहुत नीचे रहा। १८९४-९५में वह १३.१०१ पेंस था; १८९५-९६में १३.६३८;

१—प्राणनाथ विद्यालंकार : भारतीय सम्पत्तिशास्त्र, पृष्ठ ८०९-८१०।

२—भगवानदास केला : भारतीय अर्थशास्त्र, पृष्ठ १७६।

१८९६–९७ में १४.४५१; १८९७–९८ में १५.३५४ और १८९८–९९ में १५.९७८ पर पहुँचा। सरकारने इसके लिए ढलाई वन्द करदी, उसकी संख्या कम करदी और इस प्रकार उसका मूल्य बढ़ा दिया। १८९४ से ९८ तक कमसे कम ४० करोड़ नये सिक्के चलनमें आ जाते, पर कुल ५ करोड़ रुपये चलनमें आये, जिससे विनिमयकी दर चढ़ गयी। १८९८ में रुपयोंका दर्शन दुर्लभ हो उठा। सरकारी कागजोंके वदलेमें रुपया देनेको कोई तैयार न होता था। व्यापारमें तीव्र वाधा आते देख भारत सरकारने भारत-मंत्रीसे सिफारिश की कि ऋण लेकर इंग्लैंडमें स्वर्ण-कोष स्थापित किया जाय और रुपये गलाकर चाँदीके रूपमें वेचे जाँय। इस माँगपर और भारतका मान सोना हो या चाँदी तथा सोने-चाँदीके वीच क्या सम्वन्व रहे, आदि प्रश्नोंपर विचारार्थ सर हेनरी फाउलरकी अध्यक्षतामें २९ अप्रैल १८९८ को एक कमेटी नियुक्त की गयी।

फाउलर कमेटी

फाउलर कमेटीके समक्ष भारतीय गवाहों—श्री रमेशचन्द्र दत्त और श्री मेरवानजी रुस्तमजीने सरकारकी नीतिकी कड़ी टीका की। लार्ड नार्थब्रुकने कहा कि भारतका प्राचीन सिक्का सोनेका था। उसपर चाँदीका सिक्का जवरन लादा गया है। भारत ऐसा दरिद्र देश नहीं है कि वहाँ सोनेका सिक्का न चलाया जा सके।

फाउलर कमेटीने भारत सरकारकी माँग यह कहकर अस्वीकार कर दी कि अब परिस्थिति वदल चुकी है, इस समय रुपयोंको चलनसे निकाल देनेसे मुद्राकी स्थिति भयंकर हो जायगी। कमेटीने यह निर्णय दिया कि भारतमें सोनेका सिक्का चलाया जाय। सिक्का इंग्लैंडका सावरेन या गिन्नी हो। स्वयं-सिद्ध मुद्रा सावरेन रहे और रुपया सांकेतिक मुद्राका काम करे। लेनदेनमें रुपयेका व्यवहार नियमित करना असम्भव है, अतः इस सम्वन्धमें सांकेतिक मुद्रा स्वयं-सिद्ध

मुद्राके समान होगी। सोनेकी टकसालें लन्दनमें नहीं, भारतमें खोली जायँ। सरकार यदि किसीको धन दे तो सोनेमें दे, चाँदीमें नहीं। कमेटीने विनिमयकी स्थायी दर १६ पेंस निश्चित कर दी।

ब्रिटिश सरकारने फाउलर कमेटीकी बहुमतसे की गयी सिफारिशें स्वीकार तो कर लीं किन्तु किया वही जिसमें ब्रिटेनका हित था।

चितपट दोनों

१८९९ में सावरेन भारतका प्रचलित सिक्का बना दिया गया। भारतके अर्थ-मंत्रीने घोषणा की कि कुछ सप्ताहोंके भीतर ही बम्बईमें सोनेकी टकसाल खोल दी जायगी। परन्तु वह खुलती कैसे? ब्रिटेनके कोषाधिकारी उसके विरुद्ध थे। फलतः १९०३ में यह प्रस्ताव ही रद्द कर दिया गया।

१६ पेंसकी विनिमय दर निश्चित होते ही भारत सरकारने सिक्के गढ़नेका कार्य तेजीसे आरम्भ कर दिया। जुलाई १९०५ तक भारत

स्वर्ण कोष

सरकारके पास १८३७ लाख रुपये एकत्र होगये। सरकार १९१२ तक आयके लोभकी दृष्टिसे रुपये गढ़ती चली गयी। इस अप्रत्यक्ष-करके कारण महँगीमें खूब वृद्धि हुई। ३१ दिसम्बर १९१२ तक स्वर्ण कोषमें ३२,३१,४७,५६५ रुपये एकत्र होगये जिसका अधिकांश भारत सरकारने लन्दन पहुँचा दिया। भारतीय उद्योग-धन्धों और कृषिकी किसे चिन्ता थी, सरकारको चिन्ता थी गोरे व्यापारियों और पूँजीपतियोंकी! भारतमें इसपर ८ से १२ प्रतिशततक व्याज मिलता किन्तु इंग्लैंडमें यह रकम ४ प्रतिशत व्याजपर उठा दी गयी। श्री वेवने लिखा है कि मेसर्स सेमुएल मांटेग्यू एण्ड कम्पनीके लाभका ठिकाना नहीं है। उसने कुल मिलाकर २० लाख पौण्ड भारतके स्वर्ण-कोषसे लिया है। वहुत कम व्याजपर थोड़े दिनके लिए कहकर यह रकम दी गयी है पर है वस्तुतः पाँच सालके लिए।[1]

१—वेब : एडवांस इंडिया, १९१३, पृष्ठ ६५-६६।

केन्स साहव कहते हैं कि यह वड़े दुखका विषय है कि इस फर्मका अध्यक्ष राष्ट्रके पार्लमेंटरी उपमंत्रीका निकट सम्वन्धी है![1]

अन्धा बाँटे रेवड़ी, अपने अपनोंको दे! स्वर्ण-कोषके विनियोग-का ठेका इंडिया आफिसने सौंप दिया था होरेस एच० स्काट को। उसके कमीशनकी रकमके ये आंकड़े देखकर वड़े-वड़े दाँतों तले उँगली दवाते हैं। वाइसरायको जितना पैसा दिया जाता है उससे उसे कुछ ही कम मिलता है—[2]

सन्	रकम	सन्	रकम
१९०५-६	१४,२१३ पौंड	१९०९-१०	७२९६ पौंड
१९०६-७	१०,७२७ ,,	१९१०-११	१६,३७६ ,,
१९०७-८	७,११९ ,,	१९११-१२	९,९८० ,,
१९०८-९	४,६०३ ,,	१९१२-१३	७,६६१ ,,

३१ मार्च १९१३ तक इसे भारतके खजानेसे १८,४८,१३५ लाख रुपया दिया जा चुका था!

वैंक आव इंग्लैंड और वैंक आव आयर्लैंडपर भी सरकारकी कृपा-दृष्टि रही। वैंक आव इंग्लैंडको स्वर्णकोषका प्रवन्ध करनेके लिए १२ लाख रुपया वार्षिक पुरस्कार मिलता रहा है और भारतका १८,२० लाख पौंड उसके पास यों ही जमा रहा है जिसपर उसे कानोकौड़ी भी व्याजकी नहीं देनी पड़ी। ऐसी सुविधाएँ भारतीय वैंकोंको कहाँ?

१९१२ में सर विट्ठलदास ठाकुरसीने केन्द्रीय असेम्वलीमें प्रस्ताव पेश किया कि टकसाली खर्च लिये विना सर्व साधारणके सिक्के ढाले जाँय। भारतीय सदस्योंके समर्थनपर भी प्रस्ताव स्वीकृत न हो सका। फिर भी भारत सरकारने भारत-मंत्रीसे अनुरोध किया कि भारतमें

१—केन्स : इंडियन करेन्सी एण्ड फिनान्स, पृष्ठ १४२।

२—मशरूवाला : करेन्सी आर्गेनाइजेशन इन इंडिया, पृष्ठ १३७।

सावरेन ढालनेके लिए टकसाल खोली जाँय। भारतमंत्रीने दस रुपयेका सोनेका नया सिक्का चलानेका प्रस्ताव किया। भारत-मंत्री इस बातके लिए पूर्णतः सचेष्ट थे कि सोना लन्दनसे भारत न जाने पाये। फिर भी भारतमें सोनेके सिक्कोंका प्रचार बढ़ रहा था। मार्च १९१३ को समाप्त होनेवाले १२ वर्षोंके भीतर ९० करोड़के सावरेन सार्वजनिक चलनमें आ गये।

भारतकी मुद्रा-स्थितिपर विचारके लिए १७ अप्रैल १९१३ को श्री आस्टेन चेम्बरलेनकी अध्यक्षतामें एक शाही कमीशन नियुक्त किया गया। २४ फरवरी १९१४ को उसकी रिपोर्ट ब्रिटिश सरकारके पास भेजी गयी। कमीशनने फाउलर कमेटीकी कितनी ही सिफारशें रद्द कर दीं। कमीशनने कहा कि चलनमें सोनेके उपयोगको प्रोत्साहन देनेसे भारतको कोई लाभ न होगा। भारतीय जनता यदि चाहती है और भारत सरकार खर्च देनेको प्रस्तुत है तो सावरेन ढाला जा सकता है। विनिमयकी पुश्तीके लिए रिजर्वमें पर्याप्त सोना और स्टर्लिंग रहना चाहिये। रुपयोंकी ढलाईका सारा मुनाफा इस कोषमें ही रखना चाहिये। इसे लन्दनमें ही रखा जाय और सोनेकी मात्रा बढ़ायी जाय। सरकारपर यह उदारदायित्व रहे कि भारतमें जब कभी स्टर्लिंगकी मांग हो तो भारत-मंत्रीके नाम १५ २९/३२ पेंसकी दरसे हुंडी बेचनेको वह प्रस्तुत रहेगी।

चेम्बरलेन कमीशन

अगस्त १९१४ में विश्वयुद्धका बिगुल बजते ही चेम्बरलेन कमीशनकी सिफारिशें उठाकर रद्दीकी टोकरीमें फेंक दी गयीं।

विश्वयुद्धके समय भारी निर्यात और अत्यधिक व्यापारिक संतुलन होनेके कारण भारतको लाभ होना चाहिये था। दिसम्बर १९१९ तक ६४ करोड़ २० लाख रुपयेका माल भारतसे विदेशमें अधिक गया पर भारतको फिर भी हानि उठानी पड़ी! विनिमयका गोरखधंधा ऐसा रचा गया कि भारतको करोड़ों रुपये खो देने पड़े।

विनिमय की दरमें वृद्धि

युद्धके ४ वर्षके भीतर भारत सरकारने ३५ करोड़ तकके नोट निकाल दिये, जिनके बदलेमें धरोहरमें चाँदी रखनी पड़ी। जहाँसे चाँदी उपलब्ध होती थी वे देश युद्धमें फँसे थे। मैक्सिकोमें राज-विप्लव चल रहा था। अतः चाँदीका दाम चढ़ना स्वाभाविक था। १९१५ में चाँदीका दाम २७। पेंस था जो अगस्त १९१७ में ४३ पेंस होगया और उसके बाद और भी ऊँचा चढ़ता गया। मई १९१९ में अमेरिका और ब्रिटेनने चाँदीके बाजारसे नियंत्रण उठा लिया जिससे लन्दनमें तत्काल उसका दाम ५८ पेंस हो गया और बढ़ते-बढ़ते १७ दिसम्बरको ७८ पेंसतक जा पहुँचा।

चाँदीकी मँहगीके कारण रुपयेकी असली कीमत उसकी नकली कीमतको पार करने लगी, तब १६ पेंसमें रुपया देना सरकारके लिए सम्भव न रहा। सरकारने विनिमय-दर ऊँची करनी आरम्भ की, जो इस प्रकार बढ़ी—

तारीख	दर	तारीख	दर
१ अगस्त १९१७	१७ पेंस	१२ अगस्त १९१९	२२ पेंस
१५ अगस्त १९१८	१८ पेंस	१५ सितम्बर १९१९	२४ पेंस
१२ अप्रैल १९१९	१८ पेंस	२२ नवम्बर १९१९	२६ पेंस
१४ मई १९१९	२० पेंस	१२ दिसम्बर १९१९	२८ पेंस

इस मुद्रा-सम्बन्धी अव्यवस्थापर विचार करनेके लिए ३० मई

बेबिंगटन कमेटी

१९१९ को श्री बेबिंगटन स्मिथकी अध्यक्षतामें एक करेन्सी कमेटी नियुक्त हुई जिसके भारतीय सदस्य थे श्री दादीबा मेरवानजी दलाल।

इस कमेटीके बहुमतकी मुख्य सिफारिश थी कि रुपयेकी विनिमय-दर सोनेमें बाँध दी जाय और यह दर २४ पेंस सोना हो। श्री दलालने इसका तीव्र विरोध किया और इस बातपर पूरा जोर दिया कि रुपया और सावरेनका भाव पूर्ववत् रहे अर्थात् सावरेन १५ रुपयेका हो और

विनिमयकी १६ पेंसकी दरमें कोई परिवर्तन न हो। आपने यह भी मांग की कि सोना-चांदीके आयात-निर्यातपर प्रतिबन्ध उठा लिया जाय, बम्बईकी टकसालमें बिना कुछ लिये ही सरकार सोनेके बदलेमें सावेरन ढाल दिया करे, जबतक अमेरिकामें चाँदीका भाव फी पौंड ९२ सैंटसे ऊपर रहे तबतक सरकार रुपये न ढाले और एक अन्य सिक्का ढाले जिसका बाजारू मूल्य २) हो पर उसमें चाँदी कुछ कम रहे, भारतीयोंको प्रचलित सिक्के ढलवानेका पुरातन अधिकार पुनः मिले, करेन्सी नोट भारतमें छपें, १) वाले नोट बन्द कर दिये जांय और कागज-मुद्रा-कोषका धन भारतमें रखा जाय।

भारत-मंत्रीने श्री दलालकी सिफारशें ठुकराकर गोरे बहुमतकी सिफारशें स्वीकार कर लीं। सावरेन का भाव १०) कर दिया गया। सोने-का भाव गिरानेके लिए सरकारने कुछ समयके लिए सोनेका आयात अपने हाथमें ले लिया। सावरेन और आधे सावरेनके बदलेमें रुपयेका भुगतान बन्द कर दिया गया। चाँदीके आयातपर १९१० से ।) प्रति औंसके हिसाबसे जो आयात-कर लगता था वह उठा दिया गया, परन्तु निर्यातपर कर जारी रहा। २९ जून १९१७ के बाद चाँदी या सोनेके सिक्कोंको अन्य किसी उपयोगमें लानेकी जो निषेधात्मक आज्ञा जारी करदी गयी थी, वह उठा ली गयी।

खुली डकैती

जबर्दस्त मारे और रोने न दे। इंग्लैंडको हमसे माल लेना था तो वह उसके लिए हमें सोना देता या हमसे कर्ज लेता। पर मुद्रा-नीतिको प्रभावित करके ही उसने अपना काम निकाल लिया। भारतका मान परिवर्तित कर दिया गया, विनिमयकी दर ऊँचेपर चढ़ा दी गयी, नोटोंकी छूट कर दी गयी; नोटोंकी पुश्तीके लिए ब्रिटेनमें ब्रिटिश ट्रेजरी बिलोंके रूपमें स्टर्लिंग कागज रखे जाने लगे। हमसे बिना पूछे, हमारी मर्जीके बिना हमसे यह कर्ज लिया गया। १९१९ के अन्ततक यह जबरन लिया गया कर्ज ८३ करोड़से अधिक हो चुका था!

वैविगटन कमेटीकी बहुमतकी सिफारिशें स्वीकृत होते ही विनिमयकी दर २८ पेंस स्टर्लिगसे ३२॥ पेंस स्टर्लिग हो चली। यह दर २४ पेंस सोनाके निकट थी, पर जनताको इसका भरोसा न था। अतः स्टर्लिगकी मांग वढ़ने लगी, जिसके लिए कमेटीके सुझावके अनुसार सरकार उलटी हुंडियाँ वेचने लगी। सावरेनका निश्चित मूल्य १०) कर दिया गया।

उलटी हुंडियाँ वेचनेके फलस्वरूप १९१९ से १९२१ तक भारतको लगभग ३६ करोड़की हानि उठानी पड़ी। भारत-मंत्रीसे प्रार्थना की गयी कि वे स्टर्लिगकी माँग पूरी करनेकी जिद छोड़कर लन्दनमें संचित भारतका धन ज्योंका त्यों वनाये रखें, पर उन्होंने ध्यान न दिया। २४ पेंस सोनावाली दर कायम न हो सकी तव उन्होंने २४ पेंस स्टर्लिंगपर ही दर ठहरानेका प्रयास किया, पर व्यर्थ। अन्तमें हारकर २८ सितम्वर १९२० को उन्होंने उलटी हुंडी वेचना वन्द किया। पर भारतका ३६ करोड़ रुपया इस जिदकी भेंट चढ़ गया! 'लीडर' आदिने ही नहीं, 'स्टेट्समेन' जैसे गोरे पत्रोंने भी इसका विरोध किया।[1] भारतीय आकांक्षाओंके विरोधी शिरोल जैसे प्रतिक्रियावादियोंतकने इस खुली डकैतीकी कड़ी टीका की।[2]

लन्दनमें हमारा जो संचित धन था वह १६ पेंस या उससे कुछ ऊँची दरके हिसावसे था; अर्थात् जव हमने १५) का माल वेचा तव हमें लन्दनमें १ पौंड स्टर्लिग या उससे कुछ अधिक स्वीकार करना पड़ा। पर जव विनिमयकी दर २४ पेंस सोना करदी गयी और उसे ठहरानेके लिए उलटी हुंडियां वेची जाने लगीं तव १ पौंड स्टर्लिग ७) में ही मिलने लगा। १५) की दरसे हमने लन्दनमें जो कुछ जमा किया था उसे ७) की दरसे हमें छोड़ना पड़ा। यह लूट नहीं

१—लीडर, ११ मार्च १९२०; स्टेट्समेन, ११ मार्च १९२०।
२—वैलेंटाइन शिरोल : इंडिया ओल्ड एण्ड न्यू।

बो क्या है ?[1] मार्च १९२० में विनिमयकी दर लगभग ३५ पेंस थी, इससे कच्चा माल विदेश भेजनेवाले चौपट हो गये। लोगोंका अनुमान था कि इस दरपर इंग्लैंडका माल भारत मँगानेपर सस्ता पड़ेगा। व्यापारियोंने करोड़ों रुपयोंका ग्रार्डर दिया। इंग्लैंडके व्यापारियोंने विनिमय-दरके साथ ही साथ अपना दाम भी चढ़ा दिया। सरकार-की कूटनीतिसे अक्तूबर १९२० में विनिमयकी दर ३५ पेंससे उतरते-उतरते १८ पेंसपर पहुँच गयी। विलायती माल मँगानेवाले व्यापारियोंको लाखोंका घाटा हो गया। १९२० के आरम्भमें कच्चा माल बाहर भेजनेवाले और सालके अन्तमें बना माल मँगानेवाले दिवालिया हो गये ![2]

विनिमयकी दरके फलस्वरूप देशका निर्यात-व्यापार बहुत घट गया था और व्यापारिक-संतुलन भारतके विपक्षमें हो गया था।

हिल्टन यंग कमीशन

जनताकी हानि और असंतोषमें दिन-दिन वृद्धि होती जा रही थी। २० जनवरी १९२० से ३ सालतक भारत-मंत्री द्वारा भारत सरकार-पर हुंडी करना बन्द रहा। जब विनिमय-दर १६ पेंस स्टर्लिंग हो चली, तब फिर हुंडियां बिकने लगीं। इस बीच भारत-मंत्री ब्रिटिश सरकारसे भारत सरकारका पावना वसूलकर और लन्दनमें ऋण लेकर अपना काम चलाते रहे। भारतमंत्री जब भारत सरकारके नाम हुंडियां बेचते और यहाँ जब उनके लिए रुपये दिये जाते तो मुद्रा-विस्तार होता और जब भारत सरकार लोगोंसे रुपये लेकर उलटी हुंडियां बेचती तो मुद्रा-संकोच होता।

सितम्बर १९२४ में विनिमयकी दर १६ पेंस सोनापर आ गयी। सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदासने असेम्बलीमें दो बिल उपस्थित कर

१—बिड़ला, पारसनाथ सिंह : रुपयेकी कहानी, पृष्ठ १७९–१८०।
२—प्राणनाथ विद्यालंकार : भारतीय सम्पत्ति-शास्त्र, पृष्ठ १०६।

विनिमयकी दर स्थायी रूपसे १६ पेंस सोनापर निश्चित करानी चाही, पर इन विलोंपर असेम्बलीमें विचार न हो सका। सरकार चाहती थी कि विनिमयकी दर १६ पेंस सोनासे ऊपर रहे। उसने २५ अगस्त १६२५ को श्री हिल्टन यंगकी अध्यक्षतामें एक कमीशन नियुक्त किया जिसने भारत-मंत्रीकी इच्छाके अनुसार बहुमतसे यही राय दी कि विनिमयकी दर १८ पेंस निश्चित कर दी जाय ; कागजी-मुद्रा-कोष और मुद्रा-ढलाई-कोष मिला दिये जाँय और रिजर्व बैंक स्थापित किया जाय।

१८ पेंसकी दर

१८ पेंसकी विनिमय-दरका प्रस्ताव २७ मार्च १६२७ को असेम्बलीमें आया। सर पुरुषोत्तमदास, महामना पंडित मदन मोहन मालवीय, श्री घनश्यामदास बिड़ला आदिने उसका तीव्र विरोध किया, पर सरकारने निकृष्टतम उपायोंसे ३ मत अधिक पा ही लिये।

हिल्टन यंग कमीशनके बहुमतके मतानुसार मुद्रा-कानून बन गया। रुपयेकी दर १८ पेंस निर्धारित कर दी गयी। सावरेन और अर्ध सावरेन कानूनन ग्राह्य सिक्के न रहे, यद्यपि सरकारने १३ ~) ४ के हिसाबसे सावरेन लेना अंगीकार कर लिया।

१८ पेंसकी दर भारतके लिए परम हानिकर सिद्ध हुई। सोनेके रूपमें भारतका संचित धन उड़ा लिया गया। ऋणका भार और अधिक बढ़ गया। देशके निर्यात व्यापार, उद्योग-व्यवसाय तथा कृषिको बुरी हानि पहुँचायी गयी। सरकारको करोड़ों रुपयेका घाटा होने लगा। उसके लिए करदाताओंपर भारी बोझ डाला गया। १९३०–३१ से तीन सालके भीतर लगभग ४२ करोड़की कर-वृद्धि की गयी।

२० सितम्बर १६३१ को इंग्लैंडसे स्वर्णमान उठ गया। सोनेके प्रामाणिक सिक्केका प्रचार स्थगित कर दिया गया। दूसरे ही दिन वाइसरायने घोषणा की कि 'रुपया भविष्यमें सर्वथा बन्धन-मुक्त

रहेगा। सरकार न उसे सोनेसे सम्बद्ध रखना चाहती है, न स्टर्लिंगसे।'

स्टर्लिंगसे गठ-बन्धन

परन्तु रुपयेको स्वतंत्र हुए अभी कुछ ही घंटे बीते थे कि लन्दनसे भारत-मंत्रीने घोषणा करदी कि रुपयेका मूल्य १८ पेंस स्टर्लिंग रहेगा। २४ सितम्बरको वाइसरायने दूसरा फर्मान जारीकर अपनी बात वापस ली और स्टर्लिंगसे रुपयेके गठबन्धनको स्वीकार कर लिया।

रुपयेकी स्वतंत्र सत्ता जाती रही। स्टर्लिंगकी दुममें बँधा होनेके कारण वह उसीके अनुसार डूबने उतराने लगा। सोनेका मूल्य चढ़ने लगा। अगस्त १९३१ के अन्तमें जो सोना २१॥।-)। तोला था वही दिसम्बर १९३१ में २९=) तोला होगया। थोड़े ही दिनोंमें देशका लगभग ५०करोड़ रुपयेका सोना विदेश चला गया। उस समय लन्दनमें गोलमेज परिषद्में गये भारतीय नेताओंने इस नीतिका घोर विरोध किया, पर कौन सुनता है? केन्द्रीय असेम्बलीमें इसके विरोधमें सर कावसजी जहांगीरने 'काम-रोको' प्रस्ताव लाना चाहा, पर बड़े लाटने विशेष आदेश द्वारा उसे रोक दिया। २६ सितम्बरको षण्मुखम् चेट्टीने एक प्रस्तावमें इसका विरोध करते हुए मांग की कि भारत सरकार तत्काल ऐसी कुछ विशेष काररवाई करे जिससे कि हमारे स्वर्णमान कोषोंमें जो सोना या स्टर्लिंग जमा है वह किसी भी स्थितिमें कम न होने पाये और भारत सरकार रुपयेके बदले सोना या स्टर्लिंग देनेकी कोई जिम्मे-दारी अपने ऊपर न रहने दे।

प्रस्ताव ४० के विरुद्ध ६४ मतसे स्वीकृत हुआ परन्तु स्थिति ज्योंकी त्यों रही। १९३८ में कांग्रेस कार्यसमितिने १८ पेंसकी दरका तीव्र विरोध करते हुए एक प्रस्ताव स्वीकृत किया जिसमें कहा कि देशकी भलाई इसीमें है कि हुंडीकी दरको टिकानेका प्रयत्न छोड़ दिया जाय और सरकार इसे तत्काल १६ पेंस कर दे। सरकारने किसानोंके हितका बहाना बताकर हुंडीकी दर गिरानेसे स्पष्ट इन्कार कर दिया।

१६३३ से १६३७ तक ३०० करोड़का सोना विदेश चला गया। दिसम्बर १६३६ में यह रकम ३५१ करोड़से भी ऊपर हो गयी थी। भीषण मन्दीने इसमें और प्रोत्साहन दिया।

भारतकी प्रथम राष्ट्रीय सरकारके प्रथम अर्थ-मंत्री श्री लियाकत अली खाँने अप्रैल १६४७ के आरम्भमें रिजर्व बैंक कानूनकी धारा ४०,४१ में संशोधनकर रुपयेको स्टर्लिगकी पूँछसे मुक्त कराया। अब रुपयेका अन्तर्राष्ट्रीय मानसे सम्बन्ध रहेगा। श्री मनुसूवेदार और श्री अनन्तशयनम् अयंगारने अर्थमंत्रीको बधाई देते हुए ठीक ही कहा कि भारतकी आर्थिक स्वतंत्रताके इतिहासमें यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कदम है। अब रुपया राष्ट्रकी स्वतंत्र, सार्वभौम तथा आत्मनिर्भर मुद्राके रूपमें रहेगा।

रुपया स्वतंत्र मुद्रा

रुपयेके अतिरिक्त भारतमें अठन्नी, चवन्नी और दुअन्नी भी प्रचलित हैं, जिनका वजन क्रमशः ९०; ४५ और साढ़े बाइस ग्रेन है। १९३९ तक इन सिक्कोंमें १२ में ११ भाग चाँदी रहती थी। बादमें रुपयेके साथ-साथ उत्तरोत्तर चाँदी कम होती गयी। इकन्नियाँ पहलेसे गिलटकी चल रही हैं। १६४२ से इकन्नी और दुअन्नीमें मिलावट बढ़ा दी गयी। गिलटकी अठन्नियाँ, चवन्नियाँ प्रचलित की गयीं। अब तो रुपया भी गिलटका चलता है। अधन्ना, पैसा, धेला और पाई ताँबेके सिक्के हैं। १६४३ में छेदवाला पैसा ढाला गया। युद्धकालमें रेजगीका भारी संकट रहा। सभी सिक्कोंपर सिक्केका नाम, मूल्य, सन् और सम्राटकी छाप रहती है। रुपया, अठन्नी, चवन्नी गोल आकारकी होती हैं, दुअन्नी चौखूंटी और इकन्नी गोल कटावदार तथा पैसा, धेला गोल होते हैं। रियासतोंमें जयपुर, ग्वालियर, हैदराबाद आदिमें अपने सिक्के चलते हैं, पर ब्रिटिश भारतके सिक्कोंको वहाँ भी वही स्थान प्राप्त है जो ब्रिटिश भारतमें।

अन्य मुद्राएँ

हुंडी-पुर्जेका प्रचलन तो अपने यहाँ प्राचीन कालसे है, पर नोटोंका

प्रचलन अंग्रेजी राज्यमें ही हुआ। सबसे पहले १८३६ में बंगाल बैंकको नोट निकालनेकी अनुमति मिली। १८४० में बम्बईके प्रेसीडेंसी बैंकको और १८४३ में मद्रासके प्रेसीडेन्सी बैंकको भी इसकी अनुमति मिल गयी। मद्रास प्रेसिडेन्सी बैंक एक करोड़ तकके नोट निकाल सकता था। अन्य दोनों बैंक दो-दो करोड़ तकके। इन बैंकोंके नोटोंका प्रचार नगण्य-सा था। कारण, उस समय कोई भी व्यक्ति नोट लेने या देनेके लिए कानूनन बाध्य न था।

कागजी मुद्रा

१८५७ में गदरके उपरान्त जब भारतकी आर्थिक स्थिति डाँवाडोल-सी हुई तब उसके सुधारके लिए १८६१ में इंग्लैंडसे श्री जेम्स विल्सन नामक अर्थ-शास्त्री भारत सरकारके प्रथम अर्थ-सदस्य बनाकर भारत भेजे गये। आप नोटोंका प्रचार करनेको उत्सुक थे। आपके आनेके बाद १८६१ में नोट सम्बन्धी कानून बना। भारत सरकारने नोट निकालनेका अधिकार बैंकोंसे छीनकर अपने हाथमें ले लिया।

नोटोंका प्रचार

सरकारने नोट जारी करनेके लिए ६ केन्द्र स्थापित किये, जहाँसे ५), १०), ५०), १००), ५००), १०००) और १००००) के नोट जारी होने लगे। एक केन्द्रका नोट उसी केन्द्रमें अधिकारपूर्वक भुनाया जा सकता था। दूसरा केन्द्र उसे लेनेके लिए बाध्य न था, पर सरकारी देना किसी भी केन्द्रके नोटोंमें अदा किया जा सकता था। नोट सम्बन्धी कानूनमें समय-समयपर संशोधन होते गये। १९०३ में ५) वाले और १९११ में १००) तकके नोट सार्वदेशिक बना दिये गये। इससे नोटोंकी लोकप्रियता बढ़ गयी। १९१७ में १) और २॥) के नोट भी चलाये गये, बादमें वे बन्द कर दिये गये। १९३६ में १) के नोट फिर जारी कर दिये गये। ये नोट अपरिमित परिमाणमें कानूनन ग्राह्य हैं, पर विनिमय-साध्य नहीं। सरकार इन्हें धातु-मुद्रामें बदलनेका आश्वासन नहीं देती। नोटोंका प्रचार कितनी तीव्र गतिसे हुआ, इसका अन्दाज इन आँकड़ोंसे लगाया जा सकता है —

		कुल नोट लाख रुपयोंमें	सार्वजनिक चलनमें
१८९९–१९००		२८,७४	२२,१०
१९०९–१०		५४,४१	३९,९९
१९१९–२०		१,७४,५२	१,५३,७८
१९२९–३०		१,७७,२३	१,५९,३०
१९३६–३७		२,०४,००	१,६४,३५
१९३७–३८	भारत	२,०६,२०	१,७८,२०
	वर्मा	७,८३	७,८३
१९३८–३९	भारत	१,९६,४७	१,७८,३६
	वर्मा	१०,७६	१०,७४
१९३९–४०	भारत	२,३८,४३	२,२५,१०
	वर्मा	१३,७८	१३,४५
१९४०–४१	भारत	२,५१,८१	२,४०,५५
	वर्मा	१७,४४	१७,११
१९४१–४२	भारत	३,९२,७१	३,८१,७३
	वर्मा	२८,३५	२८,३३
१९४२–४३	भारत	६,५५,११	६,४३,५८

मुद्रा-स्फीति

प्रथम विश्वयुद्धके अन्तिम दिनोंमें १९१८ के कानूनके अनुसार सरकारी सिक्यूरिटियोंकी जमानतपर निकले नोटोंकी संख्या ८६ करोड़ और १९१९ में १०० करोड़तक कर दी गयी। द्वितीय विश्वयुद्धमें भी सैनिकोंको वेतन देने, रण-सामग्री खरीदने आदिके लिए सरकारने नोटोंका खूब विस्तार किया। १९३९ के अन्तमें जहाँ २५० करोड़से भी कमके नोट चालू थे, जून १९४३ में ७४६ करोड़के, अक्तूबर १९४४ में ९७१ करोड़के, १९४५ के अन्तमें १२०० करोड़के नोट चालू हो गये। ९ अगस्त १९४६ को

सब मिलाकर १२५५ करोड़ रुपयेका मुद्रा-प्रसार था इस हिसाबमें एक रुपयेवाले नोट शामिल नहीं हैं।

प्रथम विश्वयुद्धके समय मुद्रा-स्फीतिके फलस्वरूप सरकारकी साख घटी। नोटोंपर खुलेआम वट्टा लिया जाने लगा और महँगीका विस्तार हुआ। द्वितीय विश्वयुद्धके दिनोंमें मुद्रा-स्फीतिके फलस्वरूप वस्तुओंका अभाव, चोरबाजार, भ्रष्टाचार, महँगी आदि कैसी बुरी तरह बढ़ी इसका पता किसे नहीं है? लाखों व्यक्ति खाद्य-संकट और दुर्भिक्षकी भेंट हो गये। सरकारने आयकर, सुपर-टैक्स, कारपोरेशन-टैक्स, अतिरिक्त लाभकर लगाकर, डाक-तारका भाव बढ़ाकर, युद्धकोष और युद्ध-ऋणका कर एकत्रकर, आयातको प्रोत्साहन देकर इस मुद्रा-स्फीतिपर विजय पानेका प्रयत्न किया, पर वह उसमें सफल नहीं हो पायी।

जनवरी १९४६ में भारत सरकारने दो नोट आर्डिनेन्स निकालकर देशकी आर्थिक स्थितिमें खलबली मचा दी। एकके द्वारा सरकारने

नोट आर्डिनेन्स

देश भरके बैंकों और खजानोंसे १००) से ऊपरवाले नोटोंका कुल हिसाब माँगा और दूसरे आर्डिनेन्स द्वारा ५००), १०००) और १०,०००) के नोटोंका चलन गैर-कानूनी ठहरा दिया और उन्हें दस दिनके भीतर, उनकी प्राप्तिके पूरे विवरणके साथ बैंकों और खजानोंमें जमाकर सौ रुपयेवाले नोटोंमें बदलवा लेनेका आदेश जारी किया। सरकारी घोषणामें कहा गया कि चोरबाजार द्वारा पैदा की हुई बड़ी-बड़ी रकमोंको सरकार और आयकर विभागके सामने पेश करनेके लिए बड़े आदमियोंको विवश करनेको यह उपाय काममें लाया जा रहा है। अवश्य ही इससे चोरबाजार रोकनेमें कुछ सहायता मिली, पर कुछ सीधे-सादे आदमी भी इसकी लपेटमें आगये। कुछने हिसाब-किताब, जाँच-पड़तालकी झंझटोंसे मुक्त होनेके लिए हजारके नोट पाँच-पाँच, छै-छै, सात-सात सौमें ही बेंच डाले।

१८६१ में कागजी-मुद्रा-कानून बना। उसके अनुसार यह निश्चित

हुआ कि जितने रुपयोंके नोट निकाले जाँय उतने ही रुपयेका एक कोष अलग रखा जाय। यह कोष पेपर करेंसी रिजर्व (कागजी मुद्रा कोष) कहलाता है। इसका कुछ भाग सोना-चाँदी तथा इन्हीं धातुओंके सिक्कोंके रूपमें रहता है, शेष सरकारी सिक्यूरिटियों, ऋणपत्रोंमें। सिक्यूरिटियों-की मात्राके सम्बन्धमें समय-समयपर निश्चय करके कानूनमें संशोधन होता रहता है। हिल्टन यंग कमीशनकी सिफारिशपर अप्रैल १६३५ में रिजर्व बैंक स्थापित होनेपर नोट निकालनेका सारा अधिकार सरकारने उसीको दे दिया। तबसे वही नोट निकालता है। इस कानूनके अनुसार सारे कागजी-मुद्रा-कोषका ४० प्रतिशत भाग स्वर्णमुद्रा, सोना अथवा ब्रिटिश सरकारके ऋणपत्रों, सिक्यूरिटियोंके रूपमें होना चाहिये, जिसमें कमसे कम ४० करोड़ रुपया स्वर्ण-मुद्रा अथवा सोनेके रूपमें हो तथा इसका ८५ प्रतिशत भाग भारतमें रहे। विशेष स्थितिमें गवर्नर जनरलकी स्वीकृतिसे कोषका यह अंश ४० प्रतिशतसे कम भी रह सकता है। उस स्थितिमें रिजर्व बैंकको निर्धारित व्याज देना पड़ता है। कोषका शेष भाग रुपये, भारत-सरकारके ऋण-पत्रों और स्वीकृत हुंडियोंके रूपमें होना आवश्यक है, पर भारत-सरकारके ऋण-पत्र सारे कोषके चतुर्थांशसे अथवा ५० करोड़से अधिकके न होने चाहिये। भारतकी पराधीनताके कारण इस कोषका बड़ा अंश ब्रिटिश सरकारके ऋण-पत्रोंके रूपमें और सो भी भारतमें न रखकर, इंग्लैंडमें रखा जाता रहा है। नोट भारतमें चलें, उनकी जमानतका कोष ब्रिटेनमें रहे! कैसी विडम्बना है!

कागजी मुद्रा कानून

भारतकी मुद्रा-नीतिका संचालन उसी समयसे ब्रिटिश हितोंके अनुकूल होता रहा है जबसे ब्रिटेनके हाथमें भारतके शासनकी बागडोर गयी। श्री पारसनाथ सिंह ठीक ही लिखते हैं कि यदि हम पराधीन न होते तो यह इतिहास और ही प्रकारका होता, अर्थात् उस हालतमें—

विरोधी मुद्रा-नीति

१—हमारी मुद्रा-नीतिका प्रधान लक्ष्य यहाँके किसानोंको तथा अन्य उत्पादकोंको अधिकसे अधिक लाभ पहुँचाना होता, न कि ब्रिटिश व्यापारियों या कर्मचारियोंको।

२—१८९३ में चाँदीकी टकसाल बन्द न की जाती।

३—कभी सोनेका मान ग्रहण भी किया जाता तो दूसरे देशको लाभ पहुँचानेके उद्देश्यसे। किसी विकृत उद्देश्यसे नहीं।

४—सोना भारतवर्षमें संचित किया जाता, सात समुद्र पार इंग्लैंडमें नहीं। हमारे नोटोंकी पुश्तीके लिए हमारे पास अधिकसे अधिक सोना रहता।

५—भारतमें ब्रिटिश मालकी खपत बढ़ाने तथा ब्रिटिश कर्मचारियोंको लाभान्वित करनेके उद्देश्यसे रुपयेका विनिमय-मूल्य कृत्रिम उपायोंसे ऊँचा न किया जाता और वह भयानक गिरावटी नीति काममें न लायी जाती जिससे समय-समयपर हमारी अमित हानि हुई है।

६—रुपयेका विनिमय-मूल्य १८९३ में १६ पेंस सोना न किया जाता और एक बार कर देनेपर वह १९१९ में २४ पेंस सोना और १९२७ में १८ पेंस सोना हर्गिज न किया जाता।

७—२५ पेंसवाली दरको टिकानेके लिए उन दामों उलटी हुण्डियाँ न बेची जातीं और गिरते हुएको उठानेके प्रयत्नमें हमारे करोड़ रुपये बर्बाद न किये जाते।

८—१९३१ में जब रुपयेका सोनेसे पाया छूट गया तब उसका स्टर्लिंगसे गठबन्धन न किया जाता।

९—मन्दीका दौरदौरा होनेपर ऐसी मुद्रा-नीति बरती जाती जो दामोंको ऊपर उठानेमें सहायक होती; न कि वैसी जिसने उन्हें और भी नीचे गिरा दिया।

१०—अरबों रुपयेका सोना इस देशके बाहर न जाने दिया जाता। बाजारमें बिक्रीके लिए आनेवाले सोनेको सरकार खरीदती जाती

और इंग्लैंड, अमेरिका आदि देशोंकी तरह उन्हें नोटोंकी पुश्तीके लिए अपने कोष या रिजर्वमें रखती जाती।

११–इस देशके रुपये गला-गलाकर चांदी न वेंच दी जाती और यदि वेची भी जाती तो उसके स्थानपर कोषमें सोना खरीदकर रख दिया जाता।[1]

ब्रिटेनकी इस मुद्रा-नीतिके फलस्वरूप भारतको आरम्भसे ही अतुलनीय क्षति उठानी पड़ी है। भारतके किसान, उत्पादक और व्यापारी इसके चक्रमें बूरी तरह पिसते रहे हैं और ब्रिटिश हितोंके लिए उनके हितोंका सदैव वलिदान होता रहा है।

कालकी गतिके साथ वस्तुओंका मूल्य भी गिरता वढ़ता रहता है।

मँहगी

हिसाव लगाकर देखा गया है कि अकवरके शासन-कालमें वस्तुओंका जो मूल्य था अंग्रेजीकालमें वह साढ़े पाँच गुना चढ़ गया।[2] सन् १८६१ से कीमतोंका चढ़ाव इस प्रकार रहा है—

सन्	कीमतोंका चढ़ाव	सन्	कीमतोंका चढ़ाव
१८६१	९०	१९१९	२७६
१८७०	१०२	१९२०	२८१
१८७३	१००	१९२१	२३६
१८९५	१०४	१९३०	१७१
१९०५	११०	१९३४	११६
१९१४	१४७	१९४०	१६२
१९१८	२२५	१९४१	२००

इस सूचीमें २८ निर्यातवाले और ११ आयातवाले—इस प्रकार

१—विड़ला, पारसनाथ सिंह : रुपयेकी कहानी, पृष्ठ २८४–२८६।

२—दि वेल्थ आव इंडिया, नवम्बर, १९१३, खंड २, संख्या २, लेख. १३०० से १९१२ तक मूल्यमें परिवर्तन।

कुल ३६ पदार्थोंके थोकभाव लिये गये हैं और सन् १८७३ को आधार मानकर हिसाब लगाया गया है।

वस्तुओंकी मँहगीपर रुपयेके बदलते हुए मूल्य, देशकी मुद्रानीति, मुद्रा-विस्तार, मुद्रा-संकोच, विश्वयुद्ध आदि बातोंका प्रभाव पड़ता रहा है। १८६१ से १८६७ तक साधारणतः वस्तुओंका मूल्य चढ़ा, १८६७ से ८३ तक साधारणतः गिरा और १८६० से १९२० तक भारतमें लगातार मूल्य-वृद्धि होती चली। माना कि विश्वमें अन्यत्र भी इस बीच मूल्य-वृद्धि हुई परन्तु भारतमें उसके कुछ विशेष कारण थे। जैसे, खाद्य-पदार्थों और कच्चे मालकी कमी, ऊनकी माँगमें वृद्धि, रेलों और आयातका विस्तार, मुद्रा-स्फिति आदि।[1] मुद्रा-स्फितिके कारण वस्तुओंके मूल्यपर प्रथम विश्वयुद्धका विशेष प्रभाव पड़ा। यह भाव इतना अधिक चढ़ा कि १९१४ के कलकत्ताके थोकभावको यदि १०० माना जाय तो १९२० में वह २०१ पर पहुँच गया। युद्धके उपरान्त जहाँ मुद्रा-संकोच आरम्भ हुआ स्थिति साधारण हुई, वहाँ वस्तुओंका मूल्य गिरना आरम्भ हो गया। औद्योगिक देशोंकी अपेक्षा कृषि-प्रधान देशोंपर इसका विशेष प्रभाव पड़ा। इन आँकड़ोंसे उतार चढ़ावका अनुमान किया जा सकता है—

सन्	कीमतोंका चढ़ाव	सन्	कीमतोंका चढ़ाव
१९१४	१००		
१९२९	१४३	मार्च १९३३	८३
सितम्बर १९३१	९१	दिसम्बर १९३३	८९
दिसम्बर १९३१	९८	अप्रेल १९३८	९४
दिसम्बर १९३२	८८	सितम्बर १९३९	१००

द्वितीय विश्वयुद्धमें मँहगीका कैसा भीषण विस्तार हुआ है यह

१—के० एल० दत्त : रिपोर्ट आव दि प्राइसेज इनक्वायरी कमेटी, १९१२।

किसीसे छिपा नहीं है। अगस्त १९३९ को आधार माना जाय तो खाद्य-वस्तुओंकी थोक कीमतोंकी निर्देश-तालिकामें इस प्रकार वृद्धि हुई–

अगस्त १९३९	१००	अप्रेल १९४३	२४३
अप्रेल १९४१	१०५.६	अप्रेल १९४५	२३३.७
अप्रेल १९४२	१३४.३	अप्रेल १९४६	२४४.६

प्रोफेसर वाडियाके कथनानुसार इन सरकारी आँकड़ोंसे देशकी वास्तविक स्थितिका ज्ञान नहीं हो सकता। कारण, सरकारी आँकड़े नियंत्रित मूल्यके आधारपर तैयार होते हैं, वाजारमें प्रचलित भावोंके आधारपर नहीं। मूल्य सम्वन्धी नियंत्रण लागू करनेके लिए भारतीयोंका सहयोग आवश्यक था। यह सहयोग सरकारको प्राप्त नहीं था। फलत: ज्योंही सरकारने किसी वस्तुका मूल्य नियंत्रित किया त्योंही वह वाजारसे गायव हो गयी और चोरवाजारमें उसकी कीमत वढ़ती रही।[1]

इस मँहगी, चोर-वाजार, भ्रष्टाचार और वस्तुओंके अभावमें भारतवासी पड़े सिसक रहे हैं। पूँजीपति तो मौज उड़ा रहे हैं पर किसान, मजदूर और मध्यम श्रेणीके व्यक्ति उसमें वुरी तरह छटपटा रहे हैं।

१—पी० ए० वाडिया : मुद्रा-प्रसारसे भय, लेख 'हिन्दुस्तान', १३ अक्तूबर १९४६।

बैंक और बीमा

भारतमें प्राचीन कालसे महाजनी प्रचलित है। शराफ, मुलतानी, चेट्टी, वनिया, मारवाड़ी, महाजन, साहूकार किसी भी नामसे कहिये, भारतमें महाजन रहते आये हैं। भारतकी अर्थनीतिमें उनका महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है।

महाजनी

दूसरोंका रुपया और माल जमा रखना, जेवर गिरवी रखना, सोना, चाँदी खरीदना, वेचना, हुंडी पुर्जेका व्यवहार करना—देशी महाजनीके प्रमुख अंग हैं। देहातमें निवास करनेवाली ९० प्रतिशत जनताका सहारा ये महाजन ही हैं।

बैंकिंग

वर्तमान युगमें पूँजीवादके विकासके साथ भारतमें पाश्चात्य ढंगकी महाजनीका भी प्रचलन हो गया है। भारतमें कई प्रकारके बैंक हैं, जिनमें प्रमुख ये हैं—

इम्पीरियल बैंक, रिजर्व बैंक, विदेशी विनिमय बैंक, मिश्रित-पूंजीवाले बैंक, सहकारी बैंक, भूमिवन्धक बैंक और पोस्ट आफिस सेविंग बैंक। भारतमें १८ वीं शताब्दीके उत्तरार्द्धमें पश्चिमी ढंगकी संघटित बैंकिंग प्रणालीका श्रीगणेश हुआ। एजेंसी हाउस खुले। इस ढंगका शायद सबसे पहला बैंक 'बैंक आव हिन्दुस्तान' था। १८२९ से १८३२ तक व्यापारिक संकटकालमें एजेन्सी हाउस भी संकटमें पड़ गये। उनके भग्नावशेषपर यूनियन बैंककी बुनियाद पड़ी पर १८४८में उसकी भी समाप्ति हो गयी। १८६० से पूर्व बैंकोंकी प्रगति अत्यन्त शोचनीय रही।

१८०६ में कलकत्तामें, १८४० में बम्बईमें और १८४७ में मद्रासमें प्रेसीडेन्सी बैंकोंकी स्थापना हुई। १८६७ में इन तीनों बैंकोंको एकमें मिलानेका प्रयास किया गया परन्तु वह कार्यान्वित न हो सका। १९१३–१४ में बैंकोंके असफल होने और प्रथम विश्वयुद्ध छिड़ जानेपर एक केन्द्रीय बैंककी आवश्यकता

प्रेसीडेन्सी बैंक

बुरी तरह खटकने लगी। अन्ततः १९२० में 'इम्पीरियल बैंक कानून' बना और २७ जनवरी १९२१ को तीनों प्रेसीडेन्सी बैंक मिला कर 'इम्पीरियल बैंक आव इंडिया' की स्थापना की गयी।

इम्पीरियल बैंक

रिजर्व बैंककी स्थापनाके पूर्व इम्पीरियल बैंक ही भारतका सबसे बड़ा बैंक था। सरकारके बैंकिंग कार्यका एकमात्र अधिकारी यही था। यह तमाम सरकारी अमानतें बिना ब्याज जमा करता था। जहाँ इस बैंककी शाखाएँ थीं वहाँ यह सरकारी खजानेका काम करता था। सरकारी खातेमें जमा होनेवाली रकमोंको वसूल करना और भारत सरकारके सार्वजनिक ऋणकी व्यवस्था करना भी इसीके जिम्मे था। रिजर्व बैंककी स्थापनाके समय इस बैंककी जितनी शाखाएँ थीं उतनी शाखाएँ इसे जीवित रखनी होती हैं।

रिजर्व बैंक स्थापित हो जानेपर इम्पीरियल बैंकके कार्यों और अधिकारोंमें कुछ परिवर्तन हो गया। इस समय इसके मुख्य कार्य ये हैं—रिजर्व बैंकके हिस्सों, सरकारी सहायता-प्राप्त रेलवे कम्पनियों तथा मिश्रित पूँजीवाली कम्पनियोंके ऋण-पत्रोंकी ज़मानतपर ऋण देना; डिबेंचर तथा अन्य सिक्योरिटियाँ बेचना; प्रान्तीय सरकारोंकी सहमतिसे कोर्ट आव वार्डस्‌को कृषिकार्यके लिए, ६ मासतकके लिए, ऋण देना; हुंडियाँ जारी करना, सकारना; उनका तथा सोने-चाँदीका क्रय-विक्रय करना; सुरक्षित रखनेके लिए ऋण-पत्र लेना; सम्पत्तिके आधारपर लेनदेन तथा बैंकिंगके अन्य कार्य करना, जिनमें विदेशी विनिमय आदिका कार्यभी शामिल है। यह बैंक कोर्ट आव वार्डस्‌के अतिरिक्त और किसीको अपने ही हिस्सों अथवा अचल सम्पत्तिके आधारपर ऋण नहीं दे सकता।

इम्पीरियल बैंककी देशमें लगभग १७५ शाखाएँ हैं। कलकत्ता, बम्बई और मद्रास इन तीन नगरोंमें इसके स्थानीय प्रधान कार्यालय हैं,

जिनका प्रबन्ध स्थानीय बोर्डोंके हाथमें है। दिसम्बर १९४४ में बैंकका संचित कोष ६०० लाख था और पूंजी ५६२ लाख। २३९ करोड़ ७८ लाख रुपयां कुल जमा था। १४८ करोड़ रु० सिक्योरिटियोंमें था और २८ करोड़ नकद था।

१९३४ में 'रिजर्व बैंक कानून' बना और १ अप्रैल १९३५ से इसका कार्य आरम्भ हुआ। यह हिस्सेदारोंका बैंक हैं और इसकी हिस्सा-पूंजी ५ करोड़ रुपया है। हिस्सेदारोंके लिए भारत पांच भागोंमें विभक्त है, जिनके केन्द्रीय स्थान बम्बई, कलकत्ता, दिल्ली, मद्रास और रंगून हैं। अप्रैल १९४७ से रिजर्व बैंकने बर्मासे अपना कारबार समेट लिया है और अब उसने बर्मा सरकारका महाजनी-कार्य करना बन्द कर दिया है।

रिजर्व बैंक

यद्यपि यह बैंक प्राइवेट हिस्सेदारोंका है तथापि इसके केन्द्रीय बोर्डकी नियुक्तियाँ सपरिषद् गवर्नर जनरल करते हैं। आवश्यकतानुसार नोटोंका प्रसार करना; भारत सरकार, प्रान्तीय सरकारों, देशी राज्यों तथा सर्वसाधारणके रुपये बिना ब्याज जमा करना; देशी राज्यों, स्थानीय-स्वशासन-संस्थाओं तथा अन्य बैंकोंको ऋणपत्रों, हुंडियों अथवा सोने चाँदीकी जमानतपर तीन मास तकके लिए ऋण देना; उनके लिए सोने-चाँदीका क्रय-विक्रय करना; सार्वजनिक ऋणकी व्यवस्था करना; सहकारी बैंकोंको निर्धारित नियमोंके अनुसार रुपया उधार देना और सरकारी लेन-देनका कार्य करते हुए भारतकी आर्थिक स्थिरता तथा साख बनाये रखना और निर्धारित दरपर रुपयेके बदले स्टर्लिंग और स्टर्लिंगके बदले रुपया देना इस बैंकके प्रमुख कार्य हैं। यह अन्य बैंकोंका बैंक है। यह उनका धन संचित कोषमें रखता है। इसे अपना व्यापार करने अथवा उद्योग-धन्धोंमें रकम लगानेका निषेध है। साथ ही न तो यह अपने शेयर खरीद सकता है और न अन्य बैंकोंके। उन शेयरोंकी अथवा अचल सम्पत्तिकी जमानतपर रुपया

उधार देने, अथवा मियादी हुंडी जारी करनेकी भी इसे मनाही है। यों तो इसका कार्य व क्षेत्र वहुत व्यापक है परन्तु मोटे तौरपर उसे दो भागोंमें विभाजित कर सकते हैं—नोट-प्रसार विभाग और वैंकिग विभाग। वैंकको दोनों विभागोंका हिसाव किताव पृथक् रखना पड़ता है और प्रति सप्ताह उसका तलपट सरकारके पास भेजना पड़ता है।

३० जून १९४४ का तलपट इस प्रकार था—

नोट-प्रसार विभाग

वैंकिग विभागमें नोट	१२,०२,०९,४४०)	सोना और सोनेके सिक्के भारतमें	४४,४१,४३,३२३)
चलनमें नोट	६३१,३७,४१,०९०)		
योग	९४३,३६,५२,५३०)	वाहर	
स्टर्लिंगमें अदा होनेवाले सरकारी कागज			८२८,३२,८६,३१७)
रुपये, सिक्के			१२,८१,४१,४४८)
रुपयेमें अदा होनेवाले सरकारी कागज			५७,८३,७८,४४२)
			९४३,३९,५२,५३०)

वैंकिग विभाग

देनदारी		सम्पत्ति	
		नोट	१२,०२,०८,४४०)
पूंजी	५,००,००,०००)	रुपये सिक्के	२७,३८,०४९)
		रेजगारी	१,३७,५०७)
संचित कोष	५,००,००,०००)	सरकारी ट्रेजरी विल	२,५९,३३,२०२)
जमा (डिपाजिट) सरकारी		रोकड़ विदेशोंमें	१७३,७४,४५,२६१)
		सरकारको दिया	
भारत सरकार	६५,२४,८१,२८२)	कर्ज	७२,००,०००)
वर्मा सरकार	७६,२१,४१४)		

अन्य सरकारी रकमें	१६,७६,१२,२४७)	दूसरोंको दिया कर्ज	१०,००,०००)
वैंकोंकी रकम	६४,३५,१४,८५७)	शेयरों आदिमें लगी रकम	११,१०,४६,८४३)
दूसरोंकी रकम	३,४४,५५,५६४)		
चुकानेवाले विल	२,९७,१४,४७१)	अन्य सम्पत्ति	१,११,७६,६६४)
अन्य देनदारी	८,०८,६२,४६१)		
	२०१,६८,६२,२६६)		२०१,६८,९२,२६९)

रिजर्व वैंकके राष्ट्रीयकरणकी मांग पुरानी है। २८ फरवरी १९४७ को श्री लियाक़तअलीके इस विचारका देशमें जोरदार स्वागत किया गया था।

विदेशी विनिमय वैंक

भारतमें १८ विदेशी विनिमय वैंक हैं, जिनमें केवल एक वैंक भारतीय है। ये सब वैंक विदेशी वैंकोंकी शाखाएं अथवा एजेन्सियां हैं। भारतके आयात-निर्यात व्यापारमें सहायता देना, विदेशी हुंडियां खरीदना, वेचना, लेना देना, भुगतान करना, आदि इनका प्रमुख कार्य है। सोने-चांदीका आयात-निर्यात तथा क्रय-विक्रय भी इनके हाथमें रहता है। रिजर्व वैंकसे स्टर्लिंग खरीदना और उसे वेचना भी इनका कार्य है। इधर कुछ दिनोंसे इन वैंकोंने भारतके भीतरी व्यापारमें भी भाग लेना आरम्भ कर दिया है। इन वैंकोंमें भारतीयोंकी अमानतकी रकम क्रमशः वढ़ती जा रही है। १९०० में जो १०५० लाख थी वह १९४३ में १४०१९ लाखपर पहुंच गयी। ये वैंक अपनी अधिकांश पूंजी विदेशोंमें रखते हैं, जिससे विदेशी व्यापारियों और कारखानेदारों-को ही विशेष लाभ पहुंचता है। प्रमुख विनिमय वैंक ये हैं—

चार्टर्ड वैंक आव इंडिया, आस्ट्रेलिया एण्ड चाइना, ईस्टर्न वैंक, लायड वैंक, मर्कंटाइल वैंक आव इंडिया, नेशनल वैंक आव इंडिया, और नेशनल सिटी वैंक आव न्यूयार्क।

१६०५ के स्वदेशी आन्दोलनने मिश्रित पूंजीवाले भारतीय वैंकोंको वड़ा प्रोत्साहन दिया। १९१३ और १९२३ में कुछ वैंकोंके असफल होनेसे इनकी प्रगतिमें कुछ वाधा पहुंची, परन्तु साधारणतः यह प्रगति ही कर रहे हैं। इंग्लैंडके वैंकोंकी भांति ये वैंक मुख्यतः व्यापारिक वैंक हैं और इसका मुख्य कार्य महाजनी लेनदेन, हुंडी रुक्का, ड्राफ्ट, शेयरका क्रय-विक्रय आदि है। आन्तरिक व्यापारको इनसे प्रोत्साहन मिलता है। ३१ दिसम्वर १९४० को ऐसे वैंकोंकी संख्या ५८ थी और इनकी पूंजी और संचित कोष ५ लाखसे ऊपर था। इनमें ये पांच वैंक प्रमुख हैं—वैंक आव इंडिया, सेन्ट्रल वैंक आव इंडिया, पंजाव नेशनल वैंक, वैंक आव वड़ौदा, और इलाहावाद वैंक। सेन्ट्रल वैंकने इस क्षेत्रमें अद्भुत सफलता प्राप्त की है। इसका स्वामित्व और प्रवन्ध भारतीयोंके ही हाथमें है।

मिश्रित पूंजीवाले वैंक

सहकारी वैंकोंकी चर्चा सहकारिता आन्दोलनके अध्यायमें जाचुकी है। भारत जैसे कृषि-प्रधान देशमें ऐसे वैंकोंके विस्तारकी अत्यधिक आवश्यकता है।

सन् १८८२ में भारतके डाकखानोंमें सेविंग वैंक खोले गये। इनसे जनताकी वचत करनेकी प्रवृतियोंको कुछ वल मिला है। ३१ मार्च १६४१ को इन वैंकोंकी संख्या १२१०९ थी। इनमें रकम जमा करनेवालोंकी संख्या ४२ लाख थी और ८१ करोड़ ६४ लाख रुपया जमा था। व्याजकी दर घटाकर १॥) वार्षिक कर देनेसे तथा युद्धके कारण वादमें जनताने इन वैंकोंसे रुपया खींच लिया, तो भी ३१ मार्च १९४३ को इन वैंकोंमें २५ लाखसे अधिक आदमियोंका हिसाव खुला था और उनका ५२१ करोड़ रुपया जमा था।

पास्ट आफिस सेविंग वैंक

बीमा कम्पनियां जनताको मितव्ययिताकी ओर झुकाती हैं पर भारतमें बीमा व्यवसाय अभी शैशवावस्थामें है। ३० सितम्बर १९४४को

बीमा कम्पनियाँ

भारतमें कुल ३२३ बीमा कम्पनियां थीं। इनमें २२८ भारतीय और मुख्यतः जीवन-बीमा कम्पनियां हैं और ९५ विदेशी और मुख्यतः आग, जहाज, आदिसे रक्षाका बीमा करनेवाली हैं। भारतीय जीवन-बीमा कम्पनियोंकी कुल पूंजी १९४३ में ८४ करोड़ २३ लाख थी, १९४३ में बीमाकी नयी पालिसियाँ २,९६,००० की गयीं और इनकी कुल रकम ७२ करोड़ १२ लाख थी। सितम्बर १९४४ में स्थापित वैद्यनाथन कमेटीने बीमेकी प्रगतिके लिए अच्छे सुझाव उपस्थित किये हैं। स्वतंत्र भारतमें इसका भविष्य उज्ज्वल है।

स्पष्ट है कि देशमें अभी बैंकिंगके विस्तारकी बड़ी आवश्यकता है। रुपया पैसा, सोना चांदी गाड़ रखनेकी अभीतक थोड़ी बहुत प्रवृत्ति लोगोंमें पायी जाती है। उसे बन्द करनेके लिए देशमें बैंकिंगकी सुविधाएं बढ़ानेकी आवश्यकता है। साथ ही यह भी आवश्यक है कि विदेशी बैंकोंकी प्रतिद्वंद्वितासे भारतीय बैंकोंकी रक्षा की जाय, उन्हें समुचित संरक्षण और प्रोत्साहन मिले। स्वदेशी विनिमय बैंकों, औद्योगिक बैंकों और कृषि-सहायक बैंकोंका विस्तार आवश्यक है। बैंक पारस्परिक सहयोगसे काम करें और देशके उद्योग, व्यापार और कृषिको प्रोत्साहन देना अपना कर्तव्य मानकर कार्य करें; तभी वे देशकी सर्वांगीण उन्नतिमें सहायक हो सकते हैं।

❀

१८३३ के सरकारी आदेशपत्रके अनुसार ईस्ट इण्डिया कम्पनीने व्यापारका परित्यागकर शासनकी वागडोर अपने हाथमें ले ली।

भारतके मानचित्रमें लाल रंग दिन-दिन बढ़ता चल रहा था। उसके लिए कूटनीतिक युद्ध तो चलता ही था, कभी-कभी रणचण्डीका खप्पर भरनेके लिए सेनाके साथ-साथ धनकी आहुति भी देनी पड़ती थी। फलत: कम्पनीको कभी-कभी घाटा भी रहता। कुछ हिस्सेदार इस घाटेके विपक्षमें थे। उन्हें तो लाभ चाहिये था, साम्राज्य नहीं। ऐसे हिस्सेदारोंको प्रसन्न रखनेके लिए कम्पनी उन्हें 'डिवीडेण्ड' देती। अत: ऋण बढ़ता चला, जिसे ब्रिटिश सरकारने सन् १८७४ में १२ करोड़ रुपया देकर चुकताकर दिया। अपनी जेवसे नहीं, भारतीयोंकी जेवसे !

गदरसे पहले

क्लाइव और हेस्टिंग्सके शासनकालमें कम्पनीकी आर्थिक स्थिति शोचनीय रही। लार्ड वेलेजलीने कम्पनीका प्रदेश भी बढ़ाया और घाटा भी। कम्पनीके डाइरेक्टरोंकी लताड़ पड़ी तो स्थिति सुधारनेकी चेष्टा की गयी, पर नेपाल, पिण्डरी और वर्माकी लड़ाइयोंने लेखाजोखा बराबर कर दिया। १९वीं शताब्दीके पूवार्द्धमें शान्तिकी अपेक्षा युद्धका पलड़ा ही भारी रहा। लार्ड एमहर्स्टका शासनकाल युद्धों और आर्थिक संकटोंमें ही बीता। लार्ड विलियम बैंटिंग घाटा मिटानेमें कुछ सफल हुए, पर अफगान युद्धने उनकी भी कमर ढीली कर दी। १८४९ के बाद ४ सालतक कुछ स्थिति ठीक रही। फिर घाटा आरम्भ हुआ जो गदरके बाद तो खूब ही बढ़ गया।

यह स्थिति देख भारतीय और अंग्रेज दोनों ही सोचने लगे कि द्वैध शासन-प्रणाली अनुपयुक्त और खर्चीली है। हिसाव ऐसे ऊलजलल ढंगसे रखा जाता था जिससे वास्तविकताका कुछ पता ही न चलता

था। वंगाल, मद्रास और वम्बई-तीनों प्रेसिडेन्सियोंका हिसाब पृथक् पृथक् रहते हुए भी एककी अनेक मदें दूसरेमें और दूसरेकी तीसरेमें शामिल रहती थीं। नियन्त्रण-वोर्डके अध्यक्ष सर चार्ल्स वुडने १८५१-५२ का हिसाव पेश करते हुए अगस्त १८५४ में स्वयं यह बात स्वीकार की थी।

३० अप्रेल १८५४ को समाप्त होनेवाले वर्षका जो ऊटपटांग तलपट जुलाई १८५६ में पार्लमेंटकी साधारण सभामें उपस्थित किया गया था, वह इस प्रकार था--

(पौण्डोंमें)

प्रान्त	आय	व्यय	बचत	घाटा
बंगाल	८०,९६,६८२	२,२,००,६४४	३६,७८,८७०	
उत्तर पश्चिम	५६,५६,६६४	१५,७४,१०६		
मद्रास	३३,१५,५१३	३५,३६,३३४		२,२३,८२१
बम्बई	२६.३७,२११	२९,७७,११३		३,४०,९००
	१,९७,०५,०८०	१६२,६०,६३३		३४,१४,१४७

सार्वजनिक ऋणपर व्याज	२१,९५,९७५
होम चार्ज	३२,६२,२८६
	५४,५८,२६४
बचत	३४,१४,१४७
अन्तिम घाटा	२०,४४,११७

इन आंकड़ोंमें बंगाल और उत्तर पश्चिमी प्रान्तका सैनिक व्यय सम्मिलित नहीं है। इन दोनों प्रान्तोंका संयुक्त सैनिक व्यय था— ८७,७४,४८६ पौण्ड।

उस समय सारी आयका अधिकांश लगानसे आता था। उसके बाद अफीमका स्थान था। दोनों लेकर ६० प्रतिशित आय हो जाती

थी। ऊसरकी खेतीसे तथा ब्रिटिश साम्राज्यका विस्तार होनेसे लगानकी आयमें वृद्धि हुई। १९ वीं शताब्दीके आरम्भमें लगानसे ७२ लाख पौण्ड आय थी, जो १८५९ में बढ़ते-बढ़ते १८४ लाख हो गयी। अफीमसे १८१० में ६,९५,६९६ पौण्ड आय होती थी, १८४० में वह बढ़कर १३,४१,०९३ पौण्ड हो गयी और १८५० में ३५,५८,०९४ पौण्ड तथा १८५७-५८ में वह ६४,४३,७०६ पौण्डतक पहुंच गयी। पार्लमेंटमें श्री जान ब्राइड जैसे लोग आयके स साधनको अत्यन्त घृणित बता रहे थे, पर कौन सुनता था! १८३६ में नमक-कर लगने लगा। १८४९-५० में इस मदसे सम्पूर्ण आय ३१,८८,८२,१४६) थी और शुद्ध आय २,७०,३७,५१६) थी। आयात-निर्यात-करसे लगभग १ करोड़ रुपयेको आय थी। आबकारी करका ब्रिटिश शासनमें महत्त्व बढ़ने लगा। विभिन्न व्यवसायोंपर भी कर लिये जाते थे, पर वे सब नगण्य थे।

प्राचीन राजस्व नीति

व्ययमें सबसे मोटा व्यय था—सैनिक व्यय। १८४९-५० में वह कुल आयका ५६ प्रतिशत था। गदरसे पूर्व कई वर्षतक वह इंग्लैंडके सैनिक व्ययको लेकर १२ करोड़ रुपयेके लगभग था। सार्वजनिक ऋणपर ब्याज भी खूब लगता था। १८४६ में वह ढाई करोड़ था, १८५६ में ३॥ करोड़। तामीरातपर गदरसे पहले २०से २५ लाखतक खर्च होता था।

स्पष्ट है कि कम्पनीकी सारी अर्थ-व्यवस्था दोषपूर्ण और भारतकी स्थितिके सर्वथा अनुपयुक्त थी। कम्पनीका शासन भारतको बहुत मंहगा पड़ रहा था। गदरने देशकी आर्थिक स्थिति और अधिक बिगाड़ दी। ब्रिटिश सरकार सोचने लगी कि अब क्या किया जाय[1]।

सन् ५७ का गदर ब्रिटिश कम्पनीके लिए अप्रत्याशित था। उसका सौभाग्य था कि इस अवसरपर उसके पैर उखड़ते उखड़ते रह गये। तब

१—बी० जी० काले: डान आव दि माडर्न फिनान्स, गदर-पूर्व राजस्व।

अवस्था सुधारनेकी दृष्टिसे ब्रिटिश सरकारने शासनकी बागडोर अपने हाथमें ले ली।

गदरके बाद

गदरने देशपर इतना भारी ऋण लाद दिया कि उसपर ५० लाख पौण्ड व्याज ही देना पड़ता था। हिसाव जांचनेकी व्यवस्था सर्वथा असन्तोपजनक थी। कम्पनीकालमें नियन्त्रण वोर्डके अध्यक्ष और १८५८ के वाद भारत-मन्त्री पार्लमेंटमें भारतके आय-व्ययका विवरण उपस्थित करते थे, पर भारतीय असेम्वलीके सामने ऐसी कोई वस्तु पेश न की जाती थी। शासनका जुआ वदलनेसे भी कोई प्रत्यक्ष परिवर्तन दिखाई नहीं पड़ा। श्री जान ब्राइटने ७ मार्च १८५६ को पार्लमेंटकी साधारण सभामें ठीक ही कहा था कि 'नामसे शासन अवश्य वदल गया है, पर सिद्धान्तमें कतई नहीं!' भारतकी आर्थिक-व्यवस्था ज्योंकी त्यों वनी रही।

पार्लमेंटमें इस स्थितिकी कटु आलोचना होने लगी। सुरक्षाके नामपर देशमें अन्धाधुन्ध सैनिक-व्यय किया जा रहा था। मद्रास और वम्वई प्रेसिडेन्सियोंका खर्च वेलगाम हो रहा था। भारत-मंत्रीने यह देख १ अगस्त १८५९ को भारतमें एक अच्छा अर्थशास्त्री भेजनेकी इच्छा प्रकट की। फलतः १८५६ के अन्तमें श्री जेम्स विलसन भारतके प्रथम अर्थ-सदस्यके रूपमें भारत पधारे।

गुलाम भारतका पहला वजट

१८ फरवरी १८६० को जेम्स विलसनने १८६०–६१ का पहला भारतीय वजट भारतीय कौंसिलके सामने पेश किया। यह कौंसिल शुद्ध सरकारी संस्था थी। इसमें गवर्नर जनरल, शासन परिपद्‌के सदस्य, कलकत्ताका प्रधान न्यायाधीश, एक छोटा जज और वंगाल, वम्वई, मद्रास और उत्तर-पश्चिम-प्रान्तका एक-एक प्रतिनिधि था। क्रमशः कौंसिलकी इस अवस्थामें सुधार होता गया।

भारतकी स्थितिका गम्भीरतासे अध्ययन किये विना ही विलसनने अपना यह वजट पेश किया— पौंडोंमें (२४ पेंस=१))

आय		व्यय	
लगान, आवकारी आदि	२,१०,००,५६८	लगान वसूलीका खर्च	७३,१७,८४५
जकात, नमक छोड़कर	२६,८०,७०३	सार्वजनिक ऋणपर व्याज	३०,३५,६६७
नमक-कर	३७,८२,०४९	सैनिक-व्यय भारत और इंग्लैंडमें	१,६४,६५,१६०
अफीम	६०,६६,१२२	जहाजरानी भारत और इंग्लैंडमें	९,२०,३०५
विभिन्न	४१,७६,७३७	नागरिक खर्च	९१,६१,०६०
	३,७७,०६,२०९	विभिन्न	१८,३९,९८१
रेलोंका भाड़ा	३,३०,७००		४,१७,७०,०१८
	३,८०,३६,९०९	रेलोंकी क्षतिपूर्त्ति	५०,०००
घाटा	३७,८३,१०९		४,१८,२०,०१८
	४,१८,२०,०१८		

विलसनने अपने वजट-भाषणमें घाटेकी पूर्तिके लिए सैनिक-व्यय आदिमें कटौती करनेपर तो कम जोर दिया, मनु आदिके उद्धरण देकर आय-कर वढ़ानेपर विशेप जोर दिया। वर्कका उद्धरण देते हुए कहा कि 'किसीपर कर लगाना और उसे प्रसन्न रखना उतना ही कठिन है, जितना प्रेम करना और वुद्धिमान भी वने रहना!'

आपने अस्थायी और स्थायी दोनों प्रकारके करोंकी सिफारिश की। आयात-निर्यात-करके सम्वन्वमें आपकी नीति पुरानीही थी। चायपरसे कर उठा दिया गया। कारण, यह व्यापार अविकतर युरोपियनोंके हाथमें था और चायका निर्यात मुख्यतः व्रिटेनको ही होता था।

विलसनने भारतकी आर्थिक स्थिति जितनी बुरी बतायी थी, वस्तुतः वह उतनी बुरी न थी। गदरका भारी खर्च बिना समझे-बूझे भारतीयोंपर न लादा जाता तो आय-व्ययका जोड़तोड़ बैठाना कठिन न होता। सर जार्ज लेविस, सर अर्सकिन, पेरी आदिने विलसनसे गोरी फौजोंका खर्च कम करने और गदरका भार भारतीयोंपर न डालनेकी जोरदार सिफारिश की। जान ब्राइटने कहा कि 'अफगान युद्धका खर्च और ब्रिटिश सरकारकी दूषित नीतिके कारण लिया गया ऋण भारत-पर लादना सर्वथा अनुचित है। गदरका ४ करोड़ खर्च भारतके लिए असह्य हो जायगा।' सिविल सर्विसके विषयमें नियंत्रण बोर्डके अध्यक्ष श्री वर्नन स्मिथने १८५६ में स्वयं कहा था कि 'मैं नहीं समझता कि २० सालके युवकको और कहीं किसी नौकरीमें घुसते ही ३५० पौंड मिलने लगता हो, जो बढ़ते-बढ़ते ४००० पौंडतक जा पहुँचता हो!' पर विलसनकी दृष्टिमें यह खर्च संसारमें सबसे कम था!

जनताने ही नहीं, प्रान्तीय सरकारोंने भी करके प्रस्तावोंका विरोध किया। मद्रासके गवर्नरने लिखा कि मनुके उद्धरणोंसे काम न चलेगा, जनता प्रत्यक्ष-करका तीव्र विरोध करेगी। भारत सरकारने इसके लिए गवर्नरोंकी भर्त्सना की। जनताकी सुननेवाला कौन था? कौंसिल केवल एक तमाशा थी। उसमें कलकत्ता हाईकोर्टके जज सर चार्ल्स जैकनके यह प्रश्न करनेपर कि सरकार कितनी सेना रखना चाहती है, भारत सरकारके प्रतिनिधि श्री हेरिंगटन उनसे बुरी तरह बिगड़ गये। ऐसी मदाखलत बेजा? ऐसी गुस्ताखी![1]

तब किसी और की क्या हिम्मत हो सकती थी!

विलसनने नौ मासके अपने कार्यकालमें भारतकी आर्थिक स्थितिको वैज्ञानिक ढंगपर सुधारनेकी चेष्टा की। विनिमय, मुद्रा, बैंक आदि

१—वी० जी० काले : डान आव दि माडर्न फिनान्स।

स्थितिमें भी आपने कुछ सुधार किया। आपके उत्तराधिकारी सेमुएल लैंगने सैनिक खर्चमें कटौतीका निश्चय किया। फलतः १८५९ से ६० हजार फौजी पुलिस हटा दी गयी और २,८४,००० देशी सैनिकोंकी संख्या कम करके १,४०,००० कर दी गयी। गोरी सेना नहीं हटायी गयी, फिर भी ३५ लाख पौंडकी बचत हो गयी। १८६०-६१ में होमचार्ज ७७ लाख पौंड था जो १८६१-६२ में २५ लाख पौंड कर दिया गया। आप मुक्त-व्यापारके भक्त थे। अतः आपने वही नीति रखी जिसके कारण अधिकसे अधिक कच्चा माल ब्रिटेन पहुँच सके और वहाँके तैयार मालसे भारतका बाजार पट जाय।

विलसनके बाद

क्रमशः राजस्वका विस्तार हुआ। आयके साधन बढ़े, व्यय भी बढ़ा। लगान और अफीमके अतिरिक्त जकात, आयकर भी लाभदायक सिद्ध होने लगे। समय-समयपर होनेवाले वैधानिक सुधारोंका भी यहाँकी राजस्व-स्थितिपर प्रभाव पड़ा। पर ब्रिटेनकी शोषणकी नीति ज्योंकी त्यों बनी रही।

राजस्वका विस्तार

आरम्भमें बम्बई, बंगाल और मद्रास प्रेसिडेन्सियाँ स्वतंत्रतापूर्वक अपना काम करती थीं। उनके गवर्नर सीधे भारत मंत्रीके प्रति उत्तरदायी थे। उन्नीसवीं शताब्दीके परार्द्धमें यह स्थिति बदली और सारी शासन-सत्ता केन्द्रीय सरकारके हाथमें आ गयी। कोई भी प्रान्त उसकी अनुमतिके बिना एक दमड़ी खर्च न कर सकता था।

प्रथम विश्वयुद्धके पूर्व भारतके लिए केवल एक बजट बनता था। १९१६ से केन्द्रीय बजटसे प्रान्तीय बजट पृथक् कर दिये गये। १९२८-२९ तक केन्द्रीय सरकार प्रान्तीय सरकारोंसे कुछ निश्चित रकम अपने कार्य-संचालनके लिए लेती रही। आयके अच्छे साधन केन्द्रीय सरकारके हाथमें थे, प्रान्तीय सरकारोंके पास भूमिकर, आबकारी जैसे कम लाभदायक साधन थे।

विश्वयुद्धके उपरान्त

साइमन कमीशनकी लेटन रिपोर्ट और गोलमेज परिषद्‌की संघीय राजस्व उपसमिति तथा पर्सी कमेटीकी सिफारिशोंके आधारपर १९३५ के भारत शासन विधानमें केन्द्रीय सरकारको कर लगानेके कुछ विशेष अधिकार दे दिये गये। जैसे, कृषिकी भूमिके अतिरिक्त अन्य सम्पत्तिपर उत्तराधिकार-कर, स्टाम्प-कर, रेलगाडी और विमान-यात्रापर कर, आयकर आदि। इनमेंसे सम्बन्धित क्षेत्रोंको आयकी रकम बाँटनेका नियम रखा गया। नमक-कर, आबकारी और जकातकी वसूलीका अधिकार केन्द्रीय सरकारको मिला। जूटके निर्यात-करमें कमसे कम आधी रकम उत्पादक प्रान्तोंको देनेका विधान था। १९१९ के सुधारोंके बाद केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारोंके आयके मुख्य स्रोतोंका इस प्रकार विभाजन कर दिया गया था—

केन्द्रीय सरकार—अफीम, नमक, जकात, आयकर, डाकतार, सेना।
प्रान्तीय सरकार—लगान, सिंचाई, स्टाम्प, रजिस्ट्री, आबकारी, जंगल।

१९३५ के भारत शासन विधानके अनुसार प्रान्तोंको स्वशासन प्रदान करनेके पूर्व आर्थिक स्थितिपर गम्भीरतासे विचारकर उपयुक्त

निमियर रिपोर्ट

सुझाव देनेके लिए भारत मंत्रीने सर ओटो निमियर-को नियुक्त किया। अप्रैल १९३६ में आपकी रिपोर्ट प्रकाशित हुई। सरकारने उसे स्वीकार कर लिया और १ अप्रैल १९३७ से प्रान्तीय स्वशासनकी घोषणा कर दी।

निमियर रिपोर्टमें प्रान्तीय सरकारोंको त्रिविध सहायताका विधान रखा गया—(१) युक्तप्रान्त, आसाम, उड़ीसा, सीमाप्रान्त और सिन्ध जैसे प्रान्तोंको नकद आर्थिक सहायता ; (२) कुछ प्रान्तोंके १ अप्रैल १९३६ के पहलेके ऋणोंको रद कर देना (३) जूट उगानेवाले बंगाल, आसाम तथा बिहार प्रान्तोंको जूट-करमेंसे १२॥ प्रतिशत देना। आय करसे १२ करोड़ वार्षिक आयका अनुमान किया गया। आरम्भमें ५ वर्षतक इसमेंसे प्रान्तोंको कुछ न देनेका निश्चय किया गया।

इसके वाद इसमेंसे आवा निम्न प्रतिशतके हिसावसे प्रान्तोंको देनेका निश्चय हुआ—मद्रास १५, वम्वई २०, वंगाल २०, युक्तप्रान्त १५, पंजाव ८, विहार १०, मध्यप्रान्त ५, आसाम २, सीमाप्रान्त १, उड़ीसा २, सिंव २।

सरकारी नीति

सरकारका कोई भी वजट उठाकर देखनेसे यह वात सिद्ध हो जाती है कि जवसे भारतमें अंग्रेजी राजकी नींव पड़ी तभीसे भारतका शोषण करना ब्रिटेनकी नीति वन गयी। १९२५–२६ का ही उदाहरण ले लीजिये। इसमें केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारका हिसाव सम्मिलित है—

मद		प्रतिशत
सार्वजनिक ऋण	२१,६२,०९,००६)	१५.२
सेना	५५,९१,८५,६५४)	३९.५
नागरिक शासन	५५,४४,३३,२८७)	३९.२
विभिन्न	८,७०,६०,५३५)	६.१
योग	१४१,७६,८८,७८५)	१००.०

नागरिक शासन

मद	लाख रुपया	प्रतिशत
साधारण शासन	१२,४६	८.९
आर्डर	८४	.५८
न्याय	४,६९	३.३१
जेल	१,९४	१.३८
पुलिस	११,६९	८.२
वन्दरगाह	३१	.२१
धर्म	३२	.२२
राजनीतिक	३,३७	२.४
वैज्ञानिक	८६	.६

शिक्षा	१०,६६	७.६
चिकित्सा	३,२०	२.२८
सार्वजनिक स्वास्थ्य	१,८१	१.२५
कृषि	१,७६	१.२४
उद्योग	१,३०	.९२
विभिन्न	१७	.११
योग	५५,४४	३९.२०

भारतकी ९३.७ प्रतिशत रकम ऋण, सेना और शासनकी व्यवस्थामें ही उड़ जाती है, जब कि अमेरिका जैसे देश इन मदोंमें ४८.८ प्रतिशत ही खर्च करते हैं और १६.५ प्रतिशत शिक्षा, पर तथा इसी प्रकार पर्याप्त रकम अन्य विधायक मदोंमें खर्च करते हैं।[1] भारतमें शिक्षा आदिपर जो थोड़ीसी पूँजी खर्च की जाती है उसमें भी बड़ी धाँधली चलती है। भारतकी युरोपियन जनतापर २५) प्रति व्यक्ति व्यय किया जाता है जब कि देशके निवासियों—भारतवासियोंपर केवल ।) प्रति व्यक्ति ![2] सन् १९२२ के विभिन्न देशोंके आँकड़े एकत्रकर प्रोफेसर के० टी० शाहने निष्कर्ष निकाला है कि भारतमें सबसे अधिक सैनिक-व्यय होता है—

रक्षा व्यय

भारत	६३.८ प्रतिशत	कनाडा	२४.२ प्रतिशत
ब्रिटेन	५३.७ ,,	फ्रांस	२०.२ ,,
जापान	४९.० ,,	स्पेन	१७.६ ,,
आस्ट्रेलिया	४८.३ ,,	इटली	१७.३ ,,
अमेरिका	३८.२ ,,	दक्षिण अमेरिका	५.२ ,,

१—दि कास्ट आव दि गवर्नमेण्ट आफ दि युनाइटेड स्टेट्स, १९२५–२६, पृष्ठ १८।

२—कुमारप्पा : पब्लिक फिनान्स एण्ड अवर पावर्टी, १९४५, पृष्ठ १८।

देशकी सुरक्षाके नामपर भारतको आरम्भसे ही गोरी सेना पालनी पड़ी है और इसपर अकूत धन वर्बाद करना पड़ा है। सात समुद्र

सफेद हाथी

पार बैठकर मौज मारनेवाली सेनाका भी भार भारतको वहन करना पड़ा है। ब्रिटिश साम्राज्यकी रक्षाका भी भार तो आखिर भारतने ही लिया था ! ब्रिटिश शासनसे मुक्त होनेपर अब यह सफेद हाथी भारतसे विदा ले रहा है !

ब्रिटेन तथा भारतमें रहनेवाली गोरी सेनाके वेतन, भोजन, मकानके व्ययके अतिरिक्त भारतको उसके लिए एक भारी खर्च और

केपिटेशन खर्च

उठाना पड़ता रहा है—'केपिटेशन' खर्च। इसमें सैनिकोंकी भर्ती, शिक्षा, आवागमन आदिका खर्च सम्मिलित है। गोरे सैनिक दस साल रहते थे, १८०० में उनका कार्य-काल ७ साल और फिर ५ साल कर दिया गया। इससे हर पाँचवें साल दूना खर्च हो गया। आवागमन-व्यय भी दूना।

केपिटेशनका खर्च १८६१ में १० पौंड प्रति व्यक्ति लिया जाता था। १८६१ से १८६६ तक एक मुश्त ६,३१,३४४ पौंड और १८७७–७८ तक एक मुश्त ४,४०,००० पौंड लिया जाता रहा। नार्थब्रुकने प्रति व्यक्ति ७॥ पौंड निश्चित किया। मृत्यु और पेंशनके समयकी रकम अलग रखी गयी। ब्रिटिश युद्ध-विभाग ने १९०६ में उसे बढ़ाकर ११ पौंड ४ शि०, १९२० में २८ पौंड १० शि० कर दिया। वहुत हाथ जोड़नेपर १९२२ में २५ पौंड १५ शि० प्रति सैनिक किया। भारत सरकार बारबार इस भारी खर्चका विरोध करती रही, पर सुनता कौन ? सैकोम्बी कमीशन (१८६९–७२), वोवेरी कमेटी (१८७४–७५), नार्थब्रुक कमीशन (१८८९–९२), वेल्बी कमीशन (१८९६–१९००), रोमर कमेटी (१९०७–८) ने इसपर विचार किया। १९२७ में जहाजी भाड़ेपर विचार करनेके लिए लार्ड केव पंच नियुक्त हुए, पर स्थितिमें कोई सुधार नहीं हुआ। तब प्रधान-मंत्री रेमजे मेकडानेल्डने

एक ट्रिब्यूनल नियुक्त किया, जिसमें वहुमत अंग्रेजोंका था। भारतकी ओरसे वोलनेवाले केवल दो प्रतिनिधि थे—सर शादीलाल और सर शाह मुहम्मद सुलेमान। इन दोनोंने भारतीय पक्षकी पैरवी तो खूब की; परन्तु वहुमतने उनकी तर्कसंगत माँगें ठुकरा दीं। भारतकी ओरसे की गयी यह दलील सुनी ही न गयी कि ब्रिटेन समर्थ और शासक है, भारत असमर्थ और पराधीन, अतः ब्रिटेन उदारता दिखाये। वहुमत वोला—'उदारता दिखाये युद्ध विभाग, हम पंचोंको उससे क्या!' कहा गया कि अन्य देश जहाँ २०, २५ प्रतिशत ही सेनापर खर्च करते हैं, भारतको ४५ प्रतिशत खर्च करना पड़ता है, जिससे लोकोपयोगी कार्योंके लिए पैसा नहीं वचता। जवाव मिला—'सेना कोई भोग-विलासकी वस्तु है जो अन्य मदोंसे मुकावला किया जाय?' भारत सरकारकी मांग थी कि—

१—भारतसे केवल अतिरिक्त व्यय लिया जाय।

यह मांग स्वीकार करली गयी।

२—१२ महीने शिक्षण-अवधि वहुत है, ६ मास ही पर्याप्त है।

९ मास अवधि स्वीकार की गयी।

३—इंग्लैंडको ५ साल वाद शिक्षित सेना मिलती है, अतः उसे खर्च देना चाहिये।

ट्रिब्यूनलने यह सिद्धान्त एक सीमातक माना।

४—जहाजी किराया इंग्लैंड केवल १,३०,०७० पौंड वार्षिक दे रहा है, यद्यपि खर्च वढ़ गया है। लार्ड केवने १९२७ तक वढ़ानेका निर्णय दिया था। ब्रिटिश युद्ध-विभाग देनेसे इनकार करता था। भारतका कहना था कि १० के वजाय ५ साल अवधि कर देनेसे खर्च दूना हो गया है। अतः देना चाहिये।

यह मांग मंजूर कर ली गयी।

५—हवाई सेना के वारेमें अतिरिक्त व्यय लिया जाय।

यह माँग अस्वीकार करदी गयी।

भारतकी जो मागें मंजूर की गयीं उनसे २ करोड़की बचत हुई। ६ मास शिक्षाकाल माना जाता, भारतकी गोरी सेनाका साम्राज्यके लिए अस्तित्व माना जाता, पांच सालके बजाय सैनिकोंका कार्यकाल बढ़ा दिया जाता और अतिरिक्त-व्ययका सिद्धान्त स्वीकार किया जाता तो ४ करोड़का और लाभ होता। वह फैसला अप्रैल १९३३ से लागू हुआ।

युद्धकाल में रक्षा-व्यय

युद्धकालमें भारतमें अन्धाधुन्ध रक्षा-व्यय हुआ। १९३८-३९ में वह ४६.१८ करोड़ रुपया था जो १९४४-४५ के संशोधित बजटके अनुसार ३९७.२३ करोड़ रुपये-तक पहुँच गया। यह आठ गुनी वृद्धि देखने योग्य है। प्रति वर्षके आंकड़े इस प्रकार हैं—

सन्	वास्तविक रक्षा व्यय
१९३८–३९	४६,१८,००,०००)
युद्धकाल	
१९३९–४०	४९,५४,००,०००)
१९४०–४१	७३,६१,००,०००)
१९४१–४२	१०३,९३,००,०००)
१९४२–४३	२१४,६२,००,०००)
१९४३–४४	३५८,४०,००,०००)
१९४४—४५ (संशोधित)	३९७,२३,००,०००)
	११,९७,२३,००,०००)

युरोपीय युद्धकी अवधिमें कुल रक्षा-व्यय ११,९७ करोड़ रुपया हुआ। युद्धसे पूर्वके व्ययको देखते हुए इस कालमें व्यय केवल २७७ करोड़ रुपये होना चाहिये था। पर भारत, पराधीन भारत लाचार था। एक कौड़ीकी भी कमी करनेकी उसमें सामर्थ्य न थी!

नागरिक शासनपर भारतमें अमेरिकासे ५ गुना पैसा खर्च किया जाता है। रेमजे मेकडानेल्डके शब्दोंमें यह निर्विवाद है कि भारत

नागरिक शासन

सरकार भारतीयोंके लिए बड़ी मँहगी पड़ती है पर विदेशी सरकारसे और आशा ही क्या की जा सकती है ?[१] भारतीय सिविल सर्विसपर जैसा पानीकी तरह पैसा बहाया जाता रहा है, वह किसीसे छिपा नहीं है। न्यूयार्कके गवर्नरको जितना वेतन मिलता है वह वहाँके नागरिककी औसत आयसे केवल १४ गुना होता है जब कि बम्बईमें गवर्नरको दिया जानेवाला वेतन बम्बईके नागरिककी औसत आयसे २४०० गुना होता है ![२]

रेलोंपर भारी व्यय

रेलोंपर मुख्यतः सैनिक दृष्टिसे सरकार कितना अधिक पैसा खर्च करती रही है, उसकी रेल-भाड़ेकी नीति कैसी भेदपूर्ण तथा दूषित रही है, भारतसे कच्चा माल इंग्लैंड ले जाने और वहाँके तैयार मालसे यहाँका बाजार पाटनेकी उसकी जैसी सतत चेष्टा रही है, इसकी चर्चा की जा चुकी है। भारतको नष्ट करनेमें रेलोंका प्रमुख हाथ रहा है।[३]

मुद्रा और विनिमय

मुद्रा और विनिमय सम्बन्धी सरकारकी दूषित नीतिकी भी चर्चा की जा चुकी है। इस दिशामें सरकार जिस नीतिका समय-समयपर आश्रय लेती रही है, उसमें भारतीयोंका आर्थिक हित कम रहा है, अंग्रेजोंका अधिक। भारतके महाजनका पद पाकर सरकारको ऐसा नहीं करना चाहिये था।[४]

१—रेमजे मैकडानेल्ड: दि गवर्नमेंट आव इंडिया, पृष्ठ १४५–४७।

२—वही, पृष्ठ १४८–१४६।

३—विलियम डिगवी: दि रिउनिंग आव इंडिया, पृष्ठ ६।

४—वाडिया और जोशी: मनी एँड मनी मार्केट इन इंडिया, पृष्ठ २५०।

ब्रिटिश शासनसे पूर्व भारतमें सार्वजनिक-ऋण जैसी कोई वस्तु न थी। क्लाइवने भारतको लूटकर युरोपका खजाना भरा। इसी लूट-का परिणाम था कि १७५० में जहाँ इंग्लैंडमें

ऋण

मुश्किलसे १२ वैंक थे, १७९० में प्रत्येक नगरमें वैंक दिखाई पड़ने लगे![1] प्लासी और वाटरलूके युद्धोंके बीच भारतसे एक अरव पौंड ब्रिटिश वैंकोंमें पहुँच गये।[2] ऐसी स्थितिमें ऋणका प्रश्न ही कहाँ उठता है? पर जमाना वदलता चल रहा था। यह खुली लूट टीका-टिप्पणीका विषय वनती जा रही थी। तव ब्रिटेनके आला-दिमागोंने इसे सार्वजनिक ऋणका जामा पहनाया। कांग्रेस रिपोर्टके अनुसार उसके आंकड़े इस प्रकार हैं—

सन्	कारण		रकम करोड़ रुपयोंमें
१८५७ से पूर्व	ईस्ट इंडिया कम्पनीके वाहरी युद्ध	३५	५०.१२
	कम्पनीकी सम्पत्तिपर व्याज	१५.१२	
१८५७	गदरका खर्च		४०.०
१८७४	कम्पनीकी सम्पत्तिपर व्याज	१०.०८	२२.०८
	कम्पनीकी क्षतिपूर्ति	१२.००	
१८५७—१९००	वाहरी युद्धोंका खर्च		३७.५
१९१४—२०	युरोपियन युद्ध-सौगात	१८६	३५९.०
	,, मूल्य	१७०	
१८५७—१९३१	विभिन्न व्यय	२०	१०२.०
	वर्मा संवंधी व्यय	८२	
१९१६—२१	उलटी हुंडियोंके कारण हानि		३५.०
	रेलवे कम्पनियोंको किस्त		५०.०
१९१६-१९२१	सैनिक रेलोंका व्यय		३३.०
		योग	७२८.७ करोड़

१—ब्रुक्स एडम्स: ला आव सिविलिजेशन ऐंड डिके, पृष्ठ ३१६।
२—विलियम डिगवी: प्रासपरस ब्रिटिश इंडिया, पृष्ठ ३३।

इसमें सैनिक-व्यय आदि सम्मिलित नहीं है। उसे तथा गलतीसे चुकाये व्याजको इसमें शामिल कर देनेपर यह रकम १८०५ करोड़से ऊपर हो जाती है।[1]

इस ऋणकी स्थितिका अनुमान इन आँकड़ोंसे किया जा सकता है—

३१ मार्च १९२९		करोड़ रुपये	३१ मार्च १९४२	करोड़ रुपये
ऋण	३६८.२९			
सरकारी हुंडी	४९.६५	४१७.९४	ऋण भारतमें	९४२.२९
प्रावीडेन्ट फंड, पोस्ट आफिस सेविंग बैंक आदि		९४.५५	इंग्लैंडमें	१८०.०
इंग्लैंडमें		५१३.२०		
योग		१०२५.६९		११२२.२९

द्वितीय विश्वयुद्धमें विजय प्राप्त करनेके लिए ब्रिटेनको साधन-सामग्रीकी भारी आवश्यकता थी। खर्चके मारे उसका दिवाला निकलने जा रहा था। उसने पराधीन भारतको जबरन युद्धमें घसीटा। उसके धन, जन और साधन-सामग्रीका खुलकर उपयोग किया। करोड़ोंका गल्ला तथा अन्य उपयोगी वस्तुएँ वह यहांसे खींच ले गया और भारतके नाम उसने 'स्टर्लिंग सिक्यूरिटी' नामका आकर्षक खाता खोल दिया। भारतके अनुकूल व्यापारिक संतुलन, भारतमें ब्रिटिश सरकारके युद्ध-व्यय तथा अमेरिका तथा अन्य मित्र-राष्ट्रोंकी ओरसे किये गये व्ययके फलस्वरूप पौंड पावनेकी रकम इस प्रकार बढ़ती गयी—

पौंड पावना

तारीख	करोड़ रुपया	तारीख	करोड़ रुपया
२४ अक्तूबर १९४१	२१६	२६ अक्तूबर १९४५	१,५८२
२३ ,, १९४२	४१३	२५ ,, १९४६	१,६३१
२९ ,, १९४३	८१५	२० दिसम्बर १९४६	१,६२२
२७ ,, १९४४	१,१६६		

१—कुमारप्पा : पब्लिक फिनान्स एंड अवर पावर्टी, पृष्ठ ५० ।

आर्चिवाल्ड रोलैण्ड्स आदिके आश्वासनके वावजूद ब्रिटेन भारतके गाढ़े पसीनेकी कमाई, इस १७ अरबकी रकमको हड़पने अथवा वहुत दिनोंमें धीरे-धीरे देनेके फेरमें है। यह रकम यथाशीघ्र भारतको पूरी-पूरी वापस मिलनी चाहिये और इसका अधिकतम उपयोग भारतके ग्रामोंमें सिंचाई आदिकी व्यवस्थामें होना चाहिये। भारतमें लगी ब्रिटिश पूँजीमें उसे वदल लेना भी अच्छा रहेगा।

आयके स्रोत केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारों के आयके साधन, खर्च निकालकर इस प्रकार हैं। निम्नलिखित आंकड़े सन् १९२५-२६ के हैं—

मद	वसूलीका खर्च	रकम
जकात	१·७ प्रतिशत	४५,६६,१८,०१७)
आयपर कर	३·६ ,,	१५,५३,३२,१३४)
नमक	१९·७ ,,	५,०७,६०,६१९)
अफीम	५०·८ ,,	२,०३,५२,४३७)
भूमिकर	११·६ ,,	३१,४३,७९,३२४)
आवकारी		१७,२६,१३,६४१)
स्टाम्प		१३,२८,५२,२०५)
जंगल		२,६०,३१,०२६)
रजिस्ट्री		७८,१४,६७६)
कर		८४,२९,४८२)
निर्धारित कर		३४,७८,२१०)

	आय	व्यय	
रेलें	३४,४३,४०,७५९)	२८,८२,१७,७८७)	५,६१,२२,९७२)
आबपाशी	३,७४,९४,५४९)	१,३५,९०,५२५)	२,३९,०४,०२४)
डाकतार	८६,३५,२२०)	५०,६८,१३४)	३५,६६,०८५)
व्याज			६,५६,०२,९३९)
मुद्रा,टकसाल	४,६३,८९,१०१)	७०,११,४१३)	३,९३,७८,६८८)
असाधारण	२,१८,६९,२०२)	२६,३४,७१९)	१,९२,३४,४८३)
		योग	१,५६,८८,००,९६८)

होना तो यह चाहिये था कि भारतमें सरकारी आयके स्रोत ऐसे होते जिनका कमसे कम भार यहाँकी गरीब किसान जनतापर पड़ता और जीवनके लिए अनिवार्य पदार्थोंपर न्यूनतम भार पड़ता परन्तु यहाँ तो उल्टी ही बात रही है।

जकात

जकातसे भारतको बहुत कम आय होती है। इसके लिए ब्रिटेनकी मुक्त-व्यापार नीति और साम्राज्यान्तर्गत रियायतकी नीति विशेष रूपसे उत्तरदायी है। निर्यात और आयातकर निर्धारित करते समय ब्रिटेनका हित सदा पहले देखा गया है। पादरी हालैंडके अनुसार 'भारतके मत्थे ब्रिटेनकी समृद्धि करना ही सरकारका मूल उद्देश्य रहा, पर भारत सरकारको भारतके हितकी पहले चिन्ता करनी चाहिये थी, ऐसा न कर उसने देशके प्रति विश्वासघात किया"[१]।

आय कर

यद्यपि विश्वमें सर्वत्र ही आय-कर अच्छी प्रगति कर रहा है पर भारतमें इससे जितनी आय होनी चाहिये, नहीं हो पाती। १९४७-४८ के बजटके अनुसार २५००)वार्षिक आय तकके व्यक्ति इस करसे मुक्त कर दिये गये हैं। आय ज्यों ज्यों बढ़ती जाती है, उसी क्रमसे आय-कर भी बढ़ता जाता है। भारत सरकार

१—हालैंड: दि इंडियन आउटलुक, पृष्ठ १५६, १५८।

इंग्लैंडमें लिये गये ऋणपर भारी व्याज चुकाती है पर उसे उसपर आय-कर लेनेका अधिकार नहीं। शाह और खम्भातके कथनानुसार इससे भारत सरकारको २ करोड़की आय हो सकती है।[1] जमीदारों-पर कर लगानेसे १० करोड़की आय हो सकती है। विदेशी व्यापारी यहाँसे मालामाल होकर ब्रिटेन लौट जाते हैं और भारतको करकी एक दमड़ी नहीं देते! पूँजीपति भी अधिकारियोंको मिलाकर, दोहरे वही खाते रखकर सरकारकी आँखमें धूल झोंकते हैं। युद्धकालमें इस स्रोतका कुछ अच्छा उपयोग किया गया, अतिरिक्त आयकर आदि लगाकर। विभिन्न करोंसे १६३८-३६ में जो आय १७ करोड़ थी वह १९४४-४५ में २१० करोड़ हो गयी।

नमक कर

गरीवोंके पेटपर प्रत्यक्ष प्रहार करनेवाले नमक-करके अनौचित्यपर कुछ भी कहनेकी आवश्यकता नहीं। आरम्भसे ही भारतीय नेता इसका तीव्र विरोध करते आये हैं। महात्मा गांधीके डंडी सत्याग्रहका श्रीगणेश इसी समस्याको लेकर हुआ परन्तु इसको उठानेके लिए सरकार तैयार न हुई तो न ही हुई। १८१२ में यह कर २) मन था, १८८८ में २॥) मन। १६०३ से यह कुछ घटा। १९३१ से १।) मन अथवा 'सर चार्ज' लेकर १॥‑) मन कर दिया गया। आठ-नौ करोड़की इसकी आयका त्याग करनेके लिए सरकार किसी भी प्रकार तैयार न हुई। जब भारतकी पहली राष्ट्रीय सरकार वनी तव महात्मा गांधीकी इच्छा पूरी हुई और घोषणा की गयी कि सरकारने नमक-कर उठा लेनेका निश्चय किया है।

अफीम

आयके स्रोतोंमें पहले अफीमका प्रमुख स्थान था। इससे लगभग ८ करोड़की आय होती थी पर १६०७ में चीन सरकारसे समझौता होनेपर, वहाँ अफीम भेजना कम कर दिया गया। १६२६ में घोषणा कर दी गयी कि अफीमका निर्यात कतई नहीं होगा, केवल औषधिके लिए ही थोड़ी-बहुत अफीम

१—शाह खम्भातः दि वैल्थ ऐंड टैक्सेबुल कैपेसिटी आव इंडिया, पृष्ठ २७७।

भेजी जा सकेगी। देशमें आज भी अफीमचियोंकी कमी नहीं। उनसे सरकारको ७५ लाखके लगभग आय हो जाती है।

१९३९-४० में ब्रिटिश भारतका कुल भूमिकर २७ करोड़ ३५ लाख हुआ था। इसमें सन्देह नहीं कि ब्रिटिश सरकारने किसानोंपर जो

भूमिकर

भूमिकर लाद रखा है वह उनकी सामर्थ्यके बाहर है। श्री ब्लंटने ठीक ही लिखा था कि भूमिकर किसानोंको ब्रिटिश शासनकी निष्कृष्टतम देन है। उसने इस बातकी आशंका बहुत बढ़ा दी है कि प्रजा भूखों मरकर प्राण दे।[1] बंगालका भयंकर दुर्भिक्ष इसका सबसे बड़ा प्रमाण है।

देशकी संस्कृति, सभ्यता और सदाचारपर पानी फेरनेवाला सरकारी आयका यह स्रोत उसके लिए बड़ा लाभदायक सिद्ध हुआ है।

आबकारी

१९३९-४० में इस मदसे १२ करोड़ २९ लाखकी आय हुई थी। देशी शराबकी बिक्रीसे सर्वाधिक आय होती है। कांग्रेसी मंत्रिमंडलोंने १९३७ में पद-ग्रहण करते ही मद्य-निषेध योजना आरम्भ की। १९३९ में युद्ध छिड़ते ही भारतके जबरन उसमें घसीट लिये जानेके विरोधमें कांग्रेसी सरकारोंने जैसे ही पद-त्याग किया, गवर्नरी शासन आरम्भ हो गया और उसने इस स्रोतसे अधिकाधिक लाभ उठाना आरम्भ कर दिया। कांग्रेसने पुनः पदारूढ़ होनेपर मद्य-निषेध योजना आरम्भ कर दी है।

महकमा जंगलातसे आय करते समय सरकार गरीबोंके प्रति बड़ा रूखा व्यवहार करती है और उनकी आवश्यकताओंपर कोई ध्यान

अन्य स्रोत

नहीं देती। १९४५-४६में रेलोंने साधारण राजस्वके खातेमें ३.३२ करोड़की रकम दी, सुरक्षित कोषमें ६ करोड़ २० लाख रुपया रखा और यात्रियोंसे तथा यातायातसे २,२५,७४,००,०००) वसूला जिसमें सबसे अधिक भाग तीसरे दर्जेके

१— डब्ल्यू० एस० ब्लंट: इंडिया अंडर रिपन, पृष्ठ २४५-४६।

यात्रियोंका था, परन्तु दुःखकी वात यही है कि उन्हींको सवसे अधिक कष्ट भुगतना पड़ता है ! सिचाईकी भारतको सवसे अधिक आवश्यकता है पर सरकार सदासे उसे उपेक्षाकी दृष्टिसे देखती रही है। सर डेनियल हेमिल्टनने ठीक ही कहा है कि रेलों द्वारा सरकार भारतीय किसानका गल्ला उससे छीन ले जाती है, साहूकार और व्यापारी उसका पैसा खींच ले जाता है और मरनेके लिए वेचारा किसान रह जाता है ![1]

प्रान्तोंका आय-व्यय

विभिन्न प्रान्तोंका आय-व्यय कितना रहा है इसका अनुमान इन आँकड़ोंसे किया जा सकता है— (लाख रुपयों में)

	१९४२-४३		१९४६-४७	
प्रान्त	आय	व्यय	आय	व्यय
मद्रास	१८,९८	१८,९४	५७,४३	५७,४३
वम्वई	१५,१८	१५,१७	३०,९५	३०,९०
वंगाल	१५,७०	१६,७५	३१,७९	३१,७६
युक्तप्रान्त	१७,१२	१७,०८	२९,१५	२९,४४
पंजाव	१३,५४	१३,६४	२१,३०	२०,८३
विहार	६,४३	५,८०	१३,६२	१३,६०
मध्यप्रान्त	५,२६	५,२३	९,४८	९,४७
आसाम	३,१९	३,१७	५,१६	५,०५
सीमाप्रान्त	१,९७	१,९०	२,६४	२,६९
उड़ीसा	१,९७	१,९७	३,५८	३,९२
सिंध	४,८१	४,९६	८,०३	८,००
	१०४,१५	१०४,६७	२१३,१३	२१३,०९

१—डी० हैमिल्टन: इंडिया—हर प्रेजेन्ट एण्ड फ्यूचर, कलकत्ता रिव्यू, जुलाई १९१६, पृष्ठ २९५।

इसी आयके भीतर, केन्द्रीय सरकारकी सहायता लेकर प्रान्तीय सरकारें काम चलाती हैं। करोंकी वसूली, शान्ति और सुरक्षाकी व्यवस्थामें ही उन्हें इतना पैसा खर्च कर देना पड़ता है कि शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि, उद्योग आदि राष्ट्र-निर्माणकारी कार्योंके लिए उनके पास पर्याप्त पैसा ही नहीं बच पाता! कांग्रेसी सरकारें फिर भी इस बातकी पूरी चेष्टा करती हैं कि लोकोपयोगी कार्योंपर अधिकसे अधिक खर्च किया जाय। युक्तप्रान्तका १९४७-४८ का बजट ले लीजिये—

आय ४०,१३,२०,४००)

व्यय ४०,६०,४६,१००)

घाटेकी पूर्ति तथा अन्य जनोपयोगी कार्योंके लिए सरकार कृषिपर आय-कर लगायेगी और मनोरंजन-करमें वृद्धि करेगी जिससे क्रमशः डेढ़ करोड़ तथा ११ लाखकी आय होगी। सरकारने कृषि, उद्योग और शिक्षाके प्रसारके लिए फिर भी क्रमशः ४० लाख, १०२ लाख और ४० लाख रुपया देनेका निश्चय किया है। दवादारूके लिए ८८ लाखकी व्यवस्था है।

इसके अतिरिक्त बिजली-प्रसारके लिए, मोटर कम्पनियोंमें पूंजी लगानेके लिए तथा अनेक इमारतों तथा सड़कोंके निर्माण आदिके लिए भी बजटमें लाखों रुपये रखे गये हैं। बजटमें सात जिलोंमें मद्य-निषेध योजनाकी भी व्यवस्था है, जिसके लिए सरकार ६० लाख रु० का घाटा उठायेगी। स्पष्ट है कि जनताकी अपनी सरकार होनेपर इसी प्रकार लोकोपयोगी कार्योंपर भारी रकम खर्च करके देशकी सर्वांगीण उन्नति की जायगी।

स्थानीय संस्थाएँ

भारतमें लगभग ८१२ म्युनिसिपलिटियां हैं और १०६८ जिला बोर्ड। इनके राजस्वकी स्थिति अत्यन्त दयनीय है। म्युनिसिपलिटियोंको चुंगी, मकानों, व्यवसायों, यात्रियों आदिपर कर लगानेका अधिकार है। इन्हें संगीत, सवारी, कुत्ता अथवा अन्य पशुओंके लैसंसकी फीस पानेका भी अधिकार है। सरकारसे

इन्हें ऋण भी मिल जाता है पर इनका अधिकतर पैसा सफाई, रोशनी आग, पानी, चिकित्सा, शिक्षा आदिकी व्यवस्थामें ही चला जाता है और सदा कमीका ही रोना रहता है। सन् १६३६-३७ के इन आंकड़ों-से ब्रिटिश भारतकी सब म्युनिसिपलिटियोंके आय-व्ययका अनुमान किया जा सकता है—

(लाख रुपयोंमें)

आय		व्यय	
चुंगी, मकान, पशु, सवारी, पानी,		शासन	१,८४
रोशनी, सफाई आदिका कर	१३,६४	सुरक्षा, रोशनी, पुलिस,	
बाजार, कसाईखाना, फीस		आग आदि	१,५०
आदिसे प्राप्ति	५,३०	जल और नाली	५,१४
		अस्पताल	६८
		बाजार, बगीचा, सफाई	९४
ऋण और असाधारण	२३,०६	तामीरात	२,३४
		शिक्षा	२,४०
		अन्य	३,६०
	४२,००		१८,७४
		ऋण और असाधारण	२०,८२
			३९.५६

प्रति व्यक्तिपर म्यूनिसिपल करोंका भार ५॥≈)≡

ऋण आदि छोड़कर प्रति व्यक्ति आय ८≈)॥≡

ब्रिटिश भारतके जिला बोर्डोंके आय-व्ययका अनुमान सन् १९३६-३७ के इन आंकड़ोंसे किया जा सकता है—

(लाख रुपयोंमें)

आय		व्यय	
प्रान्तीय कर	५,२५	शिक्षा	६,२७
नागरिक कार्य	२,२७	नागरिक कार्य	४,२०
अन्य सूत्र	८,७१	सफाई, अस्पताल आदि	२,१४
		ऋण और विभिन्न	३,६१
योग	१६,२३		१६,२२

जिला वोर्डोंकी स्थिति म्युनिसिपलिटियोंसे भी दयनीय है। उनकी आयके साधन अत्यन्त सीमित हैं। म्युनिसिपलिटीके लिए पानीकी व्यवस्था करना जैसा कठिन होता है वैसा ही वोर्डोंके लिए शिक्षाकी व्यवस्था करना। तभी तो जिला वोर्डोंकी शिक्षा-व्यवस्था वड़ी ढीली रहती है। अध्यापक वेतनकी कमी और समयसे उसके न मिलनेकी शिकायत किया करते हैं! जिला वोर्डोंकी सड़कोंकी स्थिति तो सभी जानते हैं। म्युनिसिपलिटियों, कारपोरेशनों और जिला वोर्डोंकी अवस्था तभी सुधर सकती है जब उनकी आयके साधन और वढ़ें तथा सरकार उन्हें समुचित सहायता दे।

गुलाम भारतका अन्तिम बजट

२८ फरवरी १९४७ को असेम्बलीमें गुलाम भारतका अन्तिम बजट पेश करते हुए गुलाम भारतके प्रथम और अन्तिम भारतीय अर्थ-सदस्य श्री लियाकतअली खांने कहा कि मैं विशेष रूपसे यह चेष्टा करूँगा कि आजके युगमें धनिक और दरिद्रता-ग्रस्त लोगोंकी आय और रहन-सहनके मानमें जो असाधारण विषमता पायी जाती है वह न्यूनाति-न्यून कर दी जाय। कर सम्बन्धी प्रस्तावोंकी चर्चा करते हुए आपने ये आंकड़े पेश किये —

सन् १९४६-४७		सन् १९४७-४८	
राजस्व	३३६.१६ करोड़ रु०	२७९.४२	करोड़ रु०
व्यय	३८१.४७ ,,	३२७.८८	,,
घाटा	४५.२८ ,,	४८.४६	,,

अर्थ-मन्त्रीने कहा कि इस कमीका अधिकांश हमें प्रत्यक्ष करोंसे पूरा करना चाहिये। करके प्रस्तावों द्वारा ४४ करोड़ रु० की आमदनी होनेका अनुमान है।

आपने कहा कि एक लाखसे अधिक कारवारी मुनाफेपर २५ प्रतिशतका विशेष आयकर लगाया गया है। पूंजी सम्वन्धी लाभपर भी कर लगाया गया है। दो वर्ष तक संकलित पूंजीकी निकासी तथा तीन वर्षसे अधिक कालतक संकलित पूंजीकी निकासीमें भेद किया गया है। कारपोरेशन-कर एक आनेसे वढ़ाकर दो आना कर दिया गया है। आयकर और सुपर-टैक्स मिलाकर १) में ।।।≡) दे देना पड़ेगा। चायपर निर्यात-कर =) पौंड से ।) पौंड कर दिया गया है।

श्री लियाकतअलीके प्रस्ताव वुरे नहीं थे पर पूंजीपति उन्हें देखकर वुरी तरह वौखला उठे। वोले, इनसे उद्योग सर्वथा चौपट हो जायेंगे। पूंजीवादी पत्रोंने इसे उलटनेके लिए आकाश-पाताल एक कर दिया। इस प्रचारने इतना विकट रूप धारण किया कि अन्तमें अर्थ-मंत्रीको झुकना पड़ा और २५ मार्चको उन्होंने असेम्वलीमें घोषणा की कि सरकार कारवारी मुनाफेकी दर २५ प्रतिशतके वदले १६ प्रतिशत स्वीकार करनेको तैयार है!

तव कहीं वजट स्वीकृत हो पाया!

सामाजिक स्थिति

अंग्रेज गर्वसे कहते हैं कि हमने भारतमें सुख और शान्ति स्थापित कर दी। पर यदि किसी देशको निहत्थाकर जोंककी भांति उसका सारा रक्त चूसकर, भूखा, नंगा और दरिद्र बनाकर, उसका सर्वस्व अपहरणकर ही शान्ति स्थापित की जाती है तो अंग्रेजोंका शान्ति-स्थापनका दावा सही है।

ग्राम पंचायतोंका नाश करके अंग्रेजी राज्यने अदालतें लगायीं।

शासन व्यवस्था

पुलिस और सेना, तोप और बन्दूकके बलपर शान्ति स्थापित की। खुफिया पुलिसका जाल बिछाया। साम, दाम, दण्ड, भेद सबका आश्रय लिया।

तहसील, जिला, सूबा आदि विभिन्न भागोंमें देशको विभाजित कर अंग्रेजोंने यहाँ शासन किया। केन्द्रीय सत्ता ब्रिटेनके हाथमें रही और भारतमें उसका सर्वोच्च अधिकारी रहा—वाइसराय और गवर्नर जनरल। उसके नीचे गवर्नर, चीफ कमिश्नर, कलक्टर, तहसीलदार, गांवके मुखिया, चौकीदार आदि। अदालतें तहसीलसे शुरू होकर लन्दनकी प्रिवी कौंसिलतक। लाट और बड़े लाटको अनन्त अधिकार मिले। जो कमी रही उसके लिए विशेषाधिकार थे। भारतीय जनताको भाव प्रकट करनेके लिए धारा-सभाओंकी ूट मिली। कानून बनानेका अधिकार मिला। पर लाट और बड़े लाटको उसमें दखलन्दाजीका अधिकार बना ही रहा! बजटकी कुछ मदोंपर जनता-को बोलने तककी अनुमति न थी।

ब्रिटिश शासनके आरम्भमें भारतकी जो सामाजिक स्थिति थी आज उसकी समाप्तिके अवसरपर वह स्थिति नहीं है। इस बीच

समाज सुधार

उसमें महान परिवर्तन हुआ है। अस्पृश्यताका निवारण करने, शिक्षाका प्रसार करने और महिलाओंकी अवस्था सुधारनेके लिए आर्य समाज और कांग्रेस जैसी

महान संस्थाओंने जो कार्य किया है उसे कभी नहीं भुलाया जा सकता।

जाति बन्धन

सामाजिक सुधारोंके फलस्वरूप जातिगत संकीर्णता बहुत-कुछ दूर हो गयी है। पुरानी परिपाटी, पुराने रीतिरिवाज बदलते जा रहे हैं। सामाजिक रुढ़ियाँ शिथिल हो रही हैं। अन्तर्जातीय विवाह, सहभोज आदिकी पद्धति बल पकड़ती जा रही है। इस प्रकार नये समाज-भवनका निर्माण हो रहा है।

महिलाओंकी स्थिति

कुछ दिन पूर्व महिलाएं पैरकी जूती मानी जाती थीं। पर आज उनका पद और महत्त्व कहीं ऊंचा है। उन्हें अनेक सामाजिक और राजनीतिक अधिकार प्राप्त हो चुके हैं। आज महिलाएं असेम्बलीतक ही नहीं, उसकी अध्यक्षा, मंत्रिमण्डलकी सदस्या और राष्ट्रनेतृके गौरवमय पदपर अधिष्ठित होने लगी हैं। १६२६ में स्थापित अखिल भारतीय महिला सम्मेलनने इस दिशामें प्रशंसनीय कार्य किया है। सर गंगारामने लाखों रुपया देकर महिला आश्रमोंको प्रोत्साहन दिया है। और भी कितनी ही छोटी-मोटी संस्थाएं महिलाओंकी उन्नतिमें योग दे रही हैं। महर्षि धोंड़ों केशव कर्वेका महिला विद्यालय, कन्या महाविद्यालय जालंधर, प्रयाग महिला विद्यापीठ, वनस्थली विद्यापीठ जैसी शिक्षण संस्थाओंने महिलाओंको शिक्षित बनानेमें अच्छा कार्य किया है। यों सभी विश्वविद्यालय कम फीस लेकर और प्राइवेट बैठनेकी अनुमति देकर महिलाओंकी शिक्षामें सहायता पहुंचा रहे हैं। १९४३-४४ में देशमें महिलाओंकी शिक्षाकी अवस्था यह थी—

स्वीकृत संस्थाएँ		बालिकाएँ और महिलाएँ
कालेज	६६	१३,८९२
हाई स्कूल	५१२	१७०,५८१
मिडिल स्कूल	१,३२३	२४२,५७८

प्राइमरी स्कूल	२२,६५४	३०,२७,४२०
विशेष स्कूल	७६३	४०,१८७
	२५,३३८	३४,९४,६५८
अस्वीकृत संस्थाएँ	३,६७६	१,२१,११५
	२९,०१४	३६,१५,७७३

फिर भी, अभी महिलाओंकी शिक्षा ३ प्रतिशततक नहीं पहुँची !

यों आज हम महिलाओंको अध्यापकी, वकालत, डाक्टरी और नेतृत्व करते देखते हैं। पर ९७ प्रतिशत स्त्रियोंमें अभी अशिक्षाका ही प्रचार है। पर्दा, अन्धविश्वास, कुरीतियाँ आदि उन्हें बुरी तरह जकड़े हुए हैं। कर्तव्यका उन्हें ज्ञान नहीं, अधिकारोंका पता नहीं। बीमारीमें दवादारूकी कोई व्यवस्था नहीं। घरवाले भी चिन्ता करते नहीं। एक मरी, दूसरी आयी ! प्रसूतिकालमें तो उनकी दुर्गतिका ठिकाना ही नहीं रहता। भारतमें जच्चा-बच्चाकी मृत्युसंख्या विश्वमें सबसे अधिक है। हमारे यहां प्रतिवर्ष २ लाख माताएँ सौर-गृहसे जीवित नहीं लौटतीं !

राष्ट्र-माता कस्तूरबाके स्मारक-कोषसे देहातकी तिरस्कृत महिलाओंकी सेवाका अच्छा कार्य हो रहा है. पर जबतक सरकार और जनता इस ओर अपनी पूरी शक्ति न लगायेगी तबतक विशेष कार्य होनेकी आशा व्यर्थ है।

शिक्षाकी अवस्था

कम्पनीकालमें भारतमें शिक्षा-प्रसारकी जैसी दूषित नीति रही, ब्रिटिशकालमें भी वैसी ही रही। सेना और पुलिस, लाट और बड़े लाट, आदिको मोटी रकम देकर सरकारके पास पैसा ही कितना बचता था जो वह शिक्षापर खर्च करती। त्रावणकोर छोटा-सा राज्य है पर वहाँ ४७.९प्रतिशत व्यक्ति साक्षर हैं, कोचीनमें ३५.४ प्रतिशत, पर ब्रिटिश भारतका हिसाब यह है कि

५ सालसे ऊपरके प्रति हजार व्यक्तियोंमें केवल इतने व्यक्ति साक्षर हैं—

पुरुष	स्त्रियाँ	कुल
२१२	२७	१२३

आखिर, नौ दस करोड़ रुपया खर्च करके कितने व्यक्तियोंको शिक्षा दी जा सकती है? लोग रूसका उदाहरण पेश करते हैं कि वहाँ २० साल पहले केवल ५१.१ प्रतिशत व्यक्ति साक्षर थे पर १९३६ में ८१.२ प्रतिशत व्यक्ति साक्षर होगये। पर किसी गुलाम और किसी आजाद देशका मुकाबला ही क्या ?

स्वास्थ्यकी स्थिति

अब भारतीयोंके स्वास्थ्यकी स्थिति देखिये। ये आँकड़े किसे न चौंका देंगे ? अपनी कहानी वे स्वयं कहते हैं।

विभिन्न देशोंमें जन्ममृत्यु के आँकड़े—प्रति हजार

देश			बच्चोंकी	आयु मर्यादा	
	जन्म	मृत्यु	मृत्यु	पुरुष	स्त्री
आस्ट्रेलिया	१७.०	९.४	३८	६३.४८	६७.१४
अमेरिका	१७.०	११.२	५४	५९.१२	६२.६७
इंग्लैंड और वेल्स	१४.९	१२.४	५८	५८.७४	६२.८८
जर्मनी	१८.८	११.७	६४	५९.८६	६२.७५
इटली	२२.६	१४.२	१०६	५३.७६	५६.००
फ्रांस	१४.७	१५.०	६५	५४.३०	५६.०२
रुमानिया	३०.८	१९.३	१७८		
स्वेडन	१४.३	१२.०	४६	६३.२२	६५.३३
मिस्र	४३.५	२७.२	१६५		
जापान	३०.६	१७.०	१०६	४४.८२	४६.५४
ब्रिटिश भारत	३४.५	२२.४	१६२	२६.९१	२६.५६

भारतमें जन्म-मृत्यु के आँकड़े

वर्ष	जन्म मृत्युका अनुपात	जन्म	मृत्यु	प्रति हजार बच्चोंकी मृत्यु
१९३१	१.३७६	३४.६	२५.१	१७६
१९३२	१.५५८	३३.८	२१.७	१६६
१९३३	१.५८७	३५.४	२२.३	१७१
१९३४	१.३५१	३३.३	२४.६	१८७
१९३५	१.४६९	३४.२	२३.३	१६४
१९३६	१.५६५	३४.६	२२.१	१६२
१९३७	१.५३६	३३.३	२१.७	१६२
१९३८	१.४०६	३२.८	२३.३	१६७
१९३९	१.५१६	३२.२	२१.२	१५६
१९४०	१.५१६	३१.४	२०.७	१६०
१९४१	१.४७०	३१.५	२१.४	१५८
१९४२	१.३७५	२८.७	२०.६	१६३
१९४३	१.०६४	२५.५	२३.३	१६५
१९४४	१.०५५	२५.२	२३.६	

दस वर्षसे छोटे लड़कोंकी मृत्यु—प्रति हजार

	१ वर्षसे कम	१ वर्षसे ५ वर्षतक	५ वर्षसे १० वर्षतक	योग
ब्रिटिश भारत (१९३५—३६)	२४३	१८७	५५	४८५
इंगलैंड और वेल्स	६८	२१	११	१००

भयंकर रोगोंका प्रकोप

रोग	मृत्यु	प्लेग	मृत्यु
मलेरिया	२० लाख	१८९८–१९०८	५ लाख ४८ हजार
क्षय	५ लाख	१९०९–१९१८	४ लाख २२ हजार
चेचक		१९१९–१९२८	१ लाख ७० हजार
(१९३२–४१)	७० हजार	१९२९–१९३८	४२ हजार
हैजा (१९०७–११)	४ लाख		
(१९३६–४१)	डेढ़ लाख		
कोढ़ी (१९३१)		बीमार	१५ लाख
गर्मी और सुजाक (१९३३)		बीमार	१ करोड़ ३० लाख

इस प्रकार हमारे देशमें हजारों लाखों व्यक्ति भयंकर रोगोंमें पीड़ित होते एवं मरते रहते हैं, पर किसे पर्वाह! हमारी सरकारके पास जनताके स्वास्थ्यकी रक्षाके लिए पैसा ही नहीं। निम्नलिखित आँकड़ोंसे स्थितिका अनुमान किया जा सकता है —

स्वास्थ्य और चिकित्सापर व्यय

		प्रति व्यक्ति	
ब्रिटेन (१९३४–३५)			५४॥)११
अमेरिका (१९३८)			५१।=)
भारत			
	बिहार (१९३९–४०)		–)
	युक्तप्रान्त ,,		–)॥।
	बंगाल ,,		=)७
	बम्बई ,,	अधिकतम	।–)॥।

भारतमें अस्पताल और रोगियोंकी संख्या

प्रान्त	अस्पताल	रोगी	सरकारी खर्च रु०	मृत्यु प्रति हजार देहातमें	नगरोंमें
सीमाप्रान्त	१०२	२,५१४,८८२	७१२,६२६	१७.७	१५.१
पंजाब	६६१	१६,०६८,२००	७,७५८,३२६	२५.६	२१.८
दिल्ली	२९	१,२७७,४०२	३,८७४,५३४	१६.[illegible]	२८.१
युक्तप्रान्त	६६१	१०,०१४,७१५	९,०४२,७२५	२१.४	१२.४
बिहार	५८६	६,६२४,५८८	३,७१८,५२१	२१.४	१२.४
उड़ीसा	१७८	१,८४१,४६६	७३१,४६७	२७.५	२१.५
बंगाल	१,४१५	१०,५२१,७७८	११,६२५,४५५	२०.६	२१.०
मध्यप्रान्त	३४०	३,८६५,१०४	४,२३८,४८२	३०.७	३०.८
बम्बई	४२८	३,४९७,२७०	१७,१३४,४२७	२३.५	३१.२
सिंध	१७३	८८६,१०३	१,४२१,४४७	८.८	१७.९
मद्रास	१,३६४	१६,६८२,५२६	१६,३२४,७५५	२२.३	२९.३
आसाम	२७४	२,४३२,४३६	१,५२७,८७१	१९.२	१७.६
कुर्ग	११	३२१,५४६	२१,४२५	२०.७	५७.७

खाद्य-स्थिति स्वास्थ्यकी स्थिति यह है। अब भोजनकी स्थिति लीजिये। पिछले युद्धने भारतकी स्थिति और अधिक गड़बड़ा दी है। आज देशमें खाद्य-संकट कितना विषम है यह किसीसे छिपा नहीं है।

एक तो हमें सड़ी गली चीजें खाने को मिलती हैं, पौष्टिक पदार्थोंका तो कहीं नाम भी नहीं; दूसरे, शरीरकी आवश्यकताके लिए जितनी मात्रा चाहिये, उसकी आधी-तिहाई भी नहीं मिलती। निम्नलिखित आंकड़े इसका प्रमाण हैं—[1]

भारतमें अन्नकी पैदावार—(१९४५-४६)

चावल	२ करोड़ ५८ लाख टन	जुआर बाजरा	७५ लाख टन
गेहूं	८२ ,, ,,	मकई	२२ ,, ,,
चना	३० ,, ,,	जौ	१७ ,, ,,

यह मात्रा भारतकी कुल जनसंख्याके लिए अपर्याप्त है और कूती गयी कमी साठ लाख टन बतायी गयी है।

भारतकी वार्षिक उत्पत्ति और आवश्यकता (टनोंमें) इस प्रकार है—

खाद्य पदार्थ	उत्पत्ति	आवश्यकता	कमी
अनाज	५ करोड़	६ करोड़	१ करोड़
दाल	७० लाख	१ करोड २० लाख	५० लाख
तरकारी और फल	अनकूते	कमसे कम दूने	...
मछली	६ लाख	९० लाख	८४ लाख
दूध	२ करोड़ २० लाख	३ करोड़ ५० लाख	१करोड़ ३० लाख
अण्डे	२६६०	१४६०००	१४३३४०

अच्छा स्वास्थ्य बनाये रखनेके लिए इतने संतुलित आहारकी आवश्यकता है—

१—'१९४६ का अन्न-संकट' शीर्षक पत्रक।

अनाज	१४ औंस	फल	३ औंस
दाल	३ ,,	शकर	१० ,,
हरी पत्तीवाला साग	३ ,,	वनस्पति, घी आदि	२ ,,
जड़ोंवाला साग	३ ,,	मांस-मछली	३ ,,
दूसरे साग	३ ,,	अण्डा	केवल १

इस आहारसे लगभग २६०० कैलोरी गर्मी पैदा होती है। डाक्टरोंके मतसे एक वयस्क भारतीय के लिए २६०० कैलोरी चाहिये और एक बालिग वयस्क महिला के लिए २१०० तथा दूध पिलानेवाली मांके लिए ३००० कैलोरी चाहिये।

पर अन्य देशोंके मुकाबले हमें प्रतिदिन मिलता कितना है—

अमेरिका	३,२०० कैलोरी	जापान	१५७५ कैलोरी
ब्रिटेन	२,६०० ,,	खतरनाक मात्रा	१,५०० ,,
जर्मनी	१,६०० ,,	भारत	६६० ,,

भारतको खतरनाक मात्रासे भी कम कैलोरी गर्मी मिलती है।

दुर्भिक्ष

यही कारण है कि भारतवासी कुत्तेसे भी बदतर मौत मरते हैं, बार-बार दुर्भिक्ष पड़ते हैं और एक एक दुर्भिक्षमें लाख-लाख व्यक्ति काशीलाभ करते हैं! डिगबी, लेवी तथा अन्य लोगोंका अनुमान इस प्रकार है[1]—

समय	दुर्भिक्ष	अनुमित मृत्यु-संख्या
सन् १८०० से १८२५	५	१० लाख
१८२५ से १८५०	२	४ लाख
१८५० से १८७५	६	५० लाख
१८७५ से १९००	१८	२६० लाख

१— मुखर्जी : फुड प्लैनिंग फार ४०० मिलियन्स, पृष्ठ ३५।

बंगालका दुर्भिक्ष

और १६४३ का बंगालका दुर्भिक्ष !

न कुछ पूछिये उसका हाल ।

ब्रिटिश शासनकी इस 'अनुपम' देनको भारत युगोंतक स्मरण रखेगा । किसान बर्तन-भांड़े, घरबार बेचकर, कलकत्ताकी ओर दौड़े, पर वहां उन्हें मुट्ठी भर भीख न जुटी ! दो-दो दानोंके लिए माताओंने गोदीके लाल बेच डाले, टके-टकेपर अस्मत लुटायी, फिर भी पापी पेट न भरा ! जूठनके टुकड़ोंके लिए खुली सड़कपर नरकंकालों और कुत्तोंमें जमकर होड़ लगी ।

मानव दो दानोंके अभावमें तड़प-तड़पकर प्राण दे रहा था, सड़कें लाशोंसे पटी पड़ी थीं, पर किसे चिन्ता थी ? जिनके हाथमें सरकार थी, शासन था, हुकूमत थी, वे मौज ले रहे थे. तमाशा देख रहे थे । पूंजीपति सोने-चाँदीकी हवेलियाँ खड़ी कर रहे थे ! भला हो 'स्टेट्समैन' का, जिसने इस दयनीय स्थितिका चित्र दुनियाकी आँखोंके आगे रखा । जब सरकारपर लाखों टन थूक पड़ चुका, तब कहीं उसके कानपर जूं रेंगी ! पर तबतक तो सरकारी दुर्भिक्ष कमीशनके अनुसार १५ लाख और कलकत्ता विश्व-विद्यालयकी रिपोर्टके अनुसार ३५ लाख व्यक्ति काल-कवलित हो चुके थे !

सरकारी उपेक्षा

खेतीका भार बढ़ रहा है, अच्छी खाद तथा सिंचाईके अभावमें कृषिकी उत्पत्ति कम हो रही है, पर सरकारको उसकी लेशमात्र चिन्ता नहीं । सरकार प्रति सहस्र जन-संख्याके पीछे कृषिपर जितना व्यय करती रही है, वह अन्य देशोंके मुकाबले कितना कम है, देखिये—

अमेरिका	१२२०)	ब्रिटेन	९६०)
जर्मनी	६४५)	इटली	२२५)
भारत	३४)		

यही सब कारण हैं जिनकी बदौलत आज भारतवासियोंको कैदियोंसे भी गया-गुजरा भोजन मिलता है—[1]

पदार्थ	मिल मजदूरोंको (पौंडमें)		बम्बई प्रान्तके कैदियोंको (पौंडमें)	
	बम्बई	मद्रास	हलका श्रम	कड़ा श्रम
अन्न	१.२९	१.१३	१.३८	१.५
दाल	.०६	.०७	.२१	.२७
मांस	.०३	...	.०४	.०४
नमक	.०४	.०५	.०३	.०३
तेल	.०२	.०३	.०३	.०३
अन्य पदार्थ	.०७	.०९	...	...
योग	१.५४	१.३७	१.६६	१.८७

वस्त्रकी स्थिति

खाद्य जैसी ही बुरी स्थिति वस्त्रकी है। युद्धसे पूर्व भारतमें लगभग ३८००० लाख गज कपड़ा मिलें तैयार करती थीं, १६००० लाख गज करघेसे बनता था, ६५०० लाख गज विदेशसे आता था। इस प्रकार ६३५०० लाख गज कपड़ा होता था, जिसमेंसे १५०० लाख गजका निर्यात हो जानेपर ६२००० लाख गज कपड़ा देशवासियोंके लिए बच रहता था। युद्धकालमें कपड़ेका आयात तो हो गया बन्द, सेना आदिके लिए निर्यात बढ़कर १५००० लाख गज हो गया। मुश्किलसे ४०००० लाख गज कपड़ा देशके लिए बचा। अर्थात् १० गज प्रति व्यक्ति! अमेरिकामें प्रति व्यक्ति ६४ गज, स्वीडेनमें ३८ गज, ब्रिटेनमें ३५ गज, न्यूजीलैंडमें ३० गज, जापानमें २१ गज कपड़ेका खर्च है पर भारतमें पहले १६ गज प्रति व्यक्ति मिलता था और अब तो १० गज ही रह गया!

फिर भारतवासी क्यों न नंगे रहें?

१—कन्हैयालाल मुंशी : दि ग्लिन दैट ब्रिटेन राट, पृष्ठ ५७,५८।

मूल कारण दरिद्रता आज भारतवासी भूखे हैं, नंगे हैं, अशिक्षित हैं, उनका रहन-सहनका दर्जा गिरा हुआ है, उनकी कृषिकी अवस्था शोचनीय है, उद्योग-धन्धे चौपट हो चुके हैं, वाणिज्य-व्यवसाय नाममात्र है। क्यों?

इसका मूल कारण है—भारतकी दरिद्रता।

अर्थशास्त्रियोंने भारतवासियोंकी आयके जो अनुमान लगाये हैं उनसे स्पष्ट हो जाता है कि भारत कितना दरिद्र है—

सन्	अर्थशास्त्री	आय प्रति व्यक्ति
१८६७-७०	दादाभाई नौरोजी	२०)
१८८२	क्रोमर और वारबर	२७)
१८९८-९९	विलियम डिगवी	१७॥)
१९००	लार्ड कर्जन	३०)
१९१३-१४	वाडिया और जोशी	४४॥)
१९२१	के॰ टी॰ शाह	६७)
१९३१-३२	वी॰ के॰ आर॰ वी॰ राव	६२)
१९३८	सर जेम्स ग्रिग (बजट भाषण)	५६)

अन्य देशोंसे मुकाबला करते ही स्थिति और स्पष्ट हो जाती है—

अमेरिका	१४०६)
ब्रिटेन	९८०)
जर्मनी	६०३)
जापान	२१८)
भारत	६५)

१९३० में ब्रिटेनमें प्रति व्यक्तिकी आय ७६ पौंड कूती गयी थी, पर भारतमें ५ पौंड भी कूतना अधिक होगा। मुद्रा-स्फीतिके कारण आज भले ही भारतीयोंकी आय 'कहनेको' कुछ चढ़ गयी हो, सम्भव है

वह १५०) के लगभग पहुँच गयी हो, पर १९३०-३१ के भावसे तुलना करनेपर स्थिति ज्योंकी त्यों रह जाती है।

ब्रिटिश शासनने भारतको किस प्रकार खोखला किया है यह सभी जानते हैं। विलियम डिगवीके कथनानुसार सन् १८०० में प्रत्येक भारतीयकी दैनिक आय २ पेंस थी, जो १८५० में १॥ पेंस रह गयी और १९०० में केवल $\frac{3}{8}$ पेंस![1]

तात्पर्य यह कि ब्रिटिश शासनने भारतको सभी दृष्टियोंसे लूटा। किसी भी क्षेत्रमें उसे उन्नति करनेका अवसर नहीं दिया। उसने हमारे समाजमें विषमता, साम्प्रदायिकता, शोषण और उत्पीड़नको आश्रय देकर हमारा सामाजिक जीवन सर्वथा चौपट कर दिया।

प्रसन्नताकी बात है कि अंग्रेज जा रहे हैं। आज भी भारतके पास इतनी सामर्थ्य और साधन हैं कि वह स्वतन्त्र होते ही कुछ दिनोंके भीतर अपनी सर्वांगीण उन्नति कर लेगा। हमारा विश्वास है कि वह दिन अब दूर नहीं जब सारे भारतवासी शान्ति, सुख और आनन्दकी त्रिवेणीमें अवगाहन कर सकेंगे। हमारी शस्यश्यामला भूमि पूर्ववत् सोना उगलने लगेगी। यहाँ घी-दूधकी नदियाँ पुनः बहने लगेंगी और हम मस्तीमें झूमते हुए गा उठेंगे—

उज्ज्वल भविष्य

'सारे जहाँसे अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा!'

○ ○ ○

१—विलियम डिगवी : प्रासपरस ब्रिटिश इंडिया।

उपसंहार

हमने देखा प्राचीन युग, हमने देखा मध्यकालीन युग, और वर्तमान युग भी हमने देखा। भारतकी आर्थिक स्थितिका उदय, उसका विकास, उसका उत्थान-पतन सभी हमारी आंखोंके आगे एक चित्रकी भांति नाच गया। उसकी गवेषणासे हम इसी निष्कर्षपर पहुंचते हैं कि—

शानदार था भूत, भविष्यत भी महान है,
अगर संभालें उसे आप जो वर्तमान है।

अगस्त १९४७ में अंग्रेज हमें शासन-सत्ता सौंपकर विलायत जा रहे हैं। पर जानेसे पूर्व वे भारतको खण्ड-खण्ड करते जा रहे हैं। हमें दो राष्ट्रोंमें बांटते जा रहे हैं। अंग्रेजोंकी साम्राज्यवादी नीतिके फलस्वरूप आजसे पाँच दिन पूर्व बंगालने और परसों पंजाबने यह फैसला कर लिया कि हम मिलकर न रहेंगे! पाकिस्तानके विष-वृक्षको अंग्रेजोंने इतने दिनोंसे जिस प्रकार जल देकर सींचा था, उसका फल आज हमारे सम्मुख है।

हृदयपर पत्थर रखकर, रक्त, हिंसा और द्वेष रोकनेके लिए हमने भारतका विभाजन स्वीकार कर लिया है। हम समझते हैं कि शोचनीय आर्थिक स्थिति थोड़े ही समय बाद पाकिस्तानको पश्चात्तापके लिए विवश करेगी और उस समय वह स्वतंत्र भारतीय संघमें सम्मिलित हो जानेमें ही अपना कल्याण समझेगा। रवि बाबूके शब्दोंमें—

देखा नाँइ पाइ, पथ चाइ,
सेओ मने भालो लागे!

हमें यह आशा भी सुखद लगती है! हमारी तो एकमात्र कामना यही है—

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःख माप्नुयात्॥

जयपुर
२५ जून, १९४७.